卐 श्री राम 卐

प्रवचन पीयूष

[श्री स्वामी जी महाराज के मूल प्रवचनों
(यथा–संभव श्रीमुख–वाणी)
का सार–संग्रह]

संशोधित तथा परिवर्द्धित
नवीन संस्करण

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान

श्रीरामशरणम्

8-A, रिंग रोड, लाजपत नगर–4, नई दिल्ली–110024

क्रमांक

|| श्री राम ||

प्रकाशक :
श्री स्वामी सत्यानन्द धर्मार्थ ट्रस्ट
श्रीराम शरणम्, 8–A, रिंग रोड,
लाजपत नगर–IV, नई दिल्ली–110024
web.site: shreeramsharnam.org
E-mail address : shreeramsharnam@hotmail.com

4,000 प्रतियाँ

सन् 2013 सम्वत् 2070

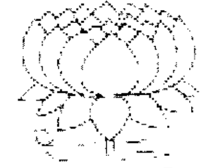
मूल्यः 70.00 रुपये

मुद्रक :
अनुभा प्रिंटर्स
प्लाट न०.१६ उद्योग केन्द एक्स०.१
ईकाटेक ३ ग्रेटर नोएडा उ०.प्र०.

अनुक्रमणिका

□ □ □

सर्वशक्तिमते परमात्मने श्री रामाय नमः



प्रार्थना

हे तेजोमय परमेश्वर?
हमें इस संसार की यात्रा में सफलता के
लिये सुपथ पर चलाईये। हमारी दुर्बलताओं
को आप जानते हैं।
अपने कुटिल रूपमय पापों को दूर करने में
हम असमर्थ हैं। ऐसी शक्ति दीजिये कि हम उन
सबसे पार पा सकें। तेरी कृपा अनन्त है।
तेरी कृपा हमें सदैव उठाती रही है। हम तेरी
कृपा का कभी ऋण नहीं चुका सकते। तेरे
मंगलमय द्वार पर यह नमस्कार स्वीकार हो।

- उपनिषद् मन्त्र

साधना-सत्संग ग्वालियर,
दिनांक 24.10.1957
अपराह्न 4.00 बजे

श्री स्वामी जी की जीवन-यात्रा

मेरे संस्मरण।

वैक्रमी

मेरा जन्म १९२५ की चैत्र पूर्णमासी को एक ब्राह्मण

(तद्नुसार मंगलवार, 7 अप्रैल, सन् 1868)

ब्राह्मण के घर हुआ। जन्म का समय ५ बजे प्रातःकाल था। मेरा जन्म स्थान रावलपिण्डी के जिले में एक छोटा सा ग्राम जाम्बे का मोहड़ा है परन्तु मेरा पालन पोषण जम्मू राज्य में जेहलम नदी के निकट मामा के घर संकरा नाम ग्राम में हुआ। मेरी स्मृति से पूर्व ही मेरे माता पिता का शरीर शान्त हो गया था इस कारण मेरा पालन मामा के घर पर ही होता रहा मैं ~~अपनी~~ अपनी मां का अकेला पुत्र था।

मुझे अपने माता-पिता की आकृति स्मरण नहीं। हाँ, मुझे दादी से मिलने की एक बार की याद है। नाना के यहां मुझे लक्ष्मण कह कर पुकारते थे। दादा के यहां दूसरा नाम था गोविन्द। माता-पिता के प्यार का मुझे स्मरण नहीं। मेरे लिए तो मामा-मामी ही सब कुछ थे। इतना अवश्य बताया था कि मैं अपने माता-पिता की बड़ी आयु में पैदा हुआ था।

मेरी नानी ने कोई छह वर्ष तक मुझे पाला। फिर वह भी चोला छोड़ गई। इस समय मेरी आयु कोई दस वर्ष थी। अब मेरा संसार में कोई नहीं रहा। कुछ वर्ष इधर-उधर भटकते हुए पलता रहा।

मेरा यह समय अत्यन्त कष्ट में तथा रुल-खुल कर बीता। पुराने संस्कारों और प्रारब्ध अनुसार मुझे साधु-संन्यासियों की संगति मिल गई। फिर भी प्रयास यही रहा कि विद्वानों से स्थान-स्थान पर जाकर संस्कृत का अध्ययन करूं।

जैन यति

जब मैं सत्रह वर्ष का था तो मुझे जैन साधुओं की संगति प्राप्त हुई। उनके उपदेश से मैंने घर त्याग कर उनके साथ रहना आरम्भ कर दिया। साधक की अवस्था में जैन मुनियों के संग एक वर्ष तक रहा। जब मेरी आयु उन्नीस वर्ष की थी, मैं जैन यति बन गया। जैन यति की अवस्था में मैंने जैन-ग्रन्थों का खूब मनन किया। मैंने श्री सोहन लाल जी (जैन मुनि) से प्रायः सभी जैन ग्रन्थ अध्ययन कर लिए थे। मेरी स्मरण-शक्ति बहुत अच्छी थी, इसलिए जैन-ग्रन्थों के समझने में मुझे कुछ भी कठिनाई नहीं होती थी। मुझे पढ़ाकर श्री सोहन लाल जी बहुत प्रसन्न हुआ करते थे। मैं उनका कृपा-पात्र समझा जाता था।

जब मैं उन्तीस वर्ष का हुआ तो मुझे एक छोटा सा ग्रन्थ **'अध्यात्म-चिकित्सा'** नामक पढ़ने का अवसर मिला। उसमें आध्यात्मिक चिन्तन और योग के सम्बन्ध में कई-एक साधन लिखे हुए थे। अभ्यासी के लिए जहाँ अन्य अनेक साधन उसमें लिखे हुए थे, वहाँ यह भी साधन वर्णित था कि अभ्यासी के लिए आवश्यक है कि परमेश्वर में विश्वास करे, उसे सर्वत्र विद्यमान, सर्वशक्तिमान, सच्चिदानन्द स्वरूप माने। मुझे इस साधन में बड़ी कठिनाई प्रतीत हुई। मैं यह तो चाहता था कि उस पुस्तक के अनुसार अभ्यास करूं, परन्तु मुझे ईश्वर पर विश्वास नहीं था। उसके अस्तित्व के विरुद्ध मैं युक्तियां बहुत दिया करता था पर अभ्यास की लगन ने अन्त में मुझे प्रभावित कर लिया। मैंने अपने आपको इस प्रकार सन्तुष्ट किया कि अभ्यास-काल में ईश्वर विषय में मौन रहूंगा उसके सम्बन्ध में मैं वाद-विवाद नहीं करूंगा। ऐसे नियम के साथ मैंने अभ्यास

करना आरम्भ कर दिया। उन दिनों में मेरा चातुर्मास लुधियाना नगर में था।

मैं रात के समय अभ्यास किया करता था। अभ्यास के समय मुझे अनेक अलौकिक बातें प्रतीत होने लग गईं, जिससे मेरा विश्वास बढ़ गया और मुझे आप ही आप ईश्वर में श्रद्धा हो गई। मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि परम-पुरुष अवश्यमेव है। तब से मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया कि अब मैं जैन-मत को त्याग दूंगा। इस मत में ईश्वर विश्वास नहीं है, इस कारण मैं इसका प्रचार और समर्थन नहीं करूंगा। पहले मुझे ईश्वरवाद के विरुद्ध चर्चा-वार्ता करने का अधिक चाव हुआ करता था। जब भी कोई ईश्वरवादी मिल जाता, मैं उससे भिड़ जाया करता और तर्क से उसे निरुत्तर करने का यत्न किया करता, परन्तु ईश्वर विश्वास की हृदय-भूमि में जड़ जम जाने से मुझे अपना सारा तर्क-जाल बड़ा बोदा दीखने लगा, अपनी सभी युक्तियां सार-रहित जान पड़ीं, अपने अनीश्वरवाद के विचार मानस विकार प्रतीत होने लगे और अपने उस समय के मन्तव्य निर्मूल और मिथ्या दिखाई दिए। साथ ही साथ जैन धर्म के आत्मवाद, मुक्तिवाद, स्वर्ग-नरकवाद तथा कर्मवाद से मेरा निश्चय उठ गया। मुझ को ऐसा प्रतीत होने लगा कि ईश्वर भावना के आते ही मेरा सारा मतवाद का कोट आप ही आप धराशायी हो गया है। मेरे मतवाद की माला के सारे मनके बिखर गये हैं। मेरी विचारधारा का प्रवाह सर्वथा बदल गया है। मेरे तर्क-प्रमाण निरे प्रपंच हो गये हैं और मेरी मानी हुई धर्म-धारणा आमूलचूल हिल गई है। अभ्यास करने से मुझे ईश्वर कृपा का जो भी प्रसाद प्राप्त हुआ वह यद्यपि बहुत थोड़ा था, परन्तु उसका उत्तम फल यह हुआ कि मैं पूरा आस्तिक बन गया और अधिक अभ्यास की मुझमें जिज्ञासा व लगन उत्पन्न हो गई। इस जिज्ञासा और लगन की भूख ने मुझे व्याकुल कर दिया। रात-दिन मैं यही सोचने लगा कि इस सम्प्रदाय को छोड़कर जितना भी शीघ्र हो सके मैं हरिद्वार आदि धामों में जाकर सन्त-जनों से भगवदाराधना के साधन सीखूं तथा साधन करके आत्म-तृप्ति प्राप्त करूं। अपने हृदय का यह भेद मैंने अपने मित्र साधुओं पर प्रकट कर दिया।

स्नेह-सम्बन्ध तथा मैत्री भाव जैन-मुनियों ने उस समय जो प्रदर्शन किया वह मेरे लिए सदा स्मरण रखने की बात है। प्रेमवश मुझे उन्होंने यह भी कहा

कि "यहां तू गुरु माना जाता है, सेठ साहूकार आकर तेरे पैरों पर सिर रखते हैं। इतनी पूजा और प्रतिष्ठा तुझे प्राप्त है, जो सहज से प्राप्त नहीं हो सकती। इस कारण तुझे जैन-सम्प्रदाय का त्याग नहीं करना चाहिए। ऐसा करना बुद्धिमत्ता का भी काम नहीं है और धर्म तो अपनी मन की भावना से सम्बन्ध रखता है। मन में तू जैसा चाहे वैसा मानता रह, परन्तु व्यवहार में जैन यति ही बना रह।" एक डेरे वाले यति ने मुझे यह भी कहला भेजा कि यदि त्याग वृत्ति आप छोड़ते हैं तो हमारे स्थान में आ जाइए। इस स्थान की बड़ी सम्पत्ति है। उसका उत्तराधिकारी मैं आप को बना देता हूँ। मैंने धन्यवाद के साथ उनका कथन भी अस्वीकार कर दिया।

मेरे ईश्वर सम्बन्धी विचार वैदिक विचारों से मिलते थे। इस कारण मैंने यही निश्चय किया कि मैं जैन-मत को छोड़कर आर्य समाज में प्रवेश करूँ, जिससे अपने पुरातन धर्म को समझ कर फिर किसी एकान्त स्थान में आराधना, साधना में जीवन व्यतीत करूं। मैंने भली-भाँति सोच विचार कर जैन-मत छोड़ने की तिथि निश्चित कर ली।

~~सम्वत~~ सन १९५८ दिसम्बर २८ को मलेरकोटला नगर में, जबकि मेरी आयु के ३० वर्ष समाप्त हो चुके थे,
मैंने जैनमत को छोड़ कर जैनयतियों से बड़े प्रेम
और कृतज्ञता के साथ पृथक् हो गया। उन मुनियों
के उपकार मैं आज भी हार्दिक धन्यवाद
के साथ स्मरण करता हूं।

आर्य समाज में प्रवेश तथा संन्यास

ज्योंही मैं जैनधर्म-स्थान को छोड़कर बाहर आया तो मलेरकोटला के सनातनधर्मियों और आर्यसमाजियों ने मिलकर बड़े समारोह से मेरा स्वागत किया। उन दिनों वहां आर्य समाज का वार्षिकोत्सव मनाया जा रहा था। उस उत्सव में ही यज्ञ-मण्डप में मैंने संन्यास-दीक्षा ग्रहण कर ली। तदनन्तर मैं

जालन्धर नगर में आ गया। वहां आने का विचार मैंने इसलिए किया था कि मैं वहां रहकर वैदिक साहित्य में स्नान करके फिर किसी तीर्थ-धाम में जाकर जप आराधना करूंगा। आर्य-समाज में मेरा सम्पर्क महात्मा मुन्शीरामजी से हुआ। वे मुझे प्रातः भ्रमण के लिए साथ ले जाया करते थे। व्यायाम करना भी मैंने प्रारम्भ कर दिया। आर्य समाज के उत्सवों में मैं प्रवचन भी करने लग गया। उन दिनों प्रायः मैं उपनिषदों पर ही बोलता था। कालान्तर में मैंने दस उपनिषद् विधिपूर्वक पढ़े। वेदान्त सूत्र भी शंकर भाष्य सहित पढ़े।

एक निकटवर्ती सेवक के अनुसार श्री महाराज जी जब महाभारत, रामायण तथा वैदिक प्रसंगों पर कथा करते थे, तो सहस्त्रों लोग बिना ध्वनिवर्द्धक यंत्र (Loud speaker) के उनकी ऊंची तथा मीठी वाणी सुनते थे। शास्त्रार्थ में वे बड़े-बड़े विद्वानों को परास्त कर देते थे। ऐसे वैदिक प्रचार दीर्घ-काल तक (पच्चीस वर्ष) भ्रमण करके करते रहे। इस बीच एक सुन्दर पुस्तिका, 'ओंकार उपासना' नाम से भी लिखी और भी ग्रन्थ लिखे– सत्य 'उपदेशमाला', 'आर्यसामाजिक-धर्म', 'सन्ध्या-योग', 'ईश्वर-दर्शन' और 'दयानन्द-वचनामृत' विशेषतः 'श्री दयानन्द प्रकाश' बड़ी खोज तथा पर्यटन के उपरान्त बड़ी सुन्दर एवं ललित भाषा में लिखी, जो माननीय है।

ऐसा प्रतीत होता है कि इसी बीच आध्यात्मिक पिपासा ने उन्हें अतिशय विह्वल कर दिया, जिसके फलस्वरूप उन्होंने गंगा किनारे अनेक संतों और महात्माओं से सम्पर्क किया, परन्तु कहीं भी उन्हें यथेष्ट साधना प्राप्त नहीं हुई। अन्ततः सन् 1925 में ऋषि दयानन्द जन्म शताब्दी महोत्सव के समय एकान्तवास करने की आन्तरिक प्रेरणा हुई। तदनुसार उन्होंने हिमालय के डलहौजी नामक स्थान पर, जो निर्जन था, एकान्त जीवन बिताते हुए कुछ काल तक अनवरत साधना की। उनका श्री मुख वाक्य है– 'मैंने संकल्प किया कि जब तक मुझे परम प्राप्ति नहीं हो जाती, तब तक मैं इस स्थान पर एकाग्रचित्त बैठा रहूंगा।'

साक्षात्कार

मुझे उस स्थान पर साधना करते हुए एक मास बीत गया तो, सात जुलाई, 1925 व्यास-पूर्णिमा के दिन, जब मैं आँखें बन्द किए प्रार्थना करने में निमग्न था तो मुझे **'राम'** शब्द बहुत ही सुन्दर और आकर्षक स्वरों में सुनाई दिया। मैंने समझा कि कोई प्राणी इधर-उधर राम-नाम का उच्चारण कर रहा है। आँखें खोलीं और चारों ओर देखा तो कोई भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ। फिर आँखें बन्द कीं तो उसी मधुर स्वर में **'राम'**, **'राम'** शब्द सुनाई दिया। साथ ही आदेशात्मक शब्द आया– **राम भज, राम भज, राम-राम।**

मैंने प्रथम उसे विघ्न समझा, किन्तु वह साधारण शब्द तो था नहीं, जिस प्रकार इस लोक में होता है। किसी विशेष महापुरुष के पधारने पर जैसे लौकिक साधारण पुरुष सभा मंच से उठ जाते हैं, इसी प्रकार मेरा हाल था। सारे शरीर में कम्पन हुआ।

मेरे प्रार्थना करने पर वह शब्द पुनः आया और फिर दर्शन की मांग करने पर प्रश्न हुआ– ''किस रूप का दर्शन चाहते हो'' ? तो मैंने कहा जो तेरा रूप हो, मैं क्या बताऊँ ? तब यह 'रा' और 'म' अक्षरमयी **'राम'** रूप, तेजोमयी, दर्शन हुआ।

उस समय ये विचार आये कि भगवान ही युग-युग में गुरु-रूप धारण करते हैं और आस्तिकवाद को बनाये रखते हैं। इसलिए परम गुरु राम ही हैं (अतः श्री स्वामी जी ने परमात्मा श्रीराम ही को परम गुरु स्वीकारा और आगे 'परम गुरु जय जय राम' गाया)। क्योंकि वे देशकाल से भी परे हैं। मानवी गुरु अथवा अवतार तो देश-काल में ही रहते हैं। वह सर्वत्र व्याप्त है। मुझे नाम की प्राप्ति जिस धाम से हुई है, उसके लिए मेरे अन्दर बड़ी कृतज्ञता है। मैं चाहता हूँ कि मेरे जीवन में जितना हो सके, उसका विस्तार कर सकूं।

पहले मैं राम नहीं जपता था। हां, बचपन में कभी जपता था। अब राम-कृपा अवतरण के पश्चात् मेरे में इतनी शक्ति आ गई थी कि चलते समय ऐसा प्रतीत होता था कि पांव के नीचे धरती कांप रही है। (एक सेवक के अनुसार जब राम-नाम की साधना करते-करते श्री महाराज जी का अन्तरात्मा श्री राम-नाम के साथ एकीभूत हो गया तो परिपक्व आस्तिक भावना, पूर्ण योग, सिद्धियों तथा संन्यस्थ-जीवन से इस साधना में तीव्र शीघ्रता के साथ आध्यात्मिक उपलब्धियां होने लगीं। एक गोपनीय पुस्तक, 'अंकित संस्मरण' से प्रतीत हुआ कि श्रीमहाराज जी को उसी वर्ष 'राम-कृपा अवतरण' का आभास हुआ। सर्व सिद्ध होने पर श्री महाराज जी ने सन् 1928 से राम-नाम दान बड़े सेवा-भाव से आरम्भ किया)।

श्री स्वामी जी ने अनेक ग्रंथ जैसे– भक्ति-प्रकाश, वाल्मीकीय रामायण-सार, श्रीमद्भगवद्गीता, एकादशोपनिषद् संग्रह, प्रार्थना और उसका प्रभाव, उपासक का आन्तरिक जीवन, भक्ति और भक्त के लक्षण, स्थितप्रज्ञ के लक्षण, भजन एवं ध्वनि संग्रह तथा अमृतवाणी की रचना की। उनके प्रवचनों का संकलन ही प्रवचन-पीयूष नामक पुस्तक है।

आर्य समाज से किनारा

भक्ति-प्रकाश में परमेश्वर का 'राम' नाम द्वारा वर्णन तथा गुणगान है। इस पर आर्य समाज के प्रबन्धकों ने विरोध किया और श्री महाराज जी को कहा कि 'भक्ति-प्रकाश' में 'राम' शब्द के स्थान पर 'ओम्' लिखकर दुबारा छपवायें। श्रीमहाराज जी ने उत्तर में कहा, 'मैं 'राम' को नहीं छोड़ सकता तथा आर्य समाज से किनारा करता हूँ।'

सेवा भाव से नाम दान

इधर हांसी के इलाके में मैं बहुत घूमा हूँ, क्योंकि एक-एक व्यक्ति को दीक्षा देने के लिए मैं कई-कई कोस जाता था। जहां मैं ठहरता था वहां रात को बोला भी करता। लम्बा समय भी लग जाता था। अब तो मैंने प्रवचन के लिए अपने पर, आप से ही, बीस मिनट की रोक लगा रखी है। उस समय कोई रोक न थी।

(श्रीमहाराज जी ने आर्य समाज से किनारा करके कोई नया मत नहीं चलाया। 'राम' मन्त्र की प्राप्ति से उन्हें अभूतपूर्व शान्ति की अनुभूति हुई। उन्होंने निश्चय किया कि प्रभु-कृपा से प्राप्त इस 'राम' महामंत्र के प्रसाद को

त्रिताप से तप्त मानवों में वितरित करूँगा। 'आप सम्प्रदाय, जाति भेद तथा मत-मतान्तर की संकुचित सीमाओं को अस्वीकार कर मानव-मात्र के प्रति करुणामय होकर इस बीज मंत्र का प्रसाद बांटते रहे। अपनी-अपनी स्थिति अनुसार सब ने इससे लाभ लिया)।'

उस समय यह बीस मिनट ध्यान में बैठने का कोई नियम नहीं था। एक सज्जन ने पूछा, 'ओम् नाम को सब बड़ा बताते हैं पर आपके राम-नाम से हमें तो बड़ा लाभ है।' महाराज जी ने उत्तर दिया–''यह आर्य समाजियों ने चलाया, बनाने से बना। अरब में जाओ तो वहां तो लोग अल्लाह ही नाम पुकारें। क्रिश्चियनों में ऐसा नहीं कि ऊंची कोटि के आदमी न हों, पर वे तो गॉड का नाम ही लेकर पूजन करें। मुझे इससे कोई सम्बन्ध नहीं। नाम से क्या अभिप्राय ? तो नाम जिस पदार्थ की ओर संकेत करता है उससे है''।

साधना-सत्संग

दीक्षित साधकों की उन्नति का ध्यान करके श्री महाराज जी ने साधना-सत्संग लगाने आरम्भ किये। कोई चार-पांच दिन के लिए साधक सारे सांसारिक सम्बन्धों से परे हटकर साधना करें, जिससे उनकी उन्नति हो, मार्ग की बाधायें दूर हों और वे अपना जीवन साधनामय बना लें तथा जीवन में साधना की छाप लगाकर, साधारण जनसमाज से ऊँचा उठकर, सब को उन्नत करने का सामर्थ्य उनमें जाग्रत हो। श्री महाराज जी कहते हैं, कि 'बहुत लम्बी आयु होने से मेरे अच्छे-अच्छे साथी चले गये, जिस से जीवन में कुछ उदासीनता आ गई। पाकिस्तान बनने पर जो कुकृत्य हुए, उन्हें देखकर उदासीनता बढ़ गई, किन्तु अब कुछ अच्छे साधक और जिज्ञासु मिलने से जीवन अच्छा लगने लगा है। मेरा समय साधना-सत्संगों में बहुत अच्छा कटता है।'

शुभ-मंगल के लिये

कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जिन पर इस देश का भविष्य निर्भर है। उनके बारे में समाचार पढ़कर उनके स्वास्थ्य और मंगल के लिये, उनकी देश-विदेश यात्रा में सुरक्षा के लिये, उनके शुभ कार्यों में सफलता के लिये, मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ और कामना करता हूँ कि देश-हित में भगवान उन्हें सुमति दे। फिर देश में या देश से बाहर जब कोई दुर्घटना होती है तो जो दुर्घटनाग्रस्त हो जाते हैं, उनके कल्याणार्थ भी मैं प्रार्थना करता हूं।

अस्वस्थता

कुछ दिनों से घुटने में दर्द रहा करता। हरिद्वार साधना-सत्संग में नीचे से ऊपर चढ़ने में आध-आध घण्टा लग जाता। घुटने में चीस थी। खाना भी न खाया जावे। अलग से उबली सब्जियां बनाकर ऊपर ही कमरे में साधक ले आते। सब के साथ नीचे नहीं जाया करता। शौच आदि में भी कष्ट होता। डॉक्टर ने सारी अवस्था की जाँच की। हृदय जाँच भी हुई। डॉक्टर को एक साधक पैसे देने लगा तो वह बोला, मेरे पिताजी स्वामी जी के पास बैठा करते हैं, मैं पैसे नहीं लूंगा। उसकी पहली ही औषधि का सफल प्रभाव हुआ। अब एक निरोधक (Preventive) औषधि भी दे रहे हैं।

अन्तिम दर्शन

महाप्रयाण से एक सप्ताह पूर्व श्री महाराज जी ने अपनी चेतना को अन्तर्मुखी कर लिया था। उनको इस स्थिति में देखकर डॉक्टर ने उन्हें सम्बोधित करके पूछा, 'महाराज जी, आप को क्या हो गया है ?' श्री महाराज जी ने आँखें खोलीं और डॉक्टर की ओर देखकर खिलखिला कर हँस पड़े और यह हँसी बहुत देर तक उनके मुखारविन्द से नहीं हटी। फिर डॉक्टर को यह विचार हुआ कि कहीं श्री महाराज जी को पक्षाघात (Paralysis) तो नहीं हो गया। डॉक्टर ने आग्रह किया, 'महाराज जी, थोड़ा दायां हाथ ऊपर उठाइए।' श्रीमहाराज जी ने तुरन्त दायां हाथ उठाकर डॉक्टर के हाथ से मिलाया। फिर वैसे ही डॉक्टर के कहने पर बांया हाथ भी ऊपर उठा दिया। यह देखकर सब चकित हो गये और डॉक्टर भी मूक हो गया। फिर उन्होंने उन्मुक्त हंसी की छटा बिखेरी और पूर्ववत् अन्तर्मुख हो गये।

श्रीप्रेम जी कहने लगे कि श्रीमहाराज जी प्रायः बांई करवट से लेटते रहे हैं। सम्भवतः ऐसा करने से उन्हें आराम मिलेगा। जैसे ही श्रीमहाराज जी को

बांईं करवट लिटाया तो उन्होंने अपना दायां हाथ श्रीप्रेम जी के कन्धे पर रखा और अपने अति निकटतम करने की चेष्टा की।

रविवार, तेरह नवम्बर 1960 (सम्वत् २०१७), रात के आठ बजे श्रीमहाराज जी बड़े वेग से नाम जप करने लगे। जो कुछ धीमे स्वर में सुनाई भी देता था। ठीक 10.20 बजे रात्रि श्रीमहाराज जी ने आँखें खोलीं और हाथ के संकेत से सब को आशीर्वाद देकर यह भौतिक चोला (दिल्ली में) छोड़ दिया।

श्रीमहाराज जी अपना कोई स्मारक नहीं चाहते थे। वे चाहते थे राम से साधकों का सीधा सम्बन्ध। अतः महाराज जी के दिव्य शरीर को हरिद्वार ले जाया गया। श्रीरामशरणम्, हरिद्वार में संन्यास परम्परा के अन्तर्गत स्नान आदि तथा लेपन आदि कराके और नवीन वस्त्र पहना कर एक बड़े ही सुन्दर अलंकृत हिंडोले में शंख, घण्टे, घड़ियाल तथा बाजों के साथ अंतिम यात्रा निकाली गई। जिसमें हज़ारों साधक हिंडोले को उठाकर नील-धारा ले गये और वहां श्री महाराज जी के पार्थिव शरीर को जल समाधि दी गई। ❑❑

अध्यात्म-योग

अध्यात्म-विज्ञान

1

आत्मा को लक्ष्य रख कर जो बात की जाए, वह अध्यात्मवाद है। हिन्दू-धर्म से भिन्न धर्मों में केवल विश्वास पर बल दिया गया है और यही मुक्ति का साधन माना गया है। हिन्दू-धर्म में आचार और विचार दोनों हैं। विचार में विश्वास भी आ जाता है। आचार व्यवहारिक जीवन है, जिसे सब संसार देखता है। अध्यात्मवाद एक विज्ञान है और उसी की रीति पर चलता है, पर यह भौतिक विज्ञान से भिन्न चीज़ है। विज्ञान वह चीज़ है, जो परीक्षण करने पर पूरी उतरे। अध्यात्मवाद विज्ञान-मूलक है, केवल तर्कमूलक नहीं। तर्क कल्पना की बात होती है। अटकल गलत भी हो सकती है, पर विज्ञान अनुभव की बात होती है और ठीक ही हुआ करती है। विज्ञान कुछ-एक को होता है, बाकियों के लिए श्रद्धा की बात होती है अर्थात् उनके लिए शब्द-प्रमाण की बात हो जाती है, श्रद्धा अंधी होती है, पर ज्ञान अनुभव से होता है। श्रद्धा जल्दी हो जाती है। प्राकृतिक विज्ञान समय मांगता है, पर अध्यात्म-विज्ञान में यह अनोखी बात है कि यह भगवत्कृपा से तुरन्त भी प्राप्त हो सकता है। यह भी समय और श्रम मांगता है, किन्तु यदि भगवत्कृपा हो जाये तो यह शीघ्र भी प्राप्त हो जाया करता है।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 24.12.1945
❑❑

2

अध्यात्म-विद्या दूसरी विद्याओं के समान एक प्रकार की विद्या ही है। दूसरी विद्याओं में अपने से भिन्न पदार्थों को जाना जाता है और उसके साधन हैं– सम्मिश्रण और विश्लेषण। सम्मिश्रण दो या अधिक पदार्थों के मिलाने को कहते हैं और विश्लेषण उन पदार्थों को अलग करने को कहते हैं। अध्यात्म-विद्या आत्मा को अर्थात् अपने आपको जानने की चीज़ है और यह सम्मिश्रण और विश्लेषण द्वारा नहीं जानी जाती। यह जानने वाले को जानने की बात है। किसी दूसरे को जानने की नहीं। यह अनुभव की चीज़ है किन्तु, भौतिक विज्ञान के समान परीक्षण द्वारा दिखाई नहीं जा सकती।

पदार्थ-विद्या-वेत्ता (Scientists) इसके सम्बन्ध में प्रायः उदासीन हैं। कुछ-एक कहते भी हैं तो बहुत थोड़ा। कुछ इसके विपरीत भी कहते हैं। कोई-कोई इसके अनुकूल भी बोलते हैं। अध्यात्मवादी भी अधिक नहीं बोलते। वे केवल अधिकारी को ही बताते हैं। उसका तरीका ही यही है। सभा अथवा जन समूह में नहीं कहते, क्योंकि समक्ष कार्यान्वित करके तो दिखाया नहीं जा सकता।

अध्यात्म-विद्या को प्राप्त करने के सभी अधिकारी नहीं होते। दूसरी विद्याओं में भी यह बात है। सभी में यह योग्यता नहीं होती क्योंकि बुद्धि भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। कोई विरला ही इस योग्य होता है। इसमें अपनी प्रकृति को बदलना होता है, जो सरल काम नहीं है। शरीर की प्रकृति को ही बदलना बहुत कठिन है और आत्मा को—जिसे न जाने किस काल से प्रकृतिमय समझता आया है—जाग्रत् करना, उसको स्व-स्वरूप में लाना और भी कठिन है। इसलिए इस मार्ग पर पूरी विधि और तत्परता से चलना चाहिये। सीखने वाले में पूर्ण निश्चय और सावधानी होनी चाहिये और सिखाने वाले में भी इच्छा-शक्ति की प्रबलता होनी चाहिये। जैसे दूसरी विद्याओं के परीक्षणों में हानि हो जाने की सम्भावना होती है— अपने को कोई चोट लग जाना आदि, इसी प्रकार इस मार्ग में भी विघ्न होते हैं। इसलिए इस मार्ग में भगवान को हृदय में स्थापित करना चाहिये और समझना चाहिये कि जब स्वयं देवाधिदेव भगवान मेरे हृदय में विराजमान हैं, तो अब कोई विघ्न-बाधा तथा भय मेरे पास नहीं आ सकते और ऐसा ही होगा। भगवान को हृदय में उनके मांगलिक नाम द्वारा स्थापित करना चाहिये। यही हमारा मार्ग है और इसी को नाम-योग कहते हैं।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 25.12.1945

3

आत्मा स्वतः प्रकाश है। यह स्वयं अपने आपको जानता है। यह विद्या दूसरी विद्याओं से निराली है। हम आत्मा हैं, हम जानने वाले हैं, इस धारणा से आत्म-ज्ञान होता है। यह है अपने आपको स्थिर करना 'मैं हूँ।' इस ज्ञान में कोई भ्रान्ति हो तो उसको दूर करना चाहिये। यही अध्यात्म-विद्या का काम है और इसके अनेक साधन हैं—हठ-योग, ज्ञान-योग, अष्टांग-योग, कर्म-योग आदि, आदि। प्रश्न किया जाता है कि क्या इस मार्ग में व्यक्ति अपने आप चल सकता है ? या किसी की सहायता की आवश्यकता होती है ? साधारणतया यह समझा जाता है कि किसी दूसरे की सहायता की आवश्यकता है, पर ऐसे भी व्यक्ति होते हैं, जो अपने आप ही चल कर लक्ष्य पर पहुंच जाते हैं, पर वे बहुत विरले हैं। इसलिए साधारण जनता के लिए सीखने का ही मार्ग है अर्थात् सिखाने वाले की आवश्यकता है। सिखाने वाला मार्ग पर डालता है, पर जो कुछ बताता है उसी को मार्ग व लक्ष्य नहीं समझ लेना। ज्यों-ज्यों उस पर चला जाएगा, अपने आप मार्ग तय होगा और लक्ष्य आ जायेगा। किसी व्यक्ति को अध्यापक बनने का अधिकार है, परमेश्वर बनने का नहीं। यदि वह ईश्वर बनता है, तो वह अपराधी होता है। जो लोग उनको ऐसा समझते हैं, उनकी प्रगति रुक जाती है और वे संसार तक ही रह जाते हैं, क्योंकि उन्होंने संसार को ही आगे रखा है।

सिखाने वाला कैसा होना चाहिये ? आचार्य का स्थान बहुत बड़ा होता है। वह ईश्वर नहीं है। जब कोई महात्मा, चाहे वह कितना ही बड़ा हो, यदि

परमात्मा और मनुष्य के मध्य में खड़ा हो जाये, तो सैमिटिक (Semitic) मत के अनुसार वह असुर बन जाता है। उसकी पदवी गिर जाती है। आचार्य का स्थान पिता व माता के समान आदरणीय है, उससे अधिक भी है, किन्तु वह परमात्मा नहीं होता। गुरु का काम होता है कि आत्मा की प्रवृत्ति को परमात्मा की ओर मोड़ दे और उसके साथ जोड़ दे। जैसे यह काम बढ़िया है, वैसे ही गुरु का स्थान भी बहुत उत्तम होता है।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 26.12.1945

❑❑

अध्यात्मवाद

अध्यात्मवाद पुरानी चीज़ है। दूसरे देशों में भी है। जो किसी पश्चिमी देश में अध्यात्मवाद की बात निरूपण की गयी हो और जो भारत वर्ष में कही गई हो, उनमें केवल शब्दों का भेद हो सकता है, परन्तु तत्त्व में भेद नहीं हो सकता। अध्यात्मवाद वास्तविक धर्म है और अखिल संसार में एक ही है। यह मौलिक चीज़ है, क्योंकि धर्म की उत्पत्ति अध्यात्मवाद से होती है। यह जगत की भीतरी सत्ता-महासागर है। मानी गयी बातें अपने-अपने युग में मानी गई हैं। वे ठीक भी होंगी और ठीक नहीं भी हो सकतीं। आज ज्ञान आ गया है। इस युग में हठधर्मी से पुरानी बात को ठोसना ठीक नहीं। धर्म पृथक् चीज़ है और मत पृथक् चीज़ है। अध्यात्मवाद में मत नहीं है। सब देशों में जो अनुभवी लोग हुए हैं, वह सब एक बात ही कहते आये हैं, क्योंकि उन्होंने जो देखा, वह एक ही बात थी। शब्दों में चाहे भेद हो। इसको रहस्य कहते हैं, क्योंकि यह करने से पता लगता है। यह बात एक से दूसरे के अन्दर जाती है, इसलिए भी यह रहस्य बनी रहती है। भगवान की कृपा सीधी भी अवतरित हो सकती है, परन्तु हमारे देश में यह पद्धति है कि एक दूसरे से सीखता है, इसलिए इसे रहस्यवाद कहते हैं।

शब्द में बड़ा बल है। उससे बड़ा बल पैदा होता है। यदि शब्द बड़े भार से दिया हो तो दूसरे के अन्दर शीघ्र काम करने लग जाता है। यह जगत शब्द से बना है। जो तरंग पैदा होता है, वह किसी प्रेरणा से पैदा होता है। उपनिषदों में कहा है कि मैं संसार के किसी बल से रूपों में हो जाऊं तो सृष्टि बननी बन्द क्यों होगी ? इसके पीछे कोई सत्ता है जो काम कर रही है। संकल्प में ही बल है।

वाणी के चार भाग हैं– एक वैखरी वाणी कहलाती है, जिसे मनुष्य बोलते हैं, मध्यमा वाणी कण्ठ में रहती है, पश्यन्ती, परा अध्यात्मवाद की वाणी हैं। आप राम-नाम वैखरी वाणी से जपते हैं। ऐसी वाणी जो उसकी कृपा से आती है, वह परा-वाणी है। सैंकड़ों लोग नाम सुनते हैं, जहां मन-वाणी का विचार न हो और राम-नाम की ध्वनि अन्दर चल रही हो तो उसे अजपा जाप कहते हैं। इसके पश्चात् फिर किसी और बात की आवश्यकता नहीं रहती। मनुष्य के अन्दर जो वास्तविक भूख है, वह पूरी हो जाती है, जब अजपा जाप शुरू होता है।

❑❑

सन्त-पथ

श्री रामानन्द जी आदि मूल वीतराग महात्मा हुए हैं। उन्होंने नाम की दीक्षा का मार्ग चलाया। उन्हीं के बारह शिष्यों में से श्री कबीर दास जी तथा रविदास जी हुए हैं। जिनसे सन्त मत का प्रचलन हुआ। श्री गोस्वामी तुलसीदासजी भी श्री रामानन्द जी की परम्परा में हुए, जिन्होंने भक्ति को महत्व दिया। सन्तों ने केवल नाम का प्रचार किया। उनके कथन में बड़ी शक्ति थी। वे परम-पद से जुड़े हुए थे। उन्होंने नाम का आश्रय देकर यवन काल में लोगों को गिरने से बचाया। उनका मूल मंत्र 'एकता की स्थापना' था। सन्तों के पश्चात् ही अनेक पंथों का प्रचलन हुआ। ये पंथी लोग ही भगवान के परम-धाम से जुड़ी हुई तार को तोड़ देते हैं। सन्तों ने किसी पंथ को नहीं चलाया।

❑❑

नाम-योग

व्यास-पूजा के उपलक्ष्य में शुभ संदेश

1

"स्वस्ति"

दिनांक– 14.7.1940

श्रीयुत् उपासक जी,

प्रेमपूर्वक आशीर्वाद।

व्यास-पूजा का पुण्य पर्व हमारे धर्म में आध्यात्मिक सम्बन्ध स्मरण करने के लिए नियत है। आध्यात्मिक सम्बन्ध का मूल, हमारे सत्संग में, श्रीराम-नाम है। इस मंगलमय राम-नाम रूपी महामन्त्र के दान-आदान से ही हम आत्मा से एक दूसरे के समीपतर हो जाया करते हैं। यही महा-मधुर राम-नाम हमारे सम्बन्ध को मनोहर और मीठा बनाता है।

राम-नाम के उपासक को अपने हृदय में बड़ी श्रद्धा से राम-नाम ऐसे स्थापित करना चाहिये जैसे मन्दिर में मूर्ति स्थापित की जाती है, जैसे कोई जन महामूल्य मणि को अपने बटुवे में रख लेता है, और जैसे कोई जन जीवनदायक जड़ी को बहुत सम्भाल कर अपने पास रखता है। राम-नाम का महा-मंगल महा-मन्त्र मेरे हृदय में विराजमान है, यह मनोभावना पूरे विश्वास और सुनिश्चल-निश्चय के साथ उपासक के अन्तःस्थल में बद्धमूल हो जानी चाहिये। चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते और काम-काज करते हुए भी ऊपर प्रदर्शित मनोभावना अन्तःकरण में विलास ही करती रहे, ऐसा अभ्यास एक उत्तम अभ्यास है।

साधक को पक्का विश्वास हो कि राम-नाम मेरे हृदय में है, और इस नाम का वाच्य नामी भी वहीं विद्यमान है। अब मेरा हृदय परमेश्वर का आसन-स्थान है। यहाँ तेजोमय परम-पुरुष सुशोभित है। मेरा तन भगवान का मन्दिर बन गया है। वह आनन्दकन्द, सर्वशक्तिमय श्रीहरि मुझ में अवतरित हो गया है और वह परमात्मदेव रात-दिन निरन्तर मेरी पालना करता है। साधक श्रद्धापूर्वक मनन करे कि अब मेरे तन में भगवान की कृपा मेरी साधना का काम आप ही आप कर रही है। मेरे सब साधन अब राम-कृपा से स्वयंसिद्ध होते चले जा रहे हैं। जब मैं श्रीराम-चरण-शरण में सर्व भाव से समर्पित हो गया हूँ तो मुझे साधना और सिद्धि दोनों की चिन्ता कुछ भी नहीं करनी चाहिये। अब मेरी आत्मोन्नति परमात्मा श्रीराम की इच्छा से अवश्यमेव होती चली जायेगी और रोक-टोक रहित होती ही चली जायेगी।

साधक प्रबलतर मनोभावना बनाये रखे कि जैसे तन में औषधि काम करती है ऐसे ही मेरे मानस रोगों को, मेरी चिन्ताओं को, मेरी चंचलताओं को, मेरे मलिन विचारों को दूर करने का काम, श्रीराम-नाम आप ही कर रहा है। मुझे तो एकाग्रता धारण करके उसे काम करने का अवसर ही देना उचित है। राम-नाम रूप कल्पतरु का बीज मेरे हृदय की भूमि में बोया जा चुका है। वह मेरी साधनाओं और सफलताओं के रूप में स्वयं अंकुरित, पत्रित और पुष्पित आदि होता जायेगा। मेरा तो भगवान की कृपा पर अभंग भरोसा ही रखना काम है। भक्त के लिए मनोभावना का साधन एक ऊँचा साधन है और नामोपासना में तो ऐसी अनन्य मनोभावना को परम साधन समझा गया है। मनोभावना के स्थिर हो जाने, पर हरि कृपा-किरण साधक के आत्मलोक में प्रविष्ट होती है। जैसे चन्द्र की शीतल रश्मियां वनों उपवनों में, कमलकुञ्जों में और तरुमालाओं में अवतरित होकर

उन्हें प्राण प्रदान करती हैं, भक्त मनोभावना करे कि ऐसे ही नाम चन्द्रोदय से परमेश्वर-कृपा और शक्ति उसमें उत्तरोत्तर उन्नति कराती जाती है। साधक की मनोभावना हो कि जैसे सूर्य की सुनहली किरणें जड़-जंगम जगत को ज्योति, जीवन, बल और शक्ति सहज से दान किया करती हैं। इसी प्रकार नामोपासक में भगवान की कृपा स्वयमेव योग-साधना और आत्मिक विकास करती रहती है। साधक को तो अन्तःकरण की कोठरी के किवाड़ खोलकर हृदय में नाम-स्थापना द्वारा हरि-कृपा को प्रवेश मार्ग ही देना होता है।

आपका मंगलाकाँक्षी
सत्यानन्द

2

"स्वस्ति"

संवत् १९९८,
अमृतधारा भवन, लाहौर

श्रीयुत् मान्य उपासक जी,

सप्रेम आशीर्वाद।

श्रीराम-नाम के उपासक को इस बात में श्रद्धा करनी चाहिये कि भक्त की भावभरी भावना ही भगवान के आराधन का सर्वोत्तम साधन है। श्रीभगवान भक्त की भावपूर्ण भावना से ही प्रकट होते हैं। उस परम-पावन पुरुष का अवतरण उसी जन पर होता है जो भक्ति भाव भरे भावों से भगवान के नाम को जपता है, अचल निश्चय से एकाग्रमन होकर, श्रीराम-नाम का ध्यान तथा चिन्तन करता है, अतुल लगन से श्रीराम-नाम की धुन में लौ लगाता है, परा-प्रीति से श्रीराम-नाम पर निर्भर हो जाता है और जो अनन्य निश्चय से श्री राम-नाम को परमेश्वर के परम-पद की सर्वश्रेष्ठ साधना और सिद्धि समझता है।

श्रद्धावान् उपासक को श्रीराम-नाम केवल अक्षरमय शब्द ही प्रतीत नहीं होता। वह अपनी प्रीति से, अपनी श्रद्धा से, अपने निश्चय से और अपनी भावना से इसमें, भगवान को ऐसे ही प्रतिष्ठित कर लेता है, जैसे लोग मूर्ति में अपने देवता को प्रतिष्ठित कर लिया करते हैं। उपासक के मानस नेत्रों के सामने नाम और नामी एक हो जाते हैं, वह नाम और नामी में कुछ भी भेद नहीं मानता। उसके निश्चय में जैसे सूर्य में ज्योति है, चांद में चमक है, जल में शीतलता है, अग्नि में उष्णता है, पुष्प में सुगन्धि है और मधु में मिठास है, इसी प्रकार श्रीराम-नाम में श्रीराम स्वयं विद्यमान हैं। उपासक तन में जीवात्मा की भाँति, नाम में श्रीराम को समझता है।

साधारण जनों के समीप तो नाम का जप, चिन्तन, आराधन और ध्यान एक शब्द को बार-बार रटना है, परन्तु नामोपासक की शुद्ध समझ में, सुदृढ़ विश्वास में और विमल बुद्धि में नामाभ्यास आन्तरिक विकास का, आत्म-जागृति का, आत्मोन्नति का, मल, आवरण, विक्षेप के नाश का और पाप-ताप के विनाश का एक तुलनातीत उपाय है। श्रीराम-नाम का अभ्यासी राम-नाम के जप से श्रीराम-नाम के चिन्तन से, श्रीराम-नाम के आराधन से और श्रीराम-नाम के ध्यान से स्वात्मा, परमात्मा को ऐसे ही प्रकट तथा अभिव्यक्त कर लिया करता है, जैसे याजक अरणियों से अग्नि को और पदार्थ विद्यावेत्ता रगड़ से विद्युत् को। परन्तु नामाभ्यास गहरी लगन से, संशयरहित निश्चय से, पूरे भरोसे से और बड़ी तत्परता से किया जाना चाहिये।

मनुष्य की शरीरस्थ चेतनशक्ति, परम्परा के कर्म-बन्धनों से बंधी पड़ी है, असंख्य अशुद्ध संस्कारों के प्रबलतर परदों से आवृत हो रही है, देह ही

को अपना आप मानकर स्वसत्ता को भूल सी गई है, अज्ञानान्धकार में घिर कर अपने आप के विवेक-विचार को खो बैठी है और प्रकृति के विकारों के प्रपंच में पड़कर स्वात्मपद से पतित-सी बनी हुई है। वह बद्धचेतना, अपने पवित्र पुरुष स्वरूप को प्रकृति रूप ही समझ रही है। श्रीराम-नाम का उपासक इस मांगलिक महामंत्र के भक्ति-योग से, इसके मनन, चिन्तन और ध्यान से अपने प्रसुप्त आत्मा को, प्रकृति रूप बने हुए अपने चेतन भाव को और कर्मपाश में फंसे पड़े अपने अमल आन्तरिक स्वरूप को जाग्रत, प्रबुद्ध तथा स्वतंत्र कर लेता है। वह प्रकृति में आत्मा को देखने लग जाता है। उसे प्रकृति, आत्मा के काम का एक यन्त्र प्रतीत होती है। नाम-योग की महिमा अगम्य है। इससे उपासक जहां निज स्वरूप को प्रकट कर लेता है,वहां वह अपने में तथा विश्व में परमेश्वर को भी अवतरित कर पाता है। वह जहां आप होता है, नामोपासना से, वहीं नामी को, परमेश्वर को प्रकाशमान कर लिया करता है। नामोपासक की परा-प्रीति के वश, अनन्य भक्ति के आधीन और श्रीराम-नाम की धुन की एकतारता में श्रीभगवान आप ही आप अभिव्यक्त हो जाते हैं। उपासक लोग, इसी कारण श्रीराम-नाम रूप मधुर धुन में रमण करना, श्रीराम-नाम रूप महामंत्र में मन लगाना, श्रीराम-नाम में तन्मय हो जाना और श्रीराम-नामोपासना में निमग्नता का अलभ्य लाभ लेना, परम-योग कहा करते हैं।

आपका मंगलाकांक्षी
सत्यानन्द

3

"स्वस्ति"

संवत् २०००

श्रीयुत् मान्य उपासक जी,

सप्रेम आशीर्वाद।

राम-नाम के उपासक को, अपने भीतर श्रीराम-नाम जाग्रत करना चाहिये। उसे ऐसा प्रतीत हो कि चलते-फिरते, उठते-बैठते, लेटे हुए और काम-काज करते हुए भी जब ध्यान किया जाये, राम-नाम भीतर स्वयमेव जपा जा रहा है। यहां तक कि सोते हुए जप चलता रहे और जब आँख खुले, उस समय भी राम-नाम परम तारक-मंत्र की तार, भीतर हिलती हुई प्रतीत हो। जिस उपासक को यह अवस्था प्राप्त हो जाये, उसको समझ लेना चाहिये कि राम-नाम महामन्त्र उसकी आत्मा में बस गया है, उसकी आत्म-सत्ता जग गई है, उसका मंत्र सिद्ध हो चुका है और उस पर राम-कृपा अवतरित हो आई है। यह अजपा जाप की भूमिका, योग की ऊँची भूमिका है। इसके प्राप्त हो जाने पर, उपासक कालचक्र से पार पा जाता है, उसकी गति उच्चतर हो जाती है और वह अपना निस्तार अवश्य कर लेता है।

ऊपर कही अवस्था को सिद्ध करने के लिए श्री राम-नाम में अपार प्रीति, अतुल श्रद्धा, अनन्य भक्ति और संशय-रहित निश्चय हो तो यह अवस्था शीघ्र मिल जाती है। श्रीराम-नाम का अधिक जप करने से भी अजपा जाप जग जाता है। अपनी जीवन नौका श्रीराम चरण-शरण में समर्पण करके कुछ काल तक, एकान्त में नामाराधन करने से तो कोई

कितना ही मन्द कर्मी क्यों न हो, उसमें नाम नाद और अनाहत् नाद अवश्य ही जग जायेगा। श्रीराम कृपा के असीम सागर हैं। वे अपने नाम के उपासक को, एक न एक दिन, अवश्य ही सम्भाल लेते हैं, उसे भूलने भटकने से बचाकर, उसका पथ-प्रदर्शन आप करने लग जाते हैं। ऐसा भरोसा और अनुभव, सन्तों और भक्तों का आदिकाल से चला आ रहा है। प्रत्येक उपासक को ऐसी ही धारणा तथा तत्परता से, श्रीराम-नाम का आराधन करते रहना उचित है।

आपका मंगलाकांक्षी
सत्यानन्द

4

॥ श्रीराम ॥

देहरादून
20. 6. 1955

श्री उपासक जी,

सप्रेम आशीर्वाद।

अब व्यास-पूर्णमासी समीप आ रही है: उस पुण्य-पर्व के उपलक्ष्य में, मैं आप द्वारा मुरार और ग्वालियर के सब सत्संगियों को यह संदेश भेजता हूँ—

"हमारा परम लक्ष्य सर्व शक्तिमान
एकैव अद्वितीय परम पुरुष,
दयामय दयालु देवाधिदेव
श्रीराम हैः वह परम गुरु हैः

उस परम गुरु का पुण्य प्रतीक
परम पावन श्रीराम-नाम हैः इसका
कीर्तन, जप, पाठ आराधना
वही परम गुरु की पर्व के दिन
पूजा हैः इस पूजा से पाप का नाश
होता हैः जीवन पवित्र बनता हैः
आत्म-शक्ति जग जाती है और हृदय में
सद्भाव आप ही आप स्फुरित होने
लगा करते हैं।
अपने परम कल्याण का मार्ग वह
पर्व के दिन परम पूज्य का पूजन हैः
इसको बड़े भाव-चाव से करना चाहिये।"

आपके पूजन पाठ में अपनी कामनाओं और भावनाओं से मैं भी सम्मिलित रहूंगा। आप सब पर श्रीराम-कृपा सदा बनी रहे।

आप सबका मंगलाकांक्षी
सत्यानन्द

❑❑

मन्त्र-योग

(केवल प्रातः 10-30 बजे प्रवचन होता था और दोपहर पश्चात् प्रवचन के स्थान पर भजन-कीर्तन होता था। किन्तु रात्रि की बैठक में बाहर के व्यक्तियों को आने की अनुमति थी। वाल्मीकीय रामायण का कथा-रूप में महाराज वर्णन करते थे।)

इस समय के वर्णन में मैंने कल कुछ बात कही थी कि मन्त्र में बड़ा बल है। हर साधक को इसका खूब मनन करना चाहिये। ऐसा न करे तो मन्त्र का अधिष्ठाता नहीं आता। अब आप इसको जपने लगे तो समझना चाहिए कि मन्त्र बड़ा बलवान है। मन्त्र जाप के पूर्व प्रणाम करना चाहिये। शब्द प्रणाम है (परणाम नहीं), इस शब्द को एक साथ बोलना चाहिये। नहीं तो शुद्ध उच्चारण नहीं रहता।

मन्त्र शक्तिशाली है। ऐसा इस बात का मनन हो कि यह दृढ़ीभूत हो जावे। यह राम, जो परमात्मा है, यह सर्वशक्तिमान है, ऐसा साधक का विचार रहे। इसका अर्थ ही शक्तिमान है। इस बात का अधिक मनन करे। यह भावना यदि न हुई कि वह परम-पुरुष शक्ति का भण्डार, बलिष्ठ, इस मन्त्र में ही विद्यमान है तो फिर कुछ बात नहीं हुई। जब आराधन करने के लिए बैठो तो नमस्कार करके बैठो।

स्वामी जी ने कहा कि पैर पकड़ने जैसे रिवाजों में उन्होंने देखा है कि पैर पकड़ कर छोड़ने का नाम नहीं लेते। मैं तो इसको कुरीति समझता हूँ। इसमें कोई बड़ा माहात्म्य नहीं। कोई बड़ी सिद्धि नहीं। जब हम किसी दूसरे मित्र या मनुष्य को मिलते हैं तो झुक कर नमस्ते करते हैं। किन्तु कुछ ऐसा संस्कार है कि भगवान के दरबार में सिर झुकता नहीं। ऐसी बड़ी भूल क्यों? वही हाल हुआ न–

तोड़कर बुतखाने को, मस्जिद बनाई शेख ने।
वहाँ तो कोई सूरत थी, यहाँ तो साफ वो भी।।

देवता को स्थापित करना चाहिये। जहाँ का रेडियो सुनना होता है वहाँ सुई जानी चाहिये और आप तो उस देव के सामने बैठते हैं, जहाँ एक नहीं संसार भर की तरंगें आती हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि देवता की स्थापना करनी चाहिये। एक गले-सड़े मनुष्य को भी हम मिलते हैं तो नमस्ते करते हैं। ऐसा रिवाज़ बनाया है। किन्तु मैं तो कहता हूँ कि मन्त्र के सामने झुकना चाहिये और इस बात का खूब मनन करे। इतना करे कि कभी भूल न हो।

हृदय में अटल विश्वास और दृढ़ निश्चय से, ऐसा मनन करने पर फिर दूसरी जगह जाने की आवश्यकता नहीं रहती। दूसरी जगह क्यों जाये कोई? ऐसा मनुष्य तो महत्व को समझता नहीं। विश्वास समझो उसमें है नहीं। मानो वह तो भक्त नहीं है। वह तो सती नहीं जो अपने पति को छोड़कर दूसरे की ओर देखे। पति तो वह नहीं जो एक का पाणिग्रहण करके फिर सड़क पर इधर-उधर दृष्टि डाले। मैं तो इसी प्रकार उस ही भक्त को मानता हूँ, जिसने राम-नाम रत्न पाकर फिर इधर-उधर को विचारा नहीं अर्थात् अन्यत्र भटकने वाला भक्त नहीं।

मेरा तो निवेदन है कि कृपा का आह्वान करना चाहिये। यही निश्चय होना चाहिये कि कृपा अवश्य होती है। जिसको नाम दिया जाता है उसको कहा जाता है कि छोड़ोगे तो नहीं? जपा करोगे? तो उसके हाँ, में उत्तर देने के बाद उससे राम-नाम को नमस्कार कराया जाता है। अपने को नहीं।

इतना होने पर फिर तो उसको यह विश्वास रखना चाहिये कि अब तो नाम के बीज ने अंकुर देना ही है।

उल्टा हो, सीधा हो बीज तो अंकुर देता ही है। यदि वह फिर भी अवज्ञा करता है, तो उसकी भारी भूल है। हमारी दीक्षा में यह ही तो रहस्य की बात है। किन्तु मैं देखता हूँ कि अधिक मित्र ऐसी भूल करते हैं। यह तो जो भगवान की कृपा से प्रसाद प्राप्त हुआ, वह ही दिया गया।

यहां मेरे मित्र विष्णुदास जी हैं। ये बड़े अच्छे हैं। वैसे भी ये जिले के बड़े ऑफ़िस के सुपरिंटेन्डेन्ट हैं। ये आश्चर्य करते हैं कि जो योग-साधना करते हैं, वे बड़े यत्न करते हैं। मस्तक सिकोड़ते हैं, आँखें दबाते हैं आदि-आदि। उनको

आश्चर्य यह है कि भगवान की कृपा के इस नाम प्रसाद से प्राप्ति बहुत ही सहज से कैसे हो जाती है ? मनुष्य तो महत्व तब समझता है, जब उससे बड़ी तपस्या कराई जाये।

एक सेठ का लड़का पैसे की कीमत नहीं जान पाता, जब तक धन स्वयं न कमाया हो। जिन्होंने इस प्रसाद के ज्ञान, आध्यात्मिक ज्ञान को जाना है, उन्हीं में यह बात कहने की है। ऐसी ही संगति में यह कही जाती है। सामूहिक कहने की नहीं है। मन्त्र का महत्व समझना चाहिये। मनन करना चाहिये। मनन कराना चाहिये।

मूलाधार से उपरि-चक्र तक शक्ति का स्फुरित करना तो मन्त्र ही की शक्ति है। यह तो मन्त्र-योग से ही होता है। जैसे जवाहरलाल जी हवाई जहाज में ही चढ़कर इतना शीघ्र इतनी लम्बी यात्रा करते हैं, किन्तु मोटर से इलैक्शन की देश भर की यात्रा थोड़े समय में करनी सम्भव नहीं है।

मन्त्र-योग से सुरति, नाम में सवार होकर, पहली बारी में दसों चक्र से पार हो जाती है। यह तो महाराज की अपनी लीला है। यह उनकी कृपा का प्रसाद है। यह तो बिना परिश्रम है। यह तो ऐसा है जैसे मेरे जैसा कंगाल किसी के द्वारे गया और उसने झोली में हीरा डाल दिया और फिर उसने किसी और को दे दिया।

मैंने तो निवेदन किया है आपके आगे कि खूब मनन करो, खूब मनन करो। मनन करो और यह समझो कि जितना मनन करोगे उतना ही लाभ होगा।

स्वप्न में भी ऐसा विचार न आवे कि कोई और मन्त्र कल्याण करेगा या कोई और पथ है। किंचित् भी यह विचार करना तो पथ से गिरना है। जिसने स्वप्न में भी ऐसा सोचा, उसने महत्व जाना ही नहीं। यहाँ तो ऐसा होना चाहिये जैसे सीता ने कहा कि मैं सिवाय राम के कोई पुरुष नहीं देखती। रामचन्द्र जी ने कहा कि सीते ! तुम्हारे जाने के बाद तो मुझे कोई अन्य स्त्री दिखाई नहीं देती। यह भाव न होना तो चटोरापन है। यह तो बाज़ारी चटोरापन है कि यहां भी हम और वहां भी हम !

मीरा को तुलसी जी ने लिखा है– (जब मीरा की पत्रिका मिली कि राणा तंग करता है मैं क्या करूँ ?)

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम स्नेही।।
जाके प्रिय न राम वैदेही।।

वह ही भगवान का भक्त होता है, जो इस प्रकार सोचता है। फिर उस भगवान के भक्त में तो भगवान की कृपा होती है। अनन्य-भक्ति इसी को कहते हैं। जिसमें यह आ गई, उसका बेड़ा पार हो गया।

मंत्र को समझना व पूर्ण धारणा रखना आवश्यक है। बिना श्रम के बात चित्त में चढ़ती नहीं।

मंत्र में निहित बल पर मनन आवश्यक है। इसके पश्चात् मंगल स्वयमेव होता है। मंत्र लिखा हुआ सामने रखें।

'सर्वशक्तिमते परमात्मने श्री रामाय नमः।' राम का अर्थ मनन किये बिना महत्व वाला नहीं होता। बिना भावना के साधक को बल प्राप्ति नहीं होती। उपासना में बैठते समय परमात्मा को प्रणाम करना चाहिये। मंत्र में देवता को साक्षात् मान कर सम्मान करो।

साधारण यज्ञ में देव का आह्वान करके स्थापित किया जाता है। वायु में पहले से अनेक लहरें चल रही हैं। संसार भर में फैली हुई हैं। अतः देव स्थापन करके ही उपासना में बैठना आवश्यक है। आपकी त्रुटि से दूसरी लहरें प्राप्त होकर प्रेतात्मा आ जाये और आपको हानि पहुँचाये तो दोषी आप स्वयं हैं।

इस मंत्र के बाद अन्यत्र भटकने की आवश्यकता नहीं है। सती की भाँति पतिव्रत के अनुसार धर्म-परायण होना चाहिये। सती, पर-पति से रति नहीं करती।

मंत्र-दीक्षा के समय वचन लिया जाता है कि आराधना छोड़नी नहीं है। भगवान को नमस्कार करवाया जाता है। स्त्रियों को स्पर्श नहीं किया जाता। भगवान का आह्वान करने के पश्चात् अवज्ञा नहीं होनी चाहिये। ये हुए दीक्षा पद्धति के रहस्य।

मन सहज से अधिकार में नहीं आता। यह नाम माहात्म्य नहीं जानता। जिनको मुश्किल से नाम-धन प्राप्त होता है वे उतनी ही उसकी कदर करते

हैं। आध्यात्मिक-विद्या को जानने वाले ही इस सत्संग में आते हैं। मंत्र के बल से आत्मा जाग्रत होता है– मूलाधार से सहस्रार तक शक्ति को एक दिन में उठा देता है। जो समझता नहीं है वह अनधिकारी है, गुरु-कृपा से सब प्राप्ति होती है। यह लौकिक व दैवी जीवन का भी निर्माण करता है।

नामाराधन करने वाला हृदय में साम्य रक्खे, न जीने की कामना न मरने की। वह स्वप्न में भी संशय न लाये कि कोई और देव है जो उसका कल्याण कर सकता है। कदापि संशय न हो कि अन्य कल्याणकारी पथ है। जो भगवान का हो जाता है उसकी अपने आप उन्नति होती है। उसकी इच्छा कुछ होती नहीं। जिसने अन्य इच्छा की, उसने राम से नेह नहीं लगाया। उसमें अनन्यता होनी चाहिये।

नोट– *उस समय प्रायः सारे साधक सजल नयन थे। स्वामी जी ने शान्त करते हुए कहा, 'प्रेमाश्रु जो आ गये, इससे तो पाप धुले।'*

प्रथम साधना-सत्संग,
(स्वामी जी के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में)
कमला नगर, दिल्ली,
दिनांक 29.3.1953,
समय प्रातः 10.30 बजे

❑❑

शब्द-बल

(आज की सभा में पूज्य महाराज जी ने शब्द के बल का फिर वर्णन किया।)

मंत्रों वाले शब्द में बहुत बल मानते हैं। आराधन वाले को विश्वास होना चाहिये कि शब्द के साथ शक्ति है, बल है और यह पूर्ण विश्वास होना चाहिये कि इस शक्ति से ही मेरा कल्याण होगा। यह विश्वास पूर्ण धारण होना चाहिये। यह विश्वास जितना दृढ़ और ऊँचा होगा, उतनी ही उन्नति होगी। कुछ साथी कहते हैं कि मेरा मन नहीं लगता। जाप करने के बावजूद भी मन अशान्त रहता है। मन को एकाग्रता प्राप्त नहीं होती।

वास्तव में हम शब्द के प्रभाव को अच्छी प्रकार धारण नहीं कर सके। नाम देने वाले का कोई दोष नहीं। यह बात लेने वाले की अपनी भावना पर निर्भर है। जब डॉक्टर किसी रोगी को औषधि देता है, तो वह अपनी अच्छी भावना तथा शुभकामना से देता है। जिसे आराम आ जाता है, वह सराहना करता है। जिसे आराम नहीं आता, वह डॉक्टर की निन्दा करता है। यद्यपि दवाई डॉक्टर की अनुभव की हुई होती है, किन्तु रोगी डॉक्टर को ही कोसता है। आराम न आने के रोगी में भी तो कोई और कारण हो सकते हैं। रोगी बद-परहेजी करे। डॉक्टर तो चौबीस घण्टे पास नहीं रहता। उसकी दवाई तो सिद्ध की हुई होती है। यदि किसी वैद्य के दो-चार केस खराब भी हो जावें, तो उसे निराशा नहीं हुआ करती। अध्यात्मवाद में सिद्ध मंत्र इस प्रकार काम करते हैं। रोग मानस भी होते हैं और शारीरिक भी। रोगी को तो पहले अपने मन में यह सोचना चाहिये कि उसने औषधि ठीक ढंग से धारण की है या नहीं। अब कोई टाइफाइड का रोगी हो, वह औषधि भी ले, किन्तु चलता-फिरता भी रहे, तो भला उसे आराम कैसे आयेगा और वह इसके लिए दवाई को बिना प्रभाव की बताये, तो उसकी भूल होगी। इस प्रकार से हमारे में कई खराबियां होती हैं। अपने मन को आप टटोलो, तलाश करो और देखो कि कौनसी ऐसी वृत्ति है,

जो मन को चंचल करती है। अपनी आत्मा को खूब टटोलो। अपने आप जवाब मिल जायेगा। देखो कि तुम्हारी आत्मा में या तुझ में कोई लोभ तो नहीं आ गया, जिससे मन उखड़ गया। अपने से पूछो कि आज दिन भर कोई झूठ तो नहीं बोला, यदि बोला तो क्यों और कितना बोला ? यह भी अपनी आत्मा में देखो कि क्या मैं पूरा आस्तिक भी रहता हूं और यह भी देखो कि क्या हमारा नाम पर पूर्ण विश्वास भी है या नहीं ? मोह जंजाल में तो नहीं फंसे हुए ? काम और क्रोध तो नहीं सवार रहता ? ऐसी स्थिति तो नहीं रहती कि किसी गीत सुनाने वाली की ध्वनि में वृत्ति चंचल रहती हो आदि ?

वास्तव में जब तक रोगी ही अपने आप को न टटोले, तो डॉक्टर बेचारा क्या करेगा ? डॉक्टर ने कोई आठ पहर तो पास रहना नहीं। अपने आपको यह अवश्य देखो कि जिस नाम का मुख में जाप करते हो, उसके अन्दर पूर्ण विश्वास की दृढ़ता भी है ? पहले भरोसा होना चाहिये। यदि कोई मुकद्दमा चल रहा हो और वकील कर लो। वकील तो यह कह दे कि आप का मुकद्दमा ठीक सफलता देगा और वकील के इन शब्दों पर विश्वास हो जाये, फिर जहां मर्जी घूमो, विश्वास पर अटल रहो, तो सब कुछ ठीक हो जायेगा। ऐसे ही मां-बाप पर विश्वास ही हुआ करता है। कई बच्चों को स्कूल के जीवन में ही विश्वास हो जाता है कि माता-पिता कॉलेज में अवश्य पढ़ायेंगे। विश्वास निर्भय बना देता है और निर्भयता का ही बड़ा बल होता है। इसलिये यह विश्वास तो मन में आना ही चाहिये कि मंत्र मुझे सहायता देगा और इससे मेरा कल्याण होगा। यदि यह विश्वास नहीं होता तो इसका प्रभाव कुछ भी नहीं होगा।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 8.12.1954,
समय प्रातः 11 बजे

□□

नाम-महिमा

'अतिशय मंगल स्वरूपाय, परम कल्याणकारिणे।
सर्वशक्तिमद्देवाय, श्री रामाय नमो नमः।।'

इस नाम में ही सब नाम समाए हुए हैं, ऐसा हमारा निश्चय है। नाम भेद से वस्तु भेद नहीं होता। राम-नाम हमारा उपासना का मार्ग है, कोई मत या सम्प्रदाय नहीं है। ऐसा नहीं कि दूसरे नामों से कल्याण नहीं होता। धर्म में विष्णु का स्वरूप व कृपा अवतरित होती है। वह स्वरूप, शान्ति, प्रकाश, ज्योति आदि के रूप में हो सकता है। सर्वशक्तिमान का अस्तित्व है, तभी तो लाभ है। स्वरूप सामने प्रकट होने पर गद्‌गद् होना चाहिये। सहज से प्रकट होने पर भूख बनी ही रहती है। बाप की कमाई मिलने पर पुत्र उसका महत्व नहीं समझता। भक्तों पर भगवान का संकल्प, स्वरूप धारण कर अवतरित होता है। राम-नाम के जपने वाले के पास आसुरी माया कभी खड़ी भी नहीं होती। इस नाम की साधना बहुत उत्तम है।

यदि परमात्मा का अस्तित्व न हो तो हमारे आह्वान करने का क्या लाभ ? मैं तो इस बात को मानता हूँ कि स्वरूप प्रकट होता है। विश्वास एक पर हो। वह राम भक्त कैसा जो कब्र पर भी माथा टेके और दूसरों को भी पूजे ? पति-पत्नी की तरह वह भक्त भी एक में प्रेम करे। भक्ति व्यभिचारिणी न होकर अनन्य हो। अनन्य भक्ति होने पर ऐसा नहीं हो सकता कि भगवान की कृपा की बदली आप पर न बरसे। राम-नाम से लौकिक कार्यों में भी सहायता मिलती है।

साधना-सत्संग हरिद्वार,
दिनांक 1.4.1958,
समय अपराह्न 3.30 बजे

□□

नाम की महिमा - 1

संत लोग नाम की महिमा गाते हैं। पिछले युगों में नाम की महिमा बहुत ही होती थी। मुगल बादशाही के राज्य में भी सभी प्रान्तों में संत हुए और उन्होंने नाम की महिमा गाई। संतों ने नाम की महिमा को बहुत प्रचलित किया। दिल्ली के आसपास, मेवाड़ में, बंगाल में, बिहार, पंजाब और दक्षिण में जो संत हुए, उन्होंने परमेश्वर की कीर्ति का ही वर्णन किया। जन-भाषा में नाम की महिमा-गान से जनता को अवलम्बन मिल गया। इसके बिना साधारण जनता के पास कोई और सहारा नहीं था। उस काल में मुगल शासन का बड़ा भय था। फिर भी मन्दिर में, तीर्थों में सब जाते थे। मन्दिर तो गिरा दिये जाते हैं, किन्तु जो नाम (मंत्र) इनको मिला वह ऐसा कि जब तक मनुष्य जीवित रहता है, तब तक वह (राम) उसके अन्तर में वास करता है। नामी तो नाम में बसता है। कहना यह है कि संतों का दिया हुआ नाम उन्हें एक अवलम्बन मिल गया। इस पुण्य में सभी आये – राजे, योद्धा, व्यापारी। इसके लिए मन्दिर की तरह ईंट पत्थर की आवश्यकता थी नहीं, केवल हृदय की आवश्यकता थी। ऐसा तो था नहीं कि कोई पुरोहित बैठ गया कि फलां नहीं आ सकता है। अब तो भेद नहीं रहा। संत तो खुले बांटते थे। यह सरल भी था और बंधन-रहित भी। उस समय अहीर न पढ़े, जाट न पढ़े, यह परिवर्तन करके पढ़े, इस प्रकार के बन्धन थे।

राम-नाम में तो परिवर्तन करने का प्रश्न ही नहीं है। अध्यात्मवाद के भेद उठ गये। इस सुन्दरता से सब में एकता आ गई। मुगल शासन कड़ा अवश्य था, किन्तु राम-नाम बस जाने से, यह बात बहुत ही उत्तम हुई कि सबको एक जैसा प्रसाद मिला। राम-नाम पर किसी का क्या अधिकार ? प्रत्येक जाति के मनुष्यों के लिए यह सुलभ है। जैसे गोस्वामी तुलसीदास जी ने नाम की महिमा गाई, वैसे ही काशी में रैदास जी ने भी नाम की महिमा गाई। श्रीमहाराज जी बोले कि आगरा में जो जूतों का व्यापार मुसलमानों का था, उनके जाने के बाद सभी जाति के लोग वही व्यापार करने लगे, फिर भेदभाव कैसा ? रैदास जी जो

जाति का भेद नहीं रखते थे, उनको किसी ने पूछा कि आप गंगा में स्नान करने नहीं जाते ? तो उन्होंने उत्तर दिया– "यह मन चंगा तो कठौती में ही गंगा।" अब लोग इस पद का प्रमाण देते हैं। इस प्रकार बड़ी बात यह है कि किसी भी अवस्था में हो, दिन में, रात में, रणभूमि में, जंगल में हो या रेगिस्तान में, समुद्र में हो, सोया हुआ हो, प्रमादी हो लेकिन जिसमें नाम बस गया वह तो बहुत अच्छा हो गया। उसने अपना कल्याण कर लिया। यह एक धर्म चला। जाति के भिन्न भेद सीमा में ही रह गये और यह (धर्म) असीम हो गया। मनुष्य भीतर का पावन होना चाहिये, बाहर का क्या ? अन्दर तो श्रीराम-नाम से पावन होता है। यह नाम-महिमा मैं वर्णन करता हूँ। नाम से जितना ऊँचा एक करोड़ी धनी, उतना ही ऊँचा एक निर्धन मजदूर। नाम कल्याण करता है ऐसी भावना होनी चाहिये। इससे मनुष्य निश्चिन्त हो जाता है। दुःख के दिन भी हल्के हो जाते हैं, इतना कष्ट नहीं रहता। नाम का आराधन करने वाले को दूसरों की तुलना में, सौवां भाग भी दुःख नहीं होता। मैं लाहौर में एक नाम जपने वाले मित्र के पास गया। वह बीमार था। उसमें नाम बसा हुआ था। उसने कहा कि नाम के स्वाद के कारण रात और दिन आराम से बीत जाते हैं, कष्ट अनुभव नहीं होता। पुनः वह बोला कि यह विचार आ जाता है कि भगवान तो मेरे अन्दर विराजमान ही है और उसने मुझे ग्रहण कर लिया है।

मेरे एक मित्र (विष्णुदास जी, सुपरिन्टेन्डेन्ट), स्वर्ग सिधार गये। मित्रों ने पत्र लिखा कि वह हमारे हाथों में गये। काम करके आये और अन्तिम समय में उन्होंने राम-नाम का उच्चारण किया। राम-नाम मृत्यु की मृत्यु करने वाला है। राम-नाम का अवलम्बन बहुत ही ऊँचा है।

मंत्रों के लिए शुद्ध उच्चारण अति आवश्यक है। मंत्र का शुद्ध उच्चारण न होने पर, उद्देश्य पूरा नहीं होता। इसीलिए तो बनिए ने पंडित से गायत्री जाप कराने की रीति अपनाई। राम-नाम में शुद्ध उच्चारण बहुत लम्बा-चौड़ा नहीं है। मंत्र बड़े अच्छे हैं, पर उनका शुद्ध उच्चारण करना कठिन है। जप की रीति भी बहुत अच्छी है।

एक मित्र (श्रीप्रेम जी) एक अमेरिकन तरुणी को लाया। बाहर के लोग (विदेश के) बड़ी धुन और लगन के होते हैं। भारत के लोगों में जीवन लगाने

की बात नहीं है। उसकी आयु पच्चीस वर्ष के लगभग होगी। वह अच्छी पढ़ी-लिखी होगी, पर मैंने पूछा भी नहीं। भारत आकर वह विनोबा जी के भूमि-यज्ञ में काम करने लगी। उसने बिहार में काम किया। वह सादा पहनती– दो साड़ी खद्दर की रखती। इसी तरह साधारण सा कुर्ता और पैरों में चप्पल पहनती। पैरों में घाव हो गये, पर जूता नहीं पहना। खाना केवल छाछ, चावल आदि। उसने गीता के श्लोक व हिन्दी पढ़ना सीखा। उसने राम-नाम लिया। उसमें नाम बड़ा स्फुरित हुआ। वह कुछ वर्षों पश्चात् अमेरिका में काम करने के विचार से, अपने देश चली गई।

नाम की उपासना में भिन्न भेद नहीं रहता, यह सब में बराबर है। इसका बड़ा प्रभाव होता है। पुराने समय के वर्णन में आता है कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए घोर तपस्या की जाती थी। तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में इसका उल्लेख किया है– जैसे मनु-शतरूपा की तपस्या, पार्वती जी की तपस्या आदि। हज़ारों वर्ष की घोर तपस्या के पश्चात्, उन्हें मनोवांछित फल प्राप्त हुआ, आदि-आदि। पर राम-नाम की आराधना करने वाले भी छोटी श्रेणी में नहीं आते, इन्हें तो ध्यान में राम-कृष्ण के स्वरूप भी आ जाते हैं। यह नाम तो वायुयान जैसा है। वायुयान वाला बैलगाड़ी की ओर नहीं देखता। तो राम-नाम ऐसी चीज़ है। अन्य साधन भी ठीक हैं, पर यह साधन उत्तम है। इसका उपासक दूसरे साधनों की ओर दृष्टि नहीं करता। उसकी कोई ऐसी अपेक्षा नहीं होती। नाम की आराधना तो स्वतंत्र साधन है। इसमें घोर तप करने की आवश्यकता नहीं। इसमें पाप को दबाने का बड़ा बल है। इससे बड़ा धैर्य प्राप्त होता है। यह पूर्व काल से चला आ रहा है, पर संत-काल में बड़ा प्रचलित हुआ। इस गंगा में तो ऊँच-नीच, धनी-निर्धन सभी स्नान कर सकते हैं। किसी अन्य की मेहर की आवश्यकता नहीं। इस कलियुग में तो यही कल्याण करने वाला है। इसका आराधन बड़ी तत्परता से करना चाहिये।

साधना–सत्संग हांसी
दिनांक 19.11.1954
समय अपराह्न 3.30 बजे

❑❑

नाम की महिमा - 2

(आज स्वामी जी का जन्म-दिन बड़ी सादगी से मनाया गया। महाराज जी घण्टी बजने के पूर्व ही कुर्सी पर विराजमान थे। स्वामी जी अपने जन्म-दिन पर अपना गुण-गान अथवा प्रशंसा सुनना पसन्द नहीं करते थे। वे चाहते थे कि आज के दिन राम-नाम का ही गुण-गान हो। अतः उनके गुण-गान गाने की किसी की हिम्मत नहीं होती थी। उस समय कुछ तरुणियों ने कविता आदि बोलना चाहा, पर महाराज जी की अनुमति न मिली। फिर भी वे एकदम गा उठीं 'हैप्पी बर्थ डे टू यू, हैप्पी लौंग लाईफ टू यू, हैप्पी बर्थ डे टू यू।' महाराज जी उनकी ओर देखकर मुस्कराते हुए सुनते रहे– अन्य साधक डर रहे थे कि महाराज जी अब डांटेंगे। गान समाप्त होते ही महाराज जी बोले...थें..क...यू। इसके पश्चात् धुन गायी गई 'परम गुरु जय जय राम, परम गुरु जय जय राम। जय राम हरे जय राम हरे)।

श्री महाराज जी बोले– मुझे न जीने की अभिलाषा है न मरने की कामना, यह तो राम-नियम है, जीना-मरना तो उसके आधीन है। कौवा भी बहुत जीता है, पर बहुत जीने में कोई माहात्म्य नहीं है। माहात्म्य तो राम-आराधन की कमाई का है।

देवियो और सज्जनो! श्रीरामशरणम् में जो सत्संग लगा हुआ है। इसमें जो कथन हुआ, उसकी यह अन्तिम बैठक है। कल तो दिन चढ़ने के बाद आप कोई और काम करेंगे। गीता को सामने रखकर मैं प्रवचन कहता रहा हूँ। अब मेरा यह स्वभाव हो गया है कि गीता या उपनिषद् के मंत्र को पढ़ कर, उसका वर्णन करूँ और उस पर बोलूं। पर जहां साधक एकत्रित हों, वहाँ उनके अनुभवों के परिचय का वर्णन कुछ इस प्रकार से किया करता हूँ कि जिससे उनको अपनी गति का पता चले। हम राम-नाम का आराधन करते हैं, इसमें बड़ा बल है। इसमें आप का भी बल होगा।

जैसे इंजीनियर गंगा में नहरें बनाते हैं। नहर के जल में वेग की तेज़ी

लाने की जरूरत विज्ञान बताता है। इसलिए कुछ दूरी पर जल-प्रपात (वाटर-फॉल) रखा जाता है। पर गंगा ने अपना रास्ता आप बनाया। जिन्होंने नहर देखी हो, उनको इस बात का पता है। मुझे कहना यह है कि गंगा में जो बल है, वह ऋषिकेश या हरिद्वार का नहीं, वरन् हिमालय पर्वत का है। इसी प्रकार राम-नाम में भी वही बल है, जहाँ से अवतरित हुआ है। हमारे जाप करने का बल भी बल है, किन्तु वह उतना नहीं, जितना कि अवतरित स्थान का होता है।

मुझे यह बड़ा आश्चर्य होता है कि कोई नाम-आराधन कई वर्षों तक करता है, फिर भी उसे कोई ऊँची अनुभूति प्राप्त नहीं होती। कभी-कभी प्रथम बार में ही नाम-दान के अवसर पर शक्ति आह्वान करते समय नाम-बल का परिचय मिलता है। दस मिनट में दसों चक्र खुल जाते हैं। इससे ज्ञात होता है कि नाम में कितनी शक्ति है। ऐसे अनुभव अनेक साधकों को होते हैं।

राम-कृपा से अद्‌भुत परिचय होते हैं। इसके लिए कोई प्रमाण नहीं। नाम-मंत्र का योग एक विचित्र प्रकार का है। सूक्ष्म शरीर बाहर हो जाता है। अध्यात्म-विज्ञान पूर्ण है, पांथिक बात नहीं है। भगवद्-दया से साधक उन्नति करते हैं। नाम-आराधन भावनापूर्वक होना चाहिये। ऐसा विश्वास होना चाहिये कि हमारा कल्याण तो हो ही गया। धारणा भगवान के इस नाम में ही अनन्य होनी चाहिये। बहुत मंत्रों का जपना ठीक नहीं। मंत्र में कुछ जोड़ना नहीं चाहिये।

नाम में निमग्न हो जाना चाहिये। नाम ही रक्षा करेगा, ऐसी भावना होनी चाहिये। नाम की महिमा अद्‌भुत है। अधिकारी सब ही हैं। खाट पर पड़े रोगी को भी यह अधिकार है।

मैं तो नाम को बड़ा शक्तिशाली समझता हूँ। इसमें बड़ा बल है, पर यह विश्वास किसी साधक के हृदय में दृढ़ हो, उसी को लाभ प्राप्त होता है।

जो अपने विश्वास को दुर्बल करते हैं, स्थान-स्थान भटकते हैं, इधर भी हम, उधर भी हम, सब जगह लार टपकाते हैं, ऐसे साधक बहुत ऊँचे नहीं उठ पाते। जब अनेक मार्गों पर चलते हैं और गलत चलते हैं, तो वे भ्रम में पड़ जाते हैं। इससे उनका पतन भी हो जाता है। फिर तो यह बात हुई कि गुरुद्वारे

में (हलवे का) प्रसाद बँट रहा था। लोग पंक्ति में खड़े होकर ले रहे थे। एक व्यक्ति ने एक हाथ आगे कर प्रसाद ले लिया। फिर उसने सोचा दुबारा ले लूँ, तो पहला हाथ पीछे कर लिया और दूसरा हाथ आगे बढ़ा दिया। देने वाले ने देने से मना कर दिया और कहा कि तुमने अभी तो लिया और पीछे का दोना कुत्ता चाट गया। इस प्रकार साधकों को न तो पहले पथ का लाभ मिल पाता है और न अन्य पथों का। जो व्यक्ति बहुत से मार्गों पर चलता है, वह भटक जाता है। जैसे चटोरे लोग अपने पेट की अग्नि को मन्द कर लेते हैं, उसी प्रकार नाम-प्रेमी भी सन्देहवश गिर जाते हैं।

व्यक्ति को चरित्र अच्छा रखना चाहिये। साधक को अपना हृदय भगवान के आगे खोलना चाहिये, इससे उसकी अवस्था ऊँची बनती है। भक्त-कवियों ने अपने चरित्र को, भला-बुरा जैसा था, खोला है। आत्मा से आत्मा बोले तो आत्मा जगता है।

जो कोई साधक ज्योति देखता है और उसमें नाम की धुन पैदा हो गयी, वह जब आत्मा की ओर चलने लगी, तब उसे अनुभव होता है कि नाम-गूंज अन्दर से आती है। उसकी बड़ी महिमा है। यह बड़ी महिमामयी स्थिति है। जो आराधन करते हैं, उनको ऐसा अनुभव होता है। इसी प्रकार अंश को देखकर अंशी को जाना जाता है। विज्ञान का भाषण वैज्ञानिकों में या विज्ञान के विद्यार्थियों में दिया जाता है। इसलिए ऐसा व्याख्यान यहाँ दिया है। दाता की दृष्टि में जो जितने का अधिकारी है, उसको उतना ही देगा। बच्चे को एक आना ही रोज देते हैं और बड़े को अधिक। माँ को पता है कि किसको कितनी आवश्यकता है ? भगवती जगदम्बा की गोद से जो मिलता है, वह जितना आवश्यक समझती है, उतना ही देती है। उसमें संतुष्ट होना चाहिये। निराशा नहीं होनी चाहिये, प्रसाद स्वरूप जो भी अनुभव हो, उसमें कृपा माननी चाहिये। नाम-ध्वनि विस्फुरण हो, तो समझो कि सबसे बड़ी कृपा है।

जो साधना करते रहते हैं, उनको भगवान की विभूति अवश्य चमत्कार दिखाती है। माया की, मोह-ममता की जो चंचलता बसी है, उसको शान्त करने के लिए नाम का अनुष्ठान करना चाहिये। इससे वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं। नाम की गूँज उठाने से फिर वहां तो कृष्ण की बांसुरी बजेगी। नाम-अवतरण

से आत्मा प्रबुद्ध किया जाता है। इसी भावना से नाम दिया जाता है। इसी भाव से नाम लेना चाहिये। इससे अनेकों का कल्याण होता है। इसलिए इसमें विश्वास होना चाहिये। भगवान के राम-नाम से प्रीति जोड़कर अन्यत्र नहीं भटकना चाहिये। भगवान के राम-नाम का भरपेट भोजन पाने पर फिर क्या माँगते फिरना। मैं समझता हूँ, ऐसी भावना आप में से कई साधकों में है। इसलिये मैं इस अवस्था में भी काम करता हूँ, अन्यथा किसी मित्र के घर बैठकर आराम करता। आप सब ऐसा विश्वास रखकर राम-नाम का आराधन करें।

नाम के जहाज में बैठ गये, तो फिर भव सागर से पार उतर कर ही रहेंगे। नाम के जहाज में बैठ जाने के बाद फिर हमें चिन्ता किस बात की ? भगवान का हम सब को प्रसाद मिले। भावना भंग न हो, भगवान की भक्ति हमारे में अखण्ड बनी रहे।

साधना-सत्संग हरिद्वार
दिनांक- 24.4.1957
समय प्रात: 11.00 बजे
❑❑

नाम की महिमा - 3

अतिशय मंगल स्वरूपाय, परम कल्याण कारिणे।
सर्व शक्तिमद्देवाय, श्री रामाय नमो नमः ।।

देवियो और सज्जनो ! बड़ाई आत्मा के जानने और परमात्मा के आराधन में है, कल इस पर कथन हुआ। इस मनुष्य जन्म में ही केवल भक्ति हो सकती है। यह वह स्थान है जिसकी खिड़की खुलने से परमदेव परमात्मा की किरण आती है। इसलिए आदि काल से—स्त्री-पुरुष, समझ वाले जो हैं, वे अपना कल्याण भगवान का आराधन करने में मानते आये हैं। बाकी चीज़ें जितनी हैं, वे क्लेश देती हैं। मनुष्य की इच्छा को बड़ा नहीं बनातीं। आत्मा का ज्ञान मनुष्य को बलवान बनाता है।

एक माई ने अपनी लड़की को पड़ोसन के घर से कोई चीज़ लाने को कहा। सूर्य अस्त हो चुका था। लड़की डरे, वह कहे, रास्ते में भूत है। बड़ी-बूढ़ी कहती हैं, पीपल के पेड़ पर चुड़ैल रहती है। प्राण सूख रहे थे। सोचती थी, माँ की आज्ञा न मानूंगी तो माँ नाराज़ होगी। उधर चुड़ैल का डर। एक और लड़की जो उससे छोटी थी, पर अपनी मां के साथ सत्संग में जाया करती थी। उसने सुना था कि जहाँ राम-नाम हो वहाँ चुड़ैल-सुड़ैल, कोई डाकिन नहीं आती। वे तो उस मुहल्ले से ही निकल जाती हैं। वह लड़की दूसरे घर में गई और चीज़ ले आई। उसने बड़ी लड़की को कहा कि तू सत्संग में जावे तो तुझे पता चले कि भगवान के नाम का जो मन्त्र है, वह बड़ा बल देता है। बड़ी लड़की ने कहा, बल देता है, तो क्या मेरा डर निकल जायेगा ? वह लड़की उसको बूढ़ी माई के पास ले गई। बूढ़ी ने नाम दिया। जब घर आई तो माँ ने कहा 'क्या सीख कर आई ?' उत्तर दिया, 'निर्भयता सीख कर आई हूँ।' लड़की ने मन्त्र का कुछ जाप किया और फिर कभी किसी रात माँ ने कहा कि अब पड़ोसन के यहाँ से चीज़ लाओगी ? लड़की ने झट कहा, हां! लाऊँगी। मां बोली, चुड़ैल मिल गई

तो ? लड़की ने कहा, मेरे लिए तो चुड़ैल नगर से निकल गई है। भगवान का नाम बड़ा बल देता है।

महात्मा गांधी जी ने आत्म-कथा में लिखा है कि मैं बड़ा डरा करता था। बनियों की न कोई अंतड़ी कम, न दांत कम, पर बात क्या कि हिम्मत कम। साहस के काम करने को उसके हृदय में तरंग पैदा नहीं होती। वह तो सोचता है कि ऐसा न हो कि मैं न रहूँ, सरकार भले ही मिट जाये, पर मेरे पास जो चीज़ है, वह न जाने पाये। यह बड़ी दुर्बलता है। यह बड़ी खराबी करती है। तो मैं कह रहा था कि महात्मा गांधी ने बाल-काल की बात कही, मैं डरता था। दासी जो बच्चों को खिलाने वाली थी, उसने गांधी जी को कहा तू राम-नाम जपा कर। आयु सात-आठ वर्ष होगी। दासी के कहने से राम-नाम जपने लगे और यह बात अन्त तक उनमें बसी रही। उन्होंने लिखा कि उसी दिन से मेरे में भय नहीं रहा। वे अफ्रीका में गये तो वहाँ हिन्दुस्तानियों की बड़ी दुर्गति थी। जिस रेल के डब्बे में गोरे लोग बैठें, उसमें हिन्दुस्तानी नहीं जा सकते थे। उन मुहल्लों में भी नहीं रह सकते थे। बड़ी दुर्गति इस किस्म की थी। यही बात आपके यहां भी तो है। ग्रामों में भी मुहल्ले जुदा होते हैं। अफ्रीका में रहते हुए गांधी जी को ऐसा समय भी आया कि हज़ारों वहां के बसने वाले उनको मारने को आए। उस मकान को भी, जिसमें गांधी जी रहते, जलाना चाहा। वे डटे रहे। इतना ही नहीं, वे राजपूत खत्री जो कोड़े से अपने पिण्ड पिटवाते रहे, गांधी जी के बताये राम-नाम के आराधन से खड़े हो गये । यहां के नवयुवकों, बूढ़ों और स्त्रियों को उन्होंने खड़ा कर दिया और वे भी अंग्रेज़ों के सामने, जिनके पास बड़े हथियार, हज़ारों मील लम्बे देश. उनके राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता था। तो गांधी जी ने उनका विरोध किया और कहा कि यह असुर राज्य है। मिट्टी का एक ढेला फेंके बिना केवल इसी पर कि हम न मानेंगे, याने निर्भयता से, अंग्रेज़ों का बिस्तर गोल करवा दिया।

देवियो और सज्जनो ! मुझे कहना यह है कि भगवान के नाम में बड़ा बल है। पर तुम सोचोगे– मैं जपने लगा तो हुक्का कौन पीयेगा ? पान कौन खायेगा ? सारा दिन इन्हीं बातों में पड़े रहते हैं। भला ! महात्मा गांधी जैसा अनथक काम करने वाला कौन होगा ? वे बहुत काम करते थे। अब

जवाहर लाल करते हैं, पर इतना नहीं। निरन्तर काम करने वाला इतना अनथक किसी भी देश में कोई आदमी शायद ही हुआ हो। फिर भी उनका नाम में बड़ा भाव था।

सज्जनो ! भावना से थोड़ा भी आराधन, कल्याण कर देता है। भला होमियोपैथी की दवाई मात्रा में कितनी होती है ? अन्य काम भी ठीक हैं। हम करते हैं और करने चाहिये। पर इस आराधन को कोई काम नहीं बनाता। सब स्त्रियों और पुरुषों के पास समय होता है, पर नष्ट होता है। अच्छा और सर्वोत्तम काम, इस लोक और परलोक को मधुर बनाने वाला काम समझ कर, इसमें समय लगाना और मन लगाना चाहिये।

धैर्य और विश्वास के बिना यह जगत भी कड़वा है। इसको भगवान की स्मृति से मीठा बनाना चाहिये।

एक व्यक्ति से एक साधु ने कहा कि कुछ अपना भी काम किया कर। जिसको कहा, वह इस युग का आदमी था। कहने लगा, काफ़ी समय जो लगाता हूँ, अपने शरीर को सम्भालने में, संवारने में। मेरे बच्चे भी हैं। उनकी भी विशेष तो नहीं, पर थोड़ी-सी देख-रेख कर लेता हूँ। साधु ने कहा, हां ! ठीक है,बच्चों का काम करना चाहिये। पर अपना काम तो तू नहीं करता। कहा, दोस्तों में बैठता हूँ। साधु ने कहा, यह काहे का काम है ? उत्तर दिया, जवानी के दिन हैं। दोस्तों में बैठ कर थोड़ा सुख लिया करता हूँ। थोड़ी-सी पी भी लेता हूँ। साधु ने कहा, यह भी तेरा काम नहीं। खुशी होती होगी, पर मिथ्या है। अन्त में इन बातों से दुःख और क्लेश ही होता है। फिर कहने लगा कि मुकद्दमेबाज़ी में भी मेरा थोड़ा भाग होता है। जवाब भी दे देता हूँ, पर दोस्तों के लिए कचहरियों में बहुत समय लगाना ही पड़ता है। वकीलों को मिलना-मिलाना जो हुआ।

साधु ने कहा– यह काम तो तुम्हारा अपना नहीं। कोई मोह का है, कोई ममता का है। इन कामों में कोई भी काम तेरा, अपना नहीं। देख प्यारे! तेरा काम वह है जो इस लोक में भी तेरा काम और परलोक में भी तेरा। उसने कहा तुम कहते होगे भक्ति करो, यह अच्छा नहीं लगता। साधु वर्ष भर के बाद फिर आया। देखा, अमाशय (मेदे) की बीमारी, दिल की बीमारी, यकृत (जिगर)

खराब हो चुका और फिर कुपथ्य-सेवी इतना कि इस अवस्था में भी पीता है। बड़ी सहानुभूति से कहा कि पहले आप बड़े हृष्ट-पुष्ट थे। मुझे बहुत विचार है कि तुम इतने दुर्बल हो गये हो। अधिक बुरा यह कि जुआ खेलते हो और शराब पीते हो। हमने कहा था कि तुम अपना काम करो। कहने लगा, मेरे जैसे दुर्भागी को यह बात कैसे भाती ? मेरे तो मन का कारखाना बिगड़ा हुआ था। जिससे इनको अपनाया और अब यह दुर्दशा पाई। साधु ने कहा– यदि राम स्वस्थ कर दे तो ? वह बोला, फिर तो मैं कुटिया बनाकर भक्ति में लग जाऊँगा। साधु ने कहा– कुटिया तो क्या, घर पर भाव-चाव से सिमरन करो। खूब जप करो। प्यारे ! राम तो दिन फेर देते हैं जब मन फिरे तो।

अगले दिन मुख पर प्रकाश था। धैर्य हुआ, माला जो जपी। फिर तो माला हाथ में और मुख में नाम। परिणाम यह हुआ कि नाम का प्रभाव छा गया। पीने का समय था तो सोया पड़ा था। उसको याद नहीं आया कि आज शराब नहीं पी। नौकर ने भी सोचा कि बोल दे कर न जगाऊँ। बड़े दिनों के बाद नींद आई है।

प्रातः उठा तो भूख लगी। पत्नी को कहा– कुछ खाने को लाओ। उसने कहा– बड़े सौभाग्य आज जो तुमने अपने मुख से मांगा। वह जो ठीक था वही खाने को लाई। उसने खाया और कहा– आज स्वाद आया। स्वाद क्यों न आता भूख जो थी। मित्र आ गये। कहने लगे, भई ! हम तो सुन रहे थे, तुम जा रहे हो। कहो तो थोड़ा सा खेल लें। कहा, अब यह बात नहीं रही। मित्रों ने फिर कहा, थोड़ी सी पी लो, बीमारी भूल जावेगी। कहने लगा– यारो ! अब तो बाबा का बताया हुआ नशा है। मित्रों ने भी सोचा, आज तो यह और ही बोलियाँ बोलने लग गया है।

दस बारह दिन के बाद पाचन-शक्ति भी लौट आयी। डॉक्टर ने देखा जिगर भी ठीक और मुख पर भी प्रकाश। उसने सुना कि बाबा नगर से बाहर किसी बगीचे में आया हुआ है। चल कर मिलने गया।

बाबा बड़े आदर से मिला। पूछा कि आप स्वयं चलकर आये हो। कहने लगा– मैंने यही अच्छा सोचा। जो अर्थी देखना चाहते थे, वे मुझे पैदल चलते को देख लें। तो देवियो और सज्जनो ! यह नाम की औषधि बड़ी अच्छी है।

थोड़ा बहुत समय भी जो लगाया जाता है, बड़ा लाभ देता है। होमियोपैथिक डॉक्टर की दवाई नाम मात्र की होती है पर उसकी उपचारिक-शक्ति बहुत होती है। तो नाम में भी थोड़ा सा समय निःसंदेह हो, परन्तु भाव से हो। नाम की औषधि पाप के रोगों का भी नाश करती है। यह मनुष्य की आत्मा को उठाने वाली और जगाने वाली है।

साधना-सत्संग हरिद्वार,
माह अप्रैल



नामी

'नाम में नामी यों बसे, पुष्प में ज्यों सुवास' नाम में नामी, वाच्य में वाचक रहता है। भक्तों ने भी यही वर्णन किया है। नाम देह है नामी देही है। ये दार्शनिक परिभाषिक शब्द हैं। ऋषि-मुनि शब्द में ही परमात्मा को ध्याते हैं। सनातनी भी मूर्ति लाकर रखते हैं, किन्तु प्राण-प्रतिष्ठा के बाद ही वह नमस्कार के योग्य बनती है, अन्यथा नहीं। कागज के चित्र वन्दनीय नहीं।

गॉड, शिव या अन्य नामों से ईश्वर का बोध होता है। पदार्थ एक है। पदार्थ की ओर संकेत ही प्रधान है। पदार्थ में तो भेद नहीं, स्वरूप के भेद होने से वस्तुभेद होता है, नाम में भेद होने से नहीं।

हम लोगों की प्रथा अन्य लोगों से भिन्न है। इसमें नामभेद से भेद नहीं, किन्तु वस्तुभेद से भेद मानते हैं। अग्नि, आग, अग्ग आदि विभिन्न शब्दों से अग्नि का बोध तो व्यापक होता है। रूप एक देश में होता है, किन्तु शब्द तो व्यापक होता है। देश काल से नाम परे है। रूप की रचना तो मनुष्य-कृत भी हो सकती है।

राम-नाम से संकेत ईश्वर की ओर है। कृष्ण-नाम से भी यदि परम पुरुष का ध्येय हो, तो हमें कोई भेद नहीं। परम पुरुष परमात्मा सर्वशक्तिमय सृष्टा की ओर संकेत होना चाहिये। यहां किसी का खण्डन नहीं है।

साधना-सत्संग हांसी
24.11.1957,
समय अपराह्न 3.30 बजे

❑❑

नाम में ही नामी है -1

साधना के मार्ग में श्रद्धा होनी चाहिये। श्रद्धा आस्तिक वृत्ति को कहते हैं। इसके साथ भक्ति होनी चाहिये। भक्तियुक्त श्रद्धा साधक की इस प्रकार रक्षा करती है, जैसे माता नन्हें शिशु की।

देवाधिदेव भगवान को स्थापित करके जो साधन किया जाये, उसमें कोई विघ्न-बाधा नहीं आती। कर्म साम्य, गुरु साम्य हो, तो भगवान साम्य हो जाता है। ध्यान में बैठने से पूर्व भगवान को नमस्कार करना चाहिये। यह अति आवश्यक है। इससे प्रत्याहार होता है। दूसरी तरफ से वृत्तियां रुकती हैं। नाम-योग में यह विशेषता है कि इसमें भगवान स्वयं साक्षीरूप से होते हैं और विघ्न विनष्ट करते हैं। यह भावना होनी चाहिये। इससे सहारा मिलेगा।

'नाम' भगवान का प्रतीक है अर्थात एक चिन्ह है। यह मूर्ति भी हो सकती है, मनुष्य भी हो सकता है, किन्तु नाम का प्रतीक सबसे अच्छा है क्योंकि नामी, नाम में होता है। वाच्य-वाचक एक होते हैं। साधक को समझना चाहिये कि वह वाचक में वाच्य का आराधन कर रहा है। नाम में नामी का आराधन कर रहा है। रूप का प्रतीक भी अच्छा है, उसका निरादर नहीं है, पर नाम का प्रतीक उत्तम है। सन्तों और महर्षियों ने नाम की शक्ति को समझा है और उसको प्रकट किया है, ठीक उसी तरह जिस तरह वैज्ञानिकों ने परमाणु की शक्ति को समझा है। दूसरों को तो वह केवल नाम और एक तुच्छ परमाणु ही लगते हैं। केवल साधारण ढंग से नाम जपने वाले भी बहुत ऊंचे हो जाते हैं, पर जो विधिपूर्वक नाम लें, उनकी तो बात ही और है।

जो नाम का विरोधी हो, जिसको नाम में नामी होने में भ्रम हो, उसका संग, कुसंग है। चाहे वह अपने अंश का हो या वंश का हो। यह भावना होनी चाहिये कि जो मेरे मन के मन्दिर की मूर्ति का अनादर करता है, वह म्लेच्छ ही है। अध्यात्म-मार्ग में श्रद्धा बड़ी चीज है।

साधना-सत्संग होशियारपुर, दिनांक 27.12.1945

❑❑

नाम में ही नामी है - 2

राम-नाम परम पिता परमेश्वर का नाम है। इसमें राम स्वयं विद्यमान है। जिस प्रकार नाम पुकारे जाने पर कोई व्यक्ति चला आता है, ठीक उसी प्रकार नाम के प्रभाव से परमेश्वर का आना अवश्यंभावी है। इसी प्रकार नाम में नामी सम्मिलित है। केवल नाम दिया जाता है, स्वरूप नहीं।

यदि कोई व्यक्ति कहे कि राम-राम कहने से क्या होता है ? तो हम उसे अज्ञानी समझेंगे, यद्यपि हम उसके सम्मुख यह बात न कहें। गुरु, मार्ग बताने तथा मार्गदर्शन करने के लिए होता है। उसका कार्य बीज को बोना है। साधक का यह कर्त्तव्य है कि वह नियमों के अनुसार चले। जिस प्रकार बीज कैसे भी रख दिया जाये, वह उगता है तथा जिस प्रकार बीज में वृक्ष, शाख, पत्ते तथा फल सहित सारे का सारा समाया होता है, इसी प्रकार नाम में उस भगवान के समूचे स्वरूप समाए हुए हैं। बीजारोपण एक विशेष प्रकार से तैयार की हुई भूमि में किया जाना चाहिये और उसके पश्चात् भी नियम पालन आवश्यक है। यदि ठीक प्रकार से देखभाल की जाये तो पौधा एक वृक्ष बन जायेगा अन्यथा नष्ट हो सकता है। सुदृढ़ निश्चय के साथ सतत् प्रयत्न करते रहने से सफलता प्राप्त होती है।

राम-नाम केवल श्रद्धा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। अतः साधक के लिए श्रद्धावान एवं तीव्र चाह वाला होना आवश्यक है। यह चाह बहुत प्रबल होनी चाहिये। रेडियो में भिन्न स्टेशनों के अपने-अपने बिन्दु होते हैं तथा किसी एक स्टेशन को सुनने के लिए उसका बिन्दु नियत होता है। सफलता प्रबलतम की होती है।

कुसंग श्रद्धा के मार्ग में एक मात्र बाधक है। मोटे शब्दों में, कुसंग का अर्थ है— बुरी संगति। दृढ़ इच्छा द्वारा इससे बचा जा सकता है। कमज़ोर इच्छा का कोई महत्व नहीं। ऐसे भी व्यक्ति होते हैं, जो यद्यपि आपके मित्र होते हैं, किन्तु वह आपके विचारों को भी अपने जैसा बनाने का यत्न करते हैं। राज्य सरकारें भी ऐसा करती हैं। राजनीति में भी कुसंग से सावधान रहने को कहा जाता है।

□□

भावना में भगवान

आप आराधना करते हो—राम-नाम की। इसमें भावना बनानी चाहिये। देव जो है वह भावना में रहता है। जिसमें भावना उद्दीप्त की उसमें भगवान। नाम-भावना उद्दीप्त करनी चाहिये। साधक को यह विचार करना चाहिये कि नाम में भगवान की कला प्रकट होती है और हम नाम की आराधना करते हैं। फिर वह (राम) हमारे पास है। तो नाम जो स्थापित हुआ है, वह राम ही हुआ। सालिगराम का क्या आकार है— भावना ही तो है कि सालिगराम की पूजा यानी कृष्ण की पूजा। हमारी ऐसी भावना, सो नित्य मूर्ति बनाते, पूजा करते और प्रवाहित कर देते। नाम और नामी एक होते हैं। यह तो महापुरुषों ने कहा ही है। किसी के अंग को हाथ लगाओ कि तू कौन है ? तो वह अपना नाम बतायेगा। नाम जैसे सारे शरीर में, इसी प्रकार वह राम सारे संसार में है। राम-मूर्ति अपने हृदय में, स्थापित है, तो जप करने वाले समझें, हम पूजन कर रहे हैं। राम को जप में अपने पास समझना।

मूर्ति में भावना होने के कारण पहाड़ी लोग पत्थर को देवता कहते हैं। कुल्लू, कांगड़ा के देवता देहाती लाते हैं, साफ सुथरे कपड़े पहन कर, दस-दस मील से, पन्द्रह मील से। देवता के दर्शन एक बात, ऐसे अवसर पर नृत्य भी और गाने भी। देवता लकड़ी का बना होता है। उस समय के रिवाज़ थे, जब गमनागम कम था—एक पत्थर को कौन लाता ? न मूर्ति में देव है, न पत्थर में है, वह तो भावना में है।

पण्डित नेहरू जी दूसरी बार अमेरिका गये। टेलीविजन का इन्तजाम कर दिया (उनके भाषण के प्रसारण के लिये)। जब उन्हें बोलने को कहा गया, वहां भिन्न-भिन्न देशों में रेडियो और टेलीविजन पर पचास लाख व्यक्तियों ने उनको सुना और देखा। कोई चार सौ मील दूर और कोई हजार मील दूर। तो रूप और शब्द दोनों ब्रॉडकास्ट हुए। शब्द भी आकाश में हज़ारों मील दूर और

रूप भी। एक जगह बोलना हुआ—लाख जगह बोलता हुआ दिखाई देता है। रूप देखने में अन्तर दिखाई नहीं देता है। यह विज्ञान से इस समय इतनी बात सिद्ध है। भगवान आप के पास ही है। वह दूर नहीं है। यदि यह भावना कभी-कभी आ जावे, तो इससे बड़ा लाभ होता है। जल होता है, तो ही मछली तैरती है। पंछी टहनी पर बैठता है— वनों में जहां वृक्ष होते हैं, पर जब उड़ना चाहे तो ऊंचा आकाश है। ऐसे ही परमेश्वर को जितना दूर समझते हो, उतना ही गलत विचार है। उससे झूठ, अहंकार आदि होते हैं। साधना करने वाले साधक को यह भावना रखनी चाहिये कि राम हमारे पास है। वैसे भी पास है और आराधना में तो है ही। इसलिए परमेश्वर को सदा पास समझना चाहिये।

इससे बड़ा लाभ—बड़ा लाभ—बड़ा लाभ।

साधना–सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 24 व 25.12.1947
प्रात: 10.30 बजे

❑❑

अध्यात्म-चिकित्सा

नाम-योग एक प्रकार से अध्यात्म-चिकित्सा है। मनुष्य के अंदर एक विचार, एक संस्कार बैठा होता है और वह सरलता से निकलता नहीं। जैसे किसी को भूतादि दीखते हों, तो उसे कहते हैं कि तुम बोलते जाओ। बोलते-बोलते उस के विचार बाहर निकल जाते हैं और वह स्वस्थ हो जाता है।

अध्यात्म-चिकित्सा को स्वात्म-चिकित्सा भी कहते हैं। जिसने स्वात्म-चिकित्सा नहीं कराई, वह दूसरे की चिकित्सा करने योग्य नहीं होता। इसलिए पर-चिकित्सा से पहले आत्म-चिकित्सा आवश्यक है। मैस्मैरेज्म में यह त्रुटि है कि इसमें स्वात्म-चिकित्सा नहीं कराई जाती और वह बड़ी-बड़ी गल्तियाँ कर जाते हैं। नाम अंदर गहरा जाता है और गहरे बैठे हुए संस्कार निकल जाते हैं। इसमें मनुष्य पवित्र हो जाता है। नाम की चिकित्सा में कभी-कभी किसी के पुराने संस्कार बहुत भड़का करते हैं। असम्भव नहीं जो तीव्र आवेश (Aggravation) हो जाय, किन्तु वास्तव में चिकित्सा हो रही होती है। घबराना नहीं चाहिये। 'नाम' जाप में लगे रहना चाहिए, अपितु जाप की मात्रा बढ़ा देनी चाहिये। अंत में उसे लाभ होगा और वह आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत अच्छा हो जायेगा, किन्तु आत्म-चिकित्सा का भाव होना चाहिये। गुरु बनने के विचार से बहुत लोग इस मार्ग पर चलते हैं और भूलों में पड़कर भटकते फिरते हैं और हानि उठाते हैं।

मैं अपने मिलने वालों को तीन बातों का निषेध बताता हूँ—

1. मादक द्रव्यों का सेवन (मादक द्रव्य वे जिनके उपयोग से बेहोशी-सी आ जाए)
2. व्यभिचार (Sexual impurity).
3. कुसंग

कुसंग केवल पापी मनुष्यों के संग को ही नहीं कहते। संशयशील तथा भ्रमशील व्यक्तियों का संग तो इनसे भी अधिक कुसंग है, क्योंकि इससे

आध्यात्मिक रोग हो जाते हैं। गुरु के समक्ष अथवा परमेश्वर को सम्मुख उपस्थित मानकर, उस के सामने बैठने से, यह भाव लेकर कि जो तू करे वही सत्य है, ऐसा करने से ही कृपा की किरणें आने लग जाती हैं।

अध्यात्म-चिकित्सा का तथा योग का अन्त एक है, चाहे फिज़ियो-एनालाइसिस (Physio-analysis) में विश्वास का अंश न हो। आत्म-चिकित्सा का अर्थ है– मेरे अन्दर से कुसंस्कार निकल जायें।

साधना में एकमना होकर लगना चाहिये। आज एक साधन किया, कल दूसरा किया। नाम का योग अत्युत्तम अध्यात्म-चिकित्सा है। इस में भगवान स्वयं डॉक्टर है। आत्मा को पवित्र बनाने का लक्ष्य होना चाहिये, केवल सुन्न बनने का नहीं। एकाग्रता भी होनी चाहिये। नाम का अभ्यास प्राणायाम आदि से भिन्न है। इसमें प्राण ही नहीं, अपितु आत्मा की शक्ति उठा करती है। यह प्राणों में बन्द पड़ी हुई होती है और सजग बन जाने से जाग उठती है। गुरु का काम है कि शिष्य को जगाये और उसे महाशक्ति से मिला दे।

कई बार शक्ति उठने से शरीर गिर जाता है, पूर्ण रिलेक्सेशन (Relax-ation) हो जाती है। यही फ़िज़ियो-एनालाइसिस की विधि है। ऐसे अवसर पर यदि भ्रम हो जाए कि कोई अस्वस्थता आ गई है, तो रोग अन्दर का अन्दर रह जाता है। शक्ति जागने से काया का शोधन हो जाता है। नाम से आत्मा जग जाया करता है और बुद्धि बेपार(कुशाग्र) हो जाया करती है। शक्ति जागने के अनेक चिन्ह हैं। उन्हें भगवान का प्रसाद समझना चाहिये। गुरु की दृष्टि से, शब्द से और स्पर्श से यह शक्ति जगती है। तब महाशक्ति का अवतरण होता है और मोह-रूपी माया दग्ध हो जाती है। कभी-कभी शरीर शिथिल होता है। कभी देहपात होता है, कभी कम्प होता है, कभी हँसी आने लगती है, कभी पसीना आता है। ये शक्ति अवतरित होने तथा शक्ति जगने के चिन्ह हैं। स्वर में, नेत्र में, अंगों में विकार आ जाता है। सिर का घूमना, अपना आप उठता हुआ मालूम होना, अपना आप शरीर से पृथक भासना, देह तेजोमय दिखाई देना, प्रतिभा का जग जाना, जो कभी नहीं पढ़ा उस को भी जानने लग जाना, इत्यादि शक्ति जगने के चिन्ह हैं। ऐसा हो तो समझना चाहिये, भगवान की कृपा का प्रसाद मिला है।

❑❑

मन की आध्यात्मिक चिकित्सा

ध्यान में बैठने पर मनुष्य में पड़े हुए संस्कार उद्भूत होने लगते हैं। जैसे-जैसे उन संस्कारों को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं, वे तीव्र विरोध करते हैं। जमे हुए संस्कार नये प्रतिकूल संस्कारों को प्रवेश नहीं करने देते। ध्यान में बैठने पर ये मलिन संस्कार प्रकट होते हैं, क्योंकि जैसे ही राम-नाम उनको नष्ट करने के लिए प्रयत्न करता है, वे संस्कार प्रबल होकर सामने आते हैं। यदि पुराने मलिन संस्कारों के अनुकूल संस्कार डालें, तो उस समय वे विरोध नहीं करते। रक्तमज्जा-जाल में पड़े संस्कार-कीटों को मारने के लिए राम-नाम औषधि का प्रयोग करना पड़ता है। रोग तीव्र होने पर उग्र औषधि देनी पड़ती है। रोग-मुक्त होने के लिए धैर्य होना आवश्यक है। वैद्य के बताए अनुसार कार्य करने पर शीघ्र रोग-मुक्त हो सकता है। मानस रोग होने पर आध्यात्मिक-चिकित्सा भी विशेष करनी होगी। मनुष्य यदि जप की संख्या चार लाख नित्य कर दे तो बहुत लाभ होता है। यहां तक कि काया-कल्प हो सकता है। रोग बढ़ने पर अनेक अस्पतालों में, देश-विदेश में इलाज कराने जाते हैं, किन्तु दुःख की बात है कि आध्यात्मिक रोग को दूर करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करता। जीवन का भय अधिक होने के कारण शरीर रोग की तो चिन्ता करते हैं, किन्तु मानस रोग को दूर करने के लिए नहीं।

आध्यात्मिक-चिकित्सा कठिन नहीं होती, मन को बदलना होता है। प्रकृति के परिवर्तन के लिए कुछ नियम लेने पड़ते हैं। आत्मशोध का प्रबल विचार होना चाहिये। जैसे धन, तन, सन्तान, सुख, सम्पत्ति में तीव्र मोह होता है, वैसे ही आत्म-कल्याण के लिए तीव्र भावना होनी जरूरी है। जैसे कि वैद्य अनेक पथ्य बतलाते हैं, परिचारिका सेवा सदन (Nursing Home) में रखते हैं, नियमित भोजन देते हैं, आहार-विहार नियत करते हैं, इसी प्रकार

आध्यात्मिक-जीवन को निरोगी बनाने के लिए कुछ नियम अपनाने पड़ें, तो क्या हानि है ? दाल-भात खाने के लिए मत जियो। जीवन को मर्यादा में लाओ। मित सोना, मित खाना, मिताहार और मित विहार का जीवन सुखदायक है।

आधी रात जगने का आदेश देने पर गुरु आज्ञा मान कर जागो, तभी रोग दूर होगा। वैसे ही सिद्ध नहीं बन सकते। क्लब में ब्रिज खेलना, व्यर्थ गप्प लगाना, सिनेमा देखना ठीक नहीं। अपनी साधना के अनुकूल आहार-विहार बनाओ। जाति-पाँति, समाज व्यवहार को भी अपने अनुकूल बनाओ। राम-कृपा के अवतरण को मानस रोग स्थापित नहीं होने देते। रात्रि को अल्पाहार करो तो प्रातः जल्दी उठ सकोगे। मनमानी करो और सिद्ध बनना चाहो, यह असम्भव है। संसार के सभी सुख चाहियें और भगवान भी चाहिये, ऐसा नहीं हो सकता।

जो भगवान को चाहते हैं, उन्हें भगवान मिल जाते हैं। जो न चाहे उसे पंच-भूत नचावे। त्याग से भगवत् प्राप्ति होती है। संसारी विचारों के संस्कार की मात्रा मन में अधिक संगृहीत है।

काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह के संस्कार जब तक प्रबल रहेंगे, भगवत् प्राप्ति नहीं होगी। तप, त्याग, तितिक्षा से ये संस्कार क्षीण हो जाते हैं। जप से निश्चय ही कल्याण होता है।

रात को जागकर किया गया जाप अधिक लाभदायक होता है। तीव्र भावना बिना प्राप्ति नहीं होती। तीव्र भावना उसी प्रकार होनी चाहिये जैसे डूबने वाले को वायु प्राप्ति के लिए तीव्र भावना, व्याकुलता और आत्मरक्षा की भावना होती है। जिस प्रकार डूबने वाला सारे बल से बचने की चेष्टा करता है, उसी प्रकार साधक यत्न करे।

साधना-सत्संग हरिद्वार,
अप्रैल माह

❑❑

नामोपासना

चिन्ता दूर कैसे हो ? भगवान का भरोसा करो और नाम का चिन्तन करो। जो होना है, वह हो जाएगा, ऐसा सोचकर निश्चिन्त हो जाओ। क्रोध जब बहुत आता है, तो सोचो कि मैं यह नहीं करूंगा। यदि आएगा, तो उसे रोकूंगा। इसके लिये भगवान से बल की प्रार्थना करो।

पहले मन लगता था, अब नहीं लगता। ऐसा भी होता है, ऐसा होने पर सोचना चाहिये कि जब भावना बनती थी, उस समय क्या परिस्थिति थी और अब क्या कारण है कि नहीं बनती ?

कुछ एक साधकों को भगवान की प्रतीति का परिचय मिलता रहता है। मैं देता तो 'नाम' हूं पर यदि किसी को रूप की प्रतीति होती है, तो उसका आदर करता हूँ।

प्रतीकोपासना में प्रतीकों का भेद हो सकता है, पर नामोपासना में भेद नहीं है। प्रतीक थोड़े-थोड़े साम्प्रदायिक हैं। ये समयानुसार बने और अपने-अपने विचार और मतानुसार बनाये गये हैं। पर नाम का प्रतीक वास्तविक है। नाम किसी भी चीज़ का न रखो तो उसका बोध नहीं होता। नामोपासना में यह गहराई है कि नाम की ध्वनि अन्दर बस जाती है और साधक का मन मन्दिर बन जाता है। इस उपासना में बहुत बाहर की सामग्री नहीं चाहिये।

हम नाम में नामी को देखते हैं। नाम में ही नामी प्रकट होता है। वह हम में न खेले, तो रसमयी रास नहीं हो सकती। 'भक्ताँ दे कारज़ आप खलोता', यह केवल भजन का ही वाक्य नहीं, यह वास्तविक सच है। भगवान स्वयं भी कहते हैं, 'मैं आता हूं। मैं देवों और मनुष्यों द्वारा बोलता हूँ।' भक्ति-धर्म में भगवान भक्त की भावना अनुसार फल देते हैं। एक सब-जज थे, उनको ध्यान में बैठने पर प्रकाश दृष्टिगोचर होता था। उन्होंने आयु भर यह अवस्था स्थिर रखी। एक सज्जन ने जब नाम लिया तो उसे अपनी रगों में हज़ारों राम-नाम

प्रतीत हुए। जब तक मत, पद, आयु, विद्या, धन की ऐंठन न छोड़ी जाये, तब तक यह अवस्था प्राप्त नहीं होती, क्योंकि ये चीज़ें भगवान के दरबार में झोली पसारने नहीं देतीं। जो कुछ मिलता है, देने वाले की कृपा से मिलता है। यह उसी का प्रसाद है।

यह समाज का बड़ा सौभाग्य होता है, जब उसमें सेवकों की संख्या अधिक हो। अभिमान के सर्प को कुचलने का यह एक बड़ा साधन है—साधक विनय-पूर्वक सेवा करे। मातृ-भाव ग्लानि को जीतने के लिए होता है। जब बच्चा गोद में होता है और लघुशंका कर देता है, तो माता को ग्लानि नहीं होती। यह सेवा है। साधक को ऐसा होना चाहिये। प्रत्येक मनुष्य के भीतर छिपी हुई आग होती है—क्रोध की आग, अभिमान की आग। इससे बचना चाहिये।

जिस प्रकार एक खेत का क्यारा अच्छा हो। घास-फूस उसमें न हो, खाद खूब हो, तब बीज उसमें फलीभूत होगा। इसी प्रकार साधक के मन में, मन्त्र में श्रद्धा, विश्वास और बहुत दृढ़ धारणा हो, विविध वृत्तियों का कूड़ा करकट न हो, तो नाम फलीभूत होता है।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 29.12.1945



साधन-योग

राम-कृपा अवतरण

1

अमृतवाणी में राम-कृपा अवतरण सम्मिलित किया गया है। इस में इस बात पर बल दिया गया है कि भावना सहित जब राम-नाम का आराधन किया जाता है, तभी अधिक लाभ होता है। जिस वस्तु को खाने की भावना न हो तो मुंह उसे स्वीकार नहीं करता। जो लोग राम-नाम का इस भावना से आराधन करते हैं कि महाराज (भगवान) की कृपा होती है, तो कृपा अवश्य होती है। परम प्रभु श्रीराम का स्वरूप जो है, वह कृपा स्वरूप है। इस राम के आराधन से तो कोई दूसरी वस्तु आती नहीं, कृपा ही आती है। जैसे सूर्य से तो प्रकाश ही आता है, उससे अंधेरा तो आता नहीं। श्रीराम-कृपा को ग्रहण करने की भावना का होना आवश्यक है, नहीं तो कृपा आई और ग्रहण न हुई। जैसे रेडियो में ग्रहण करने की शक्ति नहीं हो, तो वह ऐसे ही हुआ जैसे लकड़ी का संदूक।। 1 ।।

जब हम आराधन में बैठते हैं, तो उस की कृपा—रामकृपा अवतरित होती है और यह जो कृपा है वह अनूप है। इसका स्वरूप है ज्ञानमयी, शक्तिशाली और सुखमयी— सुख देने वाली। भावना सहित आराधन हो, तो फिर ऐसी कृपा आकर बसती है। इस से बुद्धि बढ़ती है और आनन्द होता है।। 2 ।।

यह नाम बड़ा पावन प्रतीक है। प्रतीक का तात्पर्य है— चिन्ह, मूर्ति। यह नाम शक्ति का घर है। जैसे परमाणु हमारे लिए मिट्टी का एक कण है, किन्तु वैज्ञानिक जानते हैं कि इस में कितनी शक्ति है! ऐसे ही केवल जानने वाले ही नाम की शक्ति को जानते हैं, सब लोग नहीं। नाम बीजाक्षर है। जैसे गेहूँ के एक बीज से कितने बीज बन जाते हैं। वट का बीज कितना छोटा होता है, किन्तु उस में कितना बड़ा वृक्ष छिपा होता है। इसी प्रकार नाम में

आध्यात्मिकता का महान वृक्ष होता है। नाम जहां तारक है, शक्ति का घर है, वहां यह बीज-अक्षर भी है। वास्तव में संसार में माया-जाल फैला हुआ है। इसलिए राम-कृपा बड़ी कठिनाई से आती है। किन्तु अन्ततः आती भी है, इसी मनुष्य जीवन में।। 3।।

साधना करने वालों को साधक कहते हैं। साधना से साधक को जो प्राप्त होता है, वह है– सिद्धि। साधक को साधना, भावना से करनी चाहिये और यह सार जान कर करनी चाहिये कि, वाचक और वाच्य एक है। 'राम' शब्द जो बोला वह वाचक है और परम-पद जो, वह वाच्य है। यह कोई मैं ही नहीं कह रहा, पतंजलि ने भी कहा है। नाम और नामी एक हैं। मूर्ति की जो पूजा होती थी, वह तो तब, जब उसकी प्राण-प्रतिष्ठा की जाती थी। नाम और नामी एक हैं- यह सार है।। 4।।

निश्चय धारण करके नाम आराधन करे तो भक्त को यह समझना चाहिये कि नाम स्थापित हुआ, नामी अन्तःकरण में आया। भावना के अनुसार लाभ होता है। गंगाजल को जिस भाव से बरतते हैं, उसी भाव की कामना पूरी होती है। अन्यथा ठण्डा पानी ही समझा जाए, तो ठण्डक ही लगती है। इसी प्रकार धूप से भी उपचार किया जाता है और उसी से सनस्ट्रोक (Sunstroke) भी होता है। सूर्य की किरणें अब तो फोड़े-फुंसी के इलाज में भी बरती जाती हैं। नाम का अधिक लाभ तो भावना से ही होता है। वैर, विरोध, मित्रता आदि भावनायें हैं। इतनी धाराएं हैं कि नाम की भावना कठिनता से होती है, किन्तु प्रतिदिन नामाराधन करने से भावना होती है। इस का बार-बार मनन, बार-बार समझने की चेष्टा होनी चाहिये कि यह नाम शक्ति-घर है, ज्ञानमय है, सुखमय है, बीज-अक्षर है। ऐसी दृढ़ भावना वाले को निश्चय सफलता मिलती है।। 5।।

तुम्हारी भावना और निश्चय दुर्बल नहीं है, तो फिर अवश्य बड़ा लाभ होता है। कृपा वैसे भी आ जाया करती है। अधिक और अवश्य लाभ के लिए तो ऐसी भावना हो कि मेरे अन्दर भगवान विराजमान है। यदि कोई ऐसी भावना न बनाये, तो कोरा रह जाता है। भावना तो बनाई जाती है।

भावना वाले के लिए, मूर्ति देवमयी होती है। पुराने इतिहासों में अग्निहोत्र का बड़ा वर्णन है। उसका लाभ भी देव-स्थापना से है। ऐसा न हो, तो फिर मूर्ति की पूजा का लाभ नहीं और अग्नि में आहुति का लाभ नहीं। वस्तु भावनामयी होनी चाहिये। साधारणतः पुत्र में केवल यह भावना होती है कि यह मेरा पिता है, किन्तु श्रवण कुमार में तो पिता के लिए वास्तविक श्रद्धा थी। ऐसे ही श्रद्धापूर्ण भावना से भक्त को यह समझना चाहिये कि नाम में नामी है। मन्त्र आराधन करते-करते ही हमारे भीतर और बाहर भी शक्ति उत्पन्न हो जाती है। यदि पुत्र में भावना हो, तो पिता भी उसके लिए कितना पिघल जाता है। श्रवण के माता-पिता में कितनी भावना थी! श्रवण के शरीर छोड़ जाने पर उन्होंने भी वहीं शरीर त्याग दिया।

नाम में बड़ी पूज्य भावना हो कि परम पिता श्रीराम इसमें विद्यमान हैं। ऐसी भावना से लाभ होता ही है। लाभ से तो भण्डार भर जाते हैं। जैसे धन्ना सेठ और प्रह्लाद भक्त के साथ हुआ। मुझे एक तरुण मिला, जिस में बड़ी तीव्र भावना थी। वह सदा अपने सौदों में सफल होता था।

आप को यह जानना चाहिये कि राम-कृपा अवतरण का प्रकरण किस भावना से लिखा गया है ? किसी शब्द का अर्थ, वह यथार्थ है जिसकी ओर शब्द संकेत करता है जैसे– पानी। अर्थ शब्द से भिन्न नहीं है। अर्थात् शब्द और अर्थ एक हैं। इसी प्रकार नाम और नामी एक हैं।

वाल्मीकीय रामायण-सार में दो तीन मंगलाचरण हैं, यथा–राम का, सीता राम का। इन में भक्तजनों के भी मंगलाचरण हैं। ऐसी रीति हो कि नमस्कार करके बैठा जाये, इस से विनीतता आती है, गम्भीरता आती है। भावना न हो तो देवदया नहीं होती। भावना से कृपा केन्द्रित होती है। जैसे सूर्य की किरणें मोटे दल के शीशे पर पड़ती हैं, तो केन्द्रित होकर कपड़े को जला भी देती हैं। जब बड़ी लगन और चाव हो, तो देव-दया का अवतरण तथा विकास होता है और ठहरता है।

भगवान ने गीता में कहा है कि संशय मनुष्य का बड़ा शत्रु है। देखो! जब कोई व्याधि फैलती है, तो डॉक्टर टीका लगाता है। मेलों पर भी टीके

लगाए जाते हैं। तो इसी प्रकार **विश्वास का टीका लगवाना जरुरी है, ताकि पथ-पतन न होवे।** इसलिए दृढ़ विश्वास पैदा करें। जितना आप भटकेंगे, भटकते जावेंगे। मैं किसी पंथ के निश्चय के लिए नहीं कहता। राम-नाम धारण करें। ऐसा दृढ़ विश्वास हो जाये, तो फिर उत्तरदायित्व उस भगवान का ही हो जाता है।

श्री राम पर अचल एवं अटल निश्चय बनाओ।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 20.11.1953,
समय प्रातः 11.00 बजे

2

जैसे बीज भूमि में डाला तो–जल, रज, ऋतु–इन तीनों द्वारा विकास पाता है। ऐसे ही नाम के मन्त्र के संयोग से आप ही लाभ होता है। जैसे बिजली घर है, परमाणु में शक्ति है अर्थात् जैसे बिजलीघर बिजली का कोष है, परमाणु शक्ति का भण्डार है, ऐसे ही इस मन्त्र में पाप-ताप को मारने और अच्छे भाव को प्रफुल्लित करने की शक्ति है। देव भावना में ही रहता है। यदि भावना न हो और फिर भी काम हो जाए तो दूसरी बात है, पर भावना के साथ व्यायाम करने से ही शरीर बलिष्ठ होता है। किन्तु यदि कोई नौकरी ढूंढने के लिए दौड़-भाग करता है, तो इस में कोई व्यायाम की भावना नहीं होती। अतः उससे व्यायाम का कोई लाभ नहीं होता। अतः हरि-कृपा के अवतरण का ध्यान करते रहना चाहिये।

कल्पना करे कि किसी ने अपने नाम, गाम और पिता के नाम को धारण किया तो वह सदा इनको स्मरण रखता है। इसी प्रकार इस शब्द को धारण कर सदा स्मरण रखो। ध्रुव के समान दृढ़ रहना चाहिये। चलायमान नहीं होना चाहिये। मन्त्र निधान है अर्थात् खज़ाना है। पर बिना भावना के तो यह ऐसे ही है, जैसे– खाली बन्दूक की आवाज़। परमात्मा शक्ति दें– इस मांग के साथ भी ऐसा निश्चय हो कि द्वार खोलने से जैसे वायु और प्रकाश का पूर आता है,

ऐसे ही नाम-आराधन से शक्ति और कृपा का अवतरण होता है। जैसे वायु और प्रकाश, द्वार खोलने पर, अवश्य आते हैं, ऐसे ही निश्चय से जानो कि हरि-कृपा दुर्गुण दूर करती है। द्वार खोलने वाले को यह भी सोचना चाहिये कि वायु का आना अच्छा है और मुंह ढांप कर सोना अच्छा नहीं। जैसे बटन दबाने से बिजली की धारा आती है और नल खोलने पर जल बहने लगता है, ऐसे ही राम-नाम के जाप से राम-कृपा का जल बहने लगता है और उसकी कृपा अवश्य हम पर होती है। ऐसी सजग भावना बनी। फिर इसी भावना में नाम ध्याया गया, तो ज्ञान, शक्ति और आनन्द के साथ देव की कृपा का दशम-द्वार के आस-पास मिलाप हुआ और उसकी साधना सिद्ध हो जाती है।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 22.11.1953,
समय प्रातः 11.00 बजे

3

ध्यान का अर्थ है तवज्जो रखना। पंजाब में हिन्दी को कम समझा जाता है। जब किसी साधक को कहा कि ध्यान करना है तो उसने प्रश्न किया, किस चीज़ का ? क्यों उसने ऐसा प्रश्न किया ? ध्यान करना तो मूर्ति, चित्रादि का ही समझा जाता है। किन्तु ध्यान का अर्थ है– एक मन, एक चित्त होकर पूरी तवज्जो देना।

पंजाबियों का मुझ से प्रश्न रहा है कि भक्ति-प्रकाश में हिन्दी कठिन है। यह ग्रन्थ साधारण भाषा में होना चाहिए। वे इन पदों को अच्छी प्रकार समझते नहीं। अर्थ के स्थान पर भी मतलब बोलना होता था।

नमस्कार-सप्तक पहले मैं ही बोला करता। फिर एक ठीक उच्चारण करने वाले को कहा जाता था। फिर भी इसके श्रद्धा, प्रणाम आदि अनेक शब्दों का ठीक उच्चारण अब भी पूरा नहीं होता। वैसे भी पंजाबी लोग प्रकाश, शान्ति आदि अनेक शब्दों का ठीक उच्चारण कम ही करते हैं। पंजाबी भाषा वालों में यह हठ रहा है कि वह शब्दों को ठीक नहीं करने देते। उनका उच्चारण ठीक

नहीं होता। दूसरी भाषाओं में यह तुकबन्दी नहीं है। अब मैं इसमें कुछ अधिक चला गया। कहना यह है कि ध्यान जो है वह एक मन होकर याद करना अर्थात् एक मन होकर सुमिरन करना ही है।

यह ध्यान करो कि जैसे– विद्युत-कोष में शक्ति है, ऐसे ही मन्त्र शक्तिशाली है और इससे शक्ति स्फुरित होगी। ऐसा समझने से ही लाभ होता है। मन्त्र निधान की आराधना करने के समय ऐसी धारणा होनी चाहिये और यह पूर्ण ज्ञान होना चाहिये कि ऐसी भावना में ही अवश्य कृपा होती है।

किसी न किसी बात की भावना बनानी चाहिये, तभी तो विचार आता है कि कृपा कैसे आती है ?

जैसे खिड़की के खोलने से पवन, तेज का प्रकाश होता है, ऐसे ही जप सिमरन करना आरम्भ किया, तो समझो कि हमने हृदय के द्वार खोल दिये। ऐसा जो समझे, तो फिर कृपा के आने की समझ भी आती है।

जो कुछ हमारा कर्त्तव्य है, वह तो हमें करना चाहिये। जादू हो जायेगा ऐसा कम सोचो, अपना प्रयत्न करो। भावना का भवन बनाना तो अपना काम है। परिस्थिति बनानी चाहिये।

सन् 1930 से मैंने नियमपूर्वक सत्संग लगाने शुरू किये। मैंने हल्ले-गुल्ले को देखकर शांत भाव रखा। परिस्थिति बनी। लाउडस्पीकर न होते हुए भी, बहुत सारी जनता में बोलने पर, मेरी कम आवाज़ भी, सब के पास पहुंच जाती। हमने समय का नियम रखा तो सब के सब समय पर आने लगे, नहीं तो घंटों प्रतीक्षा साधारणतया होती है। परिस्थिति स्थान की भी है। जहां शोर हो रहा हो, रेडियो चल रहा हो, वहाँ नाम गूँज कैसे चले ? भजन के स्थानों की परिस्थिति हम कम बनाते हैं, फिर भी राम-धुन गूँज जाती है, यह तो राम की कृपा ही है। आप में से कुछ को यहाँ के नियम एक बड़ी बात प्रतीत होते होंगे, किन्तु ये सब ठीक हैं।

जब आप भावना से आराधन, कीर्तन करते हैं, तो ईश्वर में लीन रहने वाले देवता भी आप के साथ सम्मिलित हो जाते हैं। सुर का स्वाद और है और तन्मय हो जाना, कुछ और ही अवस्था है। मैं कीर्तनों में जाता हूँ तो स्वाद कम

आता है, क्योंकि सुर के स्वाद की अपेक्षा तन्मय होकर भावना से उच्चारण का स्वाद, न्यारा ही होता है।

जहां क्राईस्ट का रास खेला जाता है, वहाँ अमेरिका और सभी स्थानों से लोग आते हैं, तो सीटें पहले से ही रिज़र्व होती हैं। अभिनय करने वाले भी बड़े निश्चयवान होते हैं। सब बड़े निश्चय से देखते हैं, किन्तु अन्य किसी स्थान पर क्राईस्ट का कोई अंग भी दिखाया जाये, तो सारे ईसाई उबल उठें। परिस्थिति बनाकर स्वरूप देखा जाता है।

हम सुर और सूरत से मस्त हो जाते हैं। यह भाव हिन्दुओं में दुर्बलता है। इसीलिए तो छैला, नयनवा छोकरा– सीता, राधा आदि बनाया जाता है। अस्तु, इसका भी कुछ लाभ होगा। अन्ततोगत्वा कृपा-प्राप्ति का मार्ग तो थोड़े व्यक्तियों का है। यह भावना का मार्ग है। अतः सब का नहीं। इसके फलस्वरूप यथेष्ट मात्रा में भलाई आ जावे तो दूसरी बात है, किन्तु प्राप्ति वाली बात तो थोड़ों में आती है। सब में आनी कठिन है। अपना प्रयत्न न हो तो भी कभी-कभी कृपा का अवतरण होता है। जब हमारा ही काम है तो साधना में बैठते समय, यह भावना हो कि हम राम के साथ बैठे हैं। वह किस रूप में, किस रंग में आये, उसकी कृपा किस रूप में आये, यह तो वह स्वयं ही जाने।

एक साधक मेरे पास ध्यान में बैठे, तो उनको खाँसी आई। मैंने समझा उन में भावना कम है, खांसी तो वैसे आती नहीं। फिर वह उस मकान में दो-तीन बार ध्यान में बैठे। एक बार वे कहने लगे कि जब मैं ध्यान में बैठा तो सीता-राम मेरे सामने से गुजरते हुए दिखे। उसने मुझसे पूछा कि क्यों गुजरे ? मैंने कहा कि फिर कभी आवें तो कहना कि न आवें। थीस्ट (Theist) भी मास्टर का आना मानते हैं, किन्तु इस साधक ने सीता-राम जी को मास्टर नहीं माना। एक कॉलेज के प्रिन्सिपल थे, उनको भी सीता-राम दिखाई पड़े, किन्तु वह इससे लट्टू नहीं हुए। दूसरे किसी साधक को दीख पड़ें, तो वह लट्टू हो सकता है। उस प्रिन्सिपल को शब्द भी सुनाई दिया, किन्तु उसके लिए भी उसकी कोई भावना नहीं थी। इसलिए लाभ नहीं प्राप्त कर सका। जब ध्यान में सिद्ध सामने आते हैं, तो यह साधक के लिए शुभ है। यदि ऐसा नहीं समझा तो यह ऐसा हुआ, जैसे प्यासा गंगा किनारे पहुँचा

और फिर गंगा-जल के स्थान पर कीचड़ पिया। भक्ति-प्रकाश में एक कथा है कि एक साधु से **एक व्यक्ति को हीरा प्राप्त** हुआ। **उस व्यक्ति ने उस हीरे को पत्थर समझ कर कौवा उड़ाने के लिए फेंका।**

यह सिद्ध तो महात्माओं की कृपा के कारण, राम-कृपा के कारण आते हैं, तो इससे कल्याण की भावना बनानी चाहिये। कहना यह था कि भगवान की कृपा ऐसे ही प्रकाशित करती है, जैसे– बटन दबाने पर बिजली।

साधना-सत्संग देवत-नांगल,
दिनांक 29.12.1953,
समय 11.00 बजे

4

प्राणी भावना से ही भक्त बनता है। भावना में भक्ति है और भावना में ही भगवान का निवास है।

यह अधिक सोचना चाहिये कि भावना कैसी होनी चाहिये ? न कि यह कि ध्यान किस का ? जिस की जैसी भावना होती है, वह भगवान को भी वैसे ही देखने लग जाता है। यदि मनन हो तो भावना बड़ी स्थिर हो जाती है। साधक विचलित नहीं होता। ऐसा भाव सजग करना चाहिये, चिन्तन करना चाहिये– ऐसा जीवित भाव हो। जब हम आराधन करते हैं, हममें से कई साधक आवेश में आ जाते हैं। एम.ए. के एक विद्यार्थी को बहुत ही आवेश आया। उसने कहा कि यदि मुझे ऐसा दूसरे स्थान पर हुआ तो, लोग पागल समझेंगे। मैंने कहा कि भाव को चैतन्य रखो। यह समझो कि तुम ही कार्यकर्ता हो। क्योंकि आप ही तो काम करते हैं। आपके अतिरिक्त तो कोई है नहीं। आप संयम रखो। तो घर पर वह ठीक रहा।

वह साधक एक बार जालन्धर गया। होटल में एक कमरा लिया। वहां उसको एक बार आवेश आ गया। उसने होटल वालों को कहा कि मेरे पिता जी को तार देना और स्वामी जी को भी सूचित करें। उन्होंने पूछा– किसी ने तुम्हें कुछ खिलाया तो नहीं। उसने कहा, कुछ नहीं। अन्त में वह जब चैतन्य हुआ, तो पूछने लगा कि तार तो नहीं दिया ? उत्तर था कि देते कैसे ? तुमने ठीक प्रकार पता भी नहीं बताया था। भावना यदि न बनाए तो मनुष्य माया के वश रहेगा अथवा किसी अन्य वस्तु के। साधक अपने मनोबल को दबने न दे। वह यह चिंतन रखे कि जब चाहूंगा आवेश उतार लूंगा। इसीलिये तो मार्गदर्शक की आवश्यकता है।

भावना बनाकर यदि आराधन किया जाए, तो साधक ऐसा अनुभव करते हैं कि अपनी सत्ता नीचे से ऊपर को उठी है, अपनी शक्ति ऊपर को जाती है। कोई सुषुम्ना से और प्राणायाम वाले प्राण से इसे मिलाते हैं, पर यह तो कुछ हुआ नहीं। प्राण तो बाहर भी जाता है। यह समझना चाहिये कि माया की, अविद्या की ग्रन्थी टूटी।

एक साधक ने मेरी पुस्तक में शक्ति के विषय में इकट्ठे लिखे श्लोक पढ़े। बहुत बात पूछा करता। परिणाम यह हुआ कि विद्वान होते हुए भी गड़बड़ा गया। कहने लगा शक्ति ने कहा है कि नमक ही खाना, मक्खन ही खाना आदि। मुझे भी ऐसी अवस्था में मिला। उसकी भावना मैंने समझी और उसे समझाया, किन्तु वह भावना को समझा नहीं। अन्त में वह चल बसा। हमारे भीतर अन्य कोई नहीं है। मैंने पहले भी कहा कि भगवान की कृपा तो कोमल है, वह सुख देने वाली है। वह अपने आपको क्यों हानिकर हो ? जो मां लड़के की पीठ पर अन्य प्रकार हाथ फेरे, वह तो मां नहीं, डायन है। हां, पुकार होनी चाहिये। जितनी प्रबल पुकार होगी, उतना ही लाभ होगा। 'जिन ढूंढ़ा, तिन पाया।' तीव्र उत्कट मांग कभी निष्फल नहीं जाती। भला जिन लोगों ने सन् 1910 और सन् 1940 के दो महायुद्ध जीते, उन लोगों से आपने सोते हुए स्वतन्त्रता प्राप्त की। कैसे ? केवल उत्कट मांग के कारण। सन् 1929 में लाहौर-कांग्रेस में इस मांग का प्रस्ताव पास हुआ, तो जवाहरलाल नेहरू आवेश में नाचे। इससे तरंग उत्पन्न हुए कि इतनी शक्तिशाली जाति ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक जाना स्वीकार किया। मुझे कहना यह है कि मांग कितनी प्रबल है ? अमेरिका-पाकिस्तान के समझौते से हिन्दुस्तान में बचाव की मांग होगी। मांग तीव्र होगी, तो केवल आलोचना समाप्त होगी। क्यों न हमें परमाणु-शक्ति की गवेषणा में सफलता होगी ? सम्मिलित शब्द से आज तक जो मांग हुई, वह

सदैव सफल हुई। बस मांग उत्कट हो।

'जे तैनूं यार मिलन दी चाह, सिर धर हथेली गली मेरी आ'।

जब मांग उत्कट होती है, तो दशम-द्वार से कृपा होती है। यह दशम-द्वार ऊपर है। नौ द्वार नीचे हैं। जब राम-कृपा आती है, तब शक्ति, ज्ञान, आनन्द आता है। प्राणी ज्ञान से पूर्ण हो जाता है, हर्ष उसे होता है, ये राम-कृपा के चिन्ह हैं। अज्ञात ढंग से वह आती है। जब देव-दया का अवतरण हुआ और अपनी शक्ति जागी, तो उसका सहस्रकमल में सत्पुरुष द्वारा मेल होता है। स्पाईनल कालम—संतों की वाणी में कमल नाल—वह ठीक है कि नीचे का रस ऊपर जाता है। इसमें अखरोट के समान खाने (compartments) होते हैं। कोई खाना हिसाब का, कोई यह बड़ा वायरलेस स्टेशन। और यह पता नहीं कि यहां कहां-कहां से, चन्द्र-सूर्य लोक की तरंगें आती हैं। जब राम-राम का उच्चारण हुआ तब अपनी शक्ति जागी। दोनों के मेल से उसका (परमात्मा का) मिलाप सत्पुरुष द्वारा हुआ। यह मिलाप की गांठ ऐसी है, एक बार जोड़ी तो फिर सदा मिलाप होता है। शुद्ध भावना से अब भी बांधी जाती है। पहले यह इन्द्र ने बांधी-राक्षसों के वैद्य शुक्राचार्य से भेद लेकर— फिर इन्द्र की जीत हुई।

तो यह सत्पुरुष संयोग-ग्रन्थि बंधी तो इस से कल्याण अवश्य होगा। यह हो नहीं सकता कि राम, मांगी वस्तु हथेली पर रखकर वापिस लेगा। सो यह राम-कृपा की बात थी और यह बात आराधना करने वालों को समझनी चाहिये। श्रीराम-कृपा अवतरण का बल हुआ, तो फिर इसका कभी नाश नहीं होगा। विश्वास तथा विचार होना चाहिये कि अब हमारा कल्याण अवश्य होगा। इस भावना क्षेत्र को बढ़ाना चाहिये।

साधना-सत्संग देवत-नांगल,
दिनांक 30.12.1953,
समय प्रातः 11.00 बजे

❑❑

ब्रह्म मुहूर्त में साधना

जिन्हें बहुत लगन हो और जो अपने में कोई परिवर्तन करना चाहें, उन्हें चाहिये कि वे ब्रह्म मुहूर्त में उठकर साधन करें। वह समय बड़ा उत्तम होता है। आधी रात के बाद का समय सारा ही बड़ा उत्तम होता है।

जप बहुत करना चाहिये। अन्तःकरण के पुराने संस्कार जप से निकलते हैं। जिस प्रकार जब तक कोई चीज़ पहले खाली न कर ली जाए, तब तक उसमें कोई नई चीज़ नहीं भरी जा सकती। इसी प्रकार पहले मन को अहंभाव से खाली करना चाहिए, फिर उसमें राम बसेगा। साइको-एनालाइसिस (Psycho-analysis) एक चिकित्सा है। इसमें रोगी को लिटा देते हैं और उसको कहते हैं कि 'तू बोलता जा, बोलता जा'। पहले रोगी झिझकता है, पुनः झिझक जाता है, पर फिर बोलने लग जाता है। अपने जो पाप-ताप उसने अपने मित्रों से छिपाकर रखे होते हैं, वे भी उसके मुंह से विवश निकल जाते हैं। उन्हीं विचारों से डॉक्टर लोग, उसकी बीमारी का कारण ताक लेते हैं। उन विचारों के निकल जाने से रोगी अच्छा हो जाता है। जो डॉक्टर बनता है, उसको भी पहले ऐसे ही लेटना पड़ता है और बोलना पड़ता है। जब उसके अपने सब विचार निकल जाते हैं और अन्तःकरण निर्मल हो जाता है, तब वह डॉक्टर बनने के योग्य होता है। राम-नाम के जपने से भी ऐसे ही कुसंस्कार बाहर निकलते हैं और उनके निकल जाने पर अन्त में हृदय निर्मल हो जाता है। साधक को धैर्य से जप करते रहना चाहिये। यह नहीं समझना चाहिये कि मुझ में यह विचार पैदा होते हैं और मेरा मन नहीं लगा, अपितु यह समझना चाहिये कि यह हमारे कुसंस्कार निकल रहे हैं। जिस प्रकार बच्चे को अपनी मां पर निर्भरता होती है, उसी प्रकार साधक को अपने पथ-प्रदर्शक तथा साधन पर निर्भरता होनी चाहिये। बच्चे को संशय-वृत्ति नहीं होती। इसी

प्रकार साधक में भी निर्भरा-भक्ति होनी चाहिये। यह आ जाने पर फिर भगवान को स्वयं साधक की चिन्ता हो जाती है। संसार में तूफान आते रहते हैं, पर जब नाम के जहाज में बैठ गए, तो तूफान से नहीं डरना चाहिये। उस पर भरोसा करना चाहिये नाम की चिकित्सा बड़ी ऊँची चिकित्सा है। देर लग जाए तो घबराना नहीं चाहिये और यह भावना दृढ़ होनी चाहिये कि अब नामी को हमारी चिन्ता है, हमें कोई चिन्ता नहीं।



विज्ञान-मूलक साधना

हमारा मार्ग पूर्ण वैज्ञानिक है। यह राम-नाम की विधि भी वैज्ञानिक है। विज्ञान में सन्देह नहीं किया जाता है। विज्ञान में प्रत्येक वस्तु क्रियात्मक की जाती है। इसी प्रकार साधना भी क्रियात्मक करने से ही ज्ञात होती है। वेदान्ती तो केवल दिमागी खरोंच ही निकालते हैं। हमारे सत्संग में ऐसे भी लोग हैं जो अनुभव से जान गये हैं। मिथ्या-गुरु, मिथ्या-शिष्य है, तो मिथ्या ही उनकी बात होती है।

आजकल गृह-त्याग करना आवश्यक नहीं है। जो ऐसा करते हैं, वे शीघ्र ही पतन में पड़ जाते हैं, क्योंकि उनका भोजन श्रमहीन होता है। भोजन का प्रभाव चरित्र पर पड़ता है।

यह मार्ग विज्ञान के बाहर नहीं है। अभ्यास करना होता है। केवल वाद-विवाद करना अच्छा नहीं। स्वरूप संकल्प से बनता है। भगवान का संकल्प ही स्वरूप बनता है। स्वरूप सूक्ष्म होता है, स्थूल नहीं। इस युग में भी ऐसी बातें अनुभव में आती हैं, तो मीरा की बातों को हम क्यों न मानें ?

यह विज्ञानमूलक-साधना, भक्ति-मार्ग है। इसका परम आचरण, भक्ति में परम विश्वास होना है।

साधना-सत्संग हरिद्वार,
दिनांक 4.4.1958,
समय अपराह्न 3.30 बजे



साधन की दृढ़-भूमि

1

साधन में प्रीति होनी चाहिये। साधन में दृढ़-भूमि प्राप्त करने के लिए ये तीन बातें होनी आवश्यक हैं–

1. दीर्घकाल तक करना चाहिये।
2. निरन्तर करना चाहिये।
3. प्रेमपूर्वक करते रहना चाहिये।

समय की अवधि नहीं बांधनी चाहिये। दो मास या छः मास या वर्ष कोई समय नियत नहीं करना चाहिये। साधन में बाधा डालने वाली बहुत सी चीजें होती हैं, पर उनसे निराशा नहीं आनी चाहिये। नाम-योग में यह समझना आवश्यक है कि इसमें भगवत्-कृपा से ही सब कुछ होता है। यह मेहनत से प्राप्त होने वाली वस्तु नहीं है। यह तो भगवान की कृपा से ही सुलभ है। मुझे भी यह भगवत्-कृपा से ही प्राप्त हुई है, पर फिर भी परिश्रम करना ही चाहिये। किसी के अन्दर अपनी शक्ति का प्रकाश होना बादलों में बिजली के प्रकाश के समान है और यह उसकी कृपा नहीं तो क्या है? इसलिये भगवान की कृपा पर बड़ा विश्वास होना चाहिये। जो बात बड़े परिश्रम से पैदा होती है, कभी-कभी वह सहज में भी मिल जाया करती है। यह भगवत्-कृपा ही समझनी चाहिये। नाम-योग ऐसा ही साधन है।

किसी प्रकार भी कोई कर्म करते रहने से आदमी में कोई न कोई कला पैदा होती है। मगर भगवत्-कृपा का मार्ग बहुत निराला है और सोचने की बात यह है कि किस सवारी से कितने समय में पहुँचते हैं? इसलिये भावना बड़ी प्रबल बनानी चाहिये और यह समझना चाहिये कि भावना का मार्ग बड़ा उत्तम है और प्रशंसनीय है। पूरे दिल से, अन्य कोई भावना रखे बिना, इस मार्ग पर चलने से कोई आश्चर्य नहीं कि ये कदम स्थिति हो जाये और बाद में उसे वह स्थिर करने के लिये निरन्तर साधना करता रहे।

यह कृपा का मार्ग है। आत्मा की स्थिति ऐसी होनी चाहिये कि शब्द आया और ग्रहण किया। बालक बनना चाहिये। हमारी बुद्धि भिन्न-भिन्न पुस्तकें पढ़ने से चंचल हुई होती है, उसे स्थिर करना आवश्यक है।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 25.12.1946

2

साधन में प्राप्त हुई मंजिल को स्थिर करने के लिये, भूमि दृढ़ होनी चाहिये। जब भूमि दृढ़ हो जाती है, तो फिर पतन का भय नहीं रहता। जिस प्रकार स्वास्थ्य प्राप्त हो जाने पर भी कुपथ्य करने से, फिर स्वास्थ्य खराब हो जाया करता है। मगर यदि स्वास्थ्य की जड़ प्राप्त हो जाये, तो फिर जल्दी स्वास्थ्य नहीं गिरा करता। यही हाल दृढ़ भूमि का है। जब भूमि दृढ़ हो जाती है, तो फिर विशेष क्रिया की भी आवश्यकता नहीं रहती, पर साधक प्रायः करते रहते हैं। भूमि दृढ़ करना कुछ अपने आधीन भी है। इसके लिये प्रयत्न करना चाहिये।

चेतन मन ने अपने आपको लोभ से, मोह से, ईर्ष्या से युक्त कर रखा है। जब आप कोई काम करने लगेंगे, तो कोई भाव विरोध का भी पैदा होगा और ऐसे तो आकाश में भी विरोधी तरंगें होती हैं। विरोध होता ही है। सूक्ष्म दुनियां में भी कोई ऐसी धारा होती है कि जब आदमी बढ़ने लगता है, उसे वह अनेक प्रकार से बहकाती है। माया का बना हुआ अपना मन भी भूत बनकर मंजिल से गिरा देता है। यह विरोधी बातें आसुरी कहलाती हैं। जब मनुष्य का पतन होता है, तो होता ही चला जाता है। जब व्यक्ति को अपने लक्ष्य पर पूरा निश्चय हो, तो वह गिरा नहीं करता। यह निश्चय होना चाहिये कि मेरा लक्ष्य है– भगवान की कृपा।

ऐसा निश्चय होने पर भीतरी और बाहरी विरोध उसे गिरा नहीं सकते और व्यक्ति लक्ष्य पर स्थिर रहता है। जिन्होंने छोटे-छोटे मन्त्र सिद्ध किये

हुये हैं, (जैसे– हनुमान, भैरव, व सांप आदि के), वे भी किसी से भय नहीं खाते। फिर जिसने परम-पद का मन्त्र सिद्ध किया हुआ हो, वह क्या नहीं कर सकेगा? उसको भय किससे हो सकेगा? भूत इत्यादि जो अपने सामने खड़े हो जाया करते हैं, अपने ही मन की वृत्तियों से पैदा हुआ करते हैं। उनसे डरना नहीं चाहिये। आसुरी-वृत्तियों को मारने के लिये भगवान का नाम परम सिद्ध मन्त्र है।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 26.12.1946



साधना में प्रबल-भावना

भजन-पाठ के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है, आपको उसका मनन करना चाहिये। भावना को जितना प्रबल बनाया जावे, उतना ही लाभ है। क्योंकि अंत में हमारा जगत भावनामय ही है। जो कुछ हम हैं वह भावना से ही हैं। भावनायें संस्कारों से भी बनती हैं। पर कुछ भावनाओं के मूल में सच्ची बातें भी होती हैं– जैसे कि हम ऋषि-सन्तान हैं। भावना में बड़ा बल है। भजन-पाठ में भावना प्रबल बनानी चाहिये। यह हमारे कथन का सारांश है। लूईकोन के स्नानों में भी भावना से ही लाभ होता है, नहीं तो पण्डे लोग पानी में कितनी-कितनी देर रहते हैं, उनको उससे कोई लाभ नहीं होता, क्योंकि उनकी उस में स्वास्थ्य की भावना नहीं होती।

जब उपासना में बैठो तो समझो, देवता सामने विद्यमान है और भगवत्-कृपा अवतरित हो रही है। भावना सजीव होनी चाहिये, निर्जीव नहीं।

भजन ध्यान करते समय भावना लानी चाहिये कि जिस महाशक्ति का हम ध्यान करते हैं, वह यहां विद्यमान है। मैं तो, जब हम कीर्तन करते हैं, ऐसा अनुभव करता हूँ कि वह महाशक्ति यहां विद्यमान है और भी सज्जन हैं, जो ऐसा अनुभव करते हैं। पर यह केवल भावना की ही बात नहीं है, वास्तव में वह शक्ति विद्यमान होती है, पर उसका अनुभव भावना से ही होता है। यदि इतने दिनों का (छः दिन का) अखण्ड-जाप भावना से हुआ है, तो उस स्थान में एक विशेष शक्ति पैदा हो जानी चाहिये, जिससे जो भी वहां जाये प्रभावित हो जाये।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 8.12.1950,
समय प्रातः 10.30 बजे

साधना में लगनशीलता

साधन लगन से करना चाहिये। ऐसी भावना लानी चाहिये कि जो साधन मुझे प्राप्त हुआ है, बड़ा उत्तम है। नित्यप्रति नियम से कुछ स्वाध्याय भी करना चाहिये। जिस साधक की भावना मजबूत हो, उसकी शक्ति पहले दिन ही मूलाधार से उठकर सहस्रार तक पहुँच जाती है। किसी-किसी साधक में शक्ति की रफ्तार बहुत तेज़ हो जाती है और कई मंजिलें बीच की छूट जाती हैं और साधक यह समझने लग जाता है कि मुझे यह प्राप्त नहीं हुआ, वह प्राप्त नहीं हुआ, पर उसको इस तरह भटकना नहीं चाहिये, बल्कि यह ख्याल करना चाहिये कि वे मंजिलें पीछे रह गई हैं। जितना विश्वास अधिक होगा, उतनी ही शक्ति शीघ्र जागेगी, आगे बढ़ेगी और खिलेगी।

विश्वास को किसी हालत में ढीला नहीं होने देना चाहिये। जो आत्मशक्ति जाग्रत हुई है, उस पर पूरा भरोसा होना चाहिये, नहीं तो गुमराह हो जाने का अंदेशा है। आत्म-भरोसा बड़ी आवश्यक चीज़ है। यदि ध्यान में एकाग्रता आदि कम होती है, तो साधक को समझना चाहिये कि उसमें कोई त्रुटि है। जिससे उन्नति नहीं होती। यह त्रुटि शारीरिक अथवा मानसिक अवस्था में हो सकती है। ऐसा होने पर साधक को धरना लगा देना चाहिये और डट जाना चाहिये। फिर देखें सफलता किस तरह नहीं होती। सिर-दर्द, दिल धड़कन या किसी और कष्ट की परवाह न करें, अगर ध्यान में मन नहीं लगता तो जप करें और खूब करें। काम-काज करते और चलते-फिरते राम-नाम की ही धुन लगाये रखें। मतलब तो वृत्तियां लगाने का है, तरीका चाहे कोई हो, कोई बात नहीं, चाहे बैठ कर लगे, चलते फिरते लगे, जैसे भी लगे, लगानी चाहिये। एकाग्रता होनी चाहिये। जप से भी वैसे ही लाभ होता है जैसे ध्यान से। इस प्रकार श्रद्धा और विश्वास से एक करोड़ जप करने से वृत्ति स्वयं शान्त हो जाती है।

उन्नति न होने के कई कारण हो सकते हैं। भोजन इत्यादि भी विघ्न डाल सकते हैं। ऐसे ही वंशानुगत कमजोरियां भी हैं, जो विघ्न डाल सकती हैं। ऐसी-ऐसी और भी कई बातें हैं। अपने माता-पिता की ओर अपना बर्ताव, स्त्री व बच्चों से बर्ताव, मन में क्रोध की अधिकता, विषय-सेवन की अधिकता, इत्यादि-इत्यादि। इन सब बातों को साधक को स्वयं सोचकर विचारना चाहिये कि उसमें कौन सी त्रुटि है ? और उसको दूर करने का यत्न करना चाहिये। गुरु भी साधक को इसमें सहायता कर सकता है, पर जब साधक अपना मन खोलकर उसके आगे रख दे, क्योंकि एक डॉक्टर मरीज़ का तभी इलाज कर सकता है, जब मरीज़ उसको अपनी दशा से पूर्ण अवगत करा दे। ऊँचे स्वर से नाम उच्चारण करने से भी एकाग्रता हो सकती है। बैठना जरुरी नहीं, लेटकर भी ध्यान किया जा सकता है (अस्वस्थ होने पर)। जिस आसन से वृत्ति स्थिर हो जाये, वही ठीक है। फिर भी बैठना अच्छा ही है।

अपने-आप की आलोचना भी करनी चाहिये। ऐसा करने से आत्मा तमाम बुराइयों को चीरकर ऊपर आ जाता है, क्योंकि आत्मा प्रबल है। आलोचना करने का यह तात्पर्य नहीं कि हर समय ध्यान दोषों की ओर ही लगा रहे। आधे पेट भटकते फिरना बड़ी त्रुटि है अर्थात् पूरी लगन, उत्साह से साधन न करना। हरि-द्वार पर धरना लगा देना चाहिये, फिर वह आप सब संकट हरेगा और रास्ता साफ कर देगा। सब सम्बन्धों से आध्यात्मिक सम्बन्ध मूल्यवान है और आगे भी साथ जाता है। सांसारिक सम्बन्ध उसके मुकाबले में कोई मूल्य नहीं रखते। प्रत्येक साधक को एक दूसरे से बंधु-भावना रखनी चाहिये और उसे उसकी यथा-शक्ति सहायता करनी चाहिये।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 31.12.1940

❑❑

साधना का महत्व

यह जो सत्संगों में खुलकर कुछ कहने की बात का समय होता है, यह इस सत्संग में अन्तिम कार्यक्रम है। इसमें जो बातें कही गई हैं, वे अनुभव में आई हुई हैं। साधना करने के लिये इन पर विशेष ध्यान देना और खूब मनन करना बहुत आवश्यक है। मन्त्र का महत्व मैंने वर्णन किया है। इसका बहुत ही मनन और अध्ययन करना चाहिये।

तीन बातें हैं–

1. काल का विचार न करे।
2. अन्तर न डाले।
3. कमी न आने दे।

मैं तो यह चाहता हूँ कि इसको न छोड़ें। किसी से मिलना या और काम हो, तो फिर यह काम इन सब से पहले करें। भजन-पाठ के काम को गौण न बनाये। अगर कोई गौण बनाता है, तो समझो भावना नहीं है।

यदि आप किसी के घर जाओ और वह आप से बात न करे, किसी और से ही बातें करता रहे, तो आप बुरा मानोगे और यदि आत्म सम्मान का भाव है, तो फिर कभी नहीं जाओगे। इसी प्रकार आपने आह्वान किया और फिर ध्यान न दिया, तो फिर वह मन्त्र का अधिष्ठाता क्यों आये ?

इस काम को अच्छे से अच्छा सिनेमा न रोके, सम्बन्धी न रोके। कोई और काम कितना ही आवश्यक क्यों न हो, इसे न रोक सके। भक्त (भावना वाला) तो स्वयं जान सकता है। वह इसमें अन्तर क्यों डाले ?

यहाँ तो यह होता है कि मैं इसको नहीं छोडूंगा, करता रहूँगा। यदि वह पूरा निश्चय नहीं करता तो पक्का, नहीं है। इसी प्रकार सत्संग में भी आना हो तो यह नहीं कि हो सका तो आऊँगा। जो ऐसे कामों में देर करता है वह अधिकारी नहीं। हमें तो प्रचार करने के लिये करना होता है। अन्यथा यह भी

बात है कि अधिकार इसमें है या नहीं। भजन के काल को तो ऋतु के अनुसार परिवर्तित किया जा सकता है।

निःसंदेह आजकल काम बढ़े हुए हैं। नयी-नयी प्रथायें चल पड़ी हैं। पहले समय में तो केवल दही से रोटी खा ली, इस प्रकार का साधारणपन(सादापन) था। अब चाय भी चाहिये और पहले तो लोग पान भी नहीं खाते थे। पान खाने वाले के घर की पौड़ियों की ओर देखें तो वहां होली खेली हुई सी होती है। यह बड़ा गन्दापन है। पान खाने वाले के दाँत मुंह बहुत बुरे लगते हैं। खैर मैं आगे चला गया पान की बुराई में। वैसे मैं इन बातों को कोई महत्व नहीं देता। कहने का अभिप्राय तो यह है कि यदि प्रातः समय नहीं मिला तो बाकी फिर बाबू जी के दफ्तर जाने के बाद मिलता है।

काम होते हैं। काम तो स्त्रियां पहले भी बहुत करती थीं। प्रातः उठ कर चक्की चलातीं, दूध निकालतीं, दही बिलोतीं। पर ये सब काम होने पर वे समय पर उठती थीं।

तो फिर सयानी स्त्रियां बाबू जी के दफ्तर जाने के बाद के समय को, भजन के लिये निकाल लेती हैं। यदि वे इसको सहेलियों का समय बनालें, तो ठीक नहीं और बाज़ार जाने का समय बनायें, तो भी अच्छा नहीं।

भजन के समय को अपनी स्थिति की सुविधा के अनुसार बदल सकते हैं, लेकिन छोड़ना नहीं। देखो जो अधिक प्रगति करते हैं, वे विद्यार्थी अपना समय पढ़ाई पर लगाते हैं। अन्य तो केवल कॉलेज में जीवन बिताते हैं, फिर कितनी बार फेल क्यों न हों ?

उसकी आलोचना तो उचित है, जो विशेष समय न दे। जो बारह बजे सोया और फिर तीन बजे प्रातः उठा। उसने यदि आधा घन्टा भजन किया तो उसकी आलोचना क्यों ? जो लड़के कम पढ़ते हैं, वे ही हड़ताल करते हैं। जो निकम्मे होते हैं और चार-चार सिनेमा देखते हैं, उनको तो जीवन से भी प्यार नहीं और पैसे से भी नहीं।

कल ही मेरा एक मित्र कह रहा था कि लाहौर में यदि दस मिनट और

मार्शल लॉ न होता तो सारी अनारकली (लाहौर में एक प्रसिद्ध बाज़ार) लुट जाती। जो समय का ध्यान नहीं रखते, वे तो सब निकम्मे हैं। सत्याग्रहियों का यह काम नहीं। वास्तविक सत्याग्रही के साथ गुण्डे मिल जाते हैं। व्यापारी भला क्यों हड़ताल करें ? भक्ति-भाव वाला यदि प्रातः शीघ्र उठना चाहे, तो शीघ्र सो जावे। वह क्यों मेज पर बातें करता रहे और फिर आलोचना करे तो उस आलोचना का क्या अर्थ ? उसको तो अपनी परिस्थिति ऐसी बनानी चाहिये, जो छैल छबीले व्यक्ति से एकदम न्यारी होती है।

अपने काम के अनुसार जो परिस्थिति को न बनावे, वह अपने काम में ही सफल नहीं होता, फिर भक्ति में कैसे हो ? ऐसा समझना चाहिये और नियम को ठीक बनाना और फिर उसका पालन करना, ऐसा कोई समझ ले तो बहुत ठीक।

एक माई ने एक साधु को कहा कि मन नहीं लगता। साधु ने प्रश्न किया कि कितना समय लगाती हो ? माई ने उत्तर दिया कि प्रतिदिन तो नहीं पर कभी-कभी पांच दस मिनट बैठती हूँ। साधु ने कहा कि आपने जब यह समझ लिया है कि समय लगाना है तो फिर भजन के समय किसी शो में जाने का हठ क्यों करो ? क्यों जेवर खरीदने जाने की हठ करो और क्यों दूसरे हठों में मन को लगाये रखो। जब बादल गरजते होते हैं और बिजली कड़कती होती है, तो रेडियो की आवाज़ अच्छी प्रकार नहीं आती। इसी प्रकार जब दिन के समय मन में बड़ा कोलाहल हो रहा हो, तो दूसरी तरंगें पैदा होती हैं और फिर दैवी-कृपा के तरंग टूटते हैं। इसीलिये साधु प्रातः के समय की प्रार्थना को कहते हैं, किन्तु राम-कृपा की अन्त में दीवार भी बन जाया करती है। पर साधारणतः प्रातः का समय ही ब्रह्म समय होता है। इस बात का जो ध्यान रख कर बैठे, यदि तब भी लाभ न हो तो फिर हरि-दरबार की वह शान नहीं रहती। कृपा फिर अवश्य ही होती है।

सत्कार और आदर के साथ उसको विद्यमान जाने। शुभ-कर्मों में उसकी कला सदा विद्यमान होती है और सहायक होती है। विश्वास के नेत्रों के सामने यह बात होनी चाहिये। हम कीर्तन में भी यह बात लाना चाहते हैं। हमारी तो

यह भावना है कि भगवान कीर्तन में साथ गाये, बजाये।

'हे हमारे देव! हमारे कुन्ड के चारों ओर बैठ और आप तू हवन कर।'

मैं तो भक्त का ऐसा अधिकार मानता हूँ। वेद तो कहते हैं, 'भक्त तो देव को सेते हैं'। यदि ऐसी लख परख न हो तो अनाचार से, भ्रष्टाचार से संसार डूब जावे।

स्वयं नाद सुनाई देता है, जब भक्त इसके लिये हृदय खाली करता है। वेद में कहा है– 'मैं बोलता हूँ देव से सेव किया हुआ।' यह सत्य कहा है। लख-परख कर कहा है। यूं ही कुछ हाँका नहीं गया।

आचार्यों को मैं दर्शक नहीं मानता। वे तो दलीलों के क्षेत्र में रहते हैं। सन्त तो आध्यात्मिक क्षेत्र में रहने वाले हैं। वे तो जो जानते थे, वही कहते थे।

मुझे कहना यह है कि यह जो कहा गया कि 'देव और मनुष्यों से सेव किया हुआ मैं बोलता हूँ।' तो यह बहुत ऊँची बात है। 'भक्त के धनुष को वीरता के समय' वे कहते हैं, 'मैं स्वयं तानता हूँ।'

मुझे निवेदन यह करना था कि यह उस अवस्था में कहा है कि ब्रह्मद्वेषी जो हैं, उनके लिये वीर के धनुष को भगवान स्वयं तानते हैं।

भक्त लोग तो इसको ऐसा ही समझते हैं– 'हम चलते हैं तू हमारा लीडर बन।' यह कोई सत्य न हो, अनुभव में न आता हो तो सन्त क्यों कहें ? हम भी सत्कार से सेवन करें, विश्वास को दृढ़ रखें, तो ऐसा करवा सकते हैं और फिर बड़े भाव स्फुरित होंगे और बड़ा बल आयेगा।

साधना करने से बड़ा लाभ होता है। अपनी स्थिति बनाना हमारे वश की बात है। यह क्या हुआ कि वही आसन, जो स्थान-स्थान मारा-मारा फिरे, वही फिर प्रार्थना का बन जावे।

अवतारों के चित्रों को भी ठीक स्थान देना चाहिये। हम एक इसका सिद्ध-चक्र बना रहे हैं, फिर हम उसको सजावट के लिये नहीं लगाने देंगे। (अभी श्री अधिष्ठान नहीं बने थे)।

अपनी परिस्थिति को बड़ा अच्छा बनाना चाहिये। ऐसी रचना से बड़ा

लाभ होता है और आप तो फिर इन सब बातों को जानते ही हैं। मैंने तो केवल इनको दोहराया है।

साधना-सत्संग श्री स्वामी जी महाराज के जन्म-दिन के उपलक्ष्य में,
कमला नगर, दिल्ली
दिनांक 30.3.1953,
समय प्रातः 10.30 बजे

❑❑

साधन की प्रमुखता

सत्संग में बताई बातों का ध्यान, मनन तथा आदर करना चाहिये। साधन काल दीर्घ होता है। उपासना को प्रथम स्थान दें। पहले प्रमुख रूप से अपने प्रभु से नियत समय पर मिलें। बाद में मित्र से यदि मिलना हो, तो मिलें। उपासना प्रथम, बाद में मिलन।

अन्य वस्तु गौण समझो। साधक के घर दैवी शक्ति आती है। यदि उसका आदर न किया तो भविष्य में कृपा रुक जाती है। प्रतिज्ञा में 'जहाँ तक' का शब्द हानिकारक है। यह प्रतिबंध नहीं चाहिये। 'साधना अवश्य करूंगा, मृत्युपर्यन्त नहीं छोडूंगा' ऐसा वचन देना चाहिये। वचन देने पर वचन का पालन होना चाहिये।

यह दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर काल को जीतना है। साधना को सर्वश्रेष्ठ मानना चाहिये। जो सब काज तज कर पहले साधना करे, वह श्रेष्ठ अधिकारी है। निरन्तर साधन करना चाहिये। ऋतु अनुसार ध्यान का समय बदला जा सकता है। जो विशेषता चाहते हैं, उन्हें विशेष समय देना चाहिये। जो विद्यार्थी विशेष नम्बरों से पास होना चाहता है, उसे अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

अपने आपको कुलक्षयी, दुराचारी न बनाओ। जो सिनेमा दूषित है, उसे नहीं देखना चाहिये, क्योंकि उससे बुरे संस्कार पड़ते हैं। कर्महीन व्यक्ति ही आलोचना करते हैं। उनकी आलोचना उचित नहीं। छैल-छबीले न बनो, खान-पान सब अपनी स्थिति के अनुसार बनाओ। नियम को पालने की चेष्टा करो। जब तक ऐसी भावना न हो तो अच्छा नहीं है। संसारी वस्तु के लिये हठ करते हो, भजन के लिये क्यों नहीं ? बादल गरजते समय रेडियो प्रोग्राम की आवाज़ नहीं आती। इसलिये शान्त समय में साधन करो। दिन के कोलाहल में ईश्वरीय तरंगें पकड़ने में नहीं आतीं। आदरपूर्वक भगवान का सामीप्य अनुभव करते हुए उपासना करनी चाहिये।

सन्तों ने रागद्वेष-रहित होकर निष्पक्ष-स्पष्ट वर्णन किये हैं। वे अध्यात्म में रहकर अनुभूत बातें कह गये हैं– 'ब्रह्म-द्वेषी को मारने के लिये भक्त का धनुष भगवान स्वयं तानते हैं।' जीवन को सीधा, सच्चा, सरल बनाओ। बड़े भाव से, श्रद्धा से नाम की उपासना करो। आसन चौकी बिछा कर रखो। नाम सजावट के लिये नहीं वरन् पूजन के लिये है।

साधना-सत्संग, दिल्ली
दिनांक- 30-3-53
समय प्रातः 10.30 बजे
❑❑

साधना में ईश्वर दर्शन का अनुभव

भगवान के रूप की कल्पना भिन्न-भिन्न साधकों में भिन्न-भिन्न होती है। वैष्णव लोग नाम के साथ भगवान के– श्रीकृष्ण, विष्णु आदि रूपों की आराधना करते हैं। उनके सामने यदि अभिमत रूप आ जाये तो वह इसे भगवत्-दर्शन मानते हैं और बात भी ठीक है। ये रूप भगवान के संकल्प से स्फुरित होते हैं। जो साधक भगवान को निराकार मानते हैं, उनके लिये भगवान की अभिव्यक्ति में विश्वास करना ज़रा कठिन होता है, क्योंकि यदि भगवान प्रकट हो, तो किस रूप में ?

साधक को ध्यान में कई रूप आते हैं। उसे यह समझना चाहिये कि यह रूप परमात्मा के संकल्प से प्रकट होते हैं और यह उसी की अभिव्यक्ति है–जैसे धुआं, कोहरा, सूर्य, अग्नि, चांद, दिव्य-ज्योति, पवन आदि। कई बार अवतारों के दर्शनों और उन द्वारा उत्साह लिया जाता है। शाब्दिक अभिव्यक्ति भी किसी-किसी साधक को होती है। इसी को इलहाम भी कहते हैं। आदेश भी इसी को कहते हैं। शान्त अवस्था अथवा लय अवस्था, सुन्नावस्था-निराकार उपासकों को यह अवस्था भी आती है। इसमें चेतनता बनी रहती है। शब्द के साथ रूप का स्वाभाविक सम्बन्ध है। शब्द के उच्चारण के साथ ही सूक्ष्म लोक में एक रूप बन जाता है और इसीलिये भगवान के संकल्प के साथ ही उनके रूप की अभिव्यक्ति होती है।

भगवान की समीपता की भी अनुभूति हुआ करती है। प्रतीत होता है कि भगवान हमारे पास है, हमारे अन्दर है। यह नहीं समझना चाहिये कि मेरे अन्दर कोई विशेष चिन्ह पैदा नहीं हुये तो मेरी अवस्था नीची है। एक साधक के अन्दर सारी बातें पैदा नहीं होतीं और न ही हर एक साधक के अन्दर एक ही प्रकार की बातें पैदा होती हैं।

साधना-सत्संग होशियारपुर, दिनांक 29.12.1940 ❑❑

साधना में विश्वास

हमारा यह साधना का सिलसिला, विश्वास की चीज़ है और करने की चीज़ है। अटल विश्वास करने से ही वास्तव में कृपा का अवतरण होता है। यह भूल है कि केवल किसी का परिश्रम ही ज़्यादा कुछ करता है। यह तो मन्त्र के बल से ही अवतरण होता है। यह मन्त्र बल का अवतरण कहा। यह तो विश्वास की बात है, यह दलील का क्षेत्र नहीं है।

थियोसोफिकल सोसाईटी ने चाहा कि इस लोक के अधिष्ठात्री देवता को, एक बालक में स्थापित करने का प्रयास किया जाये। इस बड़ी शक्ति को अवतरित करने के लिये, गोपाल नामक एक बालक को माध्यम बनाना चाहा। यह व्यर्थ था और एक अभद्र कल्पना थी। भला इतनी बड़ी शक्ति का अवतरण एक निश्चित व्यक्ति में क्यों हो ? यह आप ही कृपा से हो जाये, तो दूसरी बात है। मद्रास में एक महात्मा हुए हैं– श्री अरविन्द, जिन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। मेरे कई मित्र उन पर लट्टू हो जाते थे और कहते थे कि अरविन्द जी बड़े इन्टेलैक्चुअल हैं। किन्तु योग तो प्रैक्टिकल है, इन्टेलैक्चुअल नहीं। विश्वास के बिना मनुष्य पढ़-लिख कर भी कई बार भ्रम में, एक भोंदू व्यक्ति से भी गया गुजरा हो जाता है।

कर्म साथ चलते हैं। यह सोचना कि जब रमण महात्मा चोट लगने पर दो महीने तक अच्छे नहीं हुये, तो वे भक्त नहीं थे–गलत है। यह तो कर्मवश बात हुई, प्रकृति परिवर्तन का अनुमान इससे नहीं लगाना चाहिये। मुझे रमण जी की आत्मोन्नति में तनिक भी सन्देह नहीं और न ही संशय करने का विचार। विश्वास के साथ कर्म करने की बात है। साधक में यह भावना दृढ़ होनी चाहिये कि नाम में नामी है। यदि वह इसमें ढीला है, तो फिर एक छोड़ा तो दूसरे को भी छोड़े। फिर उसका– उत्तरदायित्व नहीं लिया जाता।

साधकों का तो अपना विश्वास शुद्ध होना चाहिये। मेरे कई मित्र मैस्मेरिज्म द्वारा आत्माओं को बुलाते थे। यदि एक आत्मा आये, तो मेज दो बार हिलता और दूसरी आत्मा आये, तो तीन बार। फिर एक बार सारा परिवार बीमार पड़ गया। तो आत्माओं को बुलाने से अवान्छनीय आत्मायें भी आने लग सकती हैं। मैंने उन मित्रों को आत्माओं को बुलाने से मना किया। मैस्मेरिज्म तो जुआ खेलने की भांति है। यदि घर में जुआ खेला जाये, तो फिर जुआरी घर पर भी आने लगेंगे। बुलाने पर अच्छी आत्मायें बार-बार क्यों आयें ? हो सकता है बुरी आ जावें, जो न जाने क्या संस्कार छोड़ जावें ? मैंने एक बार पंजाब के एक राजनीतिज्ञ के लिये प्रार्थना करने की सोची, किन्तु जब प्रार्थना करने के लिये घुटने टेके, तो पता चला कि कोई आवश्यकता नहीं, वह समाप्त हो गया। विभाजन के पश्चात् फिर दो सज्जनों के लिये प्रार्थना करने की कल्पना की, तो एक के लिये प्रतीत हुआ कि कोई आवश्यकता नहीं। दूसरे के लिये प्रतीत हुआ कि सात दिन के बाद फिर विचार करना। जो साधक विश्वास ढीला करता है और उसमें थोड़ा भी अन्तर करता है, वह ठीक नहीं। यह विश्वास होना चाहिये कि नाम में नामी है और नाम द्वारा हम उस का आराधन करते हैं। ऐसा विश्वास लाभदायक होता है।

जिस देवता का जाप होता है, वह दूर नहीं होता। वह तो शब्द से अधिक समीप होता है। सर्वव्यापक है–ऐसा विचार करने से उसकी विभूति साधक में बसने लगती है। साधक को माया अपने आप पैदा नहीं करनी चाहिये।

पतंजलि ने चार प्रकार की सिद्धि वर्णन की है– (1) मंत्र से, (2) औषधि से, (3) जन्म से और (4) समाधि से। समाधि और मुक्ति में ब्रह्म का मिलाप होता है। यह सिद्ध ने अनुभव की बात कही। जो परमाणु विद्या के ज्ञाता हैं, वे जानते हैं कि परमाणु में कितनी शक्ति है ? दूसरों को यदि विधि नहीं आती (परमाणु की शक्ति जानने की), तो यह अर्थ नहीं कि परमाणु में शक्ति नहीं। इसी प्रकार योग के ज्ञाता का भी विश्वास करना चाहिये। जिन सन्तों ने कोई मत आदि नहीं चलाया उनकी बात ठीक और पते की होती है।

यह अच्छी प्रकार से समझो कि मन्त्र में देवता विद्यमान है। राम-नाम इसका (राम का) मन्दिर है। यह बात अपने आगे रखनी चाहिये और इसका पूर्ण विश्वास और दृढ़ निश्चय रखना चाहिये।

प्रथम साधना-सत्संग, स्वामी जी के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में
कमला नगर, दिल्ली,
दिनांक 27.3.1953,
समय प्रातः 10.30 बजे

❑❑

साधना में सहायक कुछ बातें

नित्य के जीवन में कई समय ऐसे आते हैं, जब हम कुछ काम नहीं करते होते– जैसे एक जगह से दूसरी जगह जाने के समय, रात को बिस्तर पर पड़े हुए नींद न आने के समय, किसी की प्रतीक्षा करने के समय, इत्यादि। ऐसे समय को आलस्य में और यूं ही वृथा नहीं खोना चाहिये। ऐसे समय में भगवान के नाम का जप करना चाहिये।

वैसे तो प्रत्येक समय परमेश्वर की समीपता अनुभव करनी चाहिये, पर दिन में किसी-किसी समय विशेष रूप से उनकी विद्यमानता अनुभव करनी चाहिये। ऐसा प्रतीत हो कि वह हमारे सामने विराजमान है और हमारा पथ-प्रदर्शन कर रहा है।

प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिये, चाहे वह सन्तों और भक्तों के कहे हुए शब्दों में हो अथवा अपने शब्दों में। प्रार्थना भावमय हो और बहुत लम्बी न हो। उसमें प्रभु की प्रशंसा हो और उन की महानता का वर्णन हो, उनसे हमारा हाथ पकड़ कर, हमें पथ-प्रदर्शन करने के लिये भावमय निवेदन हो।

हम में प्रभु पर और अपने साधन पर निर्भरता हो। यह विश्वास हो कि हम में जो नाम का बीज बोया हुआ है, वह स्वयं हमें लक्ष्य स्थान पर ले जायेगा। इस नाम साधन को कोई छोटा साधन नहीं समझना चाहिये। ऐसा अनुभव करना कि स्वयं ईश्वरीय-शक्ति हम में काम कर रही है।

वैसे तो हर समय प्रभुमय वृत्ति होनी चाहिये, पर दिन में नियत समय पर विशेष रूप से ध्यान में बैठना चाहिये। उस समय ऐसा अनुभव करना कि ईश्वर की सत्ता का हमारी सत्ता से साम्य हो रहा है।

आध्यात्मिक जगत् में देश और काल बाधित नहीं होते। कठिन समय आने पर हार्दिक प्रार्थना करने से हम संतों और महात्माओं से, चाहे वे स्थूल दृष्टि से हम से कितनी भी दूर हों, ऐसे ही सहायता प्राप्त कर सकते हैं

जैसे वे हमारे सामने बैठे हों। यह सहायता हृदय में प्रेरणा के रूप में होती है। कभी-कभी प्रत्यक्ष रूप से आकार भी दिखाई दे जाता है। इसके अतिरिक्त आकाश में अनेक लोक लोकान्तरों में सूक्ष्म रूप में सिद्ध पुरुष तथा मुक्त आत्मायें विचरती रहती हैं। उनसे भी साधन-मार्ग में उनके सत्संकल्पों द्वारा हमें सहायता पहुंचती रहती है।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 26.12.1940

❑❑

साधना में बाधक मुख्य बातें

संशय मनुष्य का बहुत बड़ा शत्रु है। यह साधना में बहुत हानि करता है। इसको हृदय में बिल्कुल स्थान नहीं देना चाहिये। यह अध्यात्म-मार्ग का बड़ा भारी रोग है। इससे बचना चाहिये। संशय का स्वरूप यह है कि साधन में विश्वास न होना, दूसरों से कोई और साधन सुनकर या पुस्तकों में अन्य साधनों की प्रशंसा पढ़कर, अपने साधन के सम्बन्ध में यह विचार होना कि पता नहीं यह ठीक है या दूसरे साधन ठीक हैं, इत्यादि, इत्यादि। एक बार एक साधन ग्रहण करके उसको किसी भी मूल्य पर नहीं छोड़ना चाहिये। जो कुछ सोचना है, उस साधन को लेने से पहले सोच लें। जब ले लिया तब जीवन की बाजी लगा कर भी उसको निभाना चाहिये।

संशय का स्वरूप यह है कि यह बात ठीक है या नहीं, मैं इस काम को करूं या न करुँ, मैं ने जो नाम धारण किया है, वह मुझे मुक्ति दिलायेगा या कोई अन्य नाम, यथा– गोविंद, हरि आदि। संशय मनुष्य को निर्णय पर नहीं पहुंचने देता। इस जगह यह लिखा है, उस जगह यह लिखा है। प्रमाण-वृत्ति संशय को पैदा करने वाली है। जब तक प्रमाण-वृत्ति को न जीत लो, उन्नति नहीं कर सकते। संशय या भ्रम-वृत्ति शत्रु के समान है, जो हमारे रास्ते में बाधा बनकर उपस्थित होती है। जहां तक हो निःसंशय होकर किसी काम में पूरे दिल से कूदना चाहिये। ऐसा करने से हानि नहीं होती। पहले किसी पुरुष या वस्तु की जांच कर लेनी चाहिये। पर जब एक बार जांच कर ली और उसमें कूद पड़े, तो फिर संकोच से नहीं, पूरे दिल से कूदना चाहिये। हिन्दू धर्म में तो इस दुनिया के सम्बन्ध भी टूटने वाले नहीं हैं और जब भगवान से सम्बन्ध जोड़ लिया, तो इस पर तो और भी दृढ़ता से स्थिर रहना चाहिये।

आध्यात्मिक-मार्ग में संशय बहुत बुरी चीज़ है और है बड़ी प्रबल। एक बार पैदा हो जाने पर नस-नस को हिला देती है। यह शत्रु बनकर हर समय हृदय में बैठी रहती है। यदि नाम से सम्बन्ध जोड़ कर उसे तोड़ दिया जाये, तो

फिर दूसरी जगह भी शांति नहीं मिलती। भ्रम बना ही रहता है। इसलिये नाम की शक्ति में कदापि संशय नहीं करना चाहिये।

मनुष्य जैसा संग करता है, वैसा ही हो जाता है। भले पुरुषों के संग से मनुष्य भला बनता है और बुरे पुरुषों के संग से मनुष्य बुरा बनता है। संग का मनुष्य के जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इसलिये कुसंग से सदा बचना चाहिये।

साधक को चाहे वह ब्रह्मचारी हो अथवा गृहस्थ, चारित्रिक (Sexual) पवित्रता रखनी चाहिये।

हर प्रकार की नशे की चीज़ें छोड़नी चाहियें।

अपने साधन में दूसरे किसी साधन को नहीं मिलाना चाहिये। इससे साधन की सिद्धि में बाधा होती है।

साधक को अपने आप में तथा भगवान में अविश्वास नहीं होना चाहिये। यह कभी विचार नहीं करना चाहिये कि अमुक काम मैं नहीं कर सकूंगा। अपितु यह सोचना चाहिये कि यदि एक काम को दूसरा कर सकता है, तो मैं भी कर सकता हूँ।

कोई भी कारण हो जाये साधन में अन्तर नहीं डालना चाहिये। अन्तर डालने का अर्थ है– साधन को गौण मानना और भगवान की अवज्ञा करना। इससे साधन में उन्नति रुक जाती है।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 27.12.1940



नाम उपासना में संशय बाधक

राम-नाम का आराधन पूर्ण विश्वास, भावना तथा निश्चय सहित करना चाहिये। नाम की बड़ी महिमा है। यदि इस का आराधन भावना, श्रद्धा तथा निश्चय सहित, संशय रहित होकर किया जाये तो बहुत अधिक लाभ होता है।

कुसंग संशय को जन्म देता है तथा इसे बढ़ाता है। यह एक पशु या कीड़े या ऐसी ही किसी अन्य वस्तु के समान है, जो खेती को हानि पहुँचाते हैं। संशय मनुष्य को दुर्बल बनाता है। एक डॉक्टर को संशय हुआ, कि एक विशालकाय परछाईं उसकी ओर आ रही है, किन्तु वह उस से डरा नहीं। साहसपूर्वक अपने में दुर्बलता नहीं आने दी।

लोग भगवान के नामों से मिलते हुए नाम अपने बच्चों के रखते हैं, यह अच्छा नहीं है। इस से भगवान के उन नामों की महिमा घट जाती है।

भावनावान तथा निश्चयवान के लिये राम-नाम की महानता अपार है। दूसरों के लिये तो यह केवल एक शब्द ही है। बहुत सी चीज़ें हैं, जो आपकी भावना तथा निश्चय को दुर्बल बनाती हैं, किन्तु आप को चाहिये कि आप इस महान नाम की खेती की रक्षा करें तथा गधों द्वारा इस नामरूपी खेती को नष्ट न होने दें। आप को यह नहीं समझना चाहिये कि यदि आपका कोई अपना खेती को बिना हानि पहुंचाये उसमें से गुजर गया, तो गधे भी इसी प्रकार कोई हानि पहुँचाये बिना चले जायेंगे। अर्थात् कुसंग आदि से बचो। संशय आदि से नामरूपी खेती की रक्षा करो।

साधना-सत्संग में हम केवल उन्हीं को आने देते हैं, जिन्होंने नाम लिया हो। यह एक कहानी के समान साधारण जनता में कहने की बातें नहीं हैं।

इसलिये उन लोगों को इस में सम्मिलित होने को प्रोत्साहित नहीं किया जाता।

सारांश यह है कि पूर्ण लाभ उठाने के लिये पूर्ण भावना, निश्चय और श्रद्धा होनी चाहिये तथा संशय और कुसंग आदि से, जो आप की श्रद्धा को दुर्बल बनावें, बचना चाहिये।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 25.12.48,
समय अपराह्न 3.00 बजे

❑❑

असफलता का कारण खोजो

जो बातें साधक को धारण करनी हैं, वे ये कि साधक अपने आपको निराश न बनाये। समझना तो यह चाहिये कि मैं सफल न हुआ तो कारण इसका क्या है ? कारण को खोजना चाहिये। खोजने से पता चलेगा कि उसके करने में या उसमें कोई दोष है। यदि न खोजे तो दूसरा कोई उसके लिये क्या करे ? अपने कर्म का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना चाहिये। यदि आदमी अशांत रहता है और अशांति का कारण ढूंढने लगे, तो यह पता चल जाता है। कुछ दुःख तो मानस-दुर्गुण के कारण हैं, कुछ क्या, बहुत से कल्पित हैं (अनेकों दुःख तो मानस कल्पना-जनित हैं)।

यदि वह राम-दरबार में बैठे। जिसका आराधन हम करते हैं, वह वहाँ विद्यमान होता है। इसीलिये राम-दरबार हुआ और कहा गया। साधना में मन न लगा, तो इसमें यह देखना चाहिये कि क्यों नहीं लगा, इसीलिये कारण खोजना चाहिये। यदि दूसरे विचार ही आयें, तो वे कल्पना से ही आते हैं। कोई और तो अन्दर बैठा है नहीं। आप ही तो कर रहे हैं। मन को क्यों दोष देना ? मनन करता है तो मनुष्य होता है। गर्मी-सर्दी निवारण के वस्त्र तो उसके पास भी हैं और उसके बंधुओं के पास भी। पर ऐसी तड़क-भड़क वाले नहीं जैसे दूसरों के पास देखे। इस प्रकार सोचना अशांति उत्पन्न करता है। हम कहते हैं कि माया धोखा देती है। अपनी जिम्मेवारी नहीं लेते। इसका भी सरल उपाय यह है कि भगवन्नाम का अधिक जाप करें कि भगवान मुझे शान्ति दो।

पाठ लड़के को याद नहीं हुआ, तो कारण यह कि वह नावल जो पढ़ता रहा। वह प्रायश्चित करे या संशोधन करे तो पाठ याद हो जाये और फिर सब ठीक हो जाये। जिन के पास कम समय है, वे भटकते भी कम हैं। आवारा एक बार चण्डाल-चौकड़ी में बैठा, तो फिर भटकता ही रहता है। उसको राम ही सुधारे। अधिक जप करो, अधिक पश्चाताप करो कि अशान्ति का कारण ये क्यों न दूर करें ? फिर अभ्यास से हो ही जाता है। कहते हैं

कोई कितने चिर में पण्डित बनता है ? यदि शीघ्र कोई बात न आवे, तो समझना चाहिये कि अभ्यास से हो जावेगा। लोग तो कहते हैं, इस जन्म में न सही, फिर अगले में सही। यह ठीक है कि कारण समझना चाहिये और फिर उसे दूर करने का उपाय करना चाहिये। कलम ठीक नहीं लिखती, तो आप समझ जाते हैं कि स्याही नहीं या निब खराब है। रेडियो खराब हो, उसमें आवाज़ नहीं आती, तो आप समझते हैं कि उसमें खराबी है। यदि आप में राम धुन नहीं आती, तो सोचें कि आप के यन्त्र में कुछ खराबी है। बिगड़ी मोटर में दो दिन बैठे रहो, तो भी वहीं रहोगे। मेरी तो यह भावना है– मेरे जैसे आदमियों का निश्चय है कि आदमी आराधन करता है, तो फल आता है। पर आराधना करने वाले को अपनी कमी का भेद समझने की चेष्टा करनी चाहिये। आप, हम में से कुछ नावल पढ़ते दिन बिता देते हैं। आपने कभी भक्ति के ग्रंथ पढ़ते-पढ़ते भी दिन बिताये हैं ? तो फिर उनके सिनेमा के संस्कार कैसे ठीक हो जावें ? कैसे भूल जावें ? किसी-किसी का ठीक हो जाता है। यह आश्चर्य की बात है। ऐसा राम-कृपा से भी हो जाये, यदि न होवे तो समझे वासना का कोई प्रबल संस्कार है।

जब नचिकेता को निश्चय हो गया, तब उसके पिता ने उसे नाम दिया तो वह समाधिस्थ हो गया। उसके पिता ने न जाने किस-किस को कहा होगा, पर किसी को समाधि का लाभ नहीं हुआ। जैसे दलदार शीशे में ग्राह्य-शक्ति होती है, वैसे ही योग्यता का भी शीशा बनाओ। भक्ति के ग्रंथ पढ़ना, प्रेम भरे प्रभु के गीत गाना, ये योग्यता के साधन हैं। कई बार प्रतीत नहीं होता। आन्तरिक चेतना ठीक चलती है, पर बाहर प्रतीत होने में नहीं आती।

पहले कहीं नदियां थीं, वहां अब रेत के पहाड़ हैं, पर कोई नीचा स्थान आवे, तो नदियां फिर बहती हैं। नीचे भी नदियां बहती हैं। मैं (अन्डरग्राउन्ड फ्लो ऑफ वाटर) इसके विषय में अधिक नहीं जानता, पर जो जाना वह बताता हूँ। नीचे का जो इतना पानी ट्यूबवैल आदि में आ गया तो लोग कहते हैं समुद्र से आ गया, पर यह तो मीठा और समुद्र का खारा। नीचे भी पानी है। हिमालय पर जो इतना पानी बरसता है, वह नीचे भी नदियों के

रूप में चलता है। नीचे की नदी मालूम नहीं होती। तो इसी प्रकार बाहर प्रतीत न हो, पर अन्त समय सुधर जाता है। हो सकता है कि मेरे मन की धरती भी ऐसी हो, जिसमें कृपा रूपी जल ऊपर न आ सके पर जो सुन्न होने की बात है, यह तो सोने से भी हो जाता है। पांच घण्टे न सोये छः घण्टे सो गये, सुन्न होना तो सोने के समान है। पांच घण्टे सोये और एक घण्टा सुन्न रहना तो छः घण्टे सोने के ही समान है। मन में चेतनता हो और प्रभु का नाम हो, भक्ति तो यही है। भक्ति के गीत गाये, सुन कर मग्न हो जाये। बाकी रहा सो जाना– यह तो क्लोरोफार्म सुंघा कर भी हो जाता है। स्थानीय इन्जेक्शन भी ऐसा कर देते हैं कि अंग सुन्न हो जाये। यह क्या माँगना ? माँगना तो यह कि राम में प्रीति हो।

साधना-सत्संग नांगल देवत,
दिनांक 30.12.1955,
समय प्रातः 11.00 बजे

❑❑

साधन में विरोधी शक्तियाँ एवम् उन्हें जीतने के उपाय

1

साधन में जब कोई बढ़ने लगता है, तो प्रकृति विरोध करती है। प्रकृति बाहर की वस्तु में भी होती है और अपने संस्कारों की बनी हुई भी होती है। ये संस्कार बहुत प्रबल होते हैं और जीने के लिये हठ करते हैं। इनसे दबना नहीं चाहिये, अपितु इनको दबा देना चाहिये। इनसे दबने पर ये जी जायेंगे और हमें गिरा देंगे। ये कई वर्षों से और अनेक जन्मों से चले आते हैं और हम पर अधिकार जमाये हुये हैं। ये कई रूपों में भय से, प्रलोभन से और मोह से हमें गिराने और बहकाने की कोशिश करते हैं। पर हमें इनका मुकाबला करना चाहिये और अपने साधन में डटे रहना चाहिये। ऐसा होने से वे कमज़ोर होते जायेंगे और हम अपने साधन में दृढ़ होते जायेंगे। कैसी भी अवस्था हो, साधक को कभी चलायमान नहीं होना चाहिये।

मोह का संस्कार भी बड़ा भयंकर होता है। मोह कई प्रकार का होता है। धन का मोह, तन का मोह, सम्बन्धियों का मोह आदि। यह साधक के पांवों को जकड़ लेता है। उसको आगे बढ़ने नहीं देता। यह उसको ध्यान में, भजन में, आराधन में रोकता है, पर साधक तो सूरमा होता है। उसको इसे जीतना चाहिये। माया बहुत बलवती होती है। बड़े-बड़े ऋषि मुनियों को चलायमान कर देती है। शेर और चीते को जीत लेना सुगम है, दुनिया को जीत लेना सुगम है, पर माया को जीतना बहुत कठिन है। इसको जीतना बड़े सूरमाओं का काम है। इसको जीतना चाहिये, ध्येय के लिये।

पर जहाँ विरोधी शक्तियां काम करती हैं, वहां भगवत्-कृपा भी सदा सहायता करती है। जहाँ शैतान (दैत्य) आता है, वहाँ खुदा (देव) भी आता है। अशुभ के साथ शुभ भी आया करता है। कभी-कभी अपना इष्ट भी आया

करता है। भगवत्-कृपा की अनुभूति साधक को कई प्रकार से होती है। कभी-कभी शाब्दिक आशीर्वाद भी होता है। यह कभी एक बार भी हो जाये, तो साधक हिमालय के समान दृढ़ हो जाता है। कई बार साधक को विलक्षण अनुभव होते हैं, पर वह उनके महत्व को नहीं समझता और उनको यूं ही समझकर उनकी अवहेलना कर देता है। इससे उसकी उन्नति रुक जाती है। उसका नीचे चले जाना भी संभव है। फिर जो बात बनी होती है, वह नहीं रहती। दुबारा उसके लिये बहुत प्रयत्न करना पड़ता है। इसीलिये अपने मार्ग-दर्शक से मिलते रहना चाहिये और उसको अपनी आन्तरिक स्थिति से परिचित कराते रहना चाहिये। इसीलिये महापुरुष सत्संग का माहात्म्य मानते आये हैं।

अपनी जागृति का निश्चय होना चाहिये। यह मार्ग निश्चय व विश्वास का मार्ग है। कोई लाख कहकर इसके विरुद्ध बहकावे, साधक को, अपना आप स्थिर रखना चाहिये। साधक जब मैदानों में जाये, सबकी सुने, पर अपने आप को खोये नहीं। उसका निश्चय बलवान होना चाहिये।

साधना–सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 27.12.1946

2

माया रुकावट बनकर साधक के सामने आ जाती है। पर माया के छुपे हुये संस्कार उदासीनता व मोह पैदा करते हैं। जन्म जन्मान्तरों से बनी हुई अपनी इस प्रवृत्तिमयी अवस्था से अभ्यासी का संग्राम होता है। लड़ाई का ढंग भी अभ्यासी का निराला है। एक ढंग मुकाबला करने का यह है कि विरोधी शक्तियों को कुचल दिया जाये, उनका हनन कर दिया जाये। यह ढंग किसी समय ही सफल होता है।

एक दूसरा उपाय है, जो अपने घर-घर में घटता है। जब लड़का या भाई बात नहीं मानता, उस समय उसको हनन कर देने का विचार नहीं आता, अपितु समझाना होता है।

जो संकल्प-विकल्प उठें, उन्हें आत्मा द्वारा स्फुरित न सोचें, बल्कि उनकी उपेक्षा करें। उनके सम्बन्ध में यह समझना कि मैं ही उन्हें सोच रहा हूँ, उनको

पुनः सजीव करना है। उनकी उपेक्षा करने से अपना बल बढ़ता है और ऐसे विचारों और संस्कारों का बल कम होता चला जाता है। हम केवल उनके द्रष्टा बनें, उनके चिन्तन करने वाले न बनें।

ध्यान में बैठे हुये बाहर की आवाज़ का सुनाई देना ध्यान की त्रुटि नहीं है, न सुनाई देना तो सुन्न हो जाना है। सुन्न होकर, बेजान होता है। इसलिये साधक का लक्ष्य सुन्न होना नहीं है। सुन्नता की नींद तो कितने ही चीतों को हिमस्थलों में प्राप्त है। इसका भगवद्-भक्ति में कोई महत्व नहीं है। हाँ, लय दूसरी चीज़ है। देश और काल का ज्ञान न रहना, यह लय अवस्था है। यह आध्यात्मिक चीज़ है।

जब कपड़ा धोते हैं, तो पहले उसकी मैल बाहर उबल पड़ती है। ऐसे ही कभी-कभी पुराने संस्कार, अभ्यास के समय उभरा करते हैं। अभ्यासी को इससे घबराना नहीं चाहिये। ये बुरे विचार निकल जाने के लिये, मिट जाने के लिये ही आते हैं। इन्हें रास्ता देना चाहिये। उनका पल्ला नहीं पकड़ना चाहिये। पल्ला पकड़ने से वे पुनर्जीवित हो जाते हैं और मुकाबला करने लग जाते हैं।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 28.12.1946



उन्नति चिन्ह

साधना में कठिनाइयां एवम् उन्नति चिन्ह

पहली कठिनाई आसन की है। इस सहज योग में आसन चाहे कोई भी हो, यदि एक आसन में थक जाये, तो आसन बदला भी जा सकता है। टागें लम्बी करें या सहारा लेकर भी बैठा जा सकता है। जब अभ्यास दृढ़ हो जाता है, तो शक्ति प्रसार की आवश्यकतानुसार अभ्यासी की इच्छा के बिना ही आसन स्वयं बदलने लगता है। पर यह सब में नहीं होता।

दूसरी कठिनाई विचारों के बिखरने की है। ध्यान के समय मन में जो संकल्प-विकल्प आते हैं, वह मन की व्यवहारिक अवस्था की छाया मात्र होते हैं। उनको आत्मा में नहीं मानना चाहिये। अपने आपको अलग साक्षीरूप में मानना चाहिये और उन विचारों में अपने आप को जोड़ना नहीं चाहिये। यह विचार-तरंग टूटे हुये होते हैं, किसी सिलसिलेवार नहीं होते। आत्मा सिलसिलेवार सोचता है। इसलिये आत्मा को उनसे अलग मानना चाहिये। जब अभ्यास दृढ़ हो जाता है, तो यह विचार तरंग भी लय (शान्त) हो जाते हैं।

अब अभ्यास में उन्नति के चिन्ह् वर्णन किये जाते हैं– नाम का स्फुरित होना अथवा अजपा जाप– इस योग में नाम से शक्ति जगाई जाती है। कई बार यह होता है कि बिना किसी प्रयत्न या इच्छा के नाम स्वयं कभी मुख में, कभी हृदय में, कभी किसी और अंग में स्फुरित हो जाता है। तब साधक को यह समझना चाहिये कि यह नाम मेरे व्यवहारिक मन में नहीं जपा जा रहा, वरन् स्वयं अन्दर ही अन्दर गूंज रहा है। यह बड़ी ऊंची अवस्था है। इस अवस्था के आने पर साधक को प्राप्ति से गिरने का भय नहीं रहता। इसे सिद्ध अवस्था भी कह सकते हैं, क्योंकि साधक का काम नाम से समता पैदा करना ही है।

अपने स्वरूप में स्थित हो जाने को एकाग्रता कहते हैं। इसी का नाम समाधि है। इसमें चेतनता बनी रहती है। सुन्न हो जाना समाधि नहीं। यह तो निद्रा जैसी ही एक अवस्था है। काम-काज करते, चलते-फिरते, खाते-पीते भी यदि साधक में नाम स्फुरित हो आये और वृत्तियां एकाग्र हो जायें, तो हम उसी को समाधि कह सकते हैं। यह आवश्यक नहीं कि आसन लगाकर आंखें बंद करके ही बैठें, तो समाधि होती है।

नाद भी एक चिन्ह है। पहले यह ज़रा स्थूल होता है और फिर अपने आप ही सूक्ष्म होता चला जाता है। नाद आत्मगत भी होता है और प्रवृत्तिगत भी। नाद ताल सहित होता है। नाद की मधुरता को कौन कहे ? परमाणु में भी नाद होता होगा। जगत् के कण-कण में सूर्य की किरणों से जो हलचल पैदा होती है, वह और भी अधिक मधुर और संगीतमयी होगी। इन नादों में बड़ी मोहिनी शक्ति होती है, जो मन को मस्त कर देती है।

नाद जो आत्मगत होते हैं, उनके अन्दर गूंज होती है। नाद सब समाधियों से परे की वस्तु होती है। यह इन कानों से सुनाई नहीं देता। इसे अजपा जाप कहते हैं अर्थात् जो जिह्वा से नहीं जपा जाता। यह आत्मगत नाद है। नाद होने में ऊपर से शब्द भी उतरा करते हैं। इसलिये नाद बड़ी रहस्यमयी चीज़ है। इसमें अपने भी शब्द होते हैं और प्राकृतिक भी और ऊपर से शब्द आया करते हैं। मस्त भंवर की या गुफा की गूंज सी आवाज़ पैदा होती है। बड़ी मधुर सुरीली आवाज़ होती है और शब्द सूक्ष्म से सूक्ष्म बनता चला जाता है। पतंजलि इन्हें प्रवृत्तियों का नाम देते हैं और कहते हैं कि इनसे शांति प्राप्त होती है। ऐसी प्रवृत्तियां पैदा होने से दृढ़ता बढ़ जाती है और मन की स्थिति बंध जाती है।

ऐसे ही प्रकाश का आना भी एक चिन्ह है। ऋषियों ने कहा है 'ब्रह्मलोक प्रकाशमय' है। यह भी साधारण चीज़ नहीं है। बड़ा अच्छा चिन्ह है। यदि यह स्थिति गुरु-कृपा से सहज में ही प्राप्त हो जाये, तो इसका बहुत आदर करना चाहिये।

ध्यान में बैठे हुए बंद आंखों के सामने प्रकाश का आना, यह एक विलक्षण बात है। इस का अर्थ यह है कि उस समय साधक इन्द्रियों, मन से परे की अवस्था में चला जाता है, इससे उसकी कुण्डलिनी शक्ति जाग पड़ती है।

प्रकाश के अतिरिक्त और भी कई प्रकार के अनुभव साधकों को होते हैं। किसी को ऐसा प्रतीत होता है कि उनका आसन ज़मीन से ऊपर उठ पड़ा है, किसी को ऐसा कि वे आकाश में बैठे हैं, किसी को ऐसा कि वे शरीर से बाहर हैं, किसी को कम्प होता है, इत्यादि। यह सब अच्छे लक्षण हैं और साधन में उन्नति के सूचक हैं। इनसे घबराना व भय बिल्कुल नहीं करना चाहिये। किसी के प्राण तेज चलने लग पड़ते हैं और किसी को अपनी भावना के अनुसार अपने इष्टदेवों की मूर्तियां भी दिखाई देती हैं। यह आवश्यक नहीं कि यह सब चिन्ह हरेक में प्रकट हों।

शरीर में शिथिलता आ जाना एक बहुत अच्छा चिन्ह है। शरीर में बिजली सी दौड़ जाना अथवा कपकपी होना– यह भी शक्ति जागने का चिन्ह है। इससे शक्ति की धारा सहस्रार की ओर जाती है। वहां पर अभ्यास की तीव्रता से इसका ब्रह्म से ऐक्य होता है।

ऊपर के चिन्हों में से किसी में एक, किसी में दो, किसी में तीन और किसी में सब चिन्ह प्रकट होते हैं। पर जिनके कम प्रकट होते हैं, वे अपने आपको तुच्छ नहीं मानें। यह आवश्यक नहीं कि सब में सब चिन्ह ही प्रकट हों। ऐसे भी हैं, जिनमें कोई चिन्ह प्रकट नहीं होता, पर उनकी एकाग्रता हो जाती है।

यदि साधक शक्ति के जागने के प्रकारों (चिन्हों) को मुख्य बात माने, तो वह अधिक उन्नति कर जाता है। यदि गौण बात माने, तो उन्नति रुक जाती है।

आत्मा का नाद (नाम) जब कहीं अन्दर स्फुरित हो जावे और साधक, साक्षी रूप से उसे सुने तो आनन्द, रस, सतालता व मिठास का अनुभव होता है। आत्मा के कई सूक्ष्म स्तर हैं। वह उन सब पर पृथक-पृथक बोल सकता है।

वाणी के चार भागों में से तीन भाग गुफा में रहते हैं। चौथे को मनुष्य बोलता है। यह चौथा पद वैखरी वाणी कहलाता है। पहले को परा, दूसरे

को पश्यन्ती और तीसरे को मध्यमा कहते हैं। परा और पश्यन्ती को ज्ञानी जानते हैं। सूक्ष्म शब्द परा शब्द है। यह अन्दर ही स्फुरित होता है। यह आत्मा की वाणी होती है। जगे हुए पुरुषों का आत्मा बोला करता है अर्थात् अपने आप अन्दर से शब्द हुआ करता है। मन की शक्ति नहीं, आत्म शक्ति चलाया करती है। आत्मा में उत्पादिनी शक्ति है। परा-वाणी मन के चिन्तन से परे है। परम-पद से, आत्मा से भी परा-वाणी ही हुआ करती है। शब्द हमारे भीतर उत्पन्न हो रहा हो, हम उसे सुन रहे हों, एक तार चलती अनुभव हो, तो यह परा-वाणी से हुआ करता है। यह कई साधुओं का अनुभव है। मानो यह मन या वाणी का व्यापार नहीं, यह आत्मा जप कर रहा होता है। सूक्ष्म लोक में आत्मा चला गया, तो भगवत् सम्बन्ध हुआ।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 28.12.1940

❑❑

'स्वात्म-प्रतीति

अपने आप की प्रतीति होने को 'स्वात्म-प्रतीति' कहते हैं। अपने अस्तित्व को ऊंचा करना साधना में लाभदायक है। आत्मा को नीचा नहीं करना चाहिये। यह उसका अपमान है और इससे आत्मा दब जाता है। यदि पहले सफलता न हो, तो अपने आपको दुर्बल नहीं समझना चाहिये। मनु महाराज कहते हैं कि अन्त समय तक सफलता की आशा करते रहना चाहिये। आत्मा के अस्तित्व में पूर्ण विश्वास होना चाहिये। विश्वास और दृढ़ धारणा से ही आत्मा अभिव्यक्त होता है। आत्मा की अभिव्यक्ति ज्ञाता और ज्ञेय भाव से नहीं होती, अपितु ऐसी प्रतीति होती है कि मैं हूँ। यह अभिव्यक्ति ऐसे भी होती है, जैसे मैं आकाश में हूँ, मेरी देह नहीं है, वह मेरी देह पड़ी है, मैं देह से भिन्न हूँ, मेरे हाथ-पांव बड़े बोझल हो गये हैं, मेरा शरीर सुन्न हो रहा है, मेरा शरीर छोटा-सा हो गया है, मेरा मन बड़ा विशाल है, इत्यादि, इत्यादि।

यह आवश्यक नहीं कि सब साधकों को सब प्रकार की प्रतीति हो। किसी को किसी प्रकार की अभिव्यक्ति होती है, किसी को किसी प्रकार की। यदि किसी को इनमें से किसी प्रकार की भी प्रतीति न हो और उसको एकाग्रता हो जाती है, तो उस को यह नहीं समझना चाहिये कि मुझ में कोई कमी है या मेरी उन्नति नहीं हो रही है। उसका आत्मा भी जाग्रत हो रहा है, इस बात में उसे विश्वास रखना चाहिये।

अजपा जाप वह है जिसमें वाणी से जाप न किया जाये, किन्तु जप हो रहा हो। जब ऐसा हो तो अर्थ यह है कि आत्मा बोल रहा है। आत्मा में बोलने की शक्ति है। देह में कैद होने पर आत्मा इन्द्रियों द्वारा विषय ग्रहण करता है और स्थूल अंगों में तरंगें पैदा करता है और जिह्वा इत्यादि से शब्द आदि उच्चारण होता है। पर देह से पृथक होकर आत्मा सूक्ष्म प्रकृति में संकल्प द्वारा क्रिया उत्पन्न करता है। पतंजलि महर्षि का वाक्य है कि आत्मा

अपने संकल्प द्वारा चित्र पैदा कर लेता है। दिल, फेफड़े इत्यादि स्वभाव की इच्छा से काम करते हैं, संकल्प से नहीं। ऐसे ही आत्मिक इच्छा स्वभाव से है, संकल्प से नहीं। यह बात ठीक नहीं है कि हम केवल बुद्धि और इन्द्रियों से ही काम ले सकते हैं। हम इनसे भी परे जा सकते हैं। बार-बार आत्मा का उद्‌बोधन करना चाहिये। मैं सत्, नित्य, शुद्ध, चैतन्य, शक्तिमय आत्मा हूँ। ऐसा बार-बार चिन्तन करना चाहिये। इससे आत्मा प्रबुद्ध और जाग्रत होता है और स्वरूप में चमक उठता है।



साधक की अवस्थायें

नाम जप क्या है ? नाम जपते-जपते यह दशा आ जाती है कि मनुष्य के अन्तःकरण में नाम चला जाता है। तब मनोवृत्ति शिथिल पड़ जाती है। उसमें झिझक नहीं रहती। उसमें से पाप निकलने लग जाते हैं। नाम-आराधन एक प्रकार की आध्यात्मिक चिकित्सा है। उसमें से पाप-वासना स्वयं बाहर निकल जाती है और उसमें निर्मलता आ जाती है। एकाग्रता मानसिक ऐंठन की अनुपस्थिति सिद्ध करती है।

संकोच से ऐंठन आती है, जो नहीं आनी चाहिये। नृत्य सीखने जायें और संकोच करें, तो नृत्य कैसे सीखेंगे ? ध्वनि अलापने पर कुछ लोग विचित्र काम करने लगते हैं, जैसे नाचना, कूदना। ये सब मानसिक विस्तार होने पर होते हैं। ग्राह्य शक्ति बढ़ने पर आशीर्वाद आते हैं। प्रसुप्त चेतना जब जाग जाती है, तो किसी-किसी के स्वर में अन्तर आ जाता है, टकटकी लग जाती है, गति में अन्तर पड़ जाता है, कम्प होता है, कोई-कोई गाने लग जाता है। ये सब उस समय में समाधिस्थ होते हैं। यह मत समझो जो सुन्न हो जाते हैं, वही समाधि में होते हैं। देह का गिर जाना भी एक ऐसी दशा है। जिसकी ऐसी दशा हो जाये, वह फिर दुबारा जन्म नहीं लेता। ऊपर को उछले, बैठे-बैठे खड़ा हो जाये, या कोई दिव्य स्वरूप सामने आ जाये, ये सब इस बात के चिन्ह हैं कि स्थूल शरीर में से सूक्ष्म शरीर निकल कर ऐसा करता है।

आवेश में आये हुए लोगों के हृदय की धड़कन भी इतनी तीव्र हो जाती है कि डॉक्टर भी आश्चर्य में पड़ जाये। देह का भान न रहना तथा सामने प्रकाश देखना, जो चीज़ पढ़ी न हो, वह भी देखने को मिल जाना भी उत्तम चिन्ह हैं।

रोदन करने लग जाये व कविता करने लग जाये, यह सब प्रकट होता है। यह कोई जरूरी नहीं कि नींद आये, किन्तु नाम-जप से वह अवस्था भी आती है कि लोग महीनों जागते रहते हैं और काम-काज करते हुए शिथिलता(स्थिरता) प्राप्त करते हैं। भिन्न-भिन्न अवस्थायें आती हैं।

ऐसी अवस्था आने पर, आदमी भक्ति का पात्र बन जाता है। आवेश में जो कोष तथा तन्तु हिल जाते हैं, वे आध्यात्मिक लहरों से पुनः शक्ति प्राप्त करते हैं। वह भगवान की कृपा का पात्र बन जाता है। शरीर शुद्ध हो जाता है। बाहर की शक्ति अन्तरात्मा की शक्ति को जगा देती है।

दैवी जीवन के योग्य वह बन जाता है तथा बड़ा भारी लाभ होता है। शरीर शुद्ध होकर, भगवत्-कृपा का पात्र बन जाता है। राम-कृपा किसी विरले व्यक्ति में ही अवतरित होती है, जिसने नाम-जप से अपना हृदय शुद्ध किया हो। संयम भी आवश्यक है। नाम-जप छोड़ने पर ये अवस्थायें हट भी जाती हैं। यदि आदमी का पतन हो जाये, तो कृपा अवतरण रुक भी जाता है। आँखें बन्द होने पर जो दिखता है, वह आत्मिक नेत्रों से दिखता है। आत्मा जग जाता है।

नाम-जप करने वाला यदि इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में अवश्य सफल होगा। जो राम-कृपा का पात्र बन गया और एक बार नाम-ग्रहण कर लिया, वह भक्त फिर नाश को प्राप्त नहीं होता। अटूट निश्चय, बड़ी प्रीति, भक्ति-भाव, आदर तथा विश्वास के साथ नाम आराधन करना चाहिये।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 30.12.1940



आत्म-जागृति के चिन्ह

जब हृदय की ग्रन्थि खुलती है, तब सुषुम्ना जगती है। कम्प होना, पसीना आना, हर्ष होना, हंसना, सूक्ष्म लोक में जाना, स्थूल देह से बाहर होना, देहपात होना, रोमांच हो आना, प्रकाश का प्रतीत होना आदि। किसी को प्रतीत होना कि नीचे से कोई चीज़ ऊपर जाती है, किसी-किसी का लम्बे पड़ जाना, यह सब आत्म-जागृति के चिन्ह हैं। इसको मूलाधार से सहस्रार तक शक्ति-जागरण भी कहते हैं। भगवत्-शक्ति का जब अवतरण होता है, तो स्वशक्ति का उत्थान होता है। यह (आत्मा) पुकारता है, वह (भगवान) आता है। अवतरण की अवस्था को जानने के लिये विश्वास होना चाहिये।

हमारा नाम केवल नाम नहीं, अपितु हम नाम में देवता को स्थापित करते हैं। जिसमें शक्ति-जागरण का कोई चिन्ह प्रकट न हो, उसे और अधिक जप करना चाहिये। न जाने उसका कौन सा संस्कार बाधा डाल रहा है ? जप से वह बाधा हट जायेगी। सूर्य का प्रकाश तो आ रहा है, बिजली की धारा तो आ रही है, और जप करो और जप करो। विश्वास करो, भगवान से सम्बन्ध तो उस दिन ही जुड़ गया, जब हमने नाम लिया। इधर-उधर नहीं देखना चाहिये।

शक्ति को जगने देना चाहिये। खिड़की खुली रखनी चाहिये। किरण को आने देना चाहिये। वृत्तियों को केन्द्रित करना चाहिये। अपना मान, आदर, बड़प्पन ढीला करो। ध्यान में एकाग्रता होनी चाहिये। नाम का स्पष्ट उच्चारण करना चाहिये। मेरा जीवन विलक्षण है। मैं और भाव से रहता हूँ। वह पहले वाली बात नहीं रही। मैंने कितने समय से अनुभव किया है कि मैं अपने से बाहर हूँ।

नाद – 1

जब कोई वस्तु हिलती है, तो उस हिलने में ध्वनि पैदा होती है। परम-धाम का शब्द मधुर व सूक्ष्म होता है–जैसे आरती के समय होता है। साधक का आत्मा, बाहर सूक्ष्म लोक-लोकान्तरों के नाद भी सुन सकता है। इन नादों में सतालता होती है। चांद आदि के हिलने से भी नाद होता है, जो एकाग्रता में सुना जा सकता है। आकाश के कई सूक्ष्म स्तर हैं। इनमें से ऊँचे स्तरों पर जो आरती होती होगी वह कितनी मधुर होती होगी। सूक्ष्म लोक, जिसे आत्म-पद कहते हैं, वहाँ सिद्ध लोग हैं। वहाँ से जो वाणी स्फुरित होती होगी, वह कितनी रसमयी और मधुर होगी। वह उच्च-पद का नाद एक बार सुनाई दे जावे, तो सारा जीवन स्मरण रहता है।

मन में जो अन्दर चिन्तन होता है, वह मध्यमा वाणी है। मनुष्य वैखरी वाणी से बोलते हैं, देवता पश्यन्ती से बोलते हैं। जिसने पश्यन्ती को जाना वह देव पद पर आ गया। उसमें दैवी-भाव स्फुरित हो गये। रागों के सात सुर वैखरी वाणी के शब्द हैं। पुरुष इनसे मध्यमा में जाता है। वही आगे पश्यन्ती और परा में ले जायेगी। वाणी में ही जगत पिरोया हुआ है। परा और वैखरी एक वाणी के दो सिरे हैं। यही अन्दर ले जाती है। यही मन्त्र का रहस्य है। शब्द का, नाम का, मन्त्र का यह बल है। शब्दमय ही यह जगत है। जहाँ से पहले शब्द स्फुरित हुआ था, उस धाम तक शब्द ले जाता है। जो हम नाम-जप करते हैं, उसका यही रहस्य है।

नाद – 2

आत्म-जागृति के पश्चात् भक्त को सिद्धियों के लिये कोई इच्छा नहीं होती। जो नाम अभ्यास करता है, उसमें सिद्धियां आ जाती हैं। यह भावना हो कि मेरे राम जिधर तेरी इच्छा हो, मुझे ले चल। सिर झुका कर कहना चाहिये कि मेरा मन, तेरा मन्दिर है। मनुष्य बुरी भावना से कितना भी मलिन बन चुका हो, दो तीन महीने में अभ्यास करने से उसमें बड़ी स्फूर्ति आ जाती है– राम-नाम की स्फूर्ति। राम-नाम का गूंजना ब्रह्म नाद है। बाकी नाद, बादल की गर्जना, बांसुरी की ध्वनि, वीणा का नाद भी अच्छे हैं, जिनको सुनने के लिये लोग कानों को बन्द करते हैं। परन्तु नाम के अभ्यास से नाद अपने आप हो जाता है। राम-राम, ताल सहित होता है। जब सुषुम्ना खुल जाती है, कमल अपने आप खिलने लग जाते हैं। नाद दिन को भी और रात को भी सुनाई देता है। जिसको नाद सुनने का चाव हो, उसे दो-चार घड़ी रात रहते जागना चाहिये। जिस समय चुपचाप हो, शान्ति हो, वह दैवी समय है। तब नाद प्रकट होता है। भगवान की लीला है, जिसकी झोली में डाल दे।

मैं डलहौजी पहाड़ में एकान्त में रहता था। प्राणायाम आदि किया करता। शारीरिक लाभ अवश्य हुआ। जब अपने आपको हरि के अर्पण किया, तो व्यास-पूजा के दिन हरि ने नाम झोली में डाल दिया। नाद कोलाहल में नहीं आता। यदि आ जाये, तो भगवान की लीला है। नाद प्रकट कराने के लिये श्रद्धा और शान्त भाव चाहिये। प्रकट होने में कोई आश्चर्य नहीं है। यदि न हो तो समय लगाना चाहिये।

आत्मा उलझा न रहे, इस के लिये साधक को किसी शान्त स्थान पर, शान्त समय में, घण्टा-डेढ़ घण्टा लगाना चाहिये। नदी के तट पर, किसी कन्दरा में, नदियों के संगम पर, यदि परिस्थिति न हो तो छत पर या कोठरी में जा बैठे। जप ही किया करे, अन्य काम न करे। नाम जाप से सब बातें हो जाती हैं। कान बन्द करने से मस्तिष्क एवं फेफड़ों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। नाम जाप से नाद भी होता है, ब्रह्म नाद भी होता है, अजपा जाप भी होता है। पाप अपने आप धुल जाते हैं। हम किसी नाम का निरादर नहीं करते और न हमें किसी नाम से हठ है। पर राम-नाम से हमें आशीर्वाद प्राप्त हुआ है, इसलिये इस नाम से हम बंध गये हैं। भगवान किसी नाम में बंधा हुआ नहीं है। उसे तू ही तू कहो, वह सुनता है। सूरज चढ़ा है, झरोखे को बन्द न करो। बड़ी श्रद्धा और धारणा से भजन करो, मार्ग खुल जायेगा। लम्बे रोग के लिये उपचार भी लम्बा करना चाहिये। नाम रटने वालों को यह नाम की

डोर उसके धाम में ले जाती है, जहां वह आप विराजमान है। भगवान हमें अपना नाम दे और अपने नाम में रुचि दे।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 8.12.1951,
समय 11.00 बजे



वाणी

साधक की वाणी में रस होना चाहिये। अन्य व्यक्तियों को तथा इसी प्रकार परमेश्वर को प्रभावित करने के लिये, साधक की वाणी में रस होना चाहिये। आजकल भारत में वाणी के धनियों की कमी है। केवल कोई वीर पुरुष ही शक्तिमती तथा प्रभावशाली वाणी बोल सकता है। कोई भी बात जो कही जाये निश्चयपूर्वक कहनी चाहिये।

जिस समय जर्मनी ने क्षेत्रों को विजय करना आरम्भ किया, उस समय हिटलर ने रेडियो द्वारा दो घंटे तक भाषण दिया। यद्यपि वह जर्मनी में बोला, जो मुझे समझ न आती थी, किन्तु उसकी वाणी का उतार-चढ़ाव ऐसा सुन्दर था कि उस भाषण ने मुझे उसमें लीन रखा। साधक की वाणी में इतना रस हो कि वह राम को भी जीत ले। कुछ को गद्‌गद् अवस्था होने पर इसकी प्राप्ति हो जाती है।



समर्पण भाव से लाभ

आकाश में किसी सत्ता से शब्द स्फुरित हुआ और सुनने वाले पर उतरा, यह मिथ्या नहीं। कई हमारे मिलने वाले बताते हैं कि हमारा इष्ट हम से बात करता है। जो रूप उपासना करते हैं, वे इष्ट से मिलते हैं और उसका आदेश सुनते हैं। जो नाम उपासना करते हैं, रूप उपासना नहीं करते, उनका पथ-प्रदर्शन शब्द किया करता है। आत्मा साक्षी जाना करता है कि मेरे अन्दर स्फुरण हुआ है। पश्यंती वाणी परा से भिन्न है। यह अन्तःकरण की ध्वनि होती है। सूक्ष्मता के स्तर पर यह परा से कम होती है। आराधन करते-करते कई साधक नाद सुन कर नादोपासना करते हैं। नादोपासना का वर्णन भी शास्त्रों में आता है। हम ने तो भगवान का आराधन करना है। नाद हमारा लक्ष्य नहीं है। हमारा लक्ष्य है—परमात्मा। विविध प्रकार के शब्द प्रकट होते हैं। कुछ एक मतों वाले इसी को बहुत मानते हैं। नाम तो ऊँचे पद पर जा कर हाथ लगाता है।

शिष्य में जितनी आत्म-समर्पण की भावना होगी, जितना वह अपने आप को गुरु के साथ एक कर लेगा, उतना ही गुरु उपदेश उसमें विकसित होगा और पूर्णता होगी।

जिस शब्द को मनन किया जाये, वह मन्त्र हो जाता है। जिस शब्द पर बहुत चिन्तन किया जाये, वह यंत्र बन जाता है। इस प्रकार उस में शक्ति पैदा हो गई। बीजाक्षर साथ मिला देने से मंत्र का तान्त्रिक-यंत्र बनता है।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 27.12.1948,
समय प्रातः 10.30 बजे

श्रद्धा

श्रद्धा - 1

श्रद्धा हृदय की संकल्प क्रिया है, बाहर से दिखाने की वस्तु नहीं। किस में कितनी श्रद्धा है, उस का साक्षी मनुष्य स्वयं होता है। बहुत से लोग समझते हैं कि भलाई बाहर से अन्दर आ जायेगी, पर ठीक बात तो यह है कि भलाई अन्दर से बाहर आवेगी।

श्रद्धा स्वभाव-जन्य भी है अर्थात् यह स्वभाव से भी होती है। स्वभाव से तात्पर्य परम्परा से है।

श्रद्धा हृदय का भाव है। यह आन्तरिक-वृत्ति है। बाहर तो इसका प्रकाश होता है। प्रातः का समय बहुत ही निर्मल होता है। यदि उस समय मनुष्य कोई सेवा का व्रत ले, तो वह व्रत अधिक फलेगा। सोकर उठते हुए आदमी का मन दूसरे जगत में होता है। यदि किसी समय में सदा ही बसन्त रहती है, तो वह प्रातः का समय है।

ब्रह्म-मुहूर्त में जागकर आदमी संसार यात्रा का अथवा अपनी कमियों का चिन्तन करे तथा साथ ही उनको दूर करने का चिन्तन भी करे। प्रातःकाल उठते ही भगवान की आराधना करना तथा अपनी आन्तरिक भावनाओं को जगाना चाहिये।

श्रद्धा पैदा करना साधना का काम है। यह व्यक्ति प्रातःकाल किया करे। श्रद्धा देवी का पूजन प्रातःकाल होना चाहिये। इसके मन्दिर में बैठना अवश्य चाहिये। मध्यान्ह समय में भी श्रद्धा का स्मरण करना चाहिये। फिर सूर्यास्त के समय श्रद्धा का आह्वान करना चाहिये। यह समय विश्राम करने का है।

आत्मा में दुःख नहीं है और न ही प्रकृति में दुःख है। दुःख तो विकार में है। भावना करनी चाहिये कि प्रकृति, माता के समान पालन करती है। यह मधुमती है। इसकी गोद में बैठना चाहिये। यह भावना करनी चाहिये कि जो

नदियां चलती हैं, वे मधु से भरी हैं। इससे जल अनुकूल हो जाते हैं। इसी प्रकार प्रकृति की अन्य वस्तुओं में भावना होनी चाहिये। संसार भावनामय है। जैसी भावना की जायेगी, वैसा ही संसार बन जायेगा। आत्मा तो बड़ी ऊंची वस्तु है, पर शरीर को भी हीन नहीं मानना। अपने संसार को अपने विचार-बल से, अपने बौद्धिक-बल से भद्र बनाना चाहिये।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 9.12.1950,
समय अपराह्न 3.00 बजे

श्रद्धा - 2

सनत्कुमार ने कहा कि जब कोई जानता है, तब सत्य बोलता है। अर्थात् यदि सत्य का बोध ही नहीं है, तो वह सत्य क्या कहेगा ? सत्य का जानने वाला ही सत्य बोलता है। सत्य को विवेक-बुद्धि से जानना चाहिये।

पुरातन ग्रन्थ ही स्वाध्याय के योग्य हैं। पुरातन ग्रन्थ आर्थिक और साम्प्रदायिक दृष्टि से नहीं लिखे गये। जैसे कि आजकल के लिखे बहुत से ग्रन्थ होते हैं। उनका अध्ययन करने से मनुष्य में ज्ञान की वृद्धि होती है। शास्त्र हमारे मुनियों की संचित की हुई सम्पत्ति हैं। ये हमें सहज ही से प्राप्त हैं। ज्यों-ज्यों कोई पढ़ता है, उसे आगे ज्ञान में बड़ी रुचि होती है। शास्त्र अनुशीलन से इस रुचि को उत्पन्न किया जा सकता है।

जब कोई श्रद्धा करता है तब जानता है अर्थात् तब उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है। वेद भी कहता है--श्रद्धा से सत्य प्राप्त किया जाता है। श्रद्धा से मानव-मंडल का जीवन मधुर बनता है। समाज इससे सुधरा हुआ प्रतीत होता है। परलोक सम्बन्धी श्रद्धा भी मनुष्य को बड़ा हर्ष देती है। धर्म का विशाल वृक्ष श्रद्धा की भूमि में ही पनपता है। सत्य के लिये जो रुचि, प्रीति है, उसी वृत्ति का नाम श्रद्धा है।

किसी की निन्दा करके किसी को भला नहीं बनाया जा सकता, अपितु इससे उल्टे उसमें हठधर्मी आती है और वह और भी कोसों दूर हो जाता है। किसी के सुधार के लिये उसे प्रेमपूर्वक समझाना चाहिये। उसके आगे भला बनने की महिमा को रखना चाहिये।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 4.12.1951,
समय अपराह्न 3.00 बजे

श्रद्धा - 3

जब कोई श्रद्धा करता है, तब उसे ज्ञान होता है। श्रद्धावान मनुष्य हर काम के लिये समय निकाल लेता है। समय तो निकला ही रहता है, पर हम उसका उपयोग नहीं करते। भगवान के नाम के लिये अवसर इसलिये नहीं मिलता, क्योंकि हमारा अपनी आत्मा से प्रेम नहीं है।

सत्संग स्वल्प और स्वादु(सरस) होना चाहिये। उसमें सजीवता और चैतन्यता होनी चाहिये। लम्बे कामों में श्रद्धा कम होती है। समय बहुत होता है, उसका ठीक विभाजन करने से हर काम के लिये अवसर निकल आता है। बात यह है कि हमारी इस काम के लिये रुचि नहीं होती, जिसके लिये हम कहते हैं कि समय नहीं है। किसी काम को महत्व देने से, उसके लिये समय निकल आता है। अवसर बहुत है। उसका सदुपयोग होना चाहिये। सदुपयोग श्रद्धा से होता है।

एक माई सारा दिन घर के काम धन्धों में लगी रहती थी। उसने एक महात्मा से पूछा कि उस का आत्म-कल्याण कैसे होगा ? महात्मा ने उसको कहा कि काम करते समय हाथ में काम हो और मुख में राम। यथा--'हथ विच काम, मुंह विच राम'। माई ने उस पर आचरण किया और थोड़े समय में उसे अध्यात्म-प्रसाद की प्राप्ति हो गई। वास्तव में बात भी यही है। भगवान को पाने का रास्ता तो बड़ा सरल है, बाकी तो पण्डितों की बातें हैं। मनुष्य की भावना ऊंची होनी चाहिये। भावना में देव विराजमान होता है। सीधा सरल मार्ग हरिभक्ति का श्रद्धा है। इससे जो कोई भी आराधना करे, उसको लाभ होना चाहिये। यदि लाभ नहीं होता, तो उसको अपने आप को टटोलना चाहिये। उसे स्वयं पता लग जायेगा कि त्रुटि कहां है ?

एक जख्मी बंदर के घावों पर मरहम-पट्टी की गई। पर वह उसे छील छोड़ता। इसी प्रकार जो साधन की पट्टी को अपनी चंचलता के कुतर्क से कुरेदते हैं, उनके संशयों के घाव नासूर बन जाते हैं, और वह अच्छे नहीं होते। अध्यात्मवाद श्रद्धा का काम है। साधन पर विश्वास करके श्रद्धापूर्वक उसका अभ्यास करना चाहिये।

सत्य को प्रकट करने के लिये ज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञान प्राप्त होता है– श्रद्धा से और श्रद्धा उत्पन्न होती है–मनन करने से। मनन न करने से ज्ञान स्थिर नहीं होता। पढ़े-सुने हुए पर बार-बार चिन्तन करके उस पर धारणा जमाने की चेष्टा करनी चाहिये।

शास्त्रों को पढ़े हुए भी मूर्ख रह जाते हैं। जो क्रियावान है, वही विद्वान है। इसलिये पढ़कर-सुनकर मनन करना चाहिये। पढ़ना कम चाहिये, मनन अधिक करना चाहिये। मनन करने पर जब दृढ़ता आ जाती है, उसको निदिध्यासन कहते हैं।

भक्त हरेक पदार्थ में प्रभु को देखता है, क्योंकि सृष्टि प्रभु की है। रचना में रचयिता रहता है। चित्र में चित्रकार निवास करता है। इसलिये सृष्टि में उसको बसाओ। प्रभु की वस्तुओं में अपने आपको बसाना, ज्ञान की आँखों पर पट्टी बांधना है। यह सब उपयोग की वस्तुयें हैं। ममता करने की नहीं, गठरी बाँधने की नहीं। 'ईशावास्यमिदं' इस उपनिषद् वचन में उपनिषदों का सार समाया हुआ है। यह हिन्दू अध्यात्मवाद का मुख्य स्वर है। पर यह तब, जब उस पर मनन किया जाये।

योग चित्त-वृत्तियों का निरोध है। योग का फल अपने स्वरूप में स्थिति है। महर्षि पतंजलि ने इसके फल व विषय का वर्णन किया है।

ध्यान में एकाग्रता और शान्ति प्राप्त होती है। एक माई ने किसी महात्मा को कहा कि मुझे ध्यान में कुछ एकाग्रता तो हो जाती है और कुछ शान्ति भी अनुभव होती है, पर मुझे मिला कुछ नहीं। महात्मा ने कहा कि 'भोलिये! जब एकाग्रता और शान्ति हो जाती है, तब और तुझे क्या मिले!' नाद, लोक लोकान्तरों की गति से होता है। कभी-कभी कोई उनको सुन लेता है। स्वर्गीय नाद भी कभी-कभी आ जाता है। हमारा ध्येय तो 'आत्मा की अपने स्वरूप में स्थिति' होना चाहिये, और सब कुछ हुआ, किन्तु यह न हुआ तो कुछ भी न होने के बराबर है।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 5.12.1951,
समय अपराह्न 3.00 बजे

श्रद्धा - 4

जब मनुष्य का निश्चय स्थिर हो जाये, तो श्रद्धा भी होती है, मनन भी होता है। संशयशील की श्रद्धा भी ढीली हो जाती है, मनन भी ढीला हो जाता है। अंध श्रद्धा क्या है और सनेत्र श्रद्धा क्या है? यह जानना बड़ा कठिन है। जो किसी बात को अंध श्रद्धा कहते हैं, वे स्वयं किसी पर अंध श्रद्धा करते होते हैं। इसलिये उनका ऐसा कहना बनता नहीं। किसी भी क्षेत्र में देखो, पारिवारिक, जातीय, धार्मिक, राजनैतिक अंधविश्वास सब जगह है और इनमें अच्छाइयां भी हैं। ऐसा विश्वास जिसमें संशय नहीं, अच्छा है। जब संशय नहीं होता, तब श्रद्धा होती है।

अध्यात्मवाद कहीं भी किसी भी जगह मिले, वह हिन्दी में हो, अंग्रेजी में हो, किसी भी अन्य भाषा में हो, सब एक ही है। मतों में साम्प्रदायिकता होती है।

महर्षि लोग कोई अनुमान करने वाले नहीं थे। उन्होंने जो कुछ भी वर्णन किया है, वह अनुभव करके किया है। उपनिषद्‌कार मतवादी नहीं थे। उन्होंने अपने अनुभव वर्णन किये हैं। असली अग्निहोत्र अपनी वृत्तियों को हृदय की अग्नि में होम करना है।

भारतवर्ष का अध्यात्मवाद मौलिक है और सर्वत्र विस्तृत हुआ है। इसमें वर्णित सच्चाइयाँ गणित शास्त्र के समान ठीक हैं। हमारा ध्येय सत्य है। उसका जानना ज्ञान से होता है। 'यह आत्मा अपने स्वरूप को पाकर खिल जाता है।'– यह उपनिषद् का वाक्य है, जो सत्य है।

निश्चय अटल होना चाहिये, पहाड़ की चट्टान की भाँति। निष्ठा न हो, धारणा पक्की न हो, तो श्रद्धा मर जाती है। इसीलिये धारणा दृढ़ करनी चाहिये।

सन्त-जन स्पर्श से, देखने से तथा ध्यान से दूसरे के अन्दर तरंग पैदा कर देते हैं। सूक्ष्म जगत् में दीक्षा तीन प्रकार से होती है। स्थूल जगत् में भी प्रगति

इन तीन ही प्रकारों से होती है। ऐसे ही बुराई भी तीन ही प्रकार से आती है– स्पर्श, दृष्टि और ध्यान से। कभी-कभी संगी साथी भी बुद्धि को बिगाड़ देते हैं और अनादर पैदा कराकर उस की हानि का कारण बनते हैं।

जैसे पक्षी अपने पंखों से बच्चों को पालता है, ऐसे ही संत लोग अपने समीपवर्ती लोगों को उठाया करते हैं। जैसे कूर्म (कछुआ) अपने अण्डों को देखने से, दृष्टि से सेता है, इसी प्रकार संत-जन देखकर भी दृष्टि द्वारा दूसरों पर प्रभाव डालते हैं। मच्छ ध्यान मात्र से अपने बच्चों को सेता है। इसी प्रकार दूर देशस्थ आदमी को ध्यान द्वारा संत-जन की सहायता मिलती है।

❑❑

विश्वास

भगवान में पक्का विश्वास होना चाहिये। हमारा यह विश्वास दृढ़ होना चाहिये। विश्वास में दृढ़ता प्रतिदिन अभ्यास से आती है। अभ्यास से भगवान में विश्वास दृढ़ होता है, तभी लाभ होता है। जो व्यायाम करने वाले होते हैं, वे दस-पन्द्रह मिनट में ही व्यायाम का लाभ ले लेते हैं। जितना लाभ व्यायाम करने वाला दस-पन्द्रह मिनट में उठा लेता है, उतना दिन-भर परिश्रम करके भी श्रमिक नहीं प्राप्त कर पाता। श्रमिक आठ-नौ घन्टे ज़मीन खोद कर परिश्रम करके भी उतना लाभ नहीं उठा पाता, क्योंकि श्रमिक की भावना इस बात में रहती है कि– इतना कार्य करना है, इतनी डलियां (टोकरियां)डालनी हैं। व्यायाम करने वाले में भाव होता है कि इस व्यायाम के करने से उसकी शक्ति बढ़ेगी और उसके पट्ठे सुदृढ़ होंगे—उसकी पाचन शक्ति ठीक होगी, शरीर में स्फूर्ति आवेगी। इसी प्रकार साधक को इस भावना से जाप करना चाहिये। दृढ़ भावना रखते हुए मन्त्र का आराधन करने से बड़ा लाभ होता है, उसके अन्दर शुभ भावों का संचार होता है। जितनी भावना और विश्वास बढ़ेगा, उतना ही लाभ होगा।

अपने-आप में उठने की प्रवृत्ति होनी चाहिये। विश्वास साधक का जीवन है। विश्वासहीन व्यक्ति की दशा रोगी-सी होती है। रोगी वह जो विश्वास खो देता है। वह सोचता है कि मैं मर जाऊँगा, तो यह कौन करेगा ? वह कौन करेगा ? अमुक कार्य कैसे होगा ? विश्वासी को चिन्ता नहीं होती। विश्वासी की आत्मा सजीव होती है। विश्वासी का आत्म-जीवन सुदृढ़ होता है, बलिष्ठ होता है, परन्तु विश्वासहीन का जीवन निर्बल होता है, निराशावादी होता है। अपने विश्वास को ठीक बनाना चाहिये। अपने आप को यह न समझें कि हम शक्तिहीन हैं। जो अमृतवाणी पढ़े, उसका विश्वास दृढ़ होना चाहिये। विश्वास मन बुद्धि को बल देता है। पारिवारिक जीवन को सुधारता है। भगवान पर बड़ा भरोसा होना चाहिये। आत्मा सुदृढ़ बनाकर रहना चाहिये।

प्रत्येक व्यक्ति को श्रीमद्भगवद्गीता यह समझ कर पढ़नी चाहिये कि इसमें लिखी बातें, मेरे लिये कही गई हैं। गीता पढ़ते व सुनते समय यह भाव होना चाहिये कि गीता के उपदेश मुझे दिये गये हैं—तब लाभ होता है। जो यह पुस्तक पढ़े, उसे समझना चाहिये कि मेरा बल बढ़ाने के लिये इसमें बातें कही गई हैं। उन पर मनन करके, उन्हें अपनाना चाहिये। एक व्यक्ति ने अपने पुत्र से पूछा कि 'तूने आज पढ़ा ?' पुत्र ने कहा 'जी हां!' उसने पूछा 'तूने क्या पढ़ा ?' पुत्र ने कहा कि 'याद नहीं।' तो उसने कहा 'फिर तूने पढ़ा ही क्या ?' इस प्रकार के पढ़ने से कोई लाभ नहीं। साधक को संतोष और धैर्य होना चाहिये कि उसमें शक्ति है। ऐसी भावना हमें अपने अन्दर बनानी चाहिये।

ये ग्रन्थ इसलिये मुद्रित कराये गये हैं कि साधक इन्हें पढ़े और मनन करे। ऐसे ग्रन्थ और पुस्तकें अनधिकारियों के लिये नहीं होते, क्योंकि उन्हें दिखाने से उनको कोई लाभ नहीं होगा। वे इसका मूल्य नहीं आंक सकते और तुम्हारे लिये कोई अच्छी बात नहीं होगी।

इन ग्रन्थों के लिये रहस्यवाद का व्यवहार आना चाहिये। जो अध्यात्म-योग है, जो नाम में शक्ति है, वह साधक अनुभव कर सकता है, अन्य नहीं। यह पुस्तक पढ़ना, मनन करना और अपने से प्रश्न करना कि मुझ में कितना विश्वास है ? मन्त्र में कितनी धारणा है ? मैं कितना दृढ़ हूँ ? कितना दृढ़ रहता हूँ ?

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 7.12.1951,
समय अपराह्न 3.00 बजे

❑❑

विश्वास-पूर्वक आराधना

(श्रीमहाराज जी ने पहले भक्ति प्रकाश में से मंगलाचरण पढ़ा)

जो ध्यान करता है—सिमरन करता है—उसी का कल्याण। जो लोग कामकाज करने वाले हैं— पढ़े-लिखे हों, दफ्तरीबाबू हों, दुकानदार हों, खेतकार हों, इन सबके पास इतना समय तो होता नहीं है कि आसन जमाकर, ध्यान करने में लग जावें। उनको परिश्रम करना पड़ता है और इतना अवकाश नहीं होता। तो फिर जो लाभ होता है, वह भगवान कृपा से होता है। यहां जो नाम ध्यान व सिमरन होता है, वह कोई किसी भी अवस्था में कर सकता है। उस (नाम-आराधन) के लिये न बड़े आडम्बर की आवश्यकता है और न ही बहुत समय की। न ही घर-बार का छोड़ना आवश्यक है। काम जो करता है, करता रहे, किन्तु थोड़ा बहुत समय भावना से सिमरन ध्यान होना चाहिये। इससे मनुष्य का आत्मा जग जाता है।

जैसे आँखें खोलने पर सूर्य-ज्योति सहायता देती है, इसी प्रकार जो नर ध्यान करता है, उस पर भगवान की कृपा का अवतरण होता है। ध्यान तो थोड़ी देर होता है। दूसरा साधन सिमरन है। नाम का आराधन, जो भगवान की कृपा से अवतरित हुआ है। इस आराधना से सुलभता से वह लाभ प्राप्त हो जाता है, जो दूसरे साधनों में कठिनाई से होता है। हाली बैल हांके जावे और सिमरन करता रहे, तो उसका इसी में कल्याण है। उस को उतना ही लाभ हो जावे जितना कि पद्मासन लगाकर तपस्या करने वाले को होता है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। सिमरन बड़ा ऊँचा साधन है और अच्छा साधन है। नांगल में हमारा सत्संग होता है, वहाँ चरस लेकर जो जाता है, उसको राम बोलकर बताना होता है कि वह आ गया। उसमें उसका बड़ा लाभ कि जाप भी करना और बोझा भी उठाना।

एक बूढ़ा जो पैर इकट्ठे भी नहीं कर सकता, यदि वह चारपाई पर ही

राम-राम करता है, तो इसमें ही उसका कल्याण। राम-नाम के सिमरन के लिये और अधिक अन्य बातों की आवश्यकता नहीं होती, पर बात यह है कि बीज ठीक होना चाहिये। इस बात को देखने की आवश्यकता नहीं कि यों ही छिड़का या फेंका या बोया। बीज उल्टा पड़े या सीधा, अंकुर तो सदा निकलता ही है। बीज अच्छा होना चाहिये। आसन-वासन जरूरी नहीं। नाम का साधन हर स्थिति में ठीक होता है। जिस ओर से वह चला है, वह ठीक हो और जहां स्थापित हुआ, वह हृदय साफ हो (नाम आराधन में मुख्य बात तो यह है कि नाम देने वाले की आध्यात्मिक उन्नति और लेने वाले की शुद्ध, सरल हृदयता)। बीज अपनी शक्ति से उगेगा। इस बात का विश्वास हो कि बीज में शक्ति है। इसीलिये इसको (नाम को) बीजाक्षर कहा है। बीज में पेड़ की सारी सामग्री समाई हुई है। इसी प्रकार भगवत्-नाम, जो हम लेते-देते और जपते हैं। इसमें जिससे आया, उसकी शक्ति है। इस बात का जितना विश्वास हो, उतना ही लाभ होगा।

कृषिकारों को विश्वास होता है कि बीज हमने बो दिया, उगेगा ही। उसको कोई कहे कि यों बीज फेंकने से क्या उगेगा ? तो वह कहेगा कि यह हम अनुभव से प्रतिदिन देखते हैं। हम खेतों का काम करते हैं, हमें पता है कि अवश्य उगेगा। डॉक्टर यद्यपि थोड़ा पढ़ा हुआ हो, यदि डॉक्टर और उसकी दी हुई दवाई में विश्वास है, तो लाभ अवश्य होगा। विश्वास की कमी ज़मीन की खराबी के समान है। कल्लर ज़मीन में बीज कैसे उगेगा ? इसी प्रकार अविश्वासी जन को नाम से कितना लाभ होगा ? अपना विश्वास सुदृढ़ होना चाहिये। इसी नाम से हमारा कल्याण होगा, ऐसा विश्वास हो तो फिर आराधन किसी प्रकार से करे उसको लाभ होगा। औषधि प्रभावित करती है, चाहे वह इंजैक्शन द्वारा दी जाये, चाहे मुंह द्वारा। जितनी जल्दी वह रक्त में जावे, उतनी ही जल्दी लाभ होता है। इसी प्रकार जितना नाम को हृदय में बसावे, उतना ही लाभ होता है। विश्वास दुर्बल न हो। बड़ी चीज़ विश्वास है। यह कृपा अलौकिक है। इस कारण लोग विश्वास कम करते हैं। किन्तु ऊपर वर्णित कृषिकार का प्रतिदिन का अनुभव है, जो वह

काम करता है। इसी प्रकार यह नाम आराधन है।

नाम से क्या लाभ ? जबकि कोई कठिन ढंग यहां नहीं बताया जाता। यहां तो बड़ी चीज़ विश्वास है। स्वाभाविक चीज़ कठिन नहीं होनी चाहिये। दाल-रोटी-साग, यह स्वाभाविक हैं। यदि और कुछ जो चीज़ें आवश्यक, वे और भी स्वाभाविक हैं। तो जितनी बड़ी आवश्यक, वह उतनी बड़ी स्वाभाविक। इसी प्रकार सूर्य का तेज, पानी—इनके लिये किसी मोल की आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार नाम-सिमरन भी सबके लिये सुलभ है। चाहे एक धुरन्धर विद्वान है, चाहे मजदूर। कल्याण का मार्ग सबके लिये सुगम है। जितना समय मिलता है, अन्दर जो मूर्ति की स्थापना की है, उसे हाथ जोड़कर नमस्कार कर, सिमरन करता हूँ। बड़े महत्व का यह बीज है। आध्यात्मिक उन्नति, सब इसमें समाई हुई है।

प्रारम्भ में मंगलाचरण-नाम माहात्म्य और सिमरन भी करें और अधिक विश्वास से करें। इतना मन को घेरना, घोटना आवश्यक नहीं जितना विश्वास।

साधना-सत्संग, हाँसी
नवम्बर मास

❑❑

विश्वासपूर्वक आराधना से महिमा स्वयं अनुभव होती है

एक बात और है—जो स्वयं विश्वास वाले लोग हैं, वे राम-नाम की महिमा स्वयं अनुभव करने लग जाते हैं। दूर के दृष्टान्त क्या देने ? यह सब बातें इसी साधना करने वालों में ही होती हैं। यह अनुभव की बातें अवश्य आती हैं। फिर कई बातें यहाँ ऐसी होती हैं कि ये साधारण व्यक्ति यहाँ लाभ प्राप्त करते हैं, जो घोर तपस्या करने वाले को कदाचित हों। यहां मस्त हो जाते हैं। बहुत मस्ती होना भी कोई ऐसी साधारण बात नहीं है। इस अवस्था में व्यवहारिक-मन (Conscious-mind) बन्द हो जाता है। आन्तरिक-मन (Subconscious-mind) काम शुरू कर देता है। ऐसे अनुभव जो हैं, साधारण नहीं है, यह अवस्था असाधारण-विशेष अवस्था है। इस अवस्था में व्यवहारिक-मन जो वृत्तियों का, भावनाओं का बना हुआ होता है, वह सो जाता है और चेतना जाग्रत हो जाती है। पर इसको निभाये रखें तो अच्छा, नहीं तो फिर ढीली पड़ जाती है। यदि इसको मामूली या यूं ही समझ लिया जावे, तो चली भी जाती है, जा सकती है।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 23.11.1956,
समय प्रात: 11.00 बजे

❑❑

संशय-रहित विश्वास

प्रवचन से पूर्व बातों में महाराज जी ने कहा कि हीरा चाहे दीवार में जड़ो, चाहे कुर्सी में, चाहे माथे में, हीरे की मान्यता है, स्थान की उतनी नहीं।

गीता के अठारहवें अध्याय के इकसठ-बासठ श्लोक में भगवान ने अर्जुन से कहा कि, 'हे अर्जुन! सब प्राणियों में आरूढ़—सब प्राणियों के हृदय में ईश्वर बसा हुआ है। वह अन्तर्यामी अपनी माया से मनुष्यों के कर्मों के अनुसार, सब प्राणियों को अपने यंत्र में चढ़ा कर चला रहा है। हे अर्जुन, सब प्रकार से तू, उस ही की अनन्य शरण में प्राप्त हो। तू उसकी कृपा से परम शांति को लाभ करेगा। सदा शान्त परम धाम को प्राप्त होगा।'

हर साधक को समझना चाहिये कि हम राम शरण में आये हैं। शक्ति तो राम की बड़ी है। विश्वास हो कि शक्ति भगवान की है। निज के अहं से कार्य में व्यवहारिक मन की शक्ति काम करती है और बार-बार हम असफल होते हैं, किन्तु यदि हम भगवान की शरण में जायें, तो सुन्दर है। हमें चाहिये कि हम यह भावना बनायें कि राम शरण में आये हैं।

वह राम सब प्राणियों को अपने यंत्र में चढ़ा कर चला रहा है। यह समझना कि शक्ति कोई और है, शक्ति तो परमेश्वर की है। हिटलर समझता था कि मुझमें बड़ी शक्ति है, तो पीठ लग गई। अमेरिका दूसरे देशों की सहायतार्थ अरबों डॉलर खर्च करता है। इस सहायता में वह अपनी सारी सम्पत्ति भी लगा देवे, तो भी यदि परमात्मा की इच्छा न हो, तो उसकी नीति का (अमेरिकन पॉलिसी का) विरोध हो। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है, 'भगवान की बड़ी शक्ति है। एक कीट भी किसी बड़े को मार सकता है।'

मुझे यह कहना था कि विश्वास लाना चाहिये। मैं भी कभी परमेश्वर से उसका विश्वास माँगता हूँ। विश्वास जितना लाया जा सके लाना चाहिये।

विश्वास भक्ति-मार्ग में बड़े काम की चीज़ है। युक्तिवाद भी ठीक, पर

फोड़े पर नश्तर की तरह। निरोग अंग पर चीरा नहीं दिया जाता। ऐसे ही संशय को दूर करने के लिये युक्ति होती है। रोग के लिये सर्जरी। पर जिसको संशय ही न हो, वह व्यर्थ में ही युक्ति के नश्तर क्यों लगवाये ? विश्वास के लिये युक्ति की जरूरत नहीं। संशय आध्यात्मिक रोग है। संशय के कारण होते हैं। इनसे बचना चाहिये। कुसंगति से संशय हो जाता है। ऐसे आदमी मिलें, जिनमें विश्वास नहीं, भावना नहीं, जो कहें कि अरे वहां जाकर क्या करेगा ? राम-राम रटने से क्या होता है ? राम-नाम कहने से कभी रोटी पकती है ? एक बार ऐसा कहा, फिर बार-बार कहा, तो व्यक्ति में अन्तर आ जावे। (ऐसे नास्तिक लोगों का संग संशय उत्पन्न करता है।)

एक बड़ा विद्वान व्याख्यान दे रहा था। उसने कहा कि एक बार गायत्री मंत्र कह लिया, बार-बार क्या कहना, बार-बार हम क्यों रटें ? ऐसी बातें सुनने से अन्तर आ जाता है। कर्म करेंगे तो मुक्ति होगी, नाम जपने से कैसे होगी ? यह सब बातें लोग कहते हैं। मुझे कहना है कि यह सब छोटे ज्ञान की बातें हैं। ऐसे लोगों को ज्ञान नहीं होता। भगवान के मंदिर में, मन के संयोग के बिना, कर्म किये जाने का कोई मूल्य नहीं है। वाणी से भी तो कर्म होता है—हाथ अकेले से थोड़े ही होता है। यदि पत्थर लुढ़क पड़े और चोट लग जावे, तो पत्थर उठाकर कोई थाना थोड़े ही ले जावे कि इसने चोट मारी। रिपोर्ट इसकी क्या लिखवाये ? वास्तव में भगवान का ही कोई प्रबल कर्म है यह युक्तिवाद तो छोटे ज्ञान वालों की बातें हैं। पंडित पांथिक लोग प्रायः प्रवचनों में, सभाओं में दूसरे लोगों के विश्वास पर चोट करते हैं और युक्ति द्वारा अपने विश्वास का मण्डन करते हैं। चाहे उनका स्वयं उस पर विश्वास ही न हो। सभाओं में जाना वैसे अच्छा, पर उनका तरीका बना हुआ है कि युक्ति देकर दूसरे के विश्वास को कमज़ोर करना। देखो! हम युक्ति देने लगें कि गंगा में स्नान से क्या ? पर कितने लोग आते हैं, फिर पाठ भी करते हैं। जाप करना भी तो कर्म हुआ। हाँ, भावना न हो तो निमोनिया हो सकता है। भ्रम रोग है। पोह (पौष) के महीने में पहले सत्संग लगाते थे, थोड़े आदमी होते थे। दो-तीन तो उन दिनों भी बड़ी डुबकियां लगाते थे।

मुझे कहना यह है कि युक्तियाँ प्रायः विश्वास पर चोट मारती हैं। विश्वास न होने के कारण धर्म भी बोदा रहता है। बात यह है कि जिसके पैर में कांटा, उसका पैर टिकता नहीं। जिसमें संशय है, उसका धर्म कहां रहा ? सभाओं की कुसंगति ही नहीं, अपितु बहुत पढ़ना भी कि उसने यह लिखा है, उसने यह लिखा है,संशय पैदा करता है। कुछ तो युक्ति के क्षेत्र में एक ही मंत्र के एक ही अध्याय में दो अर्थ लिख देते हैं। मैंने तो यही समझा कि युक्तियाँ देते-देते प्रवाह में बह गया, बाद में उसने किताब को देखा नहीं। व्यक्ति का विश्वास स्थिर, निश्चय स्थिर होना चाहिये। मैं यह नहीं कहता कि पुस्तकें नहीं पढ़ो, पर मैं हीर-रांझा पढ़ने को क्यों कहूँ ? ऐसी बहुत चीज़ें पढ़ने से भी संशय हो जाता है। नर-नारियों के हृदय में एक संशय का रोग हो जाता है। संशय को मारना चाहिये। इसलिये गीता के चौथे अध्याय में कहा है कि ज्ञान विज्ञान को नष्ट करने वाले संशय को तू जीत। संशय आत्मगत भी होता है। बहुत लोग हैं, जिन्हें अपने में संशय होता है। मैं तुच्छ हूँ। यह क्यों सोचे ? यह ठीक नहीं। इसलिये संशय को मिटाओ।

रात के समय एक देवी चिल्ला उठी कि कोई आ गया। उसकी चीख सुनकर पड़ोसी आया। पर उसने देखा तो पता चला कि वह तो खम्भे को चोर समझ बैठी और चिल्ला उठी। रोटी का जला हुआ काला टुकड़ा सब्ज़ी में खा जाने पर, यदि संशय हो जावे कि मक्खी खाई गई, तो खाना अन्दर टिकता नहीं। इसी प्रकार संशय हो जावे तो धर्म हृदय में टिकता नहीं। रणभूमि में गोले गिरने पर वीर लोग नहीं कांपते, किन्तु लाड़-प्यार में पाले गये लोग दूर देश में समाचार पढ़ने पर काँप जाते हैं।

मैं पालमपुर में ठहरा हुआ था। जिनके यहाँ ठहरा हुआ था, वे बड़े संशयी थे। उनके यहाँ धन तो बहुत था, पर घर में एक बरछी भी नहीं थी। वह कहते कि इधर से एक कलगी वाला आवेगा—ऐसा लिखा हुआ मैंने पढ़ा। राजपूतों से भी वहां मैं मिला। उन्होंने कहा कि हमारे पास ग्यारह बन्दूक हैं। हम क्यों डरें किसी चोर-डाकू से। कहना यह था कि संशय ने दुर्बल बनाया। अपने आप में भी संशय और दूसरों में भी। जब संशय हो, तो

भक्ति मार्ग क्या रह जावे ? इस हिन्दू जाति में हौसला नहीं रहा। इनमें विश्वास नहीं अपने पट्ठों पर, रगों पर, अस्त्र-शस्त्र पर। हमें दुर्बल विश्वासी नहीं होना चाहिये।

गाँधी जी की पीठ में इतना बल नहीं था, जितना उनमें विश्वास था। विश्वास की कितनी बड़ी सत्ता है कि ब्रिटिश गवर्नमैंट जैसे शक्तिशाली चले गये। हमें उनके जैसा विश्वास टटोलना चाहिये। यह पक्की बात आप में आवे कि भगवान के बिना हमारा कोई और मुक्तिदाता नहीं है।

अनन्य विश्वास हो। राम मेरा कल्याण करेगा, यह विश्वास जमाना चाहिये। गीता में महाराज का वचन है, 'जो अनन्य भावयुक्त जन, मेरे में पूर्ण विश्वास रखते हुए नित्य चिंतन करते हैं, उपासना करते हैं, इस प्रकार जीवन यापन करते हैं। ऐसे मुझमें लीन हुए पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं चलाता हूँ।' सारा दिन जपना कोई जरूरी नहीं, काम भी करना हुआ। यह भी तो आवश्यक नहीं कि कोई पतिव्रता सारा दिन पति के संग रहे। यह संशय न हो कि भगवान के अतिरिक्त भी कोई व्यक्ति है, जो मुक्तिदाता है। यह विश्वास की भावना हमें अपने आराध्य में आनी चाहिये।

बच्चे में बड़ी भावना होती है। बच्चा जब भूखा होता है, तो माँ की ओर ही देखता है किसी शक्तिशाली बड़े विद्वान की ओर नहीं देखता। हममें ऐसा ही बाल-विश्वास हो। उसको किसी और का भरोसा नहीं, केवल माँ का होता है। भगवान पर ऐसा ही भरोसा हो—अनन्य और निर्भरता, एक पर ही भरोसा।

हम नाम की आराधना करते हैं। इसमें विश्वास आवे, तो यह खेती फल देती है। यदि ऐसी बात न आवे, न होवे विश्वास या कच्चा विश्वास रहे, तो सब काम कच्चे रहते हैं। राम नाम पर बड़ा विश्वास हो।

उस परमेश्वर के नाम अनेक हैं। अनामी भगवान के नाम युग-युग में भिन्न-भिन्न रहे हैं। नाम से पदार्थ का बोध होता है। आग कहने से रोटी पकेगी, पर फायर कहने से नहीं, ऐसा नहीं। पर यह कुछ प्रीति का पागलपन है। हम क्यों दूसरों के विपरीत कहें ? हाँ, यह कहें कि हमें यह राम-नाम, परमेश्वर से मिला है। हम तो उसी का आराधन करेंगे। हम उसी को राम

कहते हैं, जो सर्वशक्तिमान है, जिसको क्रिश्चियन 'गॉड' कहते हैं, जिसको मुसलमान 'अल्लाह' कहते हैं। यहाँ परदेशी भी आते हैं, राम-नाम ही जपने लगते हैं। वे जानते हैं कि इस महात्मा से जो शक्ति प्राप्त हुई, उसको जपा करें।

अनन्य भक्ति होनी चाहिये। 'ऐसे भक्तों का योगक्षेम मैं स्वयं चलाता हूँ।' जो बच्चा माँ पर निर्भर रहता है उसकी चिन्ता माँ करती है। माँ बालक का सारा काम करती है। बालक बनकर भगवान के पास जाओ। पण्डित बनकर जो माँ के पास जाता है, उसमें विनीतता कहाँ ? बालक बनकर माँ के पास जावे, यद्यपि वह कितनी ही आयु का हो। भक्तों को उसके पास बहुत युक्तियाँ लेकर जाने से वह बात नहीं, जो बालक बन कर जाने से होती है। बाल-भाव के साथ पुकारने से, वह जगत-जननी उसको अपना लेती है।

भक्ति में दृढ़ विश्वास, अविचल निश्चय, अटूट आस्था होवे। कोई हज़ार युक्ति दे, प्रमाण दे, विचलित न होवे, विश्वास में अन्तर न आवे। जो मूर्ति हृदय में आकर बस गई, फिर दूसरे के लिये कोई स्थान न होवे।

साधना-सत्संग हरिद्वार,
दिनांक-12.4.1957
समय प्रातः 11.00 बजे

❑❑

निश्चय

भक्तिमार्ग में बिना निश्चय के अधिक लाभ होना सम्भव नहीं है। किसी भी व्यक्ति, साधक अथवा दर्शनाभिलाषी की इच्छा, परमेश्वर को अपने सम्मुख उपस्थित देखने की होगी। वेदान्तियों की धारणा है कि भगवान तो सर्वव्यापी है, यदि वह रूप धारण करके किसी एक व्यक्ति के सम्मुख उपस्थित हो जाये, तो वह सर्वव्यापी कैसे रहेगा ? किन्तु हमारा निश्चय है कि जिस प्रकार, कोई भी बोला हुआ शब्द वायुमण्डल में सर्वत्र प्रसारित हो जाता है, किन्तु वह तभी सुनाई देता है, जब रेडियो की सुई एक विशेष बिन्दु पर आये। इसी प्रकार हम जिस किसी भी रूप में परमेश्वर को देखना चाहें, उसे देख सकते हैं। वह आपका कष्ट निवारण करने के लिये, व आपके साथ खेलने के लिये आपको दर्शन देंगे।

यदि आपका निश्चय कमज़ोर हो, तो भी परमेश्वर से प्रार्थना करने पर, वह आप की सहायता करेंगे तथा आपको पूर्ण निश्चय देंगे।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 27.12.1948,
समय अपराह्न 3.00 बजे

❑❑

ध्यान-योग

श्री अधिष्ठान

1

जो बातें मैंने कही हैं, वे आप समझते ही हैं, पर बार-बार मनन करने से याद भी होती हैं। नाम की आराधना में बड़ी प्रीति होनी चाहिये। भावना बड़ी अच्छी होनी चाहिये। आराधना आप सभी करते हैं, श्री अधिष्ठान सामने रखकर भी और वैसे भी। कई के पास यह सिद्ध चक्र है। कोई और भी ले सकता है और उसको दिया जा सकता है। पर इसमें ज़रा भावना की आवश्यकता है। ध्यान के बाद, हो सके तो उठा कर नहीं तो वहां ही रखा रहे, पर रुमाल इस पर ढक दिया जावे। केवल ध्यान के समय खोला जावे। यह श्री अधिष्ठान सिद्ध चक्र है। स्वास्तिक इसके चारों ओर हैं। यह स्वास्तिक विघ्न-विनाशक, कार्य-सिद्धि करने वाला है। नीचे कमल बड़ा मांगलिक, ऊपर श्लोक में भगवान का स्वरूप, मन्त्र के साथ सूर्य है। (सूर्य की बड़ी उपासना होती है)। विश्वामित्र को इस सूर्यदेव का बोध हुआ था।

यह सूर्य जीवन भी देता है, जीवनदाता है। जो इसका दिव्य रथ चलता है, वह सब प्राणी और अप्राणी जगत में, मृत्यु और अमृत दोनों भरता जाता है। प्राणियों में भी यह जीवन देता है। सूर्य न हो तो पांच-सात वर्ष में सब संसार समाप्त हो जाये। यह दुर्गन्ध को नष्ट करता है। यह ओज, तेज का केन्द्र–बड़ा मांगलिक है। स्वास्तिक के भी चारो कोने मिलाने से सूर्य-स्वरूप बन जाता है। यह सूर्य हमारे लोक को ओज-तेज देने वाला है। यह बड़ा शुभ चिन्ह है। ज्योतिष में इसका बहुत माहात्म्य है। यह सब प्रकार से ऊंचा माना गया है। लोग आध्यात्मिक दृष्टि से हमारे देश में दोनों समय सूर्य के दर्शन करते हैं। फिर इसमें राम-नाम जो सूर्य के केन्द्र में है। अतः यह सिद्ध चक्र बड़ा उत्तम बन गया। इससे साधक को बड़ा बल मिलता है। यह विघ्न-विनाशक है, विपरीत लहरों का, दुष्ट विचारों का प्रभाव नहीं होने देता। इसकी

थोड़ी व्याख्या इसलिये की गई कि श्री अधिष्ठान रखने वालों को व्रत का भी पालन करना चाहिये।

मंगल और कल्याण कर, सिद्धि शान्ति शुभ कार।
अधिष्ठान सम्मुख धरो, करके शान्त विकार।।
त्राटक करके अल्पतर, नैन मूंद कर ध्यान।
मन्त्र राम राधो शुभ, सब से उत्तम मान।।
साधक समझो है व्रत, आदर लिये अगाध।
अनुचित स्थान जन हाथ पर, रखना है अपराध।।

सब लोकों में राम-नाम व्यापक है। थोड़े समय से ही यह श्री अधिष्ठान कुछ साधकों ने लिया है। इसे अनुचित स्थान पर नहीं रखना। जो साधना करने वाले हैं, वे यदि ऐसी भावना से लें, तो उनको भी मिल सकता है, किन्तु जो व्रत का पालन करें।

वैसे भी आप सबके सामने राम-नाम है ही। जब कोई ध्यान में बैठे तो सात बार नमस्कार अर्थात् नमस्कार-सप्तक बोलकर, करके बैठे। नमस्कार सदा झुक कर करना चाहिये। जहां प्रणाम, वंदना, नमस्कार आता है, वहां सिर झुकना चाहिये। फिर त्रिकुटी में जाकर विचारें। सो यदि बाहर न भी रखा, तो अन्दर तो है। आत्म-शक्ति जब ऊपर को जगती है, तब समझो कि अन्दर अष्ट-चक्र में आप ही चला गया। जब नाम लिया, तब नमस्कार करने को कहा जाता है। नमस्कार से क्या होता है भला ? हम नमस्कार करके स्थापित करते हैं-- तो फिर विघ्न-विनाश होता है और मंगल मिलता है। भावना ऐसी बनानी चाहिये। सारे दिन फिरने वाले जमींदार के लड़के को भी सूर्य की किरणें बड़ा लाभ पहुंचाती हैं। मजदूर और ऐसे सभी दूसरों को सूर्य से शक्ति मिलती है। धूप में रहने वाले पौधे की शक्ति, साये में रहने वाले पौधे से अधिक होती है। इसमें वह चीज़ है जो घृत में भी इसी से आती है। इसी प्रकार दूध भी, घर में बंधे रहने वाले पशु की अपेक्षा, बाहर फिरने वाले डंगर(पशु) का अधिक पुष्टिकारक होता है। ये किरणें जीवन-तत्त्व की लहरें हैं। हमारे जीवन का देने वाला, यह जगत में बड़ी चीज़ है। । ऐसा बार-बार ध्यान करने से साधक को लाभ होता

है। सूर्य की यह आराधना न करके, अध्यात्म सूर्य की आराधना करो, जो इसको भी प्रकाश देता है। भावनाहीन व्यक्ति हो तो फिर अधिक लाभ नहीं होता। भावना बलिष्ठ होनी चाहिये। वैसे तो पानी से, मिट्टी से, कई रोग मिट जाते हैं। कोई देहाती लड़का नहाता रहे तो इतना लाभ नहीं होता, जितना नाभि के नीचे मल कर नहाने से होता है। किन्तु वह भी भावना से नहाये। एक पंडा गंगा में हर समय टटोलता ही रहता है। गंगा के पानी का उसे कोई लाभ नहीं। कहना यह है कि भावना से लाभ होता है। भावना वाला नहाये, हर-हर गंगा करके, तो न निमोनिया हो, न सिर दर्द, भावना प्रबल जो हुई। भावना प्रबल नहीं, ऐसे तो तोता भी राम-राम रटता है। यदि मनुष्य बोलता हो, तो शायद कभी ध्यान आ जाये और लाभ हो जाये। किन्तु साधक की भावना तो परमेश्वर को विद्यमान करने की है। जो देवता का आराधन करने वाले हैं, वे नमस्कार करके बैठते हैं। वह उपस्थित है, यह समझकर आराधना करने से बड़ा लाभ होता है। अखंड जाप में यह भावना हो कि भगवत्-कला अब यहां पैदा हो चुकी है। ऐसा समझ कर मंत्र आराधन किया, तो फिर कृपा का अवतरण, कृपा की लहरें आती हैं। रेडियो का यंत्र रख देने से सब ही स्थानों की आवाजें, उस पर प्रकट होती हैं। एक साधक को यह समझना चाहिये कि अब हृदय यंत्र बन चुका है। सारा दिन-रात ही तो रेडियो बोलते रहते हैं। कोई कहे कि पीकिंग का, मास्को का शब्द कैसे आ जायेगा ? न पहाड़ रोकते हैं, न समुद्र। हमने नाम लिया है। हमारा मस्तक यंत्र है। यहां भगवान की कृपा आयेगी, अवश्य आयेगी। दूर-दूर से समाचार खम्भों के द्वारा भी आते हैं। हमारा तो यह वायरलैस का है। यह तो ऊंचे से ऊंचे स्वर्ग से ले आता है। सब ऊंचे-ऊंचे शब्द होते हैं, तो विपरीत धारा यहां आयेगी नहीं। दिल्ली की सुई लगाने से ही दिल्ली की आवाज़ आयेगी। पर यह अवश्य है कि स्टेशन की शक्ति का प्रश्न होता है। दूसरे तोड़ते हैं, तो वे शक्तिशाली स्टेशन के तरंग तोड़ने से टूटते नहीं। पिछली लड़ाई में वह यंत्र भी बड़ा शक्ति-पूर्ण होगा, वह साथ बोलता था।

उस धाम से जो कृपा-अवतरण होती है, उसको कोई भी तोड़ नहीं सकता-- यह भावना होनी चाहिये। इसी से श्री अधिष्ठान का अवतरण हुआ।

इसमें शुभ ही आयेगा। यह सब कुछ आपके अन्दर की भावना पर है। वह शुभ जो निश्चय के साथ लिया—धारण किया, वहां कृपा शुभ ही की होती है।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 21.11.1954,
समय प्रातः 11.00 बजे

2

हमें यह समझना चाहिये कि यह चक्र शुद्धि करने वाला, शांति करने वाला और शुभ करने वाला है। यह राम-नाम का मंत्र है। जिस मंत्र का या जिस शब्द का कोई देवता शक्तिशाली हो, उतना ही मंत्र, शक्ति वाला होता है। तो इस मंत्र का भगवान शक्तिशाली है। इसलिये इस मंत्र में बड़ा बल है, बड़ी शक्ति है। यह तो व्रत के पहले भाग की व्याख्या हुई।

अब दूसरे भाग में यह वर्णन किया गया है कि इसके आगे बैठकर कैसे ध्यान करना चाहिये ? वह ऐसे कि श्री अधिष्ठान को सामने रखकर, पहले दो मिनट के लिये त्राटक करना चाहिये। त्राटक का अर्थ है— टकटकी बांध कर देखना। बिना आँख झपके देखा जाये। ऐसा त्राटक करने से वृत्ति टिक जायेगी। ऐसा भी त्राटक न किया जावे, कि आँखें दुखने लग जावें। जितना आसानी से हो सके, त्राटक किया जाये। इस त्राटक में भी मन में शब्द का जाप करते रहना चाहिये। फिर आँखें बन्द करके ध्यान में बैठ जाना चाहिये। यदि वृत्ति 10-15 मिनट बाद बिखर जावे, तो फिर त्राटक दो मिनट के लिये कर लेना चाहिये और फिर इसी प्रकार से ध्यान करते रहना चाहिये। ऐसा करने से वृत्ति टिक जायेगी।

तीसरे भाग में इसे रखने का साधन वर्णन किया गया है। इसे किसी भी अनुचित स्थान पर न रखा जावे। इसे अपनी बैठक या किसी कमरे में न लटकाया जावे। ऐसा (पालन) न करने से इसकी महानता नहीं रहती। आज की तो हालत यह है कि भगवान राम, भगवान कृष्ण, सीता और राधा की फोटो कैलेन्डर पर छपती है और जगह-जगह बिकती हैं। लोगों को उनका

आदर करना भी भूल गया है। मुझे ये सब देखकर बड़ी घृणा होती है। एक बार लाहौर में 'प्रताप' समाचार-पत्र में स्वामी दयानन्द जी की फोटो छपी। किन्तु दूसरे पृष्ठ पर विज्ञापन के लिये बूट की फोटो छपी। जब बन्द किया जावे तो दयानन्द जी के फोटो पर बूट की फोटो आ जाती थी। सनातन धर्म के 'वीर भारत' ने इस पर कड़ी टीका-टिप्पणी की। जिसके कारण 'प्रताप' के सम्पादक को इस भूल की क्षमा मांगनी पड़ी। जिसने साधना न की हो एवं दीक्षा न ली हो, उसको श्री अधिष्ठान नहीं दो। यह दीक्षित साधक-मंडल (Inner-circle) में ही रहना चाहिये। किसी भी अनुचित हाथ पर नहीं रखना। लोग रोते बच्चों को चुप कराने के लिये ठाकुरों के खिलौने दे देते हैं। यह बहुत गलत है। ऐसा नहीं होना चाहिये। आप में से बहुत अधिक गृहस्थ हैं। इसलिये इस श्री अधिष्ठान को किसी भी अनुचित हाथ और अनुचित स्थान पर न रखें। यह बड़ा अपराध है। यदि किसी के पास ध्यान का अलग-थलग कमरा हो, तो उसमें भी इस पर शुद्ध कपड़ा डालकर रखना चाहिये। जिनके पास न हो, वे शुद्ध कपड़े में लपेट कर ट्रंक में या सन्दूक में रख लेवें। इसकी चिन्ता नहीं कि उस सन्दूक में और भी कपड़े हैं। कपड़े और भले ही हों। ध्यान के समय बाहर निकाल लिया करें। बाद में फिर वहीं रख दिया करें। ध्यान करते समय उसके साथ किसी भी और चित्र को न रखें। किसी भी सत्संग में इस को न लटकायें, क्योंकि यह तो केवल पूजा-पाठ करने के लिये है। मुझे पूरा विश्वास है कि आप इन बातों का अवश्य पालन करेंगे। लोग इसकी नकल भी करें, तो उसका उनको लाभ नहीं होगा। क्योंकि नकल किये हुए चित्र के पीछे वह भावना और शक्ति न होगी। इसलिये इसे सम्भाल कर ही रखें। इसके सामने केवल दिये गये मंत्र का ही जाप करें। आज के हिन्दू धर्म में बड़ी गिरावट आ चुकी है। यह तो केवल पुराणों के टेक पर ही चल रहा है। सिनेमा घरों में कृष्ण और राधा को नाचते दिखाते हैं। बाजारों में बड़े-बड़े स्थानों पर अवतारों की मूर्तियां लटकाई जा रही हैं। यह अधर्म है। लोगों में आदर की भावना न रही। इस भावना को लाना चाहिये।

किसी साधक में भावना कैसे उत्पन्न हो ? इसके लिये ही मैंने भक्ति-प्रकाश लिखा है। भक्ति-प्रकाश लिखने के समय मैंने सत्संग करना और कथा करनी छोड़ दी थी। मैं भक्ति-प्रकाश सोच समझ कर या कथा-कहानी घड़ कर लिखने नहीं बैठा था। मैं लिखता जाता था। जब लेखनी रुक जाती थी, तो हाथ रुक जाता था। जो चलने लगती थी, चलती ही रहती थी। जब सोचने की शक्ति (Conscious Mind) पर दूसरी शक्ति (Sub-conscious mind) का प्रभाव छा जाये, तो अपनी सोच और मन की सोच बन्द हो जाती है और दैवी सोच काम करने लग जाती है। यह तो मैंने शक्ति प्रभाव (sub-conscious mind) में लिखा है। मैं उसे बनाने नहीं बैठा था। यह तो ईश्वर की शक्ति से बन गया। मैंने यह कदापि नहीं सोचा था कि किस कथा के बाद कौन सी कथा होनी चाहिये ? कहां से प्रारम्भ करनी चाहिये और कहां बन्द करनी चाहिये ? यह तो आप ही लेखनी चलने लग जाती थी और आप ही रुक जाती थी। मुझे राम-नाम मिला। मुझे अपने अन्दर और बाहर प्रतीत होने लगा। तब यह भक्ति-प्रकाश लिखा गया।

अध्यात्मवाद की बात कहने का बहुत थोड़े व्यक्तियों को अधिकार होता है। जिनके अन्दर राम-नाम की ज्योति जग रही हो, वही कह सकता है। दो प्रकार के लेखक होते हैं– एक तो दूसरे की चुरा कर लिखने वाले, दूसरी प्रकार अपने आप अनुभव करके लिखने वालों की होती है। किन्तु देखो, खड़ाऊं का रिवाज़ बहुत है। लोग साधुओं की चीज़ समझकर लेते हैं, किन्तु जो रामचरण की पदवी भरत के लिये थी वह अवलम्बन है। मेरे सम्पर्क में गृहस्थ भी हैं और साधु भी। दो तीन साधुओं ने आगे नाम देने की शक्ति भी मुझ से ली। वह शक्ति देते समय मैं कौन-सा मंत्र बोला करता हूँ, वह तो यहां नहीं बोलूंगा। किन्तु उन साधुओं को सफलता नहीं हुई, क्योंकि उनमें बड़ाई आ गई। अपने में अहंकार और बड़प्पन नहीं आना चाहिये। जितना छुपाया जाये, उतना ही अच्छा है। मुझे ज्ञात है कि कई गृहस्थ पूरे पहुँचे हुए हैं, किन्तु वे लोगों की दृष्टि से छिपे हुए हैं।

जो श्री अधिष्ठान से सफलता प्राप्त हो, वह किसी से नहीं कहना। आम नहीं कहना। अपने गुरु से सब कुछ कहें और एक आध अपने विशेष मित्र सज्जन से भी कह सकते हैं। श्री अधिष्ठान की नकल करने से कोई भी काम नहीं होगा, क्योंकि यह बहुत तपस्या करके राम से मांगा गया है। इसके पीछे मेरी वर्षों की कमाई है। ये ऐसा ही अवलम्बन है जैसे भरत को राम की खड़ाऊं।

साधु-आश्रम होशियारपुर,
दिनांक- 10.12.1954
प्रातः 11:00 **बजे**

3

आज की बैठक अन्तिम है। अब एक-एक करके सब चले जायेंगे। आप यहां से कुछ धारणा करके ही जायें। मैं आप से अध्यात्मवाद की बातें थोड़े दिनों से कह रहा हूँ। आप मन्त्र का जाप करें। अपने मन में यह भाव और निश्चय लेकर जायें कि मन्त्र में शक्ति है और जिस मन्त्र का आराधन करते हैं, वह शक्ति धाम से ही अवतरित हुआ है। इसीलिये इसमें शक्ति है। यह मन्त्र चैतन्य है। यह भले ही स्याही के साथ कागज पर लिखा हुआ है, किन्तु इसमें भावना बहुत है और यह चैतन्य है। शास्त्र जानने वालों को मन्त्र का निश्चय होता है। इसका बड़ा प्रभाव होगा। मन्त्र देवताओं की काया है। उन्हीं से यह प्रकट होता है। मन्त्र का दृश्य, जो देव का शरीर है, मन्त्र इसमें ही निवास करता है और इसमें ही प्रकट होता है। न जानने वाले व्यक्तियों के पास युक्ति होती है, किन्तु उसका बल नहीं होता। जो लोग युक्तिवाद में रहते हैं, उनका क्षेत्र भिन्न होता है और जो अध्यात्मवाद में होते हैं, उनका क्षेत्र भिन्न होता है। अध्यात्मवादियों को बाहर की युक्तियों से दुर्बल नहीं बनाना। अनुभवी व्यक्ति जो कहे, वह सत्यज्ञान से कहता है। यह हमारा सौभाग्य है कि हमें ऐसे अच्छे साधना-सत्संग के अवसर मिलते हैं। इस मन्त्र का आराधन करना, अवश्य सफलता प्राप्त होगी।

आज कल लोग सब बुराइयां कलियुग का नाम लेकर मढ़ देते हैं। वास्तव

में लोगों में अच्छी भावना ही नहीं रही। मन्त्र का जाप करने में यदि उससे कोई लाभ नहीं होता, तो यह मन्त्र का दोष नहीं है, अपितु यह समझो कि मन्त्र के लिये वैसी धारणा ही नहीं रही। धारणा के अनुसार ही ऐसी कोई बात चला करती है। यदि वह ही न आवे तो कोई चीज़ ठीक नहीं। अपनी धारणा तो रहस्यवाद है। आप यहां पर आये हैं तो यही धारणा पूर्ण निश्चय और दृढ़ता के साथ लेकर जायें। यह मन्त्र कोई सूखे अक्षर नहीं, यह तो देव का प्रकाश है। अब मैं कुछ श्री अधिष्ठान के बारे में कहूंगा। श्री अधिष्ठान को बहुत आदर के साथ रखियेगा जैसे भरत के लिये राम जी की खड़ाऊँ थीं। यह बहुत मांगलिक है। यह चित्र कई चीज़ें मिलने से यन्त्र बना है। आज से बहुत दिन पहले मुझ में यह मन्त्र बसा और नस-नस में रच गया। फिर इसके बाद अनेक स्थानों पर गया। सब स्थानों के नियम पालन किये। आदर और सत्कार किया, किन्तु मन के कोठे में स्थान किसी को नहीं दिया। मुझे अपने राम पर पूरा भरोसा था। विश्वास पूरा ही होना चाहिये, इसीलिये आपकी श्री अधिष्ठान पर दृढ़ता होनी चाहिये। आज के संसार को मनुष्य नष्ट कर सकता है। दो बड़ी शक्तियाँ बम बनाने पर खूब लगी हुई हैं। किन्तु यह कोई आश्चर्य नहीं। भगवान सृष्टि का नाश करता है और नाश करने वाले साधन मनुष्य के ही हाथों बनते हैं। इस संसार में बड़े विघ्न हैं। बड़ी धारायें चल रही हैं। एक दूसरे पर यह ठोसने की पूरी चेष्टायें भी हो रही हैं। इसी प्रकार आकाश में भी संकल्प आते हैं। न जाने यह आपके ध्यान में कितने विघ्न डाल रहे होंगे? ऐसे भी संकल्प हैं, जो शुभ नाद फेंकते हैं और वे मिलते भी हैं। जैसे वैखरी वाणी का शब्द उच्चारण किया हुआ बहुत दूर तक जाता है, इसी प्रकार आकाश से ध्वनि भी आत्मा को सुनाई देती है। जब आपके सामने श्री अधिष्ठान होगा तो विघ्न डालने वाले संकल्प, आपके मन को विचलित नहीं करेंगे। श्री अधिष्ठान ने वास्तव में उनको कील दिया है। आप इसे बड़े आदर से समझें और रखें। इसके पास होते हुए आकाश में कोई भी तुम्हारा विरोध करने वाला नहीं रहेगा। त्राटक अवश्य करें। आँख बड़ा प्रभाव डालती है। टकटकी बांध कर आप गम्भीरता से किसी चीज़ पर भी देखोगे तो उसका बड़ा प्रभाव पड़ेगा।

त्राटक करने से तो एक पन्थ दो काज वाला मामला है। इससे ध्यान भी होगा, कोई भी विघ्न नहीं पड़ेगा, दूसरे आँख की शक्ति भी बढ़ेगी। इसलिये इसका उपयोग बड़ी भावना से कीजियेगा। ये हमने अध्यात्मवाद के विषय में बहुत थोड़ी बातें की हैं। बहुत खाने में तो कुछ रखा नहीं होता। इसी प्रकार अधिक बोलना भी वाणी को दुर्बल ही करता है। थोड़ा सुनो, थोड़ा बोलो, यही रीति है। जाप का, ध्यान का अभ्यास अधिक से अधिक करो। सुनने की बातें भी थोड़ी सुनो। मैंने राम-नाम एक बार सुना। उसके बाद इतनी तृप्ति हुई कि फिर दूसरों का आदर तो किया, किन्तु मन के कोठे में स्थान और किसी को नहीं दिया। मैं सब स्थानों पर गया, किन्तु मेरे मन में यह बात ही नहीं सूझी कि मैं किसी के ढंग को अपने मन में स्थान दूं। निश्चय बहुत दृढ़ होना चाहिये।

इस मन्त्र की बहुत साधना करना। देवता और मन्त्र एक ही हैं। मैं तो आशा करता हूँ कि आप इस मार्ग पर चलते रहेंगे। मुझे हर्ष है कि इस संगति में सब प्रकार के लोग हैं। परमेश्वर की कृपा सब पर हो। आपकी वृत्तियाँ शुद्ध हों और आप सब के मन में, तन में श्रीराम-नाम बस जावे।

साधना-सत्संग, होशियारपुर
अंतिम दिन



ध्यान में बैठने की पूर्व तैयारी

ध्यान में बैठने के पूर्व उसके योग्य मनोभावना बनानी चाहिये। उसके साधन हैं–

1. सबसे प्रथम बैठने के समय आचमन करें , आंखों पर ठंडे पानी के छींटे दें, गर्दन तथा मुंह पर ठंडे हाथ फेरें। इससे मनोवृत्तियां शान्त होती हैं और चित्त स्थिर होता है।
2. बैठने का जो आसन हो तथा ग्रन्थ व मूर्ति रखने की जो चौकी हो, वह केवल उसी काम के लिये हो, उनको और किसी काम में न लाया जाये।
3. हो सके तो ध्यान का कमरा भी अलग ही नियत हो। उसमें वीतराग पुरुषों के चित्र लगे हों, जिन्हें देखने से हमारी मनोभावना वैसी ही बन जाये।
4. ध्यान का समय नियत हो। किसी भी कारण उसको आगे-पीछे न किया जाये। ऋतु परिवर्तन व अपनी सुविधानुसार उसको बदल सकते हैं, पर जो एक बार नियत किया जाये, उसको नहीं बदला जाये। यदि कोई प्रिय मित्र अथवा निकट का सम्बन्धी भी उस समय मिलने आये, तो उनको नम्रता से कह दो कि यह हमारे ध्यान का समय है। किसी और समय पर उनको आने को कह दो, पर ध्यान का समय न टालो। इस नियम की अवहेलना करने से मनोभावना शिथिल पड़ जाती है और सफलता दूर जा पड़ती है। ध्यान में नागा भी कभी नहीं हो।
5. ध्यान में बैठने के पूर्व देवता को उसका नाम लेकर आह्वान करो और नमस्कार करके उसका पूजन करो और ध्यान में यह भावना बनाये रखो कि मेरा देवता मेरे सम्मुख उपस्थित है।

6. ध्यान में जब बैठो तो अनुभव करो कि प्रभु की कृपा मुझ पर अवतरित हो रही है। ऐसा करने से बहुत लाभ होता है।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 25.12.1940



ध्यानावस्था में मन की स्थिति

हमारा साधन मन्त्रयोग है। मन्त्र में अपनी शक्ति होती है। मन्त्र मूर्ति है। यह भगवत् कृपा का मार्ग है। इसमें किसी को बाध्य नहीं करना चाहिये। इसमें तो केवल नाम अन्दर की खिड़की खोलता है, फिर उसमें भगवत्-कृपा की किरण स्वयमेव आती है।

बहुत से साधक समझते हैं कि मन को रोकने से वह रुकेगा, किन्तु रोकने से वह अधिक चंचल होता है। असल बात है उसको ढीला करना। इससे वह अपने आप शान्त हो जाता है। व्यवहारिक मन की उपेक्षा करनी चाहिये। इससे अन्तरात्मा की स्फूर्ति होती है। जिस प्रकार नींद का चिन्तन करने से नींद नहीं आती, बल्कि भावों को शिथिल कर देने से जल्दी आ जाती है। इसी प्रकार बहुत सोचने से कि हमारा मन टिक जाये, इससे मन और अधिक चंचल होता है। विवेक अधिक होना चाहिये, खींच नहीं होनी चाहिये। भगवत्-कृपा का मार्ग मन को घेरने का मार्ग नहीं। इसमें मन को शिथिल करना चाहिये, उसकी उपेक्षा करनी चाहिये। यह समझना चाहिये कि मैं तो नाम का ध्यान करता हूँ। मन के इधर-उधर जाने को व्यर्थ समझना चाहिये। स्वभाव से जो काम होता है, वह प्रयत्नपूर्वक किये जाने वाले काम की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है। पवन पानी में लहरें उत्पन्न करती है। इसी प्रकार अन्तर्मन की जागृति तथा व्यवहारिक मन का वशीकरण, मन के आनन्द को उत्पन्न करता है। मन को जबर्दस्ती कभी आनन्दित नहीं किया जा सकता।

आत्मशक्ति जगने तथा भगवत्-कृपा अवतीर्ण होने के यह लक्षण हैं— देहपात होना, कम्प होना, हर्ष होना, हँसने लग जाना, पसीना आ जाना व रोंगटे खड़े हो जाना। यह सब लक्षण सब में नहीं होते। किसी में कोई और किसी में कोई प्रकट होता है। कीर्तन में शिथिलता होनी चाहिये अर्थात् जो हरकतें होती हैं, उनको रोकना नहीं चाहिये। उन्हें होने देना चाहिये (साधना-सत्संगों में)।

साधना-सत्संग होशियारपुर, दिनांक 4.12.1950 ❑❑

ध्यान

ध्यान अस्थिर या चंचल मन से नहीं किया जाता। वासना के मेल से मन अस्थिर व चंचल होता है। दत्तात्रय ने देखा कि लड़की ने धान कूटते समय चूड़ियाँ उतार लीं, एक ही रहने दी, ताकि चंचलता दूर हो। मन की क्रिया में वासनाओं की बहुत-सी चूड़ियाँ हैं। जिस-जिस इन्द्रिय के साथ मन होगा, वही क्रिया करती है। व्यास जी ने शुकदेव जी को ज्ञान-भिक्षा लेने के लिये राजा जनक के पास भेजा।

जनक जी ने सोने के कटोरे में दूध भर कर दिया और कहा कि एक बूँद दूध गिरने पर सिर कट जायेगा। आकर्षक नाच-गान होने पर भी मन संतुलन में रहा। कुछ नहीं सुना और कुछ नहीं देखा, यही साधना है। मन सम रहा। वैभव-विलास में भी मन न जा सका, साधना पूरी हुई। विषय-वासना की आसक्ति ध्यान के द्वारा कट जाती है। मन अछूत हो, पवित्र हो।

मानव वही जो अपनी त्रुटियों, गल्तियों को देखे और दूर करे। फिर ज्ञान लेने के लिये अनंत की शरण ले। उसी से मन-बुद्धि का सम्बन्ध पैदा करे। क्योंकि यही प्रभाव का केन्द्र है। विद्युत रगड़ से पैदा होगी। इतना रगड़ें कि जल न जाये। अनंत समुद्र में गोता लगाने से शीतलता होगी, फिर विषय-वासना की जलन नहीं होगी। यही अनंत में लीन होना है।

❑❑

प्रभु विद्या (योग)

परमात्मा की प्राप्ति के लिये, आत्मस्वरूप को देखने के लिये वृत्तियों को फोकस करो अर्थात् मन, चित्त-वृत्ति को एकाग्र करके लक्ष्य पर एक सीध से देखना। जब तक फोकस नहीं होगा, परमात्मा कैसे दिखाई देगा ? एक सीध में आ जाना ही ध्यान लगाना है। जो मन में हो, वह वाणी में और जो वाणी में हो, वह कर्म में। जो अपने आपको शुद्ध कर लेता है, वही निर्दोष होकर शुद्ध-बुद्ध होकर प्रभु के निकट होता है। इन्द्रियरूपी शीशे को साफ करो, मल धोओ, मार्ग सीधा-साफ हो जायेगा। अभ्यास करने से, प्रार्थना नियम से करने से, जीवन नियमित हो जाता है। प्रभु-कार्यों में सफलता लाने के लिये जीवन पवित्र बनाओ। ईश्वर पर दृढ़ विश्वास करो।

रोग व दुःख साधक के लिये परीक्षा हैं। हिम्मत से बाधाओं को जीतना चाहिये। जो प्रभु पर दृढ़ विश्वास करके कठिनाइयों को जीत लेता है, प्रकृति माता उसके लिये द्वार खोलती जाती है, मार्ग स्वच्छ करती जाती है। जो नियम से, ठीक-ठीक नहीं चलते, किवाड़ उन्हीं के लिये बन्द होते हैं। निश्चयपूर्वक प्रार्थना करो, प्रभु से मिलाप करो, वरना समय भागा जा रहा है। फिर हाथ नहीं आना। समय अमूल्य धन है।

जीवन का लक्ष्य सत्य- ज्ञान की प्राप्ति है। संयमित जीवन बनाओ, इन्द्रियों को वश में करो, आवश्यकतायें थोड़ी करो। ज्यों-ज्यों शरीर सूक्ष्म होता जायेगा, त्यों-त्यों आत्मिक विकास होता जायेगा। संयम के नियम तोड़ना शरीर से अत्याचार है। सोच-समझकर शारीरिक योजना बनाना– उपवास, आरोग्यता, तपस्या आदि पर विचार करना, अंतर्मुखी वृत्ति करना और प्रपंचों से बचना। जीवन का मूल्य समझो– समय का सदुपयोग करो। जीवन-साथी को पहचानो, उससे पूछो– 'सब कुछ वही करा रहा है। अपने आप को उसकी तरह शुद्ध बनाओ।' पवित्र बनो, ताकि उसके जैसे बनकर उसकी ओर आकर्षित हों। प्रभु के निकट जाने से कोई रोग नहीं आता। प्रभु के ध्यान से ही मन-शुद्धि होती है।

यदि हमें दृढ़ विश्वास हो तो वह हमारी प्रार्थना सुनता है। अंतर्मुखी वृत्ति करने से प्रभु से मिलाप होता है। संयम से, नियम से चलो। प्रभु-प्रेम के भजनों से अंतर को रंग दो। प्रभु ने अंतर-ध्वनि सबको दी है उसको सुनो और उसके दर्शन करो। चेतन अन्तरात्मा की आवाज़ ही प्रभु-दर्शन करना है।

मन का नियंत्रण– मन जिस वस्तु का चिंतन करता है, वही संस्कार पड़ जाते हैं। मन के कहे पर न चलें। जाप और सत्संग करने से शुभ संस्कार आते हैं। बुरे दूर होते हैं। जब तक कुमति को सुमति दबा नहीं लेती, कुमति सुमति का झगड़ा भीतर बना रहता है। काम, क्रोध, लोभादि की नोंकें झाड़नी चाहियें। जैसे कुंदन आग में तप कर बनता है, वैसे आत्म-शुद्धि तपस्या से होती है।

जीवन लक्ष्य– अपनी आवश्यकतायें कम करो। धन को मर्यादानुसार बरतो। किसी से माँगें नहीं। किसी को पकड़ के मत बैठो। संत के गुण ग्रहण करो। नमस्कार करो। अनंत की ओर चलो। अपनी डायरी बनाओ– संध्या समय दिन-भर के कामों की पड़ताल करो– अपना हिसाब मिलाओ। बुरे कर्मों के लिये प्रभु से प्रार्थना द्वारा बल माँगो कि वे दूर हों।

❑❑

स्मरण-योग

सिमरन से आंतरिक लाभ

सिमरन बहुत अच्छी चीज़ है। अधिक सिमरन से शरीर शब्दमय हो जाता है। राम-नाम का सिमरन रग-रग में बस जाता है— जैसे कोरे घड़े में तेल। मनुष्य की रग-रग में निवास हो जाता है। क्रोध और जितने दुर्गुण हैं, वे आप ही समाप्त हो जाते हैं। तो यह सिमरन बड़ा सहायक है। कदाचित् कोई दुर्गुण है, तो उसे अज्ञात रूप में दूर करता है। जैसे साबुन लगा कर कपड़ा थोड़ी देर रख दिया जावे, तो वह कपड़े की रग-रग का मैल निकाल देता है, ऐसे ही यह सिमरन है। दुष्ट संस्कारों को निकालने का सहज साधन केवल सिमरन है। वह कम-कम होते जाते हैं। जब नाम अधिक निवास कर लेता है, तो वासनायें दुर्बल होती जाती हैं और शुद्ध भावना पैदा होती है। बुराइयों से आप ही आदमी ठीक हो जाता है। दिल्ली में एक स्त्री ने कहा कि उसके किसी बंधु को यूं ही बेकार ताश आदि खेलने तथा बुरे कामों में समय बिताने की आदत है। फिर ऐसे शहरों में जहाँ समय ऐसे कामों में बीते, तो फिर उसमें भ्रष्ट कर्म आ जाते हैं। उसने किसी कारण अमृतवाणी को पढ़ना शुरू किया तो अब वह बड़ा अच्छा जीवन व्यतीत करता है।

जो शुभ अन्दर से जागता है, वह है ठहरने वाली चीज़। बाहर की बनावट नहीं ठहरती। एक पेड़ को काटकर किसी दूसरे पर लगाने से तो वह वृक्ष बड़ा नहीं हो जाता। वह तो अन्दर से उपजता है। जब व्यक्ति खुशी का समाचार सुनता है, तो आँखें आप ही कमल की तरह खिल जाती हैं। अन्दर यदि नाम बस जाये, तो बाहर आप ही प्रसन्नता आ जाती है।

जो चाहता है कि मेरा जीवन अच्छा हो, तो वह खूब सिमरन करे। खाली समय हर मनुष्य के पास होता है। मोटे काम तो करते हुए भी मनुष्य की वृत्तियां चलती रहती हैं। आदमी यदि हल चला रहा हो, तो उसको यदि हिसार या दिल्ली के बाज़ार का विचार आये, तो फिर यह खराबी करता है।

टिड्डी अंडे ज़मीन के अन्दर देती है, फिर कई सप्ताह बाद वे ऊपर आते हैं और इलाके का इलाका साफ कर जाते हैं। इसी प्रकार विचार भी मन में अंडे छोड़ जाते हैं और संस्कार खराब करते हैं। व्यर्थ विचार ही हमारे अन्दर कूदते रहते हैं। इससे बचने के लिये खाली समय भजन में लगावें। खाली समय का यदि शुभ उपयोग नहीं किया जाता, तो फिर विचार चलता ही है। यह विचार तो पकड़ कर नहीं मारा जा सकता। यदि हमने-आपने दूसरा विचार सिमरन का डाल दिया, तो फिर उस समय बुरा विचार आप ही समाप्त हो जाता है। सिमरन अन्दर को अच्छा बनाता है। खाली समय में व्यर्थ सोचने की बजाय सिमरन शुभ है। सिमरन करने से काम रुकता नहीं। मेरे अपने अनुभव में यह बात फिर-फिरा कर और मित्रों से मिल कर आई है और मैं इसी परिणाम पर पहुंचा हूँ कि जो सिमरन करते हैं, उनका काम रुकता नहीं। वे सब काम करते हैं और इस नाम सिमरन से सब कामों में अच्छे रहते हैं।

फिर शान्ति बड़ी होती है। मुझे ऐसे सज्जन मिले हैं जिन में रोना-धोना बहुत हो, जिन्हें इसी कारण खाना पचता नहीं। उनके पूछने पर मैंने दुःख निवारण की विधि सिमरन की बतलाई। सप्ताह भर में सिमरन से वियोग समाप्त हो जाता है। जो लोग बहुत देर तक इस प्रकार वियोग में रहते हैं, उनके मस्तक में बल नहीं रहता। सिमरन का साधन ठीक प्रकार किया हो, तो वे ठीक हो जाते हैं। आदमी कदाचित् दुःख से चूर-चूर हो रहा हो, यदि वह उस समय नाम का सिमरन करे, तो उसका मस्तक ठीक हो जाता है। जैसे पवन से बादल भाग जाते हैं, ऐसे ही सिमरन घबराहट को दूर करता है। सिमरन करने वाले में चुपचाप ऐसा बल-सा आता है कि उसका मानस-बल बढ़ जाता है। जिस काम में वह हाथ डालता है, वह सफल होता है। उसमें सभी प्रकार का बल बढ़ता है।

लायलपुर में मेरा एक मित्र था। वह मार-काट के दिनों में प्रतिदिन हर गाड़ी पर स्टेशन जाता था। बाहर से जहां मार-काट ज्यादा जोरों पर थी, गाड़ियां भर कर आती थीं। लायलपुर में भी गड़बड़ थी। उसके बंधु उसको स्टेशन पर जाने से रोकते थे, लेकिन वह जाता रहा। उसमें सिमरन से निडरता आई हुई थी। वह समझता था कि वह अकेला नहीं है। उसका 'राम' उसके

साथ है। सिमरन करने वाला बहुत निडर हो जाता है। वह अन्याय नहीं करता, किन्तु अन्याय से डरता भी नहीं। वह हानि-लाभ से भी निर्भय होता है। इससे मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि वह हित को न सोचे। वह तो चतुर भी होता है। यह तभी होगा जब सिमरन भावना से किया जावे, नहीं तो यदि ग्रामोफोन की प्लेट में राम-राम भरा हुआ हो, तो इस प्लेट को उससे कोई लाभ नहीं। लाभ तो भावना-सहित सिमरन करने से होता है। वह तो बड़ा कोमल हो जाता है। फूल की भाँति उसके मस्तक में खिलावट आ जाती है। उसका अन्दर जाग्रत होता है और अन्दर जाग्रत होने से ही जीवन बनता है और अन्दर जाग्रत, सिमरन से होता है। इससे अच्छाई आती है, सेवा-भाव आता है। रात को नींद न आना, स्वप्न अधिक आना आदि के सब कांटे सिमरन करने वाले के दूर हो जाते हैं। सिमरन से ध्यान में बड़ी सहायता मिलती है, क्योंकि इससे बुरे संस्कार अन्दर से निकल जाते हैं। यह सिमरन का माहात्म्य बताया है। मैं यह भी अवश्य बताऊंगा कि यदि भावना सहित सिमरन हो, तो फिर राम-कृपा हो जाये, नहीं तो उत्तरदायित्व वाली बात नहीं। जैसे बीज कहीं से लाये, परन्तु पक्का विश्वास नहीं और जब बीज फार्म का होता है, तो उसके ठीक होने की जिम्मेवारी होती है। जब यह समझ कर औषधि का सेवन किया जावे, कि डॉक्टर जिसने यह दी है, बड़ा बुद्धिमान है, अतः इसका प्रभाव होगा, तो औषधि अवश्य प्रभाव करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि खूब समझ कर, भावना सहित सिमरन अधिक करो।

साधना-सत्संग हांसी, दिनांक
20.11.1953,
समय अपराह्न 3.30 बजे

❑❑

जप एक आध्यात्मिक तप

जप करना आध्यात्मिक तप है। जितना अधिक जप होगा, उतना ही अधिक आत्मा निर्मल होगा। जप बड़ी भावना के साथ करना चाहिये। इससे संस्कारों पर गहरा प्रभाव पड़ेगा। साधक स्वयं अनुभव करेगा। जब स्वयं अजपा जाप चलेगा, वाणी से नहीं, जीभ से भी नहीं, स्वयं मानसिक जाप होता जायेगा, तब अविद्या की ग्रन्थी टूट जायेगी और दशम-द्वार से पार हो जायेगा। मानो साधक का परम-कल्याण हो जाता है।

व्यक्ति समाधि के लिये बड़े जप-तप साधन करते हैं। पहाड़ों की कन्दराओं में, कुटियाओं में, गंगा तट पर अनेक प्रकार के साधन करते हैं। वे अपनी जगह पर हैं। परन्तु हमारे लिये तो श्रेष्ठ राम-नाम का साधन है। किसी को योग-निद्रा आ जाये। जप-निद्रा तो रोज ही आती है। जप से सिद्धि प्राप्त होती है। स्त्री-पुरुषों में यह भावना प्रबल होनी चाहिये। इससे संकट शीघ्र कट जाते हैं, सौभाग्य बनता है। व्यक्तियों को कुछ न कुछ अवलम्बन होना चाहिये। अतः नाम-जप में अधिक समय व्यतीत करना चाहिये। व्यर्थ समय नहीं खोओ।

राम-नाम के जप-कीर्तन करने में लज्जा नहीं आनी चाहिये। जब स्त्री-पुरुषों को सिनेमा जाने में या अन्य गन्दे व्यसनों के करने में लज्जा नहीं आती, तो राम-नाम की माला जपने में क्यों आवे ? भक्त राम-नाम की माला से तर जाता है। यह माला बड़ा ग्रन्थ है। यह सदा बना रहता है। यदि यह साथ में हो, तो अन्य मित्र या साथियों की आवश्यकता नहीं। यह लोक-परलोक का साथी है। हर्ष के साथ माला जपनी चाहिये। प्रभु के साथ जब प्रीति लगा ली, तो कोई कुछ भी कहे, संकोच नहीं करना चाहिये। घर के लोगों से भी निर्मम होना चाहिये। इससे अन्तःकरण शुद्ध होता है। जो संसार की चिन्ता नहीं करते व राम से ही लौ लगाते हैं, वे राम को प्राप्त होते हैं। जप की मर्यादा बनाने से बड़ा लाभ होता है, कि प्रतिदिन इतना जाप करेंगे। राम-धन का सदैव संचय होता है। कभी हानि तो होती ही नहीं और न खर्च होता है। अधिक राम-धन का मोह

हो जावे, तो यह लोभ तो श्रीराम-चरण शरण में ले जाता है। कल्याण कर देता है।

साधक की उंगलियाँ माला के ऊपर नृत्य करती हैं। भक्त के कान कीर्तन सुनते हुये नृत्य करें, जीभ हरि-कीर्तन करती हुई नृत्य करे और मन व उंगली राम-नाम की माला जपते रहें। राम-नाम के जपने वाले काल को भी हनन कर डालते हैं। यह भाव ऊंचा और श्रेष्ठ है। राम भक्त का नाश कभी नहीं होता। यदि अवधि पूरी हो गई है, तो भले ही शरीर छूटे। निर्भयता, निडरता होनी चाहिये, तब लाभ होता है। मनोबल, वाणीबल बढ़ता जाता है। यह साधन बड़ा लाभदायक है। राम-धुन पैदा हो जावे, तो यही बड़ी चीज़ है। फिर क्या रह गया? साधक के हृदय मन्दिर में राम-धुन गूंजने लगे, तो व्यक्ति पार हो गया। राम-मन्दिर में जाने की सीढ़ी तो राम-नाम है। हम निश्चय से कहते हैं कि इसमें बड़ा बल है। हमारी बुद्धि विचलित नहीं होनी चाहिये। भावना दृढ़ बनानी चाहिये। राम-नाम के जप को व्यक्तियों ने अमृत नहीं समझा, इसीलिये विश्वास नहीं। श्रद्धा खूब होनी चाहिये। राम-रस भक्ति का प्रेम प्राप्त करना चाहिये। निर्वाण पैर तले डोलता रहेगा। राम-नाम जपने वाले को राम-धाम मिलेगा। सदा ज्योति जाग्रत रहेगी। राम-धुन खूब रमाओ। इतना नाम बस जाये कि पहाड़ के पानी के समान अपने आप रिसने लगे।

साधना-सत्संग दिल्ली,
दिनांक 7.4.1955,
समय प्रातः 11.00 बजे



माला की उपयोगिता एवं महत्व

माला बड़ी अच्छी चीज़ है। भाव से फेरने से बड़ा लाभ होता है। इससे जप में दिल बड़ा लगता है। जो कहते हैं हमारा माला से दिल नहीं लगता, उन्होंने कभी माला फेरी ही नहीं। साधना के लिये माला फेरना बड़ी अच्छी विधि है। माला से नाम का संस्कार अन्दर भर जाता है। एक क्षण के लिये भी नाम में मन लग जाने पर जन्म-जन्मान्तर के मैल धुल जाते हैं और जप करते समय कभी न कभी मन लग ही जाता है।

माला काम-काज में लगे आदमियों के लिये बड़ा अवलम्बन है। जब नींद रात को खुल जाये तो उस समय माला फेरने लग जाये। इससे बड़ा लाभ होगा। माला एक औषधि भी है। हर समय मन से काम करना कठिन होता है, उस समय माला फेरने से थकान नहीं होती। भोजन के तुरन्त उपरान्त माला फेरना पाचन को भी ठीक करता है। राम-नाम से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं। यह कमाल का वशीकरण मन्त्र है। माला तावीज़ का भी काम देती है। यह असुरों से रक्षा करती है। मैं भ्रम की चीज़ों को नहीं मानता। सीधी-साधी वस्तु सम्मुख रखता हूँ।

माला संकटों का भी निवारण करती है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। न्यायसंगत प्रार्थना होनी चाहिये। अपराध, पाप, आदि की क्षमा के लिये भी प्रार्थना करनी चाहिये। माला संकट-हारिणी, पाप-नाशिनी और सुख-दायिनी है।

माला से हस्त-लाघव पैदा होता है और अंगुलियों में विद्युत शक्ति पैदा हो जाती है। यह शरीर की विद्युत को जाग्रत करती है। अंगुलियों को कहीं भी फेरो इससे लाभ होगा। इससे रोग-निवारण की शक्ति भी आ जाती है।

माला के विषय में श्री महाराज जी ने एक बार कहा–

1. माला जप में बड़ी सहायक वस्तु है।
2. इस पर प्रतिदिन कम से कम दस हजार का जाप करना चाहिये।

3. इसे बड़े आदर से पवित्र स्थान पर सुरक्षित रखना चाहिये।
4. टूटने पर या बहुत पुरानी होने पर बदली जा सकती है।
5. वैसे तो माला चन्दन, तुलसी, रुद्राक्ष आदि किसी भी वस्तु की बनी हो सकती है, पर हम ऊन की बनी हुई माला का प्रयोग करते हैं।
6. माला किसी भी रंग की हो सकती है।

जब श्री महाराज जी की आयु ९० वर्ष से अधिक की थी, तब भी वे माला फेरा करते थे। उन्होंने कहा था– माला पर राम-नाम का जाप नहीं छोड़ना चाहिये। इसे साधकों को अपने जीवन का एक परम आवश्यक अंग बना लेना चाहिये। मैं जानता हूँ कि जो मैं करता हूँ वह साधक भी करते हैं। साधकों के आगे एक आदर्श रखने के लिये, मैं इस आयु में भी प्रतिदिन माला पर जाप करता हूँ।

साधना–सत्संग हरिद्वार,
माह अप्रैल

❑❑

नियत स्थान में जाप का प्रभाव एवं परम धाम से सम्बन्ध

अखण्ड जाप जिस कमरे में होता है, वहां जाते ही शान्ति प्राप्त होती है। शब्द के संस्कार उस कमरे में पूर्ण हो जाते हैं। केवल सिमरन, ध्यान, कीर्तन में मन लगाने से बड़ा प्रभाव होता है और उससे बड़ा लाभ होता है। हरेक घर में एक कमरा इस कार्य के लिये पृथक रखना चाहिये, उस कमरे में कुछ अवतारों के चित्र भी लगाने चाहिये। राजनैतिक तथा साधारण व्यक्तियों के चित्र नहीं लगाने चाहिये। वहां भजन करने से चित्त प्रसन्न होता है और बड़ा लाभ होता है। कई बार ऐसी दिव्य बातें अनुभव होती हैं कि चित्त प्रसन्न हो जाता है, परन्तु भगवान का आराधन भावना से होना चाहिये। केवल अकेला रहने से ही या व्रत रखने से ही लाभ नहीं होता। भगवान के आराधन से बहुत अधिक लाभ होता है। इस मन्त्र का उसी प्रकार से प्रभाव है, जिस प्रकार बिजली की तार से धारा उस समय आती है, जब कि उसका सम्बन्ध पावर-हाऊस से आने वाले तार से लगाया जाये। यह सम्बन्ध बड़ी चीज है। इसी प्रकार अन्तःकरण में सम्बन्ध जोड़ना चाहिये और वह राम-नाम से ही जुड़ता है। अब जब सम्बन्ध हो जावेगा, तो धारा आती रहेगी। मन्त्र से ही मन्त्र के देवता का आह्वान होता है। नाम का नामी के साथ सम्बन्ध है, जैसे किसी का नाम लेकर पुकारें, तो उसकी वृत्ति उधर हो जाती है। इसलिये उस परम धाम से सम्बन्ध जोड़ने का एक मात्र साधन राम-नाम का जाप है। भगवान से सम्बन्ध नाम से जुड़ जाता है। परन्तु साधक की धारणा ठीक होनी चाहिये। जैसे रस्सी की तार से बिजली नहीं आती, उसी प्रकार अशुभ भावना से धारा नहीं आती। अपने अन्दर तार निर्मल होना चाहिये। जब उसका सम्बन्ध जोड़ा जाता है, तो राम-नाम की धारा आनी आरम्भ हो जाती है। इसमें किसी प्रकार का कोई

सन्देह नहीं है। यदि किसी की भावना नहीं बनी, तो उसको समझ लेना चाहिये कि उसकी तार अभी नहीं जुड़ी। मन को वश में करने के लिये बड़ा यत्न किया जाता है, परन्तु मन काबू में नहीं आता और जिसका तन काबू में नहीं, उसका मन कैसे होगा ? इसलिये पहले तन की साधना करनी चाहिये। अपने अन्दर तार पैदा करनी चाहिये और वह तन को वश में करने से होती है। मन्त्र का बड़ा प्रभाव है, इसलिये हर समय मन्त्र जाप करते रहना चाहिये।

साधना-सत्संग दिल्ली,
दिनांक 8.4.1955,
समय प्रातः 11.00 बजे



कीर्तन

कीर्तन

जिन साधकों को राम-नाम में जितना विश्वास होता है, उतना ही लाभ होता है। ऋग्वेद-काल में भी इसका (नाम-महिमा का) वर्णन होता था। उस समय नाम होगा– 'अग्नि' (अर्थात् उस समय लोग 'अग्नि' नाम से भगवान की पूजा करते होंगे)। प्रतीत तो यही होता है कि उस युग में भी लोग नाम उपासना बड़ी करते थे। नाम आराधन तीन प्रकार से हुआ–

1. ध्यान (एकान्त शांत स्थान में)
2. जप
3. कीर्तन करना अर्थात् ऊँचा-ऊँचा नाम को बोलना।

कीर्तन में बड़ा लाभ है, एक तो हम बोले, दूसरे हमारी आवाज़ हमारे कानों में आई। पर जो मानस जाप है अर्थात् ध्यान, इसका प्रभाव मनु जी ने कीर्तन की अपेक्षा सहस्त्र गुणा बताया है। इसके अन्दर तरंग पैदा होती है, इसलिये इसकी महिमा अधिक वर्णन की। पर ऐसा नहीं समझना कि कीर्तन का प्रभाव कम पड़ता है।

कीर्तन दो प्रकार का होता है– धुनात्मक और गीतात्मक। बहुत से लोग तो गीत वाले कीर्तन को और बहुत से धुन के कीर्तन को पसंद करते हैं। हमारी रीति में सब अच्छे। अच्छा शब्द, अच्छा सुर जब हो, तो एक प्रबल तरंग उत्पन्न होती है, जो सभा और गाने वाले दोनों पर बड़ा प्रभाव डालती है। कीर्तन करने वाला अच्छा हो जाता है। पुरातन ऋषि-मुनि लोग जो गीत गा गये, वे बहुत अच्छे हैं। उनके संस्कृत में गाने के अतिरिक्त आम भाषा में कबीर ने और सूरदास ने अपने सुरसागर में (सूरसागर तो नाम बाद में पड़ा) भागवत् का वर्णन किया। ऐसा मालूम पड़ता है कि वह (सूरदास जी) बड़ी ऊंची कोटि का भक्त हुआ है। गहरे आदमी तो भाव की ओर जाते हैं। मैंने सभाओं में देखा कि इस युग के गीत जो खड़तालों द्वारा गाये जाते हैं, वे सभा को रिझाते नहीं,

किन्तु सभा को रिझाना तो कुछ और है और राम को रिझाना उससे भिन्न है। एक बार मैंने सभा में देखा कि वह सभा एक लड़के के इस गाने को 'अज पोप जी दी सुच्ची रसोई' बड़ा पसंद करे। एक बार कुम्भ पर मैं स्रोत की ओर चला गया, तो वहां गोस्वामी जी ने बड़ा मंडप रचाया हुआ था, बहुत बातें उस में थीं. मुझे भी वहां बुलाया था। किन्तु सभा ने एक लड़के का गीत बहुत अधिक पसंद किया, वह गीत था, 'निकियां निकियां गल्ला कोलों रुसना नहीं चाहिदा शामा।' सारे दर्शक बार-बार कहें कि इसी लड़के को खड़ा करो, न उन्हें गोस्वामी जी का भाषण पसन्द, न और कुछ। लाहौर में एक बार एक सज्जन ने नाम-संस्कार के समय अहमदाबाद से विष्णु दिगम्बर जी के शिष्य को बुलाया, पाँच सौ रुपये प्रति दिन पर। उसने सूरदास का गीत गाया– 'माई री मैं नहीं माखन खायो।' सारी सभा बड़े प्रभाव से सुनती रही।

पुरातन भक्तों के गीतों में बड़ा भारी भेद होता है। इन गीतों से मनुष्य की काया पलट जाती है। राम रिझाने वाले गीत, गीत गाने वाले को जगा देते हैं, वह बड़ा अच्छा हो जाता है। पर भाई एक शर्त है, चाहे धुन का कीर्तन हो चाहे गीत का, किन्तु अन्तक को बदलो मत। उसमें कवि का आत्मा होता है। गीत के अन्तक को लोग इसलिये बदल देते हैं कि वह उनको शुद्ध रूप से याद नहीं होता। यह आदत इसी कारण है। मैं अपनी ही रचना के विषय में कहता हूँ कि 'अहं भजामि रामम्, सत्यम् शिवम् मंगलम्।' मैंने लोगों को गाते सुना है, 'अहं भजामि रामम्, सत्यम् शिवं सुन्दरम्।' इसी प्रकार महाराज जी ने 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण' के विषय में कहा। समर्थ रामदास जी की गाई हुई कविता को बदलने का क्या अधिकार है ? ऐसा नहीं होना चाहिये (अर्थात् भक्तों की मौलिक धुनों, भजनों आदि रचनाओं में तनिक भी अन्तर नहीं करना चाहिये)। 'रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीता राम', –इसमें महात्मा जी के सामने, 'अल्लाह हो अकबर तेरा नाम' मुसलमानों ने जोड़ दिया। पहले जब धुन ठीक थी, उस समय तक हिन्दू-मुस्लिम एकता थी। बाद में हिन्दू-मुस्लिम खींचातान हो गई। यह (भक्तों की मौलिक रचनाओं में फेरबदल) अनाचार है, भक्तों का अनादर है। जवाहरलाल के शब्दों के साथ घसियारे के शब्दों को जोड़ने का क्या मतलब ?

पहले युगों के ब्राह्मण तो पाप समझते थे कि कहने वाले और सुनने वाले दोनों के लिये हानिकारक है।

मुझे कहना तो यह है कि कीर्तन में बड़ा लाभ होता है, इसको कम नहीं समझना, यह मंत्र ही है। यह दूसरों पर बड़ा प्रभाव डालता है।

होशियारपुर में एक साधक को अखण्ड जाप में यह प्रतीत हुआ कि साधुओं की मण्डलियां आकर सम्मिलित हो रही हैं। मानस ध्यान, नाम का ध्यान, जप और कीर्तन भी एक मना होना चाहिये। गीता में कृष्ण जी ने कहा है, 'यदि कोई बड़ा दुराचारी भी है, पर बड़ी भावना से मेरा सिमरन करने लग पड़ा है, तो उसको अच्छा ही जान, वह बहुत ही जल्दी धर्मात्मा हो जाता है। सदा रहने वाली शान्ति को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है। हे कुन्तीपुत्र ! यह तू अवश्य जान कि मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता।' जीवन की धारा को ऊंचाई की ओर ले जाने के लिये नाम बड़ा लाभदायक है। साधक-मण्डली को यह विचार होना चाहिये कि इतने चिर से यदि उसको (साधक को) कोई समझ नहीं आई, तो उसका कोई दुष्कर्म है, जो सामने खड़ा है, परन्तु यह समझ नाम आराधना से ही आती है।

मुझे एक बात का विचार आ गया कि दो स्त्रियाँ–एक माँ और दूसरी लड़की, मेरे पास शिमला आईं। उन्होंने कहा कि भागवत में ऐसा कहा है कि मेरा भजन जो करते हैं, मैं उनको दुःखी किया करता हूँ। अब मैंने उनको न तो नहीं कहा, किन्तु मैंने सब श्लोक स्वयं पढ़े हैं और ऐसा उनमें कहीं नहीं है, फिर भी सीधा न करने की तो रीति नहीं। जवाब यह दिया कि गीता में स्वयं भगवान यह कहते हैं कि 'भक्ति मेरे में वह हो, जो व्यभिचारणी न हो। जो मेरी भक्ति वाले हैं, जो नित्य मुझ में जुड़े हुये हैं, उनका योगक्षेम मैं चलाता हूँ।' लड़की ने वह श्लोक भी पढ़ा था और कहा कि अठारहवें अध्याय का श्लोक है। भगवान तो उनके योगक्षेम का उत्तरदायित्व लेते हैं, जो अनन्य भाव से आराधना करते हैं। उनका कल्याण अवश्य होता है।

साधना-सत्संग देवत-नांगल,
दिनांक 29.12.1953,
समय अपराह्न 3.30 बजे

❑❑

कीर्तन का प्रभाव एवं मनन

संगीत में मोहक शक्ति है। संगीत और सभ्यता का बड़ा सम्बन्ध है। राग में बल होता है कि वह मनुष्य के जीवन को पलटा देता है। कविता आदमी को बड़ा ऊंचा कर देती है।

एक बार नारद जी सनत्कुमार के पास गये। मार्ग में रत्नाकर डाकू ने उन्हें रोका। नारद जी ने अपना गीत सुनाया। रत्नाकर उनके गीत पर मुग्ध हो गया और उनके कहने पर उसने डाकू का कर्म छोड़ दिया तथा तप करने लग गया। वही रत्नाकर तप के प्रभाव से संसार के आदि कवि हुए तथा उन्होंने रामायण जैसे महान ग्रंथ की रचना की। नारद जी जब सनत्कुमार के पास पहुंचे, तो उनके पूछने पर, जो-जो विद्यायें उन्होंने (नारद जी ने) पढ़ी थीं, वे सब उन्होंने उनको सुनाईं तथा साथ ही यह भी कहा कि इतनी विद्यायें पढ़ने पर भी उनकी चिन्ता नहीं गई। सोच नहीं मिटी। सनत्कुमार ने कहा कि उन्होंने केवल शब्दों में ही अर्थ पढ़ा है। उनके वास्तविक अर्थ (तत्त्व) को नहीं समझा। एक शब्द की जगह दूसरा शब्द रख देना उसका अर्थ नहीं है। वास्तव में जिस वस्तु की ओर शब्द संकेत करता है, वह उसका अर्थ है। अर्थ और शब्द मिले हुए होते हैं। ये पृथक नहीं होते। यह केवल समझाने के लिये भिन्न-भिन्न शब्द होते हैं। अन्त में सनत्कुमार ने कहा कि सत्य को जानना चाहिये।

बहुत सुनना भी अच्छा है, क्योंकि सुनते-सुनते ही मनन करने का विचार हो जाता है, पर सुनने से करना बहुत अच्छा है।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 3.12.1951,
समय अपराह्न 3.00 बजे

❑❑

कीर्तन में संत-वाणी का प्रभाव

साधना-सत्संगों में जो गीत गाये जाते हैं, वह बड़े अच्छे होते हैं। सत्संगों में पुराने सन्तों के गीत ही गाये जाने चाहियें, क्योंकि यह उनकी आत्मा से निकली हुई हृदय की झन्कार है। वे गीत यदि गाये जायें, तो मंत्रों के समान होते हैं और उनका बड़ा लाभ होता है। पक्के रागों से तात्पर्य पुराने गवैये जानते हैं। सन्तों के चुने हुए रागमय पद इसमें सूरदास के भी, तुलसीदास के भी राग-विद्या में तुले हुए होते है। कोई पद सुर-ताल में भी कहे जाते हैं। यह अलौकिक हैं। इनका सुर पुरातन काल से है। यह इस लोक की चाल नहीं।

सत्संगों में सायंकाल तथा प्रातःकाल का समय तोले हुए गीत पक्के राग में गाने का है। यह सत्संगों में बात आनी चाहिये। मीरा के पदों से ऐसा प्रतीत होता है कि वह चीज़ उसने देखी है। वह विरह के गीत गाती है। मीरा कहती है कि मैंने जो मधुर-मूर्ति देखी, वह उसमें आन अड़ी, छाती में आन अड़ी। यह बात मीरा देखी हुई कहती है। अन्त में उसके जीवन में इतना त्याग, वैराग्य आया।

मीरा का परमात्मा को मानने वाला, बड़ा सुन्दर गीत, विरहिन बन वह ऐसा कहती, यह दिल से निकली हुई बात है। अध्यात्मवाद पर कोई लेख लिखेगा उतना ही, जितना वह जानता है। महर्षि रमन की महिमा वे कहने लगे कि उसकी किताबें बड़ी अच्छी हैं। हमारे सामने बक्से उसने खोले। बड़े भारी पुस्तकों के थे। इनको देखकर हार बनाता। माली हार बनाता, पर फूल माली के बाप के पैदा किये हुए नहीं। उसने यह बात समझी ही नहीं। मुझे कहना यह है कि लेखक बनाते राई को पहाड़। उनको विरह वेदना होती नहीं। मीरा को विरह वेदना थी।

सूर, कबीर, मीरा, तुलसी, सदा ही रहेंगे। चैतन्य ने कोई चीज़ देखी,

उससे वह मतवाला हो उठा। फिर जब वे निर्मल अवस्था में आये तो वर्णन का प्रयास किया। सन्त जो हैं, वे देखने वाले हुए। सन्तों के वाक्यों में देखने की साक्षी है। बाकी दूसरे लेखकों आदि की तो तुकबन्दी और काम चलाने वाली बात ही है।

अतः सन्तों के पदों में कुछ जोड़ना-घटाना नहीं चाहिये। जब गाते हैं 'रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीताराम' क्या मजाल उसमें और कुछ जोड़ा जाये। इसी प्रकार 'हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे'। यह मंत्र के समान प्रभावशाली है। मुझे कहना यह था कि सत्संगों में यह बात आनी चाहिये। (अर्थात् सन्त कवियों के पद, धुनें उनके मौलिक रूप में गाने चाहियें)। बाकी लोग मृदंगों पर नाचने वाले होते हैं। अन्य लोग तो ऐसे ही नये-नवें गाने गाते फिरते हैं। अन्दर के सुर से नाचने वाले और देखने वाले हों। मीरा ने देखा था। कोई कहे क्या प्रमाण है तो– मैं उस युग का नहीं, पर मेरे मित्र हैं, उन से बात समझता हूँ। तो मुझे कहना यह है, यदि मीरा हुई है, तो इस युग में भी तो देखते हैं, आडम्बर नहीं करते, महात्मापन का राग नहीं अलापते, पर देखा तो है। विरह वेदना भगवान ने उनको दी नहीं है। मीरा का तो निभ सकता था।

मेरी तो शैली निराली है। जो मुफ्त के टुकड़े खाते हैं, उनकी आत्मा जागती नहीं। धर्म क्षेत्रों पर जो पलते हैं, उनकी आत्मा जाग्रत कैसे हो ? यह बात एक बड़े सन्त की, थोड़े में मैंने कही है। यह साईंस है। यह विवाद का विषय नहीं। वह सच्चाई का मार्ग, मानने की बात है। एक बार मैं एक मित्र के पास ठहरा हुआ था। एक दिन सूर्यास्त के बाद मेरे मित्र को ऐसा प्रतीत हुआ कि कृष्ण जी आये। सूक्ष्म शरीर यह क्रिया करता है। भगवान का स्वरूप दिव्य होने पर वह भी पकड़ने में कठिन है। वह तो अपने आप आता है। कृष्ण जी पास आये। वे उठ खड़े हुए और आलिंगन किया। ऐसे ही मीरा ने समझा हुआ था। इसमें क्या कोई बात ? एक वेदान्ती कह सकता है। यदि उसको विरह वेदना भगवान ने नहीं दी तो वह वेदान्ती कहेगा कि यह सब माया है। झूठा गुरु, झूठ को, झूठे

को समझाये। मीरा के गीत युग-युगान्तर तक रहेंगे। महाराज को मालूम होगा, जिस व्यथा में वह गाती रही। यह कोई ऐसी बात नहीं कि हम इसको यूं ही समझें, यह तो अनुभव की हुई बातें हैं, केवल युक्ति नहीं। जुकाम तो अन्दर का ही पिघलना है। आचार्य की युक्तियां ही मानसिक रोग होती हैं।

पैरों आदि को पकड़ने की प्रथा गलत है। परम आचार्य वह भगवान है। इस विश्वास से महाराज (भगवान) का आराधन करना चाहिये।



सत्संग

सत्संग

सत्संग वहीं पर हुआ करते हैं, जहां अच्छे पुरुष और अच्छी स्त्रियां हों। सत्संग वहीं होते हैं, जहाँ भगवान की अपनी कृपा हो। लौकिक बातों के लिये बहुत स्थान बने हैं। माया का कोई अन्त नहीं होता। माया के जंजाल में मनुष्य हमेशा फंसा रहता है। इसलिये उसे अपने अध्यात्मवाद के लिये थोड़ा-सा समय अवश्य निकालना चाहिये। सत्संग में सत् का निरूपण होता है। जहाँ धर्म की चर्चा हो, सत् का निरूपण हो,वही सभायें सत्संग कहलाती हैं। सत्संग अपनी शोभा आप होते हैं। सत्संग सन्तों की कृपा से होते हैं और सन्त जन ईश्वर की कृपा से ही मिलते हैं। सन्तों की संगति करनी चाहिये।

लोग सिनेमा में जाते हैं, चंचल गाने सुनते हैं। फिल्म पर लाखों रुपया खर्च होता है। लोग लौकिक चीजें देखकर प्रसन्न होते हैं। हृदय में उनके लिये आकर्षण रखते हैं। यदि यही चंचलपन सत्संग के लिये आ जाये, तो फिर संसार में शान्ति हो जाये। वह सभा, जहाँ हरि ही की चर्चा हो, उसमें शान्त-रस बरसता है। यह तो बहुत गम्भीर व्यक्तियों का काम है। इसलिये सत्संग लगाने आसान नहीं।

सत्संग से पाप और पुण्य की परख हो जाती है। राजसभायें भी होती हैं। राजसभायें तन्त्र बना सकती हैं– जैसे शराब निकालना अपराध है, शराब पीना नहीं। रूस और अमेरिका में ऐसे तन्त्र बने भी, किन्तु शराब निकालना बन्द नहीं हुआ। क्यों ? केवल इसलिये कि यदि चोर को चोरी के अपराध में बारह वर्ष के लिये जेल में डाल दिया जाये, यह समझ कर कि वह चोरी का स्वभाव शारीरिक दण्ड मिलने से छोड़ देगा, यह भूल है। अपितु वह बारह बरस बाद भी जेल से 'चोर' ही निकलेगा। इसलिये कि उसका जेल में मन नहीं बदला–आत्मा नहीं बदला अर्थात् राजसभायें मन की वृत्ति को नहीं बदल सकतीं। हमारे देश में अधिक लोग शराब नहीं पीते, कारण कि यहाँ सन्तों का प्रचुर प्रभाव रहा है। यह कोई पानी का ही प्रभाव

नहीं, अपितु धर्मों का प्रभाव है। मनोवृत्ति बदलना सरकार का काम नहीं। सत्संगों में ही मनुष्य सुधरता है। जब तक मन में पाप का भय पैदा न हो, तब तक मनुष्य सुधरता नहीं। सत्संग से ही मनुष्य के मन में पाप का भय पैदा होता है। सत्संग की सब से बड़ी बड़ाई यही है कि आत्मा बुराई को बुराई समझने लग जाता है। सत्संग सब जगह लगना चाहिये। जीवन को सुन्दर बनाने के लिये धर्म का बड़ा महत्व समझा जाता है। जगत् में सत्संग की बड़ी आवश्यकता है। जगत् बिगड़ता जा रहा है। यदि यही स्थिति रही, तो इसकी क्या दशा होगी ? दुःख और आश्चर्य की बात है।

गाँधीवाद धर्म के साथ शुरु होकर प्रचलित हुआ। धार्मिक युद्ध भी नियम से होते थे। सूर्य चढ़ने से पहले और छिपने के बाद युद्ध नहीं होते थे। शत्रु पर चोरी से नहीं, अपितु सूचना देकर आक्रमण किया जाता था। गाँधी जी ने इस धर्म को अपनाया। अपनी पीठ पर कोई लाठी मार दे और फिर मारने वाले के कन्धे पर मुक्का भी न मारा जाये, यह कितनी बड़ी बात है। सन्तों के कर्मों से ही भारतवर्ष शान्ति का सन्देश देता रहा है। हरि-कृपा से सत्संगियों अथवा सन्तों में बड़ा प्रभाव होता है। बिना हरि-कृपा के सन्त नहीं मिलते। सन्त बादलों का रूप हैं, उनकी भक्ति जल है–प्रेम जल, जो चलता ही रहता है, रुकता नहीं। भाग्यशाली मनुष्य इस जल को स्वीकार करते हैं। माता सीता ने रावण से यही कहा था कि तेरी इस म्लेच्छ-बुद्धि से ऐसा प्रतीत होता है कि तेरे इस देश में सन्त नहीं हैं। यदि कहीं हैं भी, तो छुपे हुए हैं, उपदेश नहीं देते या तू उनके उपदेश पर नहीं चलता।

सत्संग स्वल्प और स्वादु (सरस) होना चाहिये। लम्बे काल में श्रद्धा कम होती है।

साधना-सत्संग हरिद्वार,
दिनांक 4.4.1958,
समय प्रातः 11.00 बजे

❑❑

उत्तम सत्संग

अच्छे व्यक्ति का संग अच्छा बनाता है। अच्छे व्यक्ति जहां बैठा करें, उसे ही सत्संग कहते हैं। सत्संग मनुष्य के जीवन को उज्ज्वल बना देता है। इसमें सारा सार भर देता है। सत्संग से कठोर, कुकर्मी और पातकी मनुष्य का भी कल्याण हो जाया करता है। सत्संग सुलभ भी है और दुर्लभ भी।

दुर्लभ इस कारण है कि श्रेष्ठ मनुष्यों का मिलना माया जाल के कारण कठिन है। किन्तु ज्ञानी लोग दुर्लभ वस्तु को सुलभ बनाते हैं। तो सत्संग सुलभ कैसे बनाया जाये ? हमारे देश में अधिक पन्थ होने और एक पुस्तक न होने के कारण श्रेष्ठ मनुष्य कौन है, यह जानना भी कठिन है। चाहे कल ही कोई पन्थ चला हो, वे कहते हैं, 'बस यह श्रेष्ठ है और बाकी सब तुच्छ हैं'ऐसा कहना अज्ञान भरी बात है। यह तो राजनैतिक दलों के समान दल बने हुए हैं। सच्चा राजनीतिज्ञ तो देश की भलाई देखता है। पर ये गुटबन्दी के राजनीतिज्ञ तो पक्ष से भरे हुए हैं। चुनाव जो हुआ तो जाति का पक्ष कितना था। इतना भारी भेद रूस और जर्मनी के लोगों में नहीं, जितना कि एक जाति से दूसरी जाति का चुनाव में देखा गया। धड़ों की दलदल वालों के सामने देव नहीं आ सकता। उनके आगे तो दैत्य ही होता है। इसी प्रकार पन्थों के धड़े हैं। अब ऐसी स्थिति में सत्संग कैसे सुलभ बने ?

एक बात सर्वोत्तम है कि राम आराधन करते समय समझे कि मैं राम के समीप बैठा हूँ। जहां गीता पाठ हो वहां समझे कि स्वयं श्रीकृष्ण जी महाराज विराजमान हैं।

श्रीकृष्ण वाक्य है– 'जहाँ गीता का पाठ होता है, वहाँ स्वयं महाराज की कृपा होती है।' गीता में आया है 'मैं जप-यज्ञ हूँ।' यज्ञों में जप-यज्ञ हूँ, यह महाराज का वाक्य है। तो जप में भगवान हैं, यह बात हुई।

कोई व्यक्ति जंगल में बैठा हुआ पूजा कर रहा था। उस देश का राजा उधर आ निकला। राजा ने चाहा कि वह उसके घोड़े को पकड़ कर रखे।

पुकारने पर भी वह मूर्ति के सामने से नहीं उठा। धमकाने पर भी उस पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। जब राजा घोड़े से उतरा और देखा, तो पता चला कि वह वैसे ही नहीं बैठा, अपितु मूर्ति के सामने बैठा है। उसके ध्यान समाप्त करने पर राजा ने प्रश्न किया, 'तुमने मेरे आदेश की ओर ध्यान क्यों नहीं दिया ?' उसने उत्तर दिया, 'मैं तो स्वयं भगवान के दरबार में प्रार्थना कर रहा था। तुम्हारी कैसे सुनता ?' तो मैं कहना चाहता था, कि राम का जाप जो कर रहा है, वह तो बड़े शुभ-सत्संग में है।

मनुष्य जब घर में तृप्त हो, तो उसको बाहर या बाज़ार में खाने में ग्लानि होती है और बाज़ारी भूख नहीं होती। चौ.मेहर सिंह सांपले से दिल्ली आते हैं। घर से खा कर चलते हैं और फिर बाहर खाने की आवश्यकता नहीं समझते। (कहने का तात्पर्य यह कि जो अपने आप में ही राम-नाम द्वारा तृप्त हो, उसे इससे बढ़कर और सत्संग ढूंढ़ने की क्या ज़रूरत)। पंजाब में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी ने कहा कि भारतवर्ष अब आत्मनिर्भर है। अब वह पर से माँगने वाला नहीं रहा। इसी तरह साधक को परमात्मा के संग में आत्मनिर्भर होना चाहिये। इससे वह मांगने वाला नहीं रहता। यदि राम-दरबार से न मिला, तो कानी कौड़ी भी किसी स्थान से मिलेगी नहीं, यह निश्चित है। यह भावना भक्त में आई, तो सत्संग कितना सुलभ हो गया।

सत्संगी को यह दृढ़ निश्चय होना चाहिये कि उसके भगवान की मूर्ति का निवास उसमें है। ध्यान करने वाले इसको गाते चले आये हैं। दूसरी बात है, गीता पढ़ें तो समझें कि भगवान श्रीकृष्ण अपने शब्दों में ही हैं। यह समझ हो तो लाभ अधिक होता है। रामायण, गीता, उपनिषद् बड़े दरबार हैं– भगवान, ऋषियों और सन्तों के। यह ग्रन्थ तो पान्थिक पोथियों से पहले के बने हैं।

जब हाँसी के गाँव में घूमने लगे, तो शम्भूदत्त के हाथ में लट्ठ होता था। कहना यह है कि लट्ठ मार्ग का अवलम्बन है, सहारा है। ऐसे ही मोह-माया की और छल कपट की सृष्टि में चलने के लिये शास्त्र, लाठी का सहारा है। पहला मत चलाने वाला गौतम बुद्ध हुआ। फिर ईसा मसीह आदि। पर हमारे शास्त्र ऐसे हैं, जिनको पन्थ के हाथों ने मैला नहीं किया। ऐसे शास्त्रों का पाठ, उत्तम सत्संग है।

शास्त्रों में जिनके वाक्य हैं, वे साक्षात् उन ग्रन्थों में हैं। राम-आराधन करने वालों को तो समझना चाहिये कि वे तो भगवान के दरबार में हैं। उसके दरबार में तो सभी का सत्संग मिला—ऋषि, मुनि, सन्त और महन्त का। जो ग्रन्थ श्रेष्ठ हैं, उन्हें आप पढ़ा करें। आप गीता का बार-बार पाठ करें। तीन बार पाठ के बाद बोलने लग जायेगी। इसी प्रकार रामायण, उपनिषद् भी अवश्य पढ़ो। भले अनुवाद ही सही।

सिमरन, स्वाध्याय और सत्संग जिसमें आ गया, वह कल्याण पा गया।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 22.11.1953,
समय अपराह्न 3.30 बजे

❑❑

स्वाध्याय

स्वाध्याय - 1

स्वाध्याय नित्य करना चाहिये। स्वाध्याय के लिये वीतराग पुरुषों द्वारा लिखे हुए ग्रंथ होने चाहियें। स्वाध्याय से आदमी विचार वाला होता है और पक्का होता है। इससे स्वावलम्बी भी हो जाता है। उसको मतवाद की चाट की चाह नहीं रहती। वह प्रबुद्ध हो जाता है। श्रद्धा बहुत गहरी बस जाती है। शास्त्र दैवी स्वतंत्रता देता है, उनको अपनाना चाहिये। यह बहुत ऊंची चीज़ है। ज्यों-ज्यों इसमें अवगाहन किया जाता है, त्यों-त्यों उसका ज्ञान बढ़ता है और विज्ञान रुचने लगता है। स्वाध्यायशील पुरुष का घर मन्दिर बन जाता है।

अपने आपको तुच्छ नहीं मानना चाहिये। पहली असफलताओं से हताश नहीं होना चाहिये, यत्न करते रहना चाहिये। लाभ पर दृष्टि रखना व्यापार बुद्धि है। कोई कृत्य लाभ को लक्ष्य करके नहीं करना चाहिये। कृत्य, कृत्य के लिये ही करना चाहिये। अन्त में लाभ होता ही है और फिर लाभ कई प्रकार से होता है, कई बार होता है, पर पता नहीं लगता।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 29.12.1945,
समय दोपहर 3.00 बजे

स्वाध्याय - 2

स्वाध्याय का अर्थ अपने आप अध्ययन करना है। स्वाध्याय के बहुत प्रमाण हैं। स्वाध्याय करने के लिये भावना होनी चाहिये। स्वाध्याय से ज्ञान बढ़ता है। शास्त्रों का, अच्छे ग्रंथों का स्वाध्याय मन में रुचि पैदा करता है और लाभजनक है। हिन्दुओं में स्वाध्याय की कमी के कई कारण हैं। यह कहना बड़ा व्यर्थ है कि स्त्रियां शास्त्रों को न पढ़ें। यह बंधन तो कोई भी धार्मिकता नहीं रखते। आप पढ़ने का विचार न होना, अपितु दूसरों से पढ़वाना यह व्यापारी की चालू की हुई बात है। ऐसे लोग कुछ तो आलस्य के कारण और कुछ थकावट के कारण चाहते हैं कि पंडित से पढ़वावें। पाप करें आप और जाप उनके लिये करे पण्डित, तो समझो वे तो अपनी ब्लैक मार्किट की रीति परलोक में भी चलाना चाहते हैं। जो अपनी आंखों न देखे, वह क्या देख पाता है ? जो अपने कानों न सुने, वह क्या सुन पाता है ? वह सुना हुआ कितना अधूरा होता है। जो आप अपने पाँवों से न चल पावे, वह कितना अपाहिज होगा ? जरा अनुमान लगाया जावे। यद्यपि हिन्दुओं के अमोलक ग्रंथ संस्कृत में हैं, पर बात तो यह है न, कि अच्छे ज्ञानियों के किये हुए उनके अनुवाद भी मिल जाते हैं और वे अनुवाद भी वही हैं, जैसे कि मौलिक ग्रंथ, फिर कोई अन्तर नहीं। लोगों में स्वाध्याय करने की भावना कम है। फिर आलस्य प्रमाद भी स्वाध्याय न करने का बड़ा कारण है। पंजाब में उर्दू का बड़ा प्रचार है, उर्दू कुछ ऐसी भाषा है जिसमें सही उच्चारण कठिन है। उर्दू वाला प्रकाश की जगह परकाश कहेगा, यदि शान्ति कहेगा तो न अलग बोलेगा।

व्यापार के लिये भी धर्मग्रन्थों के अनुवाद बहुत हुए। गोरखपुर वालों ने उनकी तो कम कीमत रखी। कोई दस साल हुए लाहौर में पहली बार छः सात सौ लड़कों की सभा ने मिलकर श्लोक पढ़े, तब मैंने पहली बार शुद्ध उच्चारण सुना। अंग्रेजी का शुद्ध उच्चारण तो भय और राज के कारण था।

यू.पी. में हरेक मज़हब और जाति का मनुष्य स्वाध्याय करता है और बड़ी लगन से। स्वाध्याय में तो बड़े लाभ हैं। स्वाध्याय में जितना दस बीस मिनट का समय लगाया है, यह तो अपने में ज्ञान का दीप जलाया है। अब यह बताना है कि स्वाध्याय की भावना कैसी हो ? यह भावना की बात बड़ी आवश्यक है और मैं इस पर ज़ोर देता हूँ। देखिये ! आप मंदिर में जाते हैं, तो ठाकुर जी का विचार करके सिर झुकाते हैं। यदि रामायण पढ़ें तो वहां रामायण का अर्थ है, राम का घर, सीता-राम का मन्दिर। रामायण तो रामयज्ञ है– इस भावना से रामायण पढ़ें। मूर्ति का तो नाम से पता चलता है और यहां तो गुणों का वर्णन है। चित्र में सारे गुण कैसे प्रदर्शित हों। जो चरित्र रामायण में दिया, वह तो कल्याणकारी है।

गीता क्या है ? वह कृष्ण जी के गीत हैं। यह भावना हो कि गीता श्रीकृष्ण जी का पावन चरित्र है। इनकी (कृष्ण जी की) शरण में हो, तो लाभ होता है। गीता में जो ज्ञान है, वह बड़ा ऊंचा है और सरल पद्धति से वर्णन किया गया है। भावना हो तो गीता-पाठ से बड़ा लाभ होता है। गीता पढ़ते समय यह भावना हो कि भगवान कृष्ण स्वयं मुझे उपदेश दे रहे हैं। अन्त में भावना बड़ी आवश्यक है। गीता तो साक्षात् भगवान का वाक्य है, किसी पण्डित या किसी दूसरे का नहीं। ऐसी भावना हो, तो संशय-रहित लाभ होता है। यह भावनामय जगत है।

मेरे तो कथन में रूप का देखना है नहीं (भगवान को किसी विशेष रूप में देखने का), पर स्वरूप आते हैं। स्वाध्याय करने से स्वरूप भी आते है। गीता का वर्णन करने वाला भगवान के बहुत समीप हो जाता है। यह विश्वास अन्तर में डालना चाहिये। जो ऐसा करते हैं, तो ऐसा ही होता है। एक सज्जन ने पर्वत-प्रवास में मुझे बताया कि शाम के समय जब वह बगीचे के किनारे बैठा, तो उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि सामने की पहाड़ी पर श्रीकृष्ण जी आ रहे हैं और वे भगवान् खड़े हो गये हैं और वह सज्जन भी (उनके स्वागत में) खड़ा हो गया है।

यदि भावना से स्वाध्याय करे, तो करने वाला तो गद्गद् हो जाता है और देशकाल को भूल जाता है। स्वाध्याय करने का स्वभाव बनाना चाहिये। ग्रंथों का पाठ मंगलमय होता है। जिनके घरों में स्वाध्याय होता है, उनके यहां संतान बड़े शुद्ध संस्कारों से युक्त, मनस्वी तथा वीर होगी।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 21.11.1953,
समय अपराह्न 3.30 बजे

❑❑

स्वाध्याय - 3

साधना सत्संग में जो सज्जन आये हैं और जो अन्य भाई-बहन, अब आये है, अपने आप में हरेक को पूरा होने का प्रयत्न करना चाहिये। पराधीनता का जीवन मन में बहुत ही ग्लानि पैदा करता है। धार्मिक रीति से प्रत्येक मनुष्य को शास्त्र का अध्ययन करना चाहिये। जिसने ऐसा नहीं किया या नहीं करता, समझो उसने भारी भूल की है। इस युग में हर चीज़ में कठिनाई कम है। समझना चाहिये कि जो हमारे अच्छे प्रमाणिक ग्रन्थ हैं, इनको सुगमता से पढ़ सकते हैं। प्रयत्न न करें तो पास पड़ी वस्तु भी हाथ नहीं आती और प्रयत्न करने वाले हज़ारों मील दूर की वस्तु को प्राप्त कर लेते हैं।

अब हिन्दी सरल भाषा है। मुझे तो यही कहना है कि हिन्दी में भी जो गीता का अध्ययन नहीं करता, वह तो ऐसा ही है कि घर में नलका है, पर फिर भी प्यासा है। पर प्रीति न करे, फिर तो कोई बात नहीं हुई। भले काम को कल पर नहीं छोड़ना चाहिये। जो बात समझ न आवे, वह अपने से श्रेष्ठ सज्जन से मिलकर सीखें। पुरुषार्थी हो, चेतन हो। शास्त्र का पाठ करते रहने से प्राणी का कल्याण हो जाता है। बहुत देशों में जिन्होंने इस बात को बहुत समझा है, उन्होंने और सुगम किया। हमारे देश में ऐसा बहुत नहीं करते। बहुत आदमियों ने ऐसी बात सीखी। हिन्दू में प्रमाद बहुत है। इस युग में जो चेतन नहीं, उनका स्थान बहुत कम रह गया है।

तो देवियो और सज्जनो! कुछ समय प्रतिदिन पाठ हो, यह रिवाज़ प्रचलित होना चाहिये । रामचन्द्र जी का नाम आदर से लेना, कृष्ण के गीत गाना, पर हिन्दू माँ की गोद में पैदा होकर गीता और रामायण का पाठ न किया, तो क्या किया ! आप जानना, आप पढ़ना, आप समझना--इस बात को चलाया नहीं। यह बात थोड़ी-थोड़ी प्रचलित है, पर आम नहीं। ऐसा नहीं कि समय नहीं है, पर समय सब नष्ट करते हैं। समय-समय पर काम होता है। यहां बहुत लोगों का समय व्यर्थ में बीतता है। वे जन्मते हुए भी बैल और मरते समय भी ढोर।

यही देश का हाल है। किसी ने बता दिया तो द्वादशी, नहीं तो एकादशी सही। प्रत्येक आदमी इस बात का मनन करे। किसी मन्दिर की ड्योढ़ी के द्वार पर कोई अस्सी वर्ष का वृद्ध क, ख सीख रहा था। एक विद्वान ने देखा। वह विद्वान बड़ी देर तक खड़ा रहा। पूछा कि आप क्या काम करते हैं ? कहने लगे, मेरे लड़के दुकान करते हैं। हमारे बाग भी हैं। पहले किसी ने बताया नहीं कि पढ़ना भी सीखना चाहिये। दो माह से रिश्तेदार ने बताया। लगन तो पहले थी। अब बाल उपदेश समाप्त कर चुका हूँ। इस लड़के को दो रुपये देता हूँ। यह आधी चौपाई बता जाता है। पंडित आश्चर्यचकित था कि विद्या में प्रेम हो तो ऐसा। उसने प्रश्न किया– यदि गीता, रामायण न पढ़ पाये और पहले ही मर गये तो ? कहने लगे, यदि मर गया, तो संस्कार तो रहेगा। अगले जन्म में पढ़ लूंगा। प्रयत्न करना चाहिये। थोड़ा-सा भी किया हुआ सुकृत, शुभ फल लाता है। शास्त्र पाठ प्रारम्भ कर देना चाहिये। मैं यह कह रहा था, कि शास्त्र का अध्ययन हरेक को करना चाहिये। रस्सी कोमल हो तो भी बार-बार के घर्षण से वह पत्थर पर निशान बना देती है।

ज्यों-ज्यों मनुष्य शास्त्र का अध्ययन करता है, त्यों-त्यों उसको आगे के लिये अधिक रुचि बढ़ती है और ज्ञान भी बढ़ता है। प्रत्येक को पोथी पढ़नी चाहिये। इसके बिना वह आम जीव है। यह तो मैंने आरम्भ करते हुए कहा था कि जितने प्रकार के प्राणी हैं, उनमें तीन प्रकार की श्रद्धा है– सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। सत्कर्म करने की रुचि, श्रद्धा होनी चाहिये। मनुष्य श्रद्धामय है। भले कर्म न होंगे, तो बुरे ही होंगे। तो जिसकी जैसी श्रद्धा है, उसी के अनुसार कर्म हैं।

सतुगुणी अच्छे आदमियों में बैठेगा। देवों में बैठेगा। जो रजोगुणी है, वह खानपान वाले और मायारूपी मनुष्यों को मिलेगा। जो तमोगुणी है, वह असुरों की पूजा करेगा। इसीलिये लोग संगति का उपदेश देते आये हैं। सतुगुणी की पहचान, वह देवों जैसा, रजोगुणी– छली, कपटी, तमोगुणी-महा अज्ञानी, बुराई में लगे हुए, क्रोधी, बड़ा हठी, जो शास्त्र ने वर्णन न किया, वह करना। धरना लगाना, हाथ उठाये रखना, शरीर को मारना, ठीक नहीं। कबीर साहब ने कहा है कि ''बाँबी को पीटे क्या बने, सांप न मारा जाये।'' शरीर को मारने

से क्या, यदि अहंकार का सांप जो अन्दर फन फैलाये बैठा है, उसे न मारा जाये। महाराज ने गीता में कहा है ''मैं जो सब प्राणियों में रहता हूँ, काया को सुखाने वाले मुझे ही दुःख देते हैं।'' एक स्त्री को किसी ने कहा– एक आदमी कांटों पर लम्बा लेटा हुआ है। चलो देखें। उसने कहा– कांटों पर पड़ा है, क्या देखें ? यह सब दिखावे की चीज है। यह तो चढ़ावे के लिये है। इतनी देर यदि राम-नाम जपें, तो लाभ होगा। अन्दर भलाई लानी होती, तो वह चौराहे में क्यों पड़ता ? यह तो तमोगुणी वृत्ति है, दिखावा है। जप-तप तो आत्मा को जगाने की चीज़ है। कठोर कर्मों द्वारा काया को कष्ट देने से तो भगवान की ही अवहेलना होती है। सात्त्विक भाव तो निर्भयता, सन्तोष, विवेक-विचार हैं। सात्त्विक बनने की चेष्टा करनी चाहिये। शास्त्र पढ़ें तो पता चलता है कि क्या अच्छी, क्या बुरी ? दीपक जलने पर घर में रखी चीज़ का पता चल जाता है। अंधेरे में आदमी अमृत के स्थान पर विष भी खा लेते हैं।

एक आदमी बीमार था। अल्मारी से यूं ही बिना टार्च के शीशी उठा लाया। बड़ा विद्वान डॉक्टर, पर शीशी गलत उठा लाया। उसका भाई वकील, उसने भी दवाई का नाम नहीं पढ़ा। बस विष दे दिया। अपने अन्दर चाँदना करना चाहिये और चाँदना शास्त्र के पढ़ने से होता है।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 23.11.1956,
समय अपराह्न 3.30 बजे

❑❑

सद्ग्रन्थ

वेदों में मानव तन

1

(अथर्ववेद का एक मंत्र पढ़कर श्री महाराज जी बोले) मनुष्य का जो सिर है, इसमें आत्मशक्ति का निवास है और यह सिर बड़ा उत्तम है। जो अविनाशी आत्मा का सिर है, वह दिव्य शक्तियों का कोष है। इसमें केवल हड्डियां या नसें ही नहीं, वे तो हैं हीं, पर यह तो दिव्य कोष, दिव्य शक्तियों का स्थान है। किसी युग में यह बात जानी गई कि यहां राम-कृपा का अवतरण होता है या कृपा निवास करती है। प्रकृति में जो चीज़ स्वयं बनती है, वह सरल होती है। यह दिव्य कोष है और सरल है। मशीन जैसी जटिलता इसमें नहीं है। यह स्वभाव से सरल बना हुआ है। यह मनुष्य के मस्तक की एक प्रकार की प्रशंसा है। इसकी रचना के लिये क्या कहना।

अब अगले पद में इसकी रक्षा और पुष्टि का वर्णन है। रक्षा में पुष्टि मिली हुई है। इस से यह होती है। मनुष्य को अपना मस्तक उज्ज्वल और स्वच्छ बनाना हो, तो प्राण-पवन जितनी अच्छी मिलेगी, उतना ही वह अच्छा होगा। शुद्ध-पवन में रहने वालों के दिमाग अच्छे होते हैं। लोग कहेंगे कि फिर कोल, भील आदि क्यों बहुत उत्तम बुद्धि वाले नहीं होते ? भई कमल के खिलने के लिये केवल यह ही नहीं कि जल में हो, अपितु सूर्य-ज्योति और दूसरी चीज़ें भी आवश्यक हैं।

आदमी में भावना होनी चाहिये। प्राण लेते हुए भी भावना बड़ी आवश्यक है। प्राण को जीवन-शक्ति भी कहा है। लाभ तो धूप में जो होता है, वह होता ही है किन्तु भावना हो कि सूर्य की शक्ति से मिलाप हम कर रहे हैं। ऐसा दस मिनट का सूर्य सेवन, वह सारे दिन के सूर्य समीप बैठे रहने से अच्छा है। मनुष्य तो विचार वाला है, तो उसके विचार खड़े हो जाते हैं कि शरीर काला

न हो जाये। फिर यह भावना मनुष्य को रोकती है। सौन्दर्य के विचार से यूरोपियन स्त्रियां बसन्त काल में भी छतरियां लेकर चलती हैं। सम्भवतः बुरके का रिवाज़ भी इसी प्रकार चला हो। फिर इस प्रकार कम से कम पीला तो पड़ ही जाता है। जब ऐसा विचार किया कि हानि देगा, फिर तो कोई बात न हुई। किन्तु इस भावना से कि बल देता है, फिर थोड़ी-सी देर के सूर्य सेवन से भला क्या रंग काला हुआ करता है ? यूरोप में जहां सूर्य कम ही दिखाई देता है, समुद्र की रेत में लेट कर सेवन करते हैं। हमने सुना है– वृत्तपत्रों में लिखा देखा है। ग्रीष्म में भारत में अवश्य गर्मी तीव्र होती है, किन्तु प्रातःकाल का समय तो सदा ही बहुत अच्छा होता है। किसी ने कहा कि बसन्त में बाहर घूमने का बड़ा लाभ है। बसन्त तो एक ऋतु है, साल में केवल दो मास आती है, किन्तु सवेरे की दो-चार घड़ी का सूर्य तो सदा ही बसन्त का है। प्रातःकाल उदित सूर्य बहुत ही अच्छा, बहुत ही लाभदायक होता है। दोपहर की किरणें सीधी होने के कारण तीक्ष्ण होती हैं। वे तीव्र होती हैं। प्राण सूर्य से आता है। जीवधारियों और भूमि को भी शक्तिदान सूर्य ही देता है। ऐसा वह लोग कहते हैं, जो ज्ञानी हैं। सूर्य तो जीवन तत्त्व है। वेदों में सूर्य पर बहुत मंत्र हैं। यह सूर्यदेव अपने आकर्षण करने वाली किरणों से मृत्यु और अमृत दोनों भरता हुआ आता और जाता है। सब गंध दुर्गंध ही होती, यदि यह सूर्य डॉक्टर न होता। मनुष्य को तो फिर वाद-विवाद की आवश्यकता ही नहीं। सूर्य गंध को नष्ट करता है और जीवन देता है। प्राण सूर्य से वनस्पति में आता है। गांव में सब्जी आदि का खाना अधिक है। बड़े नगरों में मरने का क्या आश्चर्य ? अपितु जीते कैसे हैं ? यह आश्चर्य की बात है। मौत तो पत्ते-पत्ते में बसती है। जीवन-तत्त्व प्राण सूर्य से वनस्पति में आता है। इसी प्रकार उन गाय और भैंसों का दूध अच्छा होता है, जो बाहर चरने जाती है और बाहर रहतीं हैं, उनकी अपेक्षा जो कि मकान में बंधी रहती हैं। सूर्य की किरणों के सम्पर्क से प्राण वनस्पतियों में और पानी में आता है। संस्कृत में पानी का नाम भी प्राण है। जिस पानी पर सूर्य की किरणें पड़ें, वह पानी भी अच्छा हो जाता है। जल पान से और स्नान से प्राण मिलता है।

जितना अच्छा प्राण जाये, उतना ही मस्तक खिलेगा। यह जो मस्तक कमल है, इसका प्राण से बड़ा सम्बन्ध है। मुझे कहना यह है कि खाद्य पदार्थों में भी प्राण शक्ति है और प्राण पवन में भी है। भारत की स्थिति ऐसी है, दूसरे देशों की भी, कि मकानों में बहुत कम खिड़की होती हैं। किसान सारे दिन खेतों में सुन्दर पवन में रहते हैं, किन्तु रात के समय दादा के पास अंधेरी तंग कोठरी में सोते हैं। वहीं डंगर (पशु)भी और फिर कोई दरवाजा नहीं, खिड़की नहीं। ऐसा, देश में चोरी आदि के कारण और कुछ समझ नहीं होने के कारण होता है। इसलिये ही पवन के गमनागमन का विचार कम रखते हैं। यह पवन का खुला आना-जाना आवश्यक है। सूर्य की किरणें, पवन ये सब डॉक्टर हैं। इसके लिये मार्ग आवश्यक है। इतने मार्बल चिप्स आवश्यक नहीं। केवल एक दरवाज़ा होने के कारण खुली पवन नहीं आती। अंधेरी रात में, कम्बल में मुंह ढककर सोना, तो चांद कहां से आवे ? इससे तो हवा बोझल होती जावे। अन्ततः नाक भी चौधरी के भट्टे की चिमनी के समान चलने लगे। इस भारी गन्दी पवन का लेना तो ऐसे ही है, जैसे दिल्ली की गन्दी नाली का पानी पीना। तो फिर दिन भर की पवन क्या करे ? वह आत्मविश्वास न होगा। वह वीरता नहीं होगी। मस्तक नहीं खिलेगा। मस्तक खिलता है– शुद्ध पवन से। खुली हवा से, मस्तक में रोशनी आती है। प्राण रक्षा करता है, यह कहा। फिर यह कहा कि अन्न भी रक्षा करता है। रक्षा का अर्थ पुष्टि भी है। जो चीज़ खाई जावे, वह सब अन्न है। काल खाता है, सारा जग तो यह भी अन्न है और काल को भी खाने वाला भक्त, इसलिये काल भी अन्न है। सूक्ष्म तत्त्व उसकी (मस्तक की) रक्षा करता है।

तीसरी बात जो कही गई वह इस प्रकार है। मुझे तो वह बहुत आती नहीं, किन्तु वैद्य लोग जानते हैं। वैसे भी भारत सरकार भी अभी नई है। अभी तो अन्न का ही प्रश्न बड़ा है। दूसरे देशों में अन्न की मर्यादा सिखाते हैं। यहाँ तो साम्प्रदायिकता है कि मूली न खाना। इसका कोई मोल नहीं। इसका समर्थन न

चरित्र की दृष्टि से है और न डॉक्टरी दृष्टि से है। यह दिव्य कोष है– मस्तक। यह स्वभाव से सरल है यद्यपि इसमें जटिलता है वह इंजीनियर भी क्या जाने ? किसी आदमी ने खण्डन किया कि मनुष्य का यह शरीर गॉड ने बनाया। मैं तो ऐसा न करता कि मनुष्य मल-मूत्र के द्वार से पैदा हो। किन्तु डॉक्टर सोचे तो सही, थोड़े में इतनी रचना। जब बच्चा न हो तो पेट चाक करके निकालते हैं, केवल दो बार। यह मनुष्य शरीर तो कोई सरल मशीन नहीं है।

मैं निवेदन कर रहा था कि मस्तक सरल है। यह वर्णन किया कि प्राण इसकी रक्षा करता है और अन्न भी, इसका भी थोड़ा सा वर्णन किया।

साधना-सत्संग देवत-नांगल,
दिनांक 27.12.1954,
समय प्रातः 11.00 बजे

2

यह अथर्ववेद का वर्णन जो मैं आपके आगे रखता आया हूँ, इसमें मनुष्य के पद का वर्णन है। अन्त में मनुष्य का मोल मनुष्य ही डालता है। इतना जो इसके महत्व का वर्णन हुआ है कि देवता भी इसको तरसते हैं। इससे ही मुक्ति का मिलना है। यही नहीं बहुत से ग्रन्थ और साहित्य इसके बारे में लिखे गये हैं। अध्यात्म-दृष्टि से यह वर्णन है। यह पुरातन है। पुस्तकों के बारे में तीन प्रकार से कहा जाता है और विचार किया जाता है– (1) भगवान से अवतरित–इसका सम्बन्ध मानने से ही है। (2) इतिहास से पूर्वकाल की बात–जब तिथि नहीं दी हो तो इतिहास से पूर्वकाल की बात है, ऐसा कहा जाता है जैसे रामायण का काल कौन-सा है ? (3) ऐतिहासिक।

रामायण, महाभारत और वेदों के ग्रंथों की भाषा नहीं मिलती। वेदों की संस्कृत ब्राह्मण ग्रंथों से पुरानी है। पर इसका दिन निश्चित करना मत में हो सकता है। बुद्धि का आधार-विचार से यही समझे कि इतिहास से पहले का काल वेदों की रचना का है। प्रसंग आ गया, मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि रामायण पर ऐतिहासिक दृष्टि, वह रामायण से है। रामायण से सिद्ध की गई

है, बाहर से कोई प्रमाण नहीं लिये गये। राक्षस आदि का वर्णन रामायण के अनुसार इसमें है। आर्य जाति से इन राक्षसों का कोई सम्बन्ध है नहीं। ऐसे इसमें और भी वर्णन हैं। सीता-स्वरूप का भी वर्णन है। इसमें यह सिद्ध किया गया है कि वे संस्कृत भाषा बोलते थे। मकान बड़े सजे हुए होते थे। राज्य की स्थापना वैदिक रीति से होती थी। जटायु का वर्णन भी ऐतिहासिक है। मिथकशास्त्र (Mythology) से नहीं। इसमें एक प्रसंग है– रामायण काल में विंध्याचल की चोटियों पर बर्फ पड़ती थी। किसी वर्णन में आया है– नासिक के पास के सरोवर जम गये। अब तो बर्फ हिमालय से भी दूर जा रही है, तो हिमानी (Glacier) हिम जमा हुआ बड़ा निकट था। हिमानी की चट्टानें बड़ी निकट मिलती थीं। अब बर्फ पीछे-पीछे जाती है। वेद ब्राह्मण ग्रन्थों से पहले के बने हैं। कहना यह है कि इतिहास से पहले के हैं। यह कोई क्राईस्ट के समय या शाक्य मुनि के समय बने हों, ऐसी कोई बात नहीं। जाति का तो ऋग्वेद में भी वर्णन आता है, किन्तु उस समय जातियों के संघर्ष नहीं थे। यह बात तो प्रसंगवश कही है।

जो पुर, नगरी ब्रह्म की है, जिसका यह जीवात्मा पुरुष है, इसके ज्ञान को जो जानता है, उसकी बुद्धि ज्ञानी है। तन भी कोई शक्ति है, ऐसा सोचना चाहिये। बुढ़ापे आदि की ओर से मन को दुर्बल जानना तो ठीक नहीं। बुढ़ापा अपने हाथों भी तो लोग लाते हैं। अजी अब क्या है ? अब बुढ़ापा आ गया। पचास साल की आयु हो गई। मुझे कहना यह है कि बरसों के साथ मरने को बांधें नहीं। बंधा होगा तो, पैदा होते भी तो मरते हैं। 'यहां यूं भी वाह-वाह और यूं भी वाह-वाह।' मन का बुढ़ापा न हो तो तन का बुढ़ापा कुछ नहीं। जटायु की हज़ारों वर्ष आयु लिखी है। गीदड़ों के जवान बच्चे भी कुत्तों के आगे भागते हैं। वर्षों में मनुष्य भीरू नहीं होता। सोचना चाहिये कि तन में कोई शक्ति है। बुद्धिमान, वस्त्र मोटे पहनकर अपने को मोटा तो नहीं मानता। तन के दुबलेपन के साथ उसको (आत्मा को) दुबला न बनाना। जो सदा ही तरुण बने रहने वाली चीज़ है– वह 'मैं हूँ' तन में। हम मृत्यु को

प्रायः अपने पास लाते हैं। वास्तव में भक्तों के वचनों में तो कम ही ऐसा आया करता है। "मत चंचलता करो यहां तो रहना नहीं" यह तो किसी साधु का, जो दुःख के मारे घर से निकला, बनाया हुआ ऐसा गीत है। यह बहुत बुराई के गीत तो उन्हीं के बनाये हुए हैं।

जो ब्रह्म के ज्ञान (आत्मिक-ज्ञान) का ज्ञानी है, उसको ज्ञान नहीं छोड़ता है और जरा (बुढ़ापे) से उसकी प्राण-शक्ति कम नहीं होती। नैपोलियन जिस द्वीप में रखा हुआ था, कहते हैं, उस काल का कछुवा वहां पड़ा है। सांप, कौवा, कछुवा–इनकी आयु अधिक होती है। मनुष्य ने ही अपनी जीवनी घटाई है। सम्भवतः यह कारण हो कि संख्या में मनुष्य बहुत बढ़ता है। लड़ाई और बीमारी में यदि न मरें तो फिर न जाने कितने हो जायें। फिर बुढ़ापा सरलता से सौ साल बाद या इससें भी देर से आये। अब चर्चिल कितने वर्ष का है ? वह कितनी व्यवस्थित जाति का शासन कर रहा है ? हमारे देश में लोग ज़रा बेढब काम करते हैं और नियम से नहीं रहते। यहां तो जैसे– कुम्हार गधों का दम निकल जाये, तब ही छोड़े। सब ही का यह हाल है, चाहे वकील हो या मिनिस्टर। यहां तो चार भाई छोड़ आवें, तभी रिटायर होते हैं। इसी से आदमी शीघ्र बूढ़ा होता है। अनेक काम अपने सिर पर लेना, यह वृत्ति है। बहुत कम्पनी, फिर अनियमित जीवन, प्रोफेसरी और फिर ट्यूशन, तो फिर आयु कम तो होगी ही।

मार्शल टीटो ने कोई भाषण बीस या पच्चीस मिनट से अधिक का नहीं दिया। बड़ी आयु का भी वह है। उसने काम भी बहुत किये। वह दाने जैसा पिसता नहीं था। पांच-छह ड्यूटी लेने वाला या तो पिस जायेगा या काम निकम्मे करेगा। फिर बड़े पेड़ के नीचे अन्य पौधे कहां उगेंगे ? हरेक को अपनी ड्यूटी दो। मैं ही करूंगा, मैं ही बोलूंगा, ऐसा क्या ? कहना यह था कि नियमित जीवन न बिताने से बुढ़ापा हम खींचकर बहुत लाते हैं। अजी ! बाबूजी ! आप पर तो बुढ़ापा आ गया। चेहरा पीला पड़ गया। हां जी, मैं बीमार रहा। यह मुसलमानी नवाबी सभ्यता है। यह प्राचीन सभ्यता नहीं। मुझ से भी कहते हैं लोग कि अब तो आपकी आयु अधिक हो गई। अजी वह बात नहीं रही। ऐसे

कहना हिन्दू सभ्यता की बात नहीं है। मुझे कहना यह है कि ऐसा कहना प्रभाव ही खराब करता है। यदि ऐसा कहकर सहानुभूति जताते हैं, तो मैं नहीं समझता यह सहानुभूति की सभ्यता है। यदि यह विचार हो कि यह ब्रह्मपुरी– अयोध्या जरित होने वाली नहीं है। अपने आप को बोध देना कि यह ब्रह्म-निवास है। आत्मदेव सदा तरुण रहते हैं। यह पिंजरा जरी भूत है, पर पंछी तो सदा तरुण है। ऐसी भावना से वेद-मंत्र दान देते।

साधना-सत्संग देवत-नांगल,
दिनांक 28.12.1954,
समय प्रातः 11.00 बजे

3

पिछले कथनों में यह चर्चा हो चुकी है–

1. मनुष्य का मस्तक जो है वह दिव्यकोष है।
2. इसमें आत्मशक्ति को प्रतीत किया गया।
3. ब्रह्मपुरी है मानव तन।
4. अमृत से यह घिरा हुआ है।
5. जो इसको जानता है वह चिर आयु को जीता है। उस पर भगवान की कृपा होती है और भागवत जनों की भी।

इस नगरी के आठ चक्र हैं। नगरी की उपमा तन को दी है। आत्मदेव का इसमें वास है। नगरी इसलिये भी कि इसमें कितनी शक्तियां हैं, जैसे नगर में बहुत दुकान या मकान तथा नर-नारी होते हैं। इसी प्रकार शरीर में बहुत से सैल (Cells) हैं। वे अपना जीवन रखते हैं। अणु केन्द्र, इन में भी शक्तियां हैं। केन्द्र जो दूसरे हिस्सों को शक्ति देते हैं। इसमें बहुत सेवक रहते हैं। सैंकड़ों हज़ारों, जो रक्षा करते हैं। किसी नस में कोई शत्रु पैदा हो जाये, तो वे उसको मारते हैं, खाते हैं। साधारणतया कीटाणु एक नस से दूसरी नस में रक्त प्रवाह (Blood Circulation) के द्वारा जाते हैं। शारीरिक-शास्त्र के जानने वाले कहते हैं कि रक्षा करने वाले कीट एक नस से दूसरी नस में सीधे चले जाते हैं।

पुकारने पर भी वह मूर्ति के सामने से नहीं उठा। धमकाने पर भी उस पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। जब राजा घोड़े से उतरा और देखा, तो पता चला कि वह वैसे ही नहीं बैठा, अपितु मूर्ति के सामने बैठा है। उसके ध्यान समाप्त करने पर राजा ने प्रश्न किया, 'तुमने मेरे आदेश की ओर ध्यान क्यों नहीं दिया ?' उसने उत्तर दिया, 'मैं तो स्वयं भगवान के दरबार में प्रार्थना कर रहा था। तुम्हारी कैसे सुनता ?' तो मैं कहना चाहता था, कि राम का जाप जो कर रहा है, वह तो बड़े शुभ-सत्संग में है।

मनुष्य जब घर में तृप्त हो, तो उसको बाहर या बाज़ार में खाने में ग्लानि होती है और बाज़ारी भूख नहीं होती। चौ.मेहर सिंह सांपले से दिल्ली आते हैं। घर से खा कर चलते हैं और फिर बाहर खाने की आवश्यकता नहीं समझते। (कहने का तात्पर्य यह कि जो अपने आप में ही राम-नाम द्वारा तृप्त हो, उसे इससे बढ़कर और सत्संग ढूंढ़ने की क्या ज़रूरत)। पंजाब में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी ने कहा कि भारतवर्ष अब आत्मनिर्भर है। अब वह पर से माँगने वाला नहीं रहा। इसी तरह साधक को परमात्मा के संग में आत्मनिर्भर होना चाहिये। इससे वह मांगने वाला नहीं रहता। यदि राम-दरबार से न मिला, तो कानी कौड़ी भी किसी स्थान से मिलेगी नहीं, यह निश्चित है। यह भावना भक्त में आई, तो सत्संग कितना सुलभ हो गया।

सत्संगी को यह दृढ़ निश्चय होना चाहिये कि उसके भगवान की मूर्ति का निवास उसमें है। ध्यान करने वाले इसको गाते चले आये हैं। दूसरी बात है, गीता पढ़ें तो समझें कि भगवान श्रीकृष्ण अपने शब्दों में ही हैं। यह समझ हो तो लाभ अधिक होता है। रामायण, गीता, उपनिषद् बड़े दरबार हैं– भगवान, ऋषियों और सन्तों के। यह ग्रन्थ तो पान्थिक पोथियों से पहले के बने हैं।

जब हाँसी के गाँव में घूमने लगे, तो शम्भूदत्त के हाथ में लट्ठ होता था। कहना यह है कि लट्ठ मार्ग का अवलम्बन है, सहारा है। ऐसे ही मोह-माया की और छल कपट की सृष्टि में चलने के लिये शास्त्र, लाठी का सहारा है। पहला मत चलाने वाला गौतम बुद्ध हुआ। फिर ईसा मसीह आदि। पर हमारे शास्त्र ऐसे हैं, जिनको पन्थ के हाथों ने मैला नहीं किया। ऐसे शास्त्रों का पाठ, उत्तम सत्संग है।

शास्त्रों में जिनके वाक्य हैं, वे साक्षात् उन ग्रन्थों में हैं। राम-आराधन करने वालों को तो समझना चाहिये कि वे तो भगवान के दरबार में हैं। उसके दरबार में तो सभी का सत्संग मिला—ऋषि, मुनि, सन्त और महन्त का। जो ग्रन्थ श्रेष्ठ हैं, उन्हें आप पढ़ा करें। आप गीता का बार-बार पाठ करें। तीन बार पाठ के बाद बोलने लग जायेगी। इसी प्रकार रामायण, उपनिषद् भी अवश्य पढ़ो। भले अनुवाद ही सही।

सिमरन, स्वाध्याय और सत्संग जिसमें आ गया, वह कल्याण पा गया।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 22.11.1953,
समय अपराह्न 3.30 बजे

❑❑

स्वाध्याय

स्वाध्याय - 1

स्वाध्याय नित्य करना चाहिये। स्वाध्याय के लिये वीतराग पुरुषों द्वारा लिखे हुए ग्रंथ होने चाहियें। स्वाध्याय से आदमी विचार वाला होता है और पक्का होता है। इससे स्वावलम्बी भी हो जाता है। उसको मतवाद की चाट की चाह नहीं रहती। वह प्रबुद्ध हो जाता है। श्रद्धा बहुत गहरी बस जाती है। शास्त्र दैवी स्वतंत्रता देता है, उनको अपनाना चाहिये। यह बहुत ऊंची चीज़ है। ज्यों-ज्यों इसमें अवगाहन किया जाता है, त्यों-त्यों उसका ज्ञान बढ़ता है और विज्ञान रुचने लगता है। स्वाध्यायशील पुरुष का घर मन्दिर बन जाता है।

अपने आपको तुच्छ नहीं मानना चाहिये। पहली असफलताओं से हताश नहीं होना चाहिये, यत्न करते रहना चाहिये। लाभ पर दृष्टि रखना व्यापार बुद्धि है। कोई कृत्य लाभ को लक्ष्य करके नहीं करना चाहिये। कृत्य, कृत्य के लिये ही करना चाहिये। अन्त में लाभ होता ही है और फिर लाभ कई प्रकार से होता है, कई बार होता है, पर पता नहीं लगता।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 29.12.1945,
समय दोपहर 3.00 बजे

स्वाध्याय - 2

स्वाध्याय का अर्थ अपने आप अध्ययन करना है। स्वाध्याय के बहुत प्रमाण हैं। स्वाध्याय करने के लिये भावना होनी चाहिये। स्वाध्याय से ज्ञान बढ़ता है। शास्त्रों का, अच्छे ग्रंथों का स्वाध्याय मन में रुचि पैदा करता है और लाभजनक है। हिन्दुओं में स्वाध्याय की कमी के कई कारण हैं। यह कहना बड़ा व्यर्थ है कि स्त्रियां शास्त्रों को न पढ़ें। यह बंधन तो कोई भी धार्मिकता नहीं रखते। आप पढ़ने का विचार न होना, अपितु दूसरों से पढ़वाना यह व्यापारी की चालू की हुई बात है। ऐसे लोग कुछ तो आलस्य के कारण और कुछ थकावट के कारण चाहते हैं कि पंडित से पढ़वावें। पाप करें आप और जाप उनके लिये करे पण्डित, तो समझो वे तो अपनी ब्लैक मार्किट की रीति परलोक में भी चलाना चाहते हैं। जो अपनी आंखों न देखे, वह क्या देख पाता है? जो अपने कानों न सुने, वह क्या सुन पाता है? वह सुना हुआ कितना अधूरा होता है। जो आप अपने पाँवों से न चल पावे, वह कितना अपाहिज होगा? जरा अनुमान लगाया जावे। यद्यपि हिन्दुओं के अमोलक ग्रंथ संस्कृत में हैं, पर बात तो यह है न, कि अच्छे ज्ञानियों के किये हुए उनके अनुवाद भी मिल जाते हैं और वे अनुवाद भी वही हैं, जैसे कि मौलिक ग्रंथ, फिर कोई अन्तर नहीं। लोगों में स्वाध्याय करने की भावना कम है। फिर आलस्य प्रमाद भी स्वाध्याय न करने का बड़ा कारण है। पंजाब में उर्दू का बड़ा प्रचार है, उर्दू कुछ ऐसी भाषा है जिसमें सही उच्चारण कठिन है। उर्दू वाला प्रकाश की जगह परकाश कहेगा, यदि शान्ति कहेगा तो न अलग बोलेगा।

व्यापार के लिये भी धर्मग्रन्थों के अनुवाद बहुत हुए। गोरखपुर वालों ने उनकी तो कम कीमत रखी। कोई दस साल हुए लाहौर में पहली बार छः सात सौ लड़कों की सभा ने मिलकर श्लोक पढ़े, तब मैंने पहली बार शुद्ध उच्चारण सुना। अंग्रेजी का शुद्ध उच्चारण तो भय और राज के कारण था।

यू.पी. में हरेक मज़हब और जाति का मनुष्य स्वाध्याय करता है और बड़ी लगन से। स्वाध्याय में तो बड़े लाभ हैं। स्वाध्याय में जितना दस बीस मिनट का समय लगाया है, यह तो अपने में ज्ञान का दीप जलाया है। अब यह बताना है कि स्वाध्याय की भावना कैसी हो? यह भावना की बात बड़ी आवश्यक है और मैं इस पर ज़ोर देता हूँ। देखिये ! आप मंदिर में जाते हैं, तो ठाकुर जी का विचार करके सिर झुकाते हैं। यदि रामायण पढ़ें तो वहां रामायण का अर्थ है, राम का घर, सीता-राम का मन्दिर। रामायण तो रामयज्ञ है– इस भावना से रामायण पढ़ें। मूर्ति का तो नाम से पता चलता है और यहां तो गुणों का वर्णन है। चित्र में सारे गुण कैसे प्रदर्शित हों। जो चरित्र रामायण में दिया, वह तो कल्याणकारी है।

गीता क्या है? वह कृष्ण जी के गीत हैं। यह भावना हो कि गीता श्रीकृष्ण जी का पावन चरित्र है। इनकी (कृष्ण जी की) शरण में हो, तो लाभ होता है। गीता में जो ज्ञान है, वह बड़ा ऊंचा है और सरल पद्धति से वर्णन किया गया है। भावना हो तो गीता-पाठ से बड़ा लाभ होता है। गीता पढ़ते समय यह भावना हो कि भगवान कृष्ण स्वयं मुझे उपदेश दे रहे हैं। अन्त में भावना बड़ी आवश्यक है। गीता तो साक्षात् भगवान का वाक्य है, किसी पण्डित या किसी दूसरे का नहीं। ऐसी भावना हो, तो संशय-रहित लाभ होता है। यह भावनामय जगत है।

मेरे तो कथन में रूप का देखना है नहीं (भगवान को किसी विशेष रूप में देखने का), पर स्वरूप आते हैं। स्वाध्याय करने से स्वरूप भी आते है। गीता का वर्णन करने वाला भगवान के बहुत समीप हो जाता है। यह विश्वास अन्तर में डालना चाहिये। जो ऐसा करते हैं, तो ऐसा ही होता है। एक सज्जन ने पर्वत-प्रवास में मुझे बताया कि शाम के समय जब वह बगीचे के किनारे बैठा, तो उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि सामने की पहाड़ी पर श्रीकृष्ण जी आ रहे हैं और वे भगवान् खड़े हो गये हैं और वह सज्जन भी (उनके स्वागत में) खड़ा हो गया है।

यदि भावना से स्वाध्याय करे, तो करने वाला तो गद्गद् हो जाता है और देशकाल को भूल जाता है। स्वाध्याय करने का स्वभाव बनाना चाहिये। ग्रंथों का पाठ मंगलमय होता है। जिनके घरों में स्वाध्याय होता है, उनके यहां संतान बड़े शुद्ध संस्कारों से युक्त, मनस्वी तथा वीर होगी।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 21.11.1953,
समय अपराह्न 3.30 बजे

❑❑

स्वाध्याय - 3

साधना सत्संग में जो सज्जन आये हैं और जो अन्य भाई-बहन, अब आये है, अपने आप में हरेक को पूरा होने का प्रयत्न करना चाहिये। पराधीनता का जीवन मन में बहुत ही ग्लानि पैदा करता है। धार्मिक रीति से प्रत्येक मनुष्य को शास्त्र का अध्ययन करना चाहिये। जिसने ऐसा नहीं किया या नहीं करता, समझो उसने भारी भूल की है। इस युग में हर चीज़ में कठिनाई कम है। समझना चाहिये कि जो हमारे अच्छे प्रमाणिक ग्रन्थ हैं, इनको सुगमता से पढ़ सकते हैं। प्रयत्न न करें तो पास पड़ी वस्तु भी हाथ नहीं आती और प्रयत्न करने वाले हज़ारों मील दूर की वस्तु को प्राप्त कर लेते हैं।

अब हिन्दी सरल भाषा है। मुझे तो यही कहना है कि हिन्दी में भी जो गीता का अध्ययन नहीं करता, वह तो ऐसा ही है कि घर में नलका है, पर फिर भी प्यासा है। पर प्रीति न करे, फिर तो कोई बात नहीं हुई। भले काम को कल पर नहीं छोड़ना चाहिये। जो बात समझ न आवे, वह अपने से श्रेष्ठ सज्जन से मिलकर सीखें। पुरुषार्थी हो, चेतन हो। शास्त्र का पाठ करते रहने से प्राणी का कल्याण हो जाता है। बहुत देशों में जिन्होंने इस बात को बहुत समझा है, उन्होंने और सुगम किया। हमारे देश में ऐसा बहुत नहीं करते। बहुत आदमियों ने ऐसी बात सीखी। हिन्दू में प्रमाद बहुत है। इस युग में जो चेतन नहीं, उनका स्थान बहुत कम रह गया है।

तो देवियो और सज्जनो! कुछ समय प्रतिदिन पाठ हो, यह रिवाज़ प्रचलित होना चाहिये । रामचन्द्र जी का नाम आदर से लेना, कृष्ण के गीत गाना, पर हिन्दू माँ की गोद में पैदा होकर गीता और रामायण का पाठ न किया, तो क्या किया ! आप जानना, आप पढ़ना, आप समझना–इस बात को चलाया नहीं। यह बात थोड़ी-थोड़ी प्रचलित है, पर आम नहीं। ऐसा नहीं कि समय नहीं है, पर समय सब नष्ट करते हैं। समय-समय पर काम होता है। यहां बहुत लोगों का समय व्यर्थ में बीतता है। वे जन्मते हुए भी बैल और मरते समय भी ढोर।

यही देश का हाल है। किसी ने बता दिया तो द्वादशी, नहीं तो एकादशी सही। प्रत्येक आदमी इस बात का मनन करे। किसी मन्दिर की ड्योढ़ी के द्वार पर कोई अस्सी वर्ष का वृद्ध क, ख सीख रहा था। एक विद्वान ने देखा। वह विद्वान बड़ी देर तक खड़ा रहा। पूछा कि आप क्या काम करते हैं ? कहने लगे, मेरे लड़के दुकान करते हैं। हमारे बाग भी हैं। पहले किसी ने बताया नहीं कि पढ़ना भी सीखना चाहिये। दो माह से रिश्तेदार ने बताया। लगन तो पहले थी। अब बाल उपदेश समाप्त कर चुका हूँ। इस लड़के को दो रुपये देता हूँ। यह आधी चौपाई बता जाता है। पंडित आश्चर्यचकित था कि विद्या में प्रेम हो तो ऐसा। उसने प्रश्न किया– यदि गीता, रामायण न पढ़ पाये और पहले ही मर गये तो ? कहने लगे, यदि मर गया, तो संस्कार तो रहेगा। अगले जन्म में पढ़ लूंगा। प्रयत्न करना चाहिये। थोड़ा-सा भी किया हुआ सुकृत, शुभ फल लाता है। शास्त्र पाठ प्रारम्भ कर देना चाहिये। मैं यह कह रहा था, कि शास्त्र का अध्ययन हरेक को करना चाहिये। रस्सी कोमल हो तो भी बार-बार के घर्षण से वह पत्थर पर निशान बना देती है।

ज्यों-ज्यों मनुष्य शास्त्र का अध्ययन करता है, त्यों-त्यों उसको आगे के लिये अधिक रुचि बढ़ती है और ज्ञान भी बढ़ता है। प्रत्येक को पोथी पढ़नी चाहिये। इसके बिना वह आम जीव है। यह तो मैंने आरम्भ करते हुए कहा था कि जितने प्रकार के प्राणी हैं, उनमें तीन प्रकार की श्रद्धा है– सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। सत्कर्म करने की रुचि, श्रद्धा होनी चाहिये। मनुष्य श्रद्धामय है। भले कर्म न होंगे, तो बुरे ही होंगे। तो जिसकी जैसी श्रद्धा है, उसी के अनुसार कर्म हैं।

सत्गुणी अच्छे आदमियों में बैठेगा। देवों में बैठेगा। जो रजोगुणी है, वह खानपान वाले और मायारूपी मनुष्यों को मिलेगा। जो तमोगुणी है, वह असुरों की पूजा करेगा। इसीलिये लोग संगति का उपदेश देते आये हैं। सत्गुणी की पहचान, वह देवों जैसा, रजोगुणी– छली, कपटी, तमोगुणी-महा अज्ञानी, बुराई में लगे हुए, क्रोधी, बड़ा हठी, जो शास्त्र ने वर्णन न किया, वह करना। धरना लगाना, हाथ उठाये रखना, शरीर को मारना, ठीक नहीं। कबीर साहब ने कहा है कि "बाँबी को पीटे क्या बने, सांप न मारा जाये।" शरीर को मारने

से क्या, यदि अहंकार का सांप जो अन्दर फन फैलाये बैठा है, उसे न मारा जाये। महाराज ने गीता में कहा है "मैं जो सब प्राणियों में रहता हूँ, काया को सुखाने वाले मुझे ही दुःख देते हैं।" एक स्त्री को किसी ने कहा– एक आदमी कांटों पर लम्बा लेटा हुआ है। चलो देखें। उसने कहा– कांटों पर पड़ा है, क्या देखें ? यह सब दिखावे की चीज़ है। यह तो चढ़ावे के लिये है। इतनी देर यदि राम-नाम जपें, तो लाभ होगा। अन्दर भलाई लानी होती, तो वह चौराहे में क्यों पड़ता ? यह तो तमोगुणी वृत्ति है, दिखावा है। जप-तप तो आत्मा को जगाने की चीज़ है। कठोर कर्मों द्वारा काया को कष्ट देने से तो भगवान की ही अवहेलना होती है। सात्त्विक भाव तो निर्भयता, सन्तोष, विवेक-विचार हैं। सात्त्विक बनने की चेष्टा करनी चाहिये। शास्त्र पढ़ें तो पता चलता है कि क्या अच्छी, क्या बुरी ? दीपक जलने पर घर में रखी चीज़ का पता चल जाता है। अंधेरे में आदमी अमृत के स्थान पर विष भी खा लेते हैं।

एक आदमी बीमार था। अल्मारी से यूं ही बिना टार्च के शीशी उठा लाया। बड़ा विद्वान डॉक्टर, पर शीशी गलत उठा लाया। उसका भाई वकील, उसने भी दवाई का नाम नहीं पढ़ा। बस विष दे दिया। अपने अन्दर चाँदना करना चाहिये और चाँदना शास्त्र के पढ़ने से होता है।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 23.11.1956,
समय अपराह्न 3.30 बजे



सद्ग्रन्थ

वेदों में मानव तन

1

(अथर्ववेद का एक मंत्र पढ़कर श्री महाराज जी बोले) मनुष्य का जो सिर है, इसमें आत्मशक्ति का निवास है और यह सिर बड़ा उत्तम है। जो अविनाशी आत्मा का सिर है, वह दिव्य शक्तियों का कोष है। इसमें केवल हड्डियां या नसें ही नहीं, वे तो हैं हीं, पर यह तो दिव्य कोष, दिव्य शक्तियों का स्थान है। किसी युग में यह बात जानी गई कि यहां राम-कृपा का अवतरण होता है या कृपा निवास करती है। प्रकृति में जो चीज़ स्वयं बनती है, वह सरल होती है। यह दिव्य कोष है और सरल है। मशीन जैसी जटिलता इसमें नहीं है। यह स्वभाव से सरल बना हुआ है। यह मनुष्य के मस्तक की एक प्रकार की प्रशंसा है। इसकी रचना के लिये क्या कहना।

अब अगले पद में इसकी रक्षा और पुष्टि का वर्णन है। रक्षा में पुष्टि मिली हुई है। इस से यह होती है। मनुष्य को अपना मस्तक उज्ज्वल और स्वच्छ बनाना हो, तो प्राण-पवन जितनी अच्छी मिलेगी, उतना ही वह अच्छा होगा। शुद्ध-पवन में रहने वालों के दिमाग अच्छे होते हैं। लोग कहेंगे कि फिर कोल, भील आदि क्यों बहुत उत्तम बुद्धि वाले नहीं होते ? भई कमल के खिलने के लिये केवल यह ही नहीं कि जल में हो, अपितु सूर्य-ज्योति और दूसरी चीज़ें भी आवश्यक हैं।

आदमी में भावना होनी चाहिये। प्राण लेते हुए भी भावना बड़ी आवश्यक है। प्राण को जीवन-शक्ति भी कहा है। लाभ तो धूप में जो होता है, वह होता ही है किन्तु भावना हो कि सूर्य की शक्ति से मिलाप हम कर रहे हैं। ऐसा दस मिनट का सूर्य सेवन, वह सारे दिन के सूर्य समीप बैठे रहने से अच्छा है। मनुष्य तो विचार वाला है, तो उसके विचार खड़े हो जाते हैं कि शरीर काला

न हो जाये। फिर यह भावना मनुष्य को रोकती है। सौन्दर्य के विचार से यूरोपियन स्त्रियां बसन्त काल में भी छतरियां लेकर चलती हैं। सम्भवतः बुरके का रिवाज़ भी इसी प्रकार चला हो। फिर इस प्रकार कम से कम पीला तो पड़ ही जाता है। जब ऐसा विचार किया कि हानि देगा, फिर तो कोई बात न हुई। किन्तु इस भावना से कि बल देता है, फिर थोड़ी-सी देर के सूर्य सेवन से भला क्या रंग काला हुआ करता है ? यूरोप में जहां सूर्य कम ही दिखाई देता है, समुद्र की रेत में लेट कर सेवन करते हैं। हमने सुना है– वृत्तपत्रों में लिखा देखा है। ग्रीष्म में भारत में अवश्य गर्मी तीव्र होती है, किन्तु प्रातःकाल का समय तो सदा ही बहुत अच्छा होता है। किसी ने कहा कि बसन्त में बाहर घूमने का बड़ा लाभ है। बसन्त तो एक ऋतु है, साल में केवल दो मास आती है, किन्तु सवेरे की दो-चार घड़ी का सूर्य तो सदा ही बसन्त का है। प्रातःकाल उदित सूर्य बहुत ही अच्छा, बहुत ही लाभदायक होता है। दोपहर की किरणें सीधी होने के कारण तीक्ष्ण होती हैं। वे तीव्र होती हैं। प्राण सूर्य से आता है। जीवधारियों और भूमि को भी शक्तिदान सूर्य ही देता है। ऐसा वह लोग कहते हैं, जो ज्ञानी हैं। सूर्य तो जीवन तत्त्व है। वेदों में सूर्य पर बहुत मंत्र हैं। यह सूर्यदेव अपने आकर्षण करने वाली किरणों से मृत्यु और अमृत दोनों भरता हुआ आता और जाता है। सब गंध दुर्गंध ही होती, यदि यह सूर्य डॉक्टर न होता। मनुष्य को तो फिर वाद-विवाद की आवश्यकता ही नहीं। सूर्य गंध को नष्ट करता है और जीवन देता है। प्राण सूर्य से वनस्पति में आता है। गांव में सब्जी आदि का खाना अधिक है। बड़े नगरों में मरने का क्या आश्चर्य ? अपितु जीते कैसे हैं ? यह आश्चर्य की बात है। मौत तो पत्ते-पत्ते में बसती है। जीवन-तत्त्व प्राण सूर्य से वनस्पति में आता है। इसी प्रकार उन गाय और भैंसों का दूध अच्छा होता है, जो बाहर चरने जाती है और बाहर रहतीं हैं, उनकी अपेक्षा जो कि मकान में बंधी रहती हैं। सूर्य की किरणों के सम्पर्क से प्राण वनस्पतियों में और पानी में आता है। संस्कृत में पानी का नाम भी प्राण है। जिस पानी पर सूर्य की किरणें पड़ें, वह पानी भी अच्छा हो जाता है। जल पान से और स्नान से प्राण मिलता है।

जितना अच्छा प्राण जाये, उतना ही मस्तक खिलेगा। यह जो मस्तक कमल है, इसका प्राण से बड़ा सम्बन्ध है। मुझे कहना यह है कि खाद्य पदार्थो में भी प्राण शक्ति है और प्राण पवन में भी है। भारत की स्थिति ऐसी है, दूसरे देशों की भी, कि मकानों में बहुत कम खिड़की होती हैं। किसान सारे दिन खेतों में सुन्दर पवन में रहते हैं, किन्तु रात के समय दादा के पास अंधेरी तंग कोठरी में सोते हैं। वहीं डंगर (पशु)भी और फिर कोई दरवाज़ा नहीं, खिड़की नहीं। ऐसा, देश में चोरी आदि के कारण और कुछ समझ नहीं होने के कारण होता है। इसलिये ही पवन के गमनागमन का विचार कम रखते हैं। यह पवन का खुला आना-जाना आवश्यक है। सूर्य की किरणें, पवन ये सब डॉक्टर हैं। इसके लिये मार्ग आवश्यक है। इतने मार्बल चिप्स आवश्यक नहीं। केवल एक दरवाज़ा होने के कारण खुली पवन नहीं आती। अंधेरी रात में, कम्बल में मुंह ढककर सोना, तो चांद कहां से आवे ? इससे तो हवा बोझल होती जावे। अन्ततः नाक भी चौधरी के भट्टे की चिमनी के समान चलने लगे। इस भारी गन्दी पवन का लेना तो ऐसे ही है, जैसे दिल्ली की गन्दी नाली का पानी पीना। तो फिर दिन भर की पवन क्या करे ? वह आत्मविश्वास न होगा। वह वीरता नहीं होगी। मस्तक नहीं खिलेगा। मस्तक खिलता है– शुद्ध पवन से। खुली हवा से, मस्तक में रोशनी आती है। प्राण रक्षा करता है, यह कहा। फिर यह कहा कि अन्न भी रक्षा करता है। रक्षा का अर्थ पुष्टि भी है। जो चीज़ खाई जावे, वह सब अन्न है। काल खाता है, सारा जग तो यह भी अन्न है और काल को भी खाने वाला भक्त, इसलिये काल भी अन्न है। सूक्ष्म तत्त्व उसकी (मस्तक की) रक्षा करता है।

तीसरी बात जो कही गई वह इस प्रकार है। मुझे तो वह बहुत आती नहीं, किन्तु वैद्य लोग जानते हैं। वैसे भी भारत सरकार भी अभी नई है। अभी तो अन्न का ही प्रश्न बड़ा है। दूसरे देशों में अन्न की मर्यादा सिखाते हैं। यहाँ तो साम्प्रदायिकता है कि मूली न खाना। इसका कोई मोल नहीं। इसका समर्थन न

चरित्र की दृष्टि से है और न डॉक्टरी दृष्टि से है। यह दिव्य कोष है– मस्तक। यह स्वभाव से सरल है यद्यपि इसमें जटिलता है वह इंजीनियर भी क्या जाने ? किसी आदमी ने खण्डन किया कि मनुष्य का यह शरीर गॉड ने बनाया। मैं तो ऐसा न करता कि मनुष्य मल-मूत्र के द्वार से पैदा हो। किन्तु डॉक्टर सोचे तो सही, थोड़े में इतनी रचना। जब बच्चा न हो तो पेट चाक करके निकालते हैं, केवल दो बार। यह मनुष्य शरीर तो कोई सरल मशीन नहीं है।

मैं निवेदन कर रहा था कि मस्तक सरल है। यह वर्णन किया कि प्राण इसकी रक्षा करता है और अन्न भी, इसका भी थोड़ा सा वर्णन किया।

साधना-सत्संग देवत-नांगल,
दिनांक 27.12.1954,
समय प्रातः 11.00 बजे

2

यह अथर्ववेद का वर्णन जो मैं आपके आगे रखता आया हूँ, इसमें मनुष्य के पद का वर्णन है। अन्त में मनुष्य का मोल मनुष्य ही डालता है। इतना जो इसके महत्व का वर्णन हुआ है कि देवता भी इसको तरसते हैं। इससे ही मुक्ति का मिलना है। यही नहीं बहुत से ग्रन्थ और साहित्य इसके बारे में लिखे गये हैं। अध्यात्म-दृष्टि से यह वर्णन है। यह पुरातन है। पुस्तकों के बारे में तीन प्रकार से कहा जाता है और विचार किया जाता है– (1) भगवान से अवतरित–इसका सम्बन्ध मानने से ही है। (2) इतिहास से पूर्वकाल की बात–जब तिथि नहीं दी हो तो इतिहास से पूर्वकाल की बात है, ऐसा कहा जाता है जैसे रामायण का काल कौन-सा है ? (3) ऐतिहासिक।

रामायण, महाभारत और वेदों के ग्रंथों की भाषा नहीं मिलती। वेदों की संस्कृत ब्राह्मण ग्रंथों से पुरानी है। पर इसका दिन निश्चित करना मत में हो सकता है। बुद्धि का आधार-विचार से यही समझे कि इतिहास से पहले का काल वेदों की रचना का है। प्रसंग आ गया, मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि रामायण पर ऐतिहासिक दृष्टि, वह रामायण से है। रामायण से सिद्ध की गई

है, बाहर से कोई प्रमाण नहीं लिये गये। राक्षस आदि का वर्णन रामायण के अनुसार इसमें है। आर्य जाति से इन राक्षसों का कोई सम्बन्ध है नहीं। ऐसे इसमें और भी वर्णन हैं। सीता-स्वरूप का भी वर्णन है। इसमें यह सिद्ध किया गया है कि वे संस्कृत भाषा बोलते थे। मकान बड़े सजे हुए होते थे। राज्य की स्थापना वैदिक रीति से होती थी। जटायु का वर्णन भी ऐतिहासिक है। मिथकशास्त्र (Mythology) से नहीं। इसमें एक प्रसंग है– रामायण काल में विंध्याचल की चोटियों पर बर्फ पड़ती थी। किसी वर्णन में आया है– नासिक के पास के सरोवर जम गये। अब तो बर्फ हिमालय से भी दूर जा रही है, तो हिमानी (Glacier) हिम जमा हुआ बड़ा निकट था। हिमानी की चट्टानें बड़ी निकट मिलती थीं। अब बर्फ पीछे-पीछे जाती है। वेद ब्राह्मण ग्रन्थों से पहले के बने हैं। कहना यह है कि इतिहास से पहले के हैं। यह कोई क्राईस्ट के समय या शाक्य मुनि के समय बने हों, ऐसी कोई बात नहीं। जाति का तो ऋग्वेद में भी वर्णन आता है, किन्तु उस समय जातियों के संघर्ष नहीं थे। यह बात तो प्रसंगवश कही है।

जो पुर, नगरी ब्रह्म की है, जिसका यह जीवात्मा पुरुष है, इसके ज्ञान को जो जानता है, उसकी बुद्धि ज्ञानी है। तन भी कोई शक्ति है, ऐसा सोचना चाहिये। बुढ़ापे आदि की ओर से मन को दुर्बल जानना तो ठीक नहीं। बुढ़ापा अपने हाथों भी तो लोग लाते हैं। अजी अब क्या है ? अब बुढ़ापा आ गया। पचास साल की आयु हो गई। मुझे कहना यह है कि बरसों के साथ मरने को बांधें नहीं। बंधा होगा तो, पैदा होते भी तो मरते हैं। 'यहां यूं भी वाह-वाह और यूं भी वाह-वाह।' मन का बुढ़ापा न हो तो तन का बुढ़ापा कुछ नहीं। जटायु की हज़ारों वर्ष आयु लिखी है। गीदड़ों के जवान बच्चे भी कुत्तों के आगे भागते हैं। वर्षों में मनुष्य भीरू नहीं होता। सोचना चाहिये कि तन में कोई शक्ति है। बुद्धिमान, वस्त्र मोटे पहनकर अपने को मोटा तो नहीं मानता। तन के दुबलेपन के साथ उसको (आत्मा को) दुबला न बनाना। जो सदा ही तरुण बने रहने वाली चीज़ है– वह 'मैं हूँ' तन में। हम मृत्यु को

प्रायः अपने पास लाते हैं। वास्तव में भक्तों के वचनों में तो कम ही ऐसा आया करता है। "मत चंचलता करो यहां तो रहना नहीं" यह तो किसी साधु का, जो दुःख के मारे घर से निकला, बनाया हुआ ऐसा गीत है। यह बहुत बुराई के गीत तो उन्हीं के बनाये हुए हैं।

जो ब्रह्म के ज्ञान (आत्मिक-ज्ञान) का ज्ञानी है, उसको ज्ञान नहीं छोड़ता है और जरा (बुढ़ापे) से उसकी प्राण-शक्ति कम नहीं होती। नैपोलियन जिस द्वीप में रखा हुआ था, कहते हैं, उस काल का कछुवा वहां पड़ा है। सांप, कौवा, कछुवा--इनकी आयु अधिक होती है। मनुष्य ने ही अपनी जीवनी घटाई है। सम्भवतः यह कारण हो कि संख्या में मनुष्य बहुत बढ़ता है। लड़ाई और बीमारी में यदि न मरें तो फिर न जाने कितने हो जायें। फिर बुढ़ापा सरलता से सौ साल बाद या इससें भी देर से आये। अब चर्चिल कितने वर्ष का है ? वह कितनी व्यवस्थित जाति का शासन कर रहा है ? हमारे देश में लोग ज़रा बेढब काम करते हैं और नियम से नहीं रहते। यहां तो जैसे– कुम्हार गधों का दम निकल जाये, तब ही छोड़े। सब ही का यह हाल है, चाहे वकील हो या मिनिस्टर। यहां तो चार भाई छोड़ आवें, तभी रिटायर होते हैं। इसी से आदमी शीघ्र बूढ़ा होता है। अनेक काम अपने सिर पर लेना, यह वृत्ति है। बहुत कम्पनी, फिर अनियमित जीवन, प्रोफेसरी और फिर ट्यूशन, तो फिर आयु कम तो होगी ही।

मार्शल टीटो ने कोई भाषण बीस या पच्चीस मिनट से अधिक का नहीं दिया। बड़ी आयु का भी वह है। उसने काम भी बहुत किये। वह दाने जैसा पिसता नहीं था। पांच-छह ड्यूटी लेने वाला या तो पिस जायेगा या काम निकम्मे करेगा। फिर बड़े पेड़ के नीचे अन्य पौधे कहां उगेंगे ? हरेक को अपनी ड्यूटी दो। मैं ही करूंगा, मैं ही बोलूंगा, ऐसा क्या ? कहना यह था कि नियमित जीवन न बिताने से बुढ़ापा हम खींचकर बहुत लाते हैं। अजी ! बाबूजी ! आप पर तो बुढ़ापा आ गया। चेहरा पीला पड़ गया। हां जी, मैं बीमार रहा। यह मुसलमानी नवाबी सभ्यता है। यह प्राचीन सभ्यता नहीं। मुझ से भी कहते हैं लोग कि अब तो आपकी आयु अधिक हो गई। अजी वह बात नहीं रही। ऐसे

कहना हिन्दू सभ्यता की बात नहीं है। मुझे कहना यह है कि ऐसा कहना प्रभाव ही खराब करता है। यदि ऐसा कहकर सहानुभूति जताते हैं, तो मैं नहीं समझता यह सहानुभूति की सभ्यता है। यदि यह विचार हो कि यह ब्रह्मपुरी–अयोध्या जरित होने वाली नहीं है। अपने आप को बोध देना कि यह ब्रह्म-निवास है। आत्मदेव सदा तरुण रहते हैं। यह पिंजरा जरी भूत है, पर पंछी तो सदा तरुण है। ऐसी भावना से वेद-मंत्र दान देते।

साधना-सत्संग देवत-नांगल,
दिनांक 28.12.1954,
समय प्रातः 11.00 बजे

3

पिछले कथनों में यह चर्चा हो चुकी है–

1. मनुष्य का मस्तक जो है वह दिव्यकोष है।
2. इसमें आत्मशक्ति को प्रतीत किया गया।
3. ब्रह्मपुरी है मानव तन।
4. अमृत से यह घिरा हुआ है।
5. जो इसको जानता है वह चिर आयु को जीता है। उस पर भगवान की कृपा होती है और भागवत जनों की भी।

इस नगरी के आठ चक्र हैं। नगरी की उपमा तन को दी है। आत्मदेव का इसमें वास है। नगरी इसलिये भी कि इसमें कितनी शक्तियां हैं, जैसे नगर में बहुत दुकान या मकान तथा नर-नारी होते हैं। इसी प्रकार शरीर में बहुत से सैल (Cells) हैं। वे अपना जीवन रखते हैं। अणु केन्द्र, इन में भी शक्तियां हैं। केन्द्र जो दूसरे हिस्सों को शक्ति देते हैं। इसमें बहुत सेवक रहते हैं। सैंकड़ों हज़ारों, जो रक्षा करते हैं। किसी नस में कोई शत्रु पैदा हो जाये, तो वे उसको मारते हैं, खाते हैं। साधारणतया कीटाणु एक नस से दूसरी नस में रक्त प्रवाह (Blood Circulation) के द्वारा जाते हैं। शारीरिक-शास्त्र के जानने वाले कहते हैं कि रक्षा करने वाले कीट एक नस से दूसरी नस में सीधे चले जाते हैं।

यह उनके लिये अपवाद (Exception) है जैसे उत्सवों और ऐसे ही अवसरों पर सेवक के लिये अपवाद होता है। सिपाही के लिये नियम नहीं, दूसरों के लिये होता है। इस शरीर की रक्षा के लिये बड़ी भारी सेना है। इतनी सेना किसी देश की न होगी। संसार के प्रबंध का तो यह बड़ा अच्छा नमूना है। इसमें सब कुछ पाया जाता है। चीनी बनती है, ऐसिड भी बनता है। इसी प्रकार नियम है। खट्टे-मीठे रस पैदा होते हैं। एक-दूसरे को बड़ी भारी सहायता है। किसी के पैर के अंगूठे में कष्ट हो जाये, तो आगे से सहायता पहुँचती है। सारे शरीर की शक्ति इसमें लग जाती है। मैंने शारीरिक-शास्त्र के विषय में बहुत नहीं पढ़ा केवल प्राथमिक (Primary) ही समझा है। तन के अन्दर ही विश्व का चित्र है।

यह नगरी (तन) अष्ट-चक्र वाली है। लड़ाई में पहले किले बनाते थे, चक्र बनाते थे। मूलाधार से सहस्र द्वार तक आठ चक्र हैं। इन चक्रों में अध्यात्मवादियों ने आत्मशक्ति को प्रतीत किया। डॉक्टरों ने कुछ यहां तक समझा कि ये गांठें हैं। अध्यात्मवादियों का कहना है कि आत्मशक्ति इन गांठों में सोई हुई है। सेवन का स्थान अर्थात् मूलाधार–मूलाधार चक्र दोनों द्वारों के मध्य में स्थित है। वहाँ से शक्ति कहो, नागिन कहो, कोई बारीक नाड़ी (कुण्डलिनी) जगती है। पतंजलि ने इसका वर्णन बहुत किया है। इसको दूसरे भी वर्णन करते हैं। वह शक्ति सुषुम्ना में प्रवेश करती है, फिर वह धीरे-धीरे ऊपर तक आती है। स्वामी दयानंद ने यह पढ़ा तो उनको कोई और चीज नहीं मिली। फिर शव उन को मिल गया। उसे फाड़ा। उसमें चक्र नहीं दिखे। तो वे ऐसे देखने में आते नहीं। यह तो शक्ति के जागरण का वर्णन किया। वह जगती अवश्य है और मूलाधार से नाभि की ओर संचालित होती है। हमारी इस ध्यान की पद्धति से तो पहले दिन ही आठों चक्र खुल जाते हैं। हम ऐसा ही बताते हैं कि त्रिकुटी से जाग्रत की जावे। पहले साधन होंगे, मैं इसका खंडन नहीं करता। अब जो भजनों में चक्र ज्ञान है तथा जिस पाठशाला में अध्ययन करने का अवसर मिलता है उससे हमें वैसा ही ज्ञान प्राप्त होता है। हमारी शैली में शक्ति तुरन्त अष्टम द्वार खोल देती है। भगवत्-कृपा इतनी होती है कि प्रथम मंत्र–सुरों से ही (नाम दीक्षा के समय) चक्र खुल जाते हैं। कोई सज्जन अपने ग्राम से दिल्ली कैसे आवे ? यह

ठीक है कि पहले समय में बैलगाड़ी से कितना रास्ता और समय लगता था। अब तो वह कार में एक घंटे में पहुँच जावे और यदि वायुयान से जाना हो तो वह सीधा वहां पहुंचे। कहना यह है कि मंत्र-योग से, राम-नाम के इस योग से, उसे तो आठवें का ही पता चलता है। अर्थात् एकदम सब ही से पार। नीचे का उसको करना ही नहीं पड़ता, यदि आत्मशक्ति वहां (नीचे से) से जग जाये। जब वह कमल-नाल तक आई तो सिर तक पहुंचने में इसको देर नहीं लगती, यदि मंत्र ठीक स्फुरित हो।

पहले सड़क के साथ स्तम्भ लगवाये जाते थे। दो-तीन मील पर चौकी होती थी। तो इस प्रकार पुकार से ही पता लेते थे। यहाँ से कहते और आगे से जवाब आता। अब शक्ति है, दिल्ली से आवाज़ कलकत्ता पहुंच जावे। लन्दन में बैठा सुन रहा है। आवाज़ कितनी तेज हो गई। इसका वेग कितना बढ़ गया। दूर स्थान को आवाज़ पहुँचने में समय तो लगता है, पर इसकी गिनती भी की गई है, किन्तु वह तो बिलकुल मामूली है। इसी प्रकार इस मस्तक के ध्यान का है। नीचे के चक्रों का उसे बोध ही नहीं। अन्य किताबी बातें हैं। मंत्र योग से शक्ति का जागरण सहज से होता है। शरीर-रूपी नगरी के नौ द्वार हैं—दो आँखें, दो कान, दो नाक, दो द्वार नीचे के और मुख। दशम भिन्न है। यह दिव्य आनन्दपुरी है। यह देवों की पुरी है। असुर और दूसरे तो धींगामस्ती से आये जानो—क्रोध के, अहंकार के, विरोध के, छल-कपट के। भारत में असुर बाहर से आये। इनका निवास देवपुरी में नहीं। उनके रंग-रूप और चेहरे का मैंने जैसा ठीक समझा वर्णन किया, मद्रासी से वे भिन्न होते हैं। इस प्रकार लंका में बसी हुई हिंसक जाति, इतने क्रूर कि एक-एक अंग तोड़ कर लहू पीने लग जाना। नखों से छुरी का काम लेते। शूर्पणखा-छाज (सूप) जैसे नखों वाली। श्रीरामचन्द्र जी ने उनको बाहर निकाला। इसीलिये राम की विजय मनाते हैं। अस्तु, वह मेरा प्रसंग नहीं। मानव तन में आसुरी भाव आन बसते हैं। कुसंगति से बुराई आ जाती है। पर यह तन तो असुरों के लिये नहीं बना। कुसंग आदि के कारण वे अवगुण इसमें आ जाते हैं। रामचन्द्र जी ने तो केवल एक भाग से चौदह हज़ार राक्षस समाप्त किये या निकाले। पर राम-नाम करोड़ों को अन्दर से निकाले।

यह नाम तो मनुष्य को देव बनाता है। दैवी-भाव लाने चाहियें। कल्पना जो अब है, वह पुरातन-काल वाली नहीं रही। सन्त की कल्पना और थी। महाराज आशीर्वाद दो, लड़का पैदा हो, ऐसी बात नहीं जानते थे। वीर पैदा हो, यह वे जानते थे। पुरातन भाव बाकी तो रहे हैं, पर वे थोड़े रहे हैं। मैं कहा करता हूँ कि प्राचीन भारतवासियों का वास्तविक पता तो ऋग्वेद से ही चलता है, दूसरों से नहीं। अब लोगों के विचार कुछ और हैं, केवल भगत जी कहलाने की बात है। अंग्रेज से पूछो कि भक्त (Devotee) कैसा हो ? बड़ा साफ सुथरा। किन्तु हमारी सभ्यता में कल्पना ऐसी कि इधर से कपड़ा संभाला तो उधर से चला गया। भीष्म के चित्र में अब खड़ाऊं दिखाते हैं। ऐसे ही समझो कि धर्म के चित्रकार भी ऊँचे नहीं रहे। निर्भयता—आत्म-तत्त्व उसमें जिसमें भय न हो। आत्म-तत्त्व कितना जगा हुआ है, यह निर्भयता है। जिसने भय को मार दिया, उसने मृत्यु को मार दिया। मेरा आदर-मान न मारा जाये, प्रतिष्ठा में बट्टा न लगे, आदि-आदि के अनेकों भय मनुष्यों में पाये जाते हैं। महात्मा गांधी में निर्भयता थी। दिव्य आत्मभाव निर्भयता में जागता है। देव-भावों का वर्णन गीता में है। इस नगरी में देव-भाव रहते हैं।

साधना-सत्संग देवत-नांगल,
दिनांक 28.12.1954,
समय अपराह्न 3.30 बजे

4

कल जो वर्णन किया गया था, उसमें मनुष्य देह को एक नगरी का नाम दिया गया था। मूलाधार से सहस्रार तक और नौ द्वार। देवों की नगरी। देव या दिव्यता प्राप्त करना ही इस नगरी का प्रयोजन है। वनस्पति के समान प्राणमयी और पशुओं के समान वृत्तिमयी है। यह प्राण भी पोषण करते हैं। पशु-जगत् में प्राण भी रहते हैं और वृत्ति भी—क्रोध, प्रीति आदि। पर मनुष्य जो विशेषता रखता है, वह ज्ञान की है। मनुष्य में दिव्य बात होती है— वह है बोधक। यदि ऐसा न हो, फिर तो वह पशु के समान है। इसलिये यह बड़ी बात है कि यह देवताओं की नगरी है। इसी मानव तन में ही ऋषि, भक्त, सन्त, दानवीर और

ऊँची कोटि के महापुरुष हुए हैं। बुद्धि के धनी वैज्ञानिक पुरुष भी हुए हैं। जितनी जिसमें ऊपर वाली बातें हों, उतना ही समझो उसमें देवभाव आ रहा है। यह बात जो कही गई कि यह मनुष्य काल का भी विकाल कर देता है। सभी धर्मों में यह बातें किसी न किसी रूप में पाई जाती हैं। फिर इसका (तन का) दिव्य नाम अयोध्या है। कहते हैं अयोध्या मनु ने बसाई थी। किसी ने भी बसाई थी, अयोध्या का अर्थ है— अखण्ड या जो विजय न की जा सके, या शत्रु आक्रमण न कर सके, अतः ऐसा समझना चाहिये। अब वेद ने यह नाम (तन के लिये) रामायण से लिया था या इन्होंने वेद से अपने ग्रंथों में लिया है। ऐसा विचार तो ऐतिहासिक लोग कर सकते हैं। ऐसा समझना चाहिये कि पुराने काल में ऐसी रीति थी और अब भी बहुत जगह प्रचलित है कि जितने नाम रखे जायें, वे वेद से हों। अयोध्या का अर्थ— मनुष्य का तन। अयोध्या पर क्यों हुआ (तन का नाम) ? वहां तो न जाने कितने किले हों। जर्मनों ने, न जाने कितने आक्रमण किये, किन्तु स्टालिनग्राड गिरने में न आया। वह ऐसा दुर्ग बना हुआ था कि बहुत गोला बारूद वहां खपा। ऐसे नगरों को जिनको असुर विजय न कर सकें, अयोध्या कहा जाता है। इस पर दो वाद-विवाद कि मनुष्य तन कैसे ऐसा (अयोध्या) कहलाया ? यह तन तो (1) मारा जाता है— गोली से, डंडे से। यह नियत नहीं कि कोई कितने वर्ष जियेगा। इसको अकाल कहते हैं, जिसका कोई काल नहीं। (2) दूसरा वाद काल अर्थात् मृत्यु। इसमें बहुत लोग चक्कर में आते हैं। पर निश्चय भाव से कहा जाये, तो अधिक कहना हो जाता है। आदमी को यह चाहिये कि दूसरे की साक्षी से अपना विचार रखने की बात हो। यह शैली बहुत अच्छी है। उसी का अवलम्बन करता हूँ (अर्थात् किसी के विचार का सीधा खंडन नहीं करता)। जो चीज़ बनती है, उसका बिगड़ना साथ है। इस नियम के अनुसार हम यह देखते हैं कि कोई बच्चा और कोई तरुण और कोई बूढ़ा होकर मर जाता है और कभी-कभी बूढ़ा जाने में नहीं आता। यह तो परिवर्तन है, इसका क्या सोचना ? किसी अधिकारी के विरुद्ध शिकायतें होती हैं, तो भी बदलने में नहीं आता, इसका क्या सोचना ? काल में हो, अकाल में हो, यह तो ऐसा ही है, इसमें बहुत उलझना नहीं। कर्मवाद हिन्दुओं में ही है।

मैं यह कहता हूँ कि कर्म से यह शरीर बना है, तो इसका फल भोगने का कोई समय भी होगा, आयु ही न हो, तो फल किस पेड़ को लगेंगे ? जब कोई आदमी फूंक-फूंक कर कदम रखता है, बड़े नियम से रहता है, फिर न जाने बीमारी कहां से आ जाती है और कई ऐसे हैं जो विचार नहीं करते और बचे रहते हैं। पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि विचार नहीं करना। मियादी बीमारी (Typhoid) में लोग बड़ी सावधानी करते हैं, करना चाहिये। किन्तु कम्पाउंडर को कभी कुछ नहीं होता है। हिन्दुओं में तो सभी पास बैठते हैं। इनफ्लुयंजा घर में एक को हुआ, तो वह कोठी में सब को ही हुआ, पर मेहतर को नहीं हुआ। वैद्यों के अनुसार इस के कारण और भी होंगे। पर समझना चाहिये, आयु भी कोई चीज़ है। सिपाहियों ने मुझे कहा कि इधर भी गोले उधर भी गोले (बरस रहे थे), पर हम न मरे। हमारे से पीछे खाई में शरण लिये हुए बम के कारण मर गये। आयु की डोर होती है। काल-मृत्यु हो या अकाल, मैं आपको एक बात कहूँ कि वीर-पुरुष सभी मानते हैं कि मृत्यु का समय होता है। नैपोलियन कहता था कि वह गोली अभी नहीं ढली जो नैपोलियन को समाप्त करे। अब तो युद्ध में वीरता का प्रश्न नहीं, दांव-पेच बहुत चले हुए हैं। एक दुर्बल-सा आदमी ऐटम-बम से न जाने कितने शूरों को हताहत कर दे। जापानियों ने बर्तानिया का जहाज जो नष्ट किया— युद्ध-पोत की चिमनी में जापानी हवाई-सैनिकों का बम सहित कूदना, यह थी वीरता। हमें इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी के वाक्य याद आते हैं। ये दो तीन हैं, जिसमें भरत जी को, तारा को, मन्दोदरी को उपदेश दिया। इन तीनों में ही वह नीति का वर्णन करते हैं कि 'ऐसा होना ही था।' ऐसा ही उन्होंने समझाया।

भरतपुर के राजा की बात— जब भरतपुर के किले पर चढ़ाई हुई, तो राजा आप चक्कर लगा रहा था। सिपाही ने कहा, गोली चल रही है। तो राजा ने भी यही कहा कि वह गोली नहीं जो मुझे लगेगी। दुःख और चीज़ है, मृत्यु और चीज़ है। मृत्यु बिलकुल पृथक है। मरना और जीना दुःख नहीं देता। दर्द और दुःख तो पीड़ा और पीड़न से होते हैं। जाना और आना तो स्वाभाविक है। मोह का दुःख हो सकता है कि जो मोटर अभी मैंने ली थी, उस की हानि आदि होने का। इसी प्रकार जैसे— एक कमरे से दूसरे में जाना और इसी प्रकार नींद

भी। यह अनुभव ज्ञानियों का है कि मरना तो ऐसा ही है जैसे— यहां से दफ्तर चले गये और फिर दफ्तर से वापिस आ गये। यदि वहां कोई रकम जान-बूझ कर ऐसी-वैसी लिखी है, तो घर आकर दुःख या भय होगा। या दफ्तर जाते समय पत्नी से झगड़ा हुआ और उसने कहा हो कि मैं मर जाऊंगी, आदि। तो फिर दफ्तर में तड़पता रहा। आने-जाने में तो ऐसे दुःख नहीं होते। भगवान की विधि में आना-जाना तो ऐसे ही है जैसे— सांस का आना-जाना। सांस आता रहेगा तो जीवन बना रहेगा और यदि यह महाशय जाकर फिर न आया तो फिर छुट्टी। दुःख मोह में है, पीड़ा में है। इन सब के उपाय भी हैं, मृत्यु का कोई उपाय नहीं। त्रिलोकी में न हुआ, न होगा। काल की तिथि होनी कोई आश्चर्य की बात नहीं। जब तक हमारे कर्म ठीक हैं तब तक तो यह अयोध्या है। इस विचार से कितनी वीरता, धीरता आती है। फिर यह देवों की पुरी है। यह रोग-सोग से टूटेगी नहीं। रोग और मोह अलग करो भाईयो। मैंने यह कहा कि प्रारब्ध के अनुसार है (देह का रहना)। प्रारब्ध की समाप्ति पर इसकी (तन की) समाप्ति हो जाती है। जितना भय इसके खण्डित हो जाने से जिसे हो, उतना ही वह भीरू है।

हम चाहते हैं कि स्वतंत्रता के भोग भोगें, किन्तु साथ यह कि लड़का लड़ाई में न जाये, जज बन जाये। वैसे कभी नून-तेल पर लड़ पड़े, गोली लग जाये और मर जाये। यह जाति कभी उभरेगी नहीं, जब तक उसे सिपाही न बनाया जावे। इसीलिये सेना में होना आवश्यक है। वीर-वृत्ति तभी पैदा होती है, जो सोचे कि हमने आगे जाना है। मुझे यह कहना था कि यह अयोध्या नगरी है। (मुस्कराकर महाराज ने कहा) रोग है, पर आयु की डोर तो है ही। सार यह है कि यह तन देवपुरी-देवों की नगरी, प्रारब्ध के मसाले से बनी है। इसको कोई खण्डित नहीं कर सकता।

साधना-सत्संग देवत-नांगल,
दिनांक 29.12.1954,
समय प्रातः 11.00 बजे

5

सज्जनो! पिछले कथनों में अथर्ववेद के मंत्रों के भाव की व्याख्या की जा रही है। अध्यात्मवाद की दृष्टि से ही इसका महत्व है। पुरातन काल के कथन में अयोध्या का वर्णन अध्यात्म-दृष्टि से और कर्म की दृष्टि से भी किया गया है।

इस नगरी में सुवर्णमयी कोष है, जो सुख-स्वरूप है और ज्योति से (प्रकाश से) घिरा हुआ है। सुवर्ण सुन्दरता के अर्थ में आता है। सुवर्ण, स्वर्ण दो शब्द हैं। सुवर्णमयी कोष जो है (सुखमयी) मस्तक ही है। बहुत ऊंची बातें इसमें उत्पन्न होती हैं और यह सुख का स्थान है। यह बात ठीक ही है कि मस्तक में सुख बसता है। यह वर्णन इसी नगरी के महत्व को जानने में है। जो यह नहीं जानता उसके लिये महत्व नहीं। जो भोगी जीव हैं, वृत्तिमय जगत् में रहते हैं, उन को आत्म-शक्ति का कोई विचार नहीं होता। यह तो खोजने वालों के लिये है। दूसरे देशों में भी खोजने की चेष्टा लोगों ने की है, किन्तु वहां तो राजनीति की अधिक चर्चा और अधिक प्रचार है। प्रवृत्ति ऐसी हो गई है जो आर्थिक पदार्थों की ओर जा रही है। पर शांत समय में दूसरे देशों ने चेष्टा की है। ऐसी पुस्तक लिखी है। प्रायः कोई कहे कि इस विचार से लिखी है।

सूक्ष्म शरीर का बाहर जाना और ऐसी क्रियायें करना, यह पश्चिम ने भी जाना और भारत में भी जाना। रहस्यवाद में ऐसी बातें जानने वाले व्यक्ति मिलते रहते हैं। मस्तक में यदि आत्म-शक्ति जग जावे, सूक्ष्म शरीर यदि थोड़ा बढ़ा हुआ हो, तो वह दशम-द्वार से ही निसरन होता है। यह केवल कहने की नहीं, देखने की और जानने की बात है। इस मनुष्य में मस्तक सुख का स्थान है, इससे आत्मा निसरित हुआ।

आत्मा जब दशम द्वार में जाता है, तो इसमें सुख होता है, स्वर्ग होता है। आत्मा के निकट ब्रह्म निर्वाण रहता है। कई प्रकार से इस को जानने वाले होते हैं। यह आडम्बर में नहीं है। प्रकाश होने पर, वह प्रत्येक अवस्था में ही होता है। बुद्धि का विशुद्ध स्थान स्वर्गमय और सुखमय है और जो

इसमें पहुँचता है वह बड़ा सुखी हो जाता है। जो लोग भजन पाठ करते हैं, उनको कई बातें प्रतीत होती हैं। कोई को सहज से हो जावे, उसका कम विचार करते हैं और जो परिश्रम से मिले उसका बहुत विचार करते हैं। घोर-कठोर क्रिया के पश्चात् सामने प्रकाश आया। कदाचित् यह अवस्था सहज से प्राप्त हो जावे, तो कहता है– क्या हुआ? मैं आगे बढ़ा नहीं। यह सब सुनी हुई बात है अर्थात् लोग सहज से प्राप्त की कदर करना नहीं जानते। यह बातें सब अनुभव में आती हैं। यह जो लोग सिद्धियों का विचार किया करते हैं कि पानी पर पैर रखकर चलना, हवा में उड़ना। हवा में उड़ना यह तो कोई बड़ी बात नहीं। पनडुब्बी में सुभाषचन्द्र भी तीन मास तक पानी में रहे । यदि यह (तुच्छ सिद्धियां) नहीं प्राप्त हुईं, तो कौनसी बात? मन की स्थिरता ही बड़ी चीज़ है। यह प्राप्त होना बड़ी ही उन्नति है। जप करता है और मन स्थिर हो जाता है। कदाचित् कोई प्रकाश न आये, तो इसमें कोई बात नहीं। भगवद्-इच्छा से यदि आ जाये तो वाह-वाह। पर बड़ी बात तो मन का स्थिर होना है। पहले तो भगवान का विचार होना चाहिये। यदि हम समझते हैं कि वह कभी प्रकट नहीं होता, फिर तो ऐसी समझ वालों को सन्देह होगा। यदि आप रूप को समझते हैं तो हम शब्द देते हैं। रूप भी आते हैं–राम का, कृष्ण का आदि। आदित्य स्वरूप भी आता है– सूर्य उपासना में यह बात है। रूप तो अन्त में हमारी भावना के अनुसार आते है। यूरोपियन तो गोरा स्वरूप ही बनायेंगे। ऐसे ही जैसे इतिहास में वर्णन है। जैसे जगन्नाथ में, रामेश्वरम् में स्थापित की हुई मूर्ति। जैसे मानचित्र में– विंध्याचल। वह भला कहां होता है वहां?

रूप का प्रकट हो जाना कोई कठिन नहीं है। जो नहीं मानेगा उसकी एकाग्रता कहां? मनन करें, तो यह बातें अनुभव होती हैं। लहरें आती हैं। लयता आ जायेगी। भूल जावेंगे। पर कोई अभ्यास करे तो, भजन में रहते-रहते लहरें आती हैं और पता न रहे कि कहां पर हूँ? मुझे कहना यह है कि आदमी जिस प्रकार सच्चा हो, पहले जैसी धारणा हो तो वह बात बनती है। इस प्रकार भगवान की विभूति भी प्रकट होती है।

महर्षियों ने कहा था, 'जो जानते हैं, वे कहते हैं हम नहीं जानते' (अर्थात् ब्रह्म को जानने वाले कहते हैं कि हम उसको नहीं जानते)। रहस्यवाद में ऐसी बात है। प्रकाश, शब्द, आनन्द का अनुभव होना– ये सब भगवान की कृपा है। मुझे कहना यह था कि ऐसा अवतरण होता रहता है। हम तो यह भी मानते हैं कि थोड़े शब्दों में बातें भी होती हैं।

मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि एक पर 'शब्द' आता था। उसने कहा मुझे दर्शन दो। 'शब्द' आया–तू किस रूप को देखना चाहता है। वह चुप हो गया। रूप तो वह स्थिर नहीं करता। 'भगवान तू जिस रूप में चाहे मिल।' कई रूपों में वह आया।

नाम-उपासना में रूप देवें, तो बड़ी कठिनाई आती है। यह हम क्या बतायें कि वह कृष्ण रूप में ही था, राम में नहीं। हम तो नाम उपासना करते हैं, जो सदा नया रहता है। रूप तो होकर भी नहीं रहे। नाम से ही रूप का बोध होता है। उसे गॉड कहो, अल्लाह कहो, सभी में वह व्याप्त है।

नाम-उपासना बहुत सुन्दर है। तुलसीदास जी ने भी ऐसी ही कल्पना रामायण में की है। मुझे कहना यह था कि भजन करने वालों पर विभूति (दैवी-कृपा) होती है।

जो धन कमाता है, धन के मूल्य का उसको पता लगता है। यद्यपि उसकी फर्म बाद में कितनी ही बड़ी हो जावे। पर इस धनी का लड़का धन का महत्व क्या जाने? इसी प्रकार आलसी, प्रमादी भक्त भी सहज से आई हुई राम-कृपा का महत्व नहीं जानता, क्योंकि वह उस की कमाई नहीं है। नाम मेरी झोली में डाल दिया गया, यह राम-कृपा है। कोहिनूर हीरा, जो विक्टोरिया के ताज में लगा हुआ है, वह हैदराबाद-क्षेत्र में एक किसान को खरबूजे के खेत में मिला था। महात्माओं की संगति से और राम-कृपा से प्राप्त लाभ, इसका भक्त लोग गौरव नहीं मानते। क्योंकि उन्होंने कोई तप नहीं किया होता, फिर भी आनन्द की लहर आती है।

हरेक का मस्तक एक कोष है। सुरति जब वहां पहुँचे, तो आनन्द की लहर आती है। मनन करे। ज्ञान होना चाहिये, यह समझ होनी चाहिये कि

मेरा आत्मा ऊंचा हो गया। यह स्वर्ण का कोष है। सदग्रन्थ पढ़ते-पढ़ते, जिसमें सत्य हो, ऐसी बुद्धि पैदा होती है। ऊंचे और सच्चे विचार पैदा होते हैं और फिर वे उन पर दृढ़ रहते भी हैं। विशुद्ध बुद्धि सुखमयी है और ज्योतिर्मयी है। आज यह वर्णन रहस्य के प्रकरण का हुआ। अयोध्या नाम-स्वर्णमयी स्थान-विज्ञान और वह स्वर्ण, सुखमयी और प्रकाशमयी है, यह निरूपण किया।

साधना-सत्संग देवत-नांगल,
दिनांक 29.12.1954,
समय अपराह्न 3.30 बजे

6

'हे प्रकाश-स्वरूप देव ! हम रात्रि के आरम्भ में और रात्रि के अंत में आपको नमस्कार करते हैं। न तो कोई देव, न मनुष्य तेरी शक्ति को जान सकता है। तू अनन्त है। तू अपनी शक्तियों से ही बनता है।'

कल यह बात कही गई थी– देवपुरी सुन्दर स्थान। इसमें प्रकाश से अवतरण। अगले पद में यह कहा कि इसमें जो पूज्य देवता रहता है, उस स्थान में जहां ज्ञान है–प्रकाश यक्ष रहता है– इसको ज्ञान के जानने वाले जानते हैं। इससे ही यह होता है। इसमें जहां मस्तक वहां आत्मा का विकास होता है। इस यक्ष को वही जानते हैं जो ब्रह्म को जानते हैं। यह बात ठीक है कि प्रकृति के ढंग बहुत हैं। उन्हीं से इसे जाना जा सकता है। भौतिकवाद (Materialism) इसका पता नहीं कर सकता। यह बात मैं नहीं कह रहा, विद्वानों ने ही कही है। जो समझ महात्माओं ने उत्पन्न की थी, वह राजनीतिक बादलों ने दबा रखी है। अब वे तारे (ज्ञान-रूपी) चमकते नहीं। अब इतना राजनीतिक-आन्दोलन है। इतनी राजनीतिक उलझनें बढ़ गई हैं। मैं किसी का दोष वर्णन नहीं करता। मैं तो एक बात वर्णन करता हूँ कि मनुष्य में जो दया का भाव, आत्मकल्याण और अनर्थ के विपरीत भावना उत्पन्न हुई थी, वह इस आन्दोलन के तूफान से दब गयी। इस आंदोलन की आंधी में दिन होते हुए भी सूर्य दिखाई नहीं देता। इतिहास में हम देखें कि जब लड़ाई सन् 1914 में चली थी, उस समय धार्मिक बातों से लोगों का अन्तःकरण चमकता था। यूरोप में लोग घबरा गये कि हमारे इतने ज्ञान का, क्या हो गया ? सात प्रामाणिक व्यक्तियों को निमन्त्रित किया कि कैसे यह मनुष्य जानवरों के समान हो गया। इन सात व्यक्तियों के व्याख्यान छपे। वे सब स्थानों पर बांट दिये गये। इन प्रामाणिक समझे जाने वालों ने कहा कि भौतिकता आदमी को नास्तिक नहीं बनाती है। अध्यात्मवाद, शरीर-क्रिया विज्ञान (Physiology) या रसायन-विज्ञान (Chemistry) जैसा क्षेत्र नहीं, यदि इसमें आत्मवाद नहीं आया तो। हमारी विद्याओं से प्रकट होता है कि वह कोई चीज़ है, कोई शक्ति है, जो इसको नियमित कर रही है।

जब जेब फटी हुई हो, तो पैसे गिर जावें। कहीं कितने ही गिरें और कहीं कितने ही। यह लोक ऐसे ही नहीं हैं। यह तो गणित-शास्त्र के अनुसार हैं। जब सृष्टि बनी– उसका बड़ा नियम है। जहां से एक ग्रह जाता है, दूसरा भी वहीं से, किन्तु कभी टक्कर नहीं होती। तो अब मैं उसकी सारी बात क्या वर्णन करूं ? वह तो मैं यहां वर्णन नहीं कर रहा हूँ। यदि एक भूगोल पढ़ रहा है और वह गणित नहीं पढ़ रहा, तो इसका अर्थ यह नहीं कि गणित है ही नहीं। इनके युक्तिवाद में सत्य नहीं है। मैं निवेदन कर रहा था कि राजनैतिक आन्दोलन चला और तीव्र हो गया। मैं कहा ही करता हूँ कि मनुष्य का महत्व धर्मों ने बनाया। राजनीतिज्ञों ने कहा– नेहरू जी ने एक नया वाद बनाया। यह बड़ी अच्छी बात है। तटस्थता की नीति (Neutral Policy) अपनाई, किन्तु जो शस्त्र बने हैं, वे यदि उपयोग में आयें तो क्या हो ? रुके हुए इसलिये हैं कि किसी को अपना जीवन सुरक्षित नहीं दिखता। नहीं तो यह ठनाठनी कभी की हो गई होती। एक ही व्यक्ति है, जिसने अपने देश के ऐसे वैज्ञानिकों को कहा कि तुम अवश्य खोज करो, किन्तु शान्ति के उपयोग के लिये और वह हैं– नेहरू जी। वैज्ञानिक फिर-फिर बनाकर अणु शस्त्रों (Atomic Weapon) का परीक्षण करते रहते हैं। ज्ञान-विज्ञान से आत्मा का पता लगेगा। यह बात बहुत पुरातन और अच्छी है। यह बात तो उस समय समझी गई, जब ऐसे तूफान नहीं थे। इसलिये ठीक कहा कि उसको, ब्रह्म को जानने वाले ही जानते होंगे। जो इस विधि से नहीं समझते, वे गलती खा जाते हैं। जैसे स्वामी

दयानन्द जी ने चक्र देखने के लिये लाश को पकड़ा।

एक कमल नौ द्वार वाला–यह तीन गुणों से आवृत्त है। जब तक सात्त्विक-गुण ऊपर न हों, तब तक आस्तिक-भाव की जागृति नहीं होती। इस एक कमल में जो आत्मदेव रहते हैं, ये ब्रह्म में रहने वाले हैं। जब इन सत्संगों में आते हैं, तो नौकरियों की बात भी भूल कर आते हैं। यदि ऐसे आवें नहीं तो कैसे इतने कूदें ? वे बंधुओं को भी भूल जाते हैं। यहां तक ही नहीं, यहां क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार को भी भूल जाते हैं। कोई-कोई तो ऐसे हैं कि अपने आप को भी भूल जाते हैं कि लोग क्या कहेंगे ? कहां टक्कर लगेगी ? (कीर्तन में कूदते हुए)। जब तक याद होगा कि मैं ग्रेजुएट हूँ, मैंने खड़े होकर खड़ताल बजाई तो क्या कहेंगे ? जब तक यह बात है, तब तक ऐंठन है। उन-उन को मस्ती नहीं आती। लिखा पढ़ा जब तक भूले नहीं, तब तक उसको एकाग्रता भी नहीं आती। फिर इस बात को नहीं भूला कि मैं कम जानता हूँ और अधिक जानने वाला कि मैं अधिक। यह सब बातें, मान आदि भूल कर यहां आना चाहिये। घड़ी उतार कर आना चाहिये। अध्यात्मवाद को त्याग कर, बुद्धिमत्ता को, बड़ाई को भूल कर, तभी वह यह कहकर 'मैं तेरा', नाचेगा।

'मेरे में मन लगाये हुए मेरा भक्त मुझे ही नमस्कार करता है। मैं तुझे वचन देता हूँ कि तू चिन्ता न कर। मैं तुझे सब बुराइयों से छुड़ा दूंगा। तू मुझ में मन से हो जा, यह मैं वचन देता हूँ।' महाराज ने गीता में कहा है।

फिर यदि ऐसा हुआ, तो भगवान ही आये। आकाश निर्मल, तो तारे चमकने लगे। एकाग्रता हुई, फिर मस्तक में आप ही आनन्द की लहर पैदा होगी। फिर परिश्रम की आवश्यकता नहीं होती। तो मैंने ये प्रकरण ही समाप्त किया। महत्व तो ब्रह्म में रहने वाला हो जाने से है। केवल यह ही पद्धति है कि बाहर की युक्तियों को भूला जाये। 'जो तू है सो प्रकट।' हनुमान जी पेड़ के पत्तों में छुपे बोलते हैं कि– रामचन्द्र जी बड़े अच्छे। दोनों भाई बड़े वीर। सीता माता को हम छुड़ा लेंगे। जो सीता माता को ले गया है, उसका बदला ले कर छोड़ेंगे। थोड़ी देरी इसलिये है कि वापिस जाकर उनको (महाराज रामचन्द्र जी को) सूचित कर दिया जाये कि सीता माता कहां है ? सीता जी कहती हैं, बोल रहा है प्रकट क्यों नहीं होता ? जब यह पुकार

सीता जी की निकली कि जीवन दायिनी-वाणी जो बोल रहा है, वह प्रकट क्यों नहीं होता ? तीव्र पुकार, बाहर को भूल कर बालक पुकारे, तो माता सातवीं कोठरी से दौड़कर आती है। बालक के समान पुकार सरल हो। ऐसी झंकार को सुनकर (परमेश्वर) मस्त हो जायेगा।

साधना–सत्संग देवत-नांगल,
दिनांक 30.12.1954,
समय प्रातः 11.00 बजे

7

पिछले कथनों में तन-रचना का महत्व वर्णन होता रहा है। पुरातन-काल की श्रुतियां जैसे गाई गईं, वैसे तो देखने में हाड़-मांस है ये (तन), समझने वालों की पहुँच में क्या कुछ समझ आई, वह कही गई। मैं समझता हूँ कि श्रुतियां कल्पना की हुई नहीं, ये तो अन्दर के निकले हुए वाक्य हैं। साधक ने मीरा का गीत गाया "मैं जहाँ देखती हूँ, वहां तू ही तू है।" यह कल्पना के रूप में कही हुई बात नहीं, यह रंग चढ़ी बात है। वह सर्वत्र देखने लग जाती है। उसको (मीरा को) तो बड़ा प्रेम प्राप्त करने योग्य समझा गया। वह दिखने लगे, न दिखने लगे तो क्या ? कई साल की बात है– एक सत्संगी (विद्वान और बड़े अच्छे पद पर) सभा में उपस्थित नहीं हुए। उन्होंने कहा कि मैं सम्मिलित तो हो नहीं सकूंगा, पर मैं घर पर नियम से रहूंगा। उस ने कहा इस प्रकार उसे ध्यान में राम-नाम दिखने लगा। अगले दिन उन्होंने कहा– कि सारे शरीर में दिखने लग पड़ा और मस्तक में सहस्त्रों राम-नाम देखे। कार्य दिल्ली में करते थे, किन्तु सत्संग में न आ सके। पत्र लिखा कि जब मैंने नमस्कार सप्तक पढ़ा तो प्रतीत हुआ मुझे, सत्संगी पास बैठे, पढ़ते मालूम हुए। ध्यान में प्रायः आपको जय श्रीराम जय श्रीराम गाते देखा।

मुझे कहना यह है कि परा-प्रीति उत्पन्न हुई, तो फिर उसको दिखना कोई आश्चर्यजनक नहीं। टटोलना यह है कि लगन मुझमें है या नहीं। यही प्रयोजन है कि हम ऐसे एकत्रित होते हैं और बताते हैं (साधना-सत्संगों में)। पहले जब आरम्भ किया, तो इतना विचार नहीं था। वैसे तो होटलों में आमोद को लोग

जाते हैं। पहाड़ी आदि पर भी जाते हैं। खान-पान, आमोद मनाते हैं। एक दिन का काम हो तो चार दिन लगाकर आते हैं। पर यहाँ तो एकान्त-वास और छुट्टियों को ऐसे बिताना। इसमें अपनी सूझ न्यारी। यह तो दूसरे साधन के ढंगों से भिन्न है। यहाँ मनुष्य में ऊंचे तरंग भी आते है। यह साधना-सत्संग एक निराली-सी चीज़ है।

ऐसे अकेले भी बैठे तो भी होता है। तीर्थों पर भी लोग करते हैं। व्रत भी वहां पूरे करते हैं। पर एक स्थान पर सम्मिलित बैठना आवश्यक है और लाभजनक भी है। आपको लाभ भी होता है, तभी यहाँ आते हैं और सब कुछ तपस्या करते हैं। पानी छिड़कने आदि (कामों को भी) कोई न नहीं करता। (यहां साधना-सत्संग में आप सब प्रकार के काम खुशी से करते हैं)। तो काम करते हैं, फिर इसमें आनन्द भी आता है। आत्मा की जागृति भी होती है।

एक पण्डित बड़ा अच्छा, जो बी.ए. था, मुझे इस सत्संग के सम्बन्ध में मिला। सन् 1927 या 1928 में मिला होगा। वह व्यास को जाने लगा था, किन्तु इस सत्संग का सुनकर मेरे पास आ गया। कई को तो आने में बड़ी देर लग जाती है। साधक की वृत्ति ऐसी हो जाती है कि भगवत-कृपा उस पर अवतरित हो जाती है। हमारे यहाँ एक दूसरे को बताने की रीति नहीं, केवल जिससे सीखा उसी को बताने की बातें हैं। चार वर्ष में उस पण्डित पर ऐसा असर हुआ कि उसकी रग-रग नाच उठी, दिनभर शक्ति का संचालन रहा, बिल्कुल काया पलट हो गई। प्राणमयी के ऊपर विज्ञानमयी प्रभावित हो गई। बड़े प्रभाव वाला हो गया और बहुत ऊँची स्थिति हो गई, पर बहुत वर्षों बाद हुआ।

कोई प्रारब्ध कर्म के कारण कुछ मस्तक में भी कल्पनाओं के कारण, ग्रहण करने की शक्ति नहीं रहती। ग्रहण करने की शक्ति हो जाये, तो बहुत ही अच्छा। इसी ग्राह्य-शक्ति के लिये यह साधना है। भजन-पाठ में जो आप बैठते हैं, इससे ग्राह्य-शक्ति पैदा होती है। यह ग्राह्य-शक्ति हमारे अन्दर बस जाये, इसके लिये बहुत साधना करनी चाहिये। अपने घरों पर भी कर सकते हैं। यहां ही तो आवश्यक नहीं कि चांदनी छिटक जावे। घरों में भी भगवान की कृपा की विभूति कई रूपों में अवतरित होती है। यह सब ही होता रहता है। साधना में

एक रंग-सा होता है। यह साधक कई दिनों तक स्मरण आते रहते हैं। जैसे प्रिय बंधु के पास बैठने का आनन्द कई दिनों तक स्मरण रहता है। इसी प्रकार किसी-किसी दिन में तो मैंने अपने ऊपर अनुभव किया है कि स्थूल काया पर सूक्ष्म का प्रभाव छाया हुआ है और वही बार-बार मुझे स्फुरित होता है। यह बात प्राप्त हुई कि इस परिस्थिति के अनुसार स्थिति बनायें। भगवान असीम कृपा करने वाले हैं। उनकी कृपा आती है, पर ग्रहण करने की हममें शक्ति होनी चाहिये। मन ठीक टिकाया जावे, तो आयेगी। तो हम अपने को ऐसा बनायें। यह परिस्थिति बनाये बनती है और फिर लाभ होता है। किसी विद्वान संत से किसी ने कहा कि भजन से क्या लाभ होगा ? तो उत्तर दिया कि करके देखो और कहा कि तुमने तो पहले ही न कह दी। डेढ़ साल बाद कहने लगा कि मुझे कुछ मिला तो नहीं। अब बैठने से शान्ति अवश्य मिलती है और क्रोध दूर हो गया है और अब मैं व्यवहार भी ठीक ही करता हूँ। सन्त ने कहा भाई! अब तो दो-चार पग ही रह गये। ऐसा योग में बहुत बार होता है। अब आगे कभी होगा या नहीं ? कहने लगे अभी नहीं, तो अगले जन्म में सही, इसके लिये घबराना क्या ? इस पथ पर चल पड़े, तो चलते ही पहुंच गये, यह क्या ? चल पड़े—यह चलना कभी बन्द न होगा। आगे ही बढ़ेंगे, पीछे नहीं जावेंगे। सन्तोष जो आ गया तो मैं समझता हूँ कि ब्रह्म समाधि आ गई। दूसरे अध्याय में गीता में महाराज ने कहा कि 'येषां ब्राह्मी स्थिति'। वह यदि चार घंटे पड़ा रहा तो क्या बात हुई ? मेंढक भी सूख जाते और फिर टर्रा उठते हैं। यह क्या बात हुई ? सुन्न पड़े रहना ही साधना का उद्देश्य नहीं, वरन् ब्रह्म संयोग प्राप्त करना है। भजन-पाठ से लाभ होता है। यहां जो भजन-पाठ किया उसको आगे घरों में भी करें और करते रहने में ही महत्व है । इससे दूसरों को प्रकाश मिलता है।

कभी वर्षों पहले पढ़ा, चीन का एक विद्यार्थी बड़ा निर्धन था। उसके पास दीपक नहीं था, पर वह पढ़ा करता। रात को पढ़े बिना तो काम नहीं चल सकता। तो वह जुगनू इकट्ठे कर लिया करता था और उनके प्रकाश से पढ़ता। जुगनू कीट ही तो है, तो भी चांदना देता है। कुछ तो दीख ही पड़ता है (उसके प्रकाश से)। जिस में जितनी क्षमता वह उसके अनुसार दूसरों को सहायता दे– सत्संग की, साधना की। मेरे मिलने वाला कोई और भी लाभ

उठाये, ऐसी वृत्ति होनी चाहिये। इस प्रकार अपनी कमाई बरतने में आई। एक यूरोपियन आदमी ने लिखा था कि हिन्दुस्तान के लोग बड़ी साधना करते हैं। शक्ति भी आ जाती है। यूरोपियन ध्यान करते, तो फिर मनोबल का प्रयोग करते हैं अर्थात् दूसरों को भी साधना के रंग में रंगना चाहिये। हमारे मित्र का भी वह चोला रंगा जावे, ऐसा भाव होना चाहिये। यूरोपियन देशों में ऐसा है। यहां (भारत में) किसी के पास दवाई हो, तो वह उसका भेद गुप्त रखता है। यहां बरतने में कम लाते हैं। यह साधना तो बरतने की चीज़ है। इसका रंग चढ़ाना चाहिये। यह कोई इस प्रकार की चमगादड़ जैसे लटकने की वृत्ति नहीं। यह तो प्रबल तरंग पैदा करता है। यह तो पानी में चलने से तरंग पैदा होती है और चट्टानों से टकराये तो भी तरंग, तो आकाश में भी तरंग। इसी में संसार की भलाई है। मैं यही कामना करता हूँ कि भगवान हम सब पर कृपा करें और भक्ति-भाव हम में बढ़े। पढ़ने से सदाचार की वृत्ति बढ़ती है। यह बहुत बड़ी चीज़ है। यदि पाठशाला में लाभ, तो उसका बेड़ा पार हो गया। पर भगवान का नाम तो परम-धाम तक ले जाता है। इसको (साधक को) निश्चय होना चाहिये कि नाम तो नामी तक पहुँचा देता है। इसमें मस्त, तो अवश्यमेव कल्याण होगा। यदि इस जन्म में नहीं तो दूसरे में। यह भगवान का वचन है कि 'हे कुन्तीपुत्र ! तू यह जान कि मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता।' राम-भक्त का नाश कभी नहीं होता, भगवान ने यह वचन दिया, इसमें सत्य है। राम के हाथ हम सब का कल्याण।

साधना-सत्संग देवत-नांगल,
दिनांक 30.12.1954,
समय अपराह्न 3.30 बजे

❑❑

उपनिषद एवं उनका महत्व

उपनिषद् हिन्दू साहित्य में उत्तम ग्रन्थ हैं। पुरातन संस्कृत में लिखे हुए होने के कारण लोग इन्हें कम पढ़ते हैं। यह किसी सम्प्रदाय की पूंजी नहीं। यह तो मज़हब (पन्थ) आदि चलने से पहले के ग्रन्थ हैं। कोई ग्रन्थ देख लो, हरेक ग्रन्थ का अस्सी प्रतिशत उपनिषद् है।

धर्म में उपनिषदों का बड़ा श्रेष्ठ स्थान है। उपनिषद् काल में भारतवर्ष ऊँचे विचार रखता था। मनुष्य जब बहुत गहराई में जाता है, तो उसके आगे ब्रह्म अर्थात् महान का विचार आता है। जब मनुष्य को शान्ति न मिले, तो वह महान् की ओर जाता है। साधारण कोटि के मनुष्यों में ब्रह्म के विचार नहीं आते। भारतवर्ष में ये विचार उस समय स्फुरित हुए जब यह उन्नति के शिखर पर था। महान् के सम्बन्ध में उपनिषदों में जैसा वर्णन किया है, इससे अच्छा अन्य किसी स्थान पर नहीं मिलता। बहुत लोग तो फल के छिलके की बातें करते हैं, अन्दर के भोज्य पदार्थ की बात ही नहीं करते। लीला देखकर चले जाते हैं, उन अवतारों का महत्व देखते ही नहीं।

उपनिषदों का एक-एक शब्द प्राचीन इतिहास का वर्णन करता है। समुद्र का नाम सागर इसलिये रखा है, कि कोई सगर नाम का राजा था, जिसका रथ समुद्र के किनारे तक गया। इस बात का रामायण से पता चलता है। जैसे कॉलेजों में पुस्तकें पढ़ाते हैं, उपनिषद् वैसे नहीं बनाये गये। ये तो महात्माओं के वाक्य एकत्रित करके बनाये गये हैं। इनका कर्ता अर्थात् बनाने वाला कोई एक व्यक्ति नहीं। जैसे आरण्यकोपनिषद् वह, जिस का सम्बन्ध जंगल से।

जिस को धन-धान्य आदि और संतानादि प्राप्त हो चुके हैं, ऐसे लोग आयु की पिछली दो अवस्थाओं में, एकान्तवास आदि में कैसे रहें, इसका वर्णन उपनिषदों में है। ऐसे एकान्तवासी साधु-सन्त, महात्माओं के उपदेश उपनिषदों में दिये हैं। उस काल में ज्ञानी अनुभवी ही ऐसे तत्त्व कहा करते थे। उपनिषद् किसी की बुद्धि की उपज नहीं हैं, अपितु अनुभव का प्रकाश हैं।

उपनिषद् महान् की ओर ले जाते हैं। अल्प में सुख नहीं। जातियों की ओर देखो। महान् में सुख दिखाई देता है। अल्प के लिये कोई स्थान नहीं। याज्ञवल्क्य ऋषि ने कहा कि जो अल्प है, वह मरने वाला है। महान् की ओर मनुष्य की दृष्टि रहती है। जैसे व्यवहार में महान् बनने की रुचि है, परमात्मा को मिलने अर्थात् महान् के साथ मिल जाने की भी वैसी ही इच्छा होनी चाहिये। जब अल्प में रहने का विचार हुआ, तो उन्नति रुक गई। अल्प की मृत्यु है। महान् को तो मृत्यु भी नहीं मार सकती। महान् में अमरता है। अल्प को काल ने घेरा हुआ है। मनुष्य को महान् की ओर जाना चाहिये।

ब्रह्म-विद्या

कल उपनिषदों का महत्व वर्णन किया था और उनकी गहराई की ओर भी संकेत किया था। उपनिषदों में जो ब्रह्म का वर्णन है और जो अनुभव दिये हुए हैं, वे महात्माओं और संतों के वाक्य हैं। जो उन्होंने जाना, वही कहा है। इसी कारण उन ग्रन्थों का बहुत ऊँचा स्थान है। जिन लोगों का सम्बन्ध यहां की भूमि से है, उन को उपनिषदों से और यहां के ज्ञान-विज्ञान से प्रीति होनी चाहिये। यदि न करें, तो यह उन में भारी कमी है। ये पुस्तकें जनता की बनाई हुई हैं। इन के कहने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, राजा, शूद्र, पुरुष और स्त्रियां सब थे। ऋषि, महर्षि आदर्श श्रेणी के मनुष्य थे। स्वार्थ का त्याग बड़ा त्याग होता है।

यदि कोई व्यक्ति घर-बार त्याग करके क्षेत्रों में भोजनादि खा ले और यह विचार रहे कि घर-बार के त्याग से मुक्ति हो जायेगी, तो यह आदर्श जीवन नहीं है। राजा जनक बड़ा ज्ञानी था। ऋषि महर्षि उस की सभा में आते थे और सम्मिलित होते थे। यह महानता थी। त्याग मन से था। धन भी बहुत था। व्यासदेव जी तो बाल्यावस्था से ही संग्रह-रहित फिरा करते थे। उन्होंने अपने पुत्र शुकदेव को जनक जी के पास भेजा कि ब्रह्म विद्या राजा जनक से सीखे।

जनक ने जाना कि शुकदेव ने अपने पिता की अवज्ञा की होगी। वह ढाई वर्ष चीन और तातार आदि देशों की यात्रा करके आया है। प्राचीन ग्रन्थों में ऐसा लिखा है कि आने वाले के स्वागत के लिये सात-आठ पद चल कर अतिथि को लेने जाये। आदर करना, यह सभ्यता थी। जाते समय पहुँचाने जाना, यह रीति थी। शुकदेव का आना जनक जी जान गये। उन्होंने उस की परीक्षा ली। तीन दिन बाहर और तीन दिन ड्योढ़ी में खड़ा रखा। फिर शुकदेव जी को पूछा कि आप क्या लेने आये हैं ? बहुत ढंग से उसे (ब्रह्म-ज्ञान) समझाया। इस प्रकार के भी धनशाली राजे हो चुके हैं, जो ब्रह्मज्ञानी थे।

यह कोई रोक न थी कि ब्रह्मज्ञानी धनी न हो। यह हिन्दुओं की बाद की कल्पना है। पहले वेश-केश में धर्म को जकड़ा नहीं करते थे। क्षत्रिय का काम भी उतना ही ऊँचा समझा जाता था, जितना ब्राह्मण का। कर्तव्य को ऊँचा माना करते थे। यह नहीं कि ब्रह्म विद्या के पुरुष ही अधिकारी थे, स्त्रियां भी थीं– जैसे सुलभा, गार्गी, आदि। आत्रे ऋषि शूद्र के पुत्र थे। इन के नाम से एक उपनिषद् भी है। इसमें बड़ी सुन्दर रचना है। इसमें ब्रह्म विद्या के बहुत ही उत्तम वाक्य हैं। प्रश्न किया जाता है कि यदि हम ब्रह्म को नहीं मानते तो क्या हानि है ? इसका अभिप्राय यह हुआ कि हल चलाने वाला कहेगा, मेरा हल ब्रह्म को माने बिना भी चलता है, मोटर वाला कहेगा कि बिना ब्रह्म को माने भी मेरी मोटर चलती है, कारखाने वाला भी कहेगा कि बिना ब्रह्म के माने मेरा कारखाना चलता है। यह सब कुछ होगा, किन्तु यदि मनुष्य ब्रह्म को न माने तो उसका अपना आप नहीं रहता। उसका अपना अस्तित्व ही मिट जाता है। यदि दो संख्या कहे कि एक संख्या का अस्तित्व ही नहीं है, तो दो का अस्तित्व भी मिट जाता है। अर्थात् दो का अस्तित्व एक पर निर्भर है, क्योंकि एक में एक जोड़ने से ही दो बनता है। कोई संख्या न हो तो बिन्दु का भी कोई मूल्य नहीं। प्रकृति तो आत्मा के आश्रित है। मानने वाला ही इसको स्थिर करता है। ऐसा ही समझना चाहिये कि ब्रह्म के ऊपर ही यह स्थित है। अल्प तो महान् के आश्रय पर है। बूंद को देखकर समुद्र की कल्पना हो सकती है। बूंद सजीव है। पर समुद्र के साथ मिला हुआ है। यदि कोई यह माने कि ब्रह्म नहीं तो, उसका अपना नाश हो जाता है। यह तो अपना ही मूल काट देना है। समस्त अस्तित्व महान के साथ मिला हुआ है। महान् की ओर जाना हिन्दू धर्म की प्रवृत्ति है। जहां भी चेतना चमकती है, उसे महान् का ही अंश समझना चाहिये। सब अस्तित्व ब्रह्म के आश्रित है। उपनिषदों में ब्रह्म का संकीर्तन है और आत्मा के स्वरूप का वर्णन है।

आत्मा सरसों के दाने से भी सूक्ष्म है, किन्तु इस पृथ्वी से भी महान् है। देवलोक से भी बड़ा है। वह अपनी शक्ति से महान् है। जैसे कोई वैज्ञानिक कह देवे कि एक परमाणु सारे नगर से अधिक अस्तित्व रखता है। इसी प्रकार आत्मा सूक्ष्म भी है और महान् भी है। यह अपनी शक्ति को ऊँचा बनाने की शैली है। अपने आप को छोटा या अपाहिज या दीन नहीं बनाना चाहिये।

यह देहरूपी मन्दिर विश्व-शक्ति से मिला हुआ है। जिन्होंने अनुभव किया है, उन्हीं का कहना है कि आत्मा– चन्द्र, सूर्य, समस्त दिखने वाले लोकों से बड़ा है। उपनिषद् के ये वाक्य बड़े मूल्य वाले और बगीचे में फूल समान हैं। वैज्ञानिक के आगे यूरेनियम (Uranium) का परमाणु बहुत छोटा है। यदि उसको तोड़कर गिरा दिया जावे, तो एक हज़ार फुट तक ऊँचा पर्वत बन जावे। जैसे परमाणु में यह शक्ति है, ऐसे ही यह आत्मा छोटा भी है और बड़ा महान भी।

श्रेय और प्रेय मार्ग

कल मैंने उपनिषदों में से यह प्रकरण लिया था कि यदि कोई महान् के अस्तित्व को नहीं मानता, तो वह अपने अस्तित्व को खो बैठता है। जो महान् को मानता है, वह अपने आप को स्थिर करता है। मनुष्य में मानने तथा न मानने का भाव होता है। एक और भी कारण है– सुख के मार्ग पर चलने की प्रायः प्रवृत्तियाँ रहती हैं। हम उधर ही जाते हैं। लौटाने पर भी हम उसी मार्ग पर चलते हैं, जब तक कि बार-बार प्रवृत्त न किया जावे। बुद्धिमान दो बातों का ध्यान रखते हैं। प्रेय मार्ग आराम का मार्ग है, जिसका परिणाम दुःख है। दूसरा श्रेय मार्ग है जिससे सुख मिलता है। जो प्रेरित होकर निर्णय पर खड़ा होता है, वह धीर कहलाता है। धीर मनुष्य विचार करके श्रेय मार्ग पर चलता है। ऊपर से तो प्रेय मार्ग अच्छा लगता है। वर्तमान सुख प्रेय मार्ग है। वर्तमान सुख कोई चीज़ नहीं है। नष्ट हो जाया करता है। प्राणी वर्तमान सुख के लिये भविष्य पर पानी फेर देता है। जो धीर पुरुष नहीं, वह बुद्धि से काम नहीं लेता। ये दोनों मार्ग-प्रेय और श्रेय-मनुष्य को बांधते हैं। श्रेय मार्ग, कल्याण का मार्ग विचार में बांधता है, ऊँचे लक्ष्य में बांधता है। वर्तमान सुख का लालसी भविष्य का विचार नहीं

करता। वर्तमान सुख को तो परित्याग करना चाहिये। देखिये! लोग परिवार के लिये कम मरते हैं, जाति के लिये अधिक न्यौछावर होते हैं। सामूहिक जीवन की जो चेष्टा नहीं करते, वे बलिदान नहीं कर सकते। श्रेय मार्ग कल्याण का मार्ग है। बुद्धिमान, प्रेय मार्ग के स्थान पर श्रेय मार्ग ही धारण करता है। वह मन की शान्ति के लिये इन्द्रियों का आराम त्याग देता है। श्रेय मार्ग मनुष्यों में पाया जाता है, शेष बातें पशुओं में भी पाई जाती हैं।

ये दोनों मार्ग एक दूसरे से बहुत दूर हैं। प्रेय मार्ग स्वार्थी बनाता है। श्रेय मार्ग त्याग और बलिदान सिखाता है। मनुष्य सामूहिक जीवन के लिये बिरादरियों और वंशों के जीवन से पार हो जाता है। जो इन बातों में फंसा हुआ नहीं, वह बार-बार काल का ग्रास नहीं बनता। कल्याण का मार्ग मूर्ख, अबोध व्यक्ति को अच्छा नहीं लगता। प्रमादी को भी कल्याण का मार्ग अच्छा नहीं लगता। आलस्य और प्रमाद एक नहीं हैं। जो व्यसनों में पड़ा रहता है, वह प्रमादी है। जैसे एक मनुष्य शतरंज खेलता था। उसके घर से कोई आया और उससे कहा कि उसकी माता को बड़ा दर्द हो रहा है और प्रायः मरण-शय्या पर है। उसने कहा कि एक चाल चलकर आता हूँ, पर एक घण्टा बीत गया और वह उठा नहीं। दूसरा कोई आया और कहा कि माता ने आँखें बन्द कर ली हैं। फिर भी वह नहीं उठा। यह व्यसनी मनुष्य है। मान और बड़ाई का भी व्यसन होता है।

जो धन के मोह में मूढ़ हैं, उन्हें अपाचन होता है। उन्हें मोहनभोग कब अच्छा लगता है? मोह में निमग्न हो जाना मूढ़ता है। धन को जो हवा भी न लगने दे, उसका लड़का उसका दिया जलावेगा। संस्कृत के एक कवि ने लिखा है, लक्ष्मी, जो चौदह रतनों में से एक है, समुद्र की पुत्री है। उस का पिता खारा है तो पुत्री में भी खारापन है। जब पास नहीं होती, तो भाई-भाई में प्रेम होता है। जब आ जाती है तो भाई-भाई में खारापन आ जाता है। इस की बहन शराब है। उसका भी इस पर प्रभाव है। अतः उसमें भी नशा है। लक्ष्मी जिसके पास होती है, उसकी कमर टेढ़ी नहीं होती। वह एक छड़ी से अथवा एक अंगुली से नमस्कार करता है। मर्यादानुसार दो हाथ जोड़ कर नमस्कार करना भूल जाता है। धन के मोह में प्राणी मतवाला हो कर मूढ़ हो जाता है। इसका भाई विष है और उसका भी इस पर प्रभाव है। विष को जब किसी ने भी न

लिया, तो शिवजी महाराज ने उठाकर पी लिया। विष जब गले में गया, तो शिवजी के गले का रंग नीला हो गया। लक्ष्मी में मार डालने का भी गुण है। इसका पिता समुद्र अर्थात् पानी नीचे को जाता है। यह भी नीचे ले जाती है। इससे पाप आदि होते हैं। बेटा नदी के किनारे ब्राह्मण से पूजा करवाता है कि उसका पिता मर जाये, कितना पाप है। धन बड़े से बड़ा अपराध भी करवाता है। वृत्तियाँ ऐसे मनुष्यों की नीच हो जाती हैं, किन्तु राम-मंत्र के जाप से ठीक हो जाती हैं। धर्म के स्थान पर धन लगाने से फलीभूत हो जाता है। धन का मोह दान से दूर होता है। आत्मा को इनसे ऊँचा बनाना चाहिये।

जो ऐसा सोचते हैं कि यह दुनिया ही है आगे कुछ नहीं, उनको भी श्रेय मार्ग अच्छा नहीं लगता। कोई तीस वर्ष से यह बात आई है कि यही लोक है, परलोक नहीं है। यह बड़ी भारी कमी है। तभी से तलवार खड़क रही है। इस विचार के लोग कहते हैं कि बर्मा देश को नष्ट करके जापान उन्नत हो जाये, तो क्या दोष है ? यह दर्शनवाद बहुत हत्या का मूल है। जो इस संसार के सुख को ही मानते हैं, उन्हें श्रेय मार्ग अच्छा नहीं लगता। नास्तिक अधिकारी नहीं होते, किन्तु यत्न करने से प्राणी में परिवर्तन आ सकता है। विदुर जी ने कहा है कि दस अवगुण वाले मनुष्य परमेश्वर को नहीं पा सकते–पागल, भांगी, शराबी, प्रमादी, थका हुआ, जल्दबाज़, आदि-आदि। अतः इन अवगुणों को जीतना चाहिये। नास्तिकपन का भाव श्रद्धा से और धर्म-ग्रन्थ पढ़ने से ठीक हो जाता है, यह अनुभव की बात है।

उत्तिष्ठत जाग्रत

कल मैं ने वर्णन किया था कि कल्याण का मार्ग, जिससे आत्मा की उन्नति होती है, अज्ञानी को, प्रमादी को, धन से मूढ़ मनुष्य को और नास्तिक को प्राप्त नहीं होता है। इस मार्ग पर वही चलता है, जो इन दोषों से पार हो। विद्वानों ने कहा है कि भलाई का मार्ग खड्ग की धार जैसा है। इन नियमों पर चलने वाला ही ऊपर उठ सकता है। ऊपर चढ़ना कितना कठिन है। कोई ऊपर जा कर भी नीचे कूद पड़े, तो कितना सरल है। माया ऐसे ही नीचे खींचती है। महान् पुरुषों ने कहा है कि यदि इस मार्ग पर चलना चाहते हो, तो उत्तिष्ठत अर्थात् उठो, खड़े रहो और तैयार रहो। भीष्म जी ने कहा कि शत्रु उससे डरते हैं, जिसके

हाथ में खड्ग खड़ी रहती है। तैयारी भी पूरी होनी चाहिये। मनुष्य वही सफल होता है, जो बुराई को मारने के लिये सदा तत्पर रहे। आलसी और प्रमादी कभी सफल नहीं हो सकता। ऐसे व्यक्ति का गृहस्थ भी नरक बन जाता है। कोरा ज्ञानी पुरुष हो, तो भी कर्ण नहीं बनता। भूखा व्याकरण का घोटा लगाये, तो भूख नहीं मरती। ज्ञान वह है जो कर्म को सिद्ध करे। आध्यात्मिक जगत में बुराई तो पड़े-पड़े ही आ जाया करती है।

दूसरी बात यह है कि मनुष्य जाग्रत हो अर्थात् चैतन्य हो, जैसे कोई मनुष्य खड़ा हो और ऊँघ रहा हो, तो उस पर कोई भी आक्रमण कर सकता है, क्योंकि उसने आँखें बन्द कर रखी हैं। जो केवल खड़ा है, और जाग्रत नहीं, उसे अंध-क्रिया कहते हैं। अपने लाभ और हानि को देखो। मनु महाराज ने कहा कि प्राणी ब्रह्म मुहूर्त में उठे। सूर्य निकलने से पूर्व धर्म और अर्थ का चिन्तन करे। भगवान का नाम लेवे। उस समय में, अच्छे विचारों के, न जाने कितने तरंग बह रहे होते हैं। असुर-भाव सब सोये होते हैं। प्रातःकाल शान्त समय होता है। न जाने कौन बात उस समय हमारे अन्दर आ जावे ? परिवार में दिन चढ़ने पर कितनी ही बातें आ जाती हैं। चित्त चंचल हो जाता है। प्रातःकाल प्रकृति भी चंचल नहीं होती। वह भी सहायक होती है। यदि हम बाहर बैठे हों, तो हवा लगती है, इसी प्रकार सूक्ष्म आकाश में महात्माओं के सूक्ष्म संकल्प सब ओर दौड़ते हैं, जो साधकों पर प्रभाव कर जाते हैं। दूसरे. अर्थ का भी चिन्तन करना चाहिये। क्या कमाना है ? क्या काम करना है ? इसका भी विचार करना चाहिये। इसके साधन भी चिन्तन करने चाहिये। मनु जी के अनुसार– जो किसी के धन को हरण कर लेता है, वह उसके धर्म को भी हर लेता है। जिस के पास आसन आदि कुछ नहीं, वह पूजा क्या करेगा ? जो गरीब हो गया, उसके पास क्या रह गया ?

तीसरे चिन्तन करे कि काया का क्लेश, खांसी आदि, क्यों हुआ ? रोग कैसे आया ? काया का क्लेश और उसका मूल नेत्रों के सम्मुख हो। चौथे, विद्या के तत्त्व का अर्थ भी चिन्तन करना चाहिये। गीता का श्लोक पढ़े और उसके अर्थ का चिन्तन करे। किसी ने एक पण्डित से पूछा कि महाराज! धर्मशास्त्र पढ़ने का कौन-सा उत्तम समय है ? उत्तर मिला, प्रातःकाल का समय यदि

किसी से सहायता लेनी हो तो दिन में लेवें, किन्तु स्वाध्याय करना हो, तो प्रातःकाल करें। पाठ और पथ प्रातःकाल ही चले जाते हैं। ब्रह्म-मुहूर्त में ग्रन्थ-कर्ता अपने आप बोलेगा। यह विचार करना चाहिये कि मैं अर्जुन हूं और श्रीकृष्ण जी महाराज मुझे ही उपदेश दे रहे हैं। ऐसी स्थिति न बनायें, तो प्राप्ति नहीं होती। रोगी को औषधि दी जाती है और प्रायः कहा जाता है कि खाली पेट खाना। इसी प्रकार जब अन्तःकरण बाहर के जटिल-जंजाल से खाली होता है, तो अपना आत्मा और देह भी बोलने लग जाते हैं। प्रातःकाल की साधना बहुत अच्छी होती है। पुरुषार्थी भी होना चाहिये। श्रेष्ठों की संगति अभिमान को मारती है। सत्संगति मनुष्य को सुधारती है। मनुष्य संगति से ही ठीक बनता है। जो वैद्य जुलाब देकर किसी रोगी की शक्ति को कम कर देता है, वह शक्ति बनाये रखने की भी औषधि देता है। इसी प्रकार पिछले तीस वर्ष में यूरोप में शस्त्रों की विद्या बढ़ गई, जो बुराई में प्रवृत्त हो गई और जिससे सभ्य जीवन के नाश का संकट निर्मित हो गया। ऐसे ही धार्मिक सुधार में भी है। बनाने लगे थे मनुष्य की मूर्ति, किन्तु बना दी भूत की।

परलोक को न मानने वाले वास्तव में बुराई को नहीं छोड़ना चाहते। हिन्दुओं में संगति की बहुत कमी है। जहां संगति समझी जाती है, वहां कुसंग होता है। इस युग में संत नहीं हैं, दुकानदारी बहुत है। न चाहते हुए भी मित्रगण दुकानदारी बना देते हैं। हिन्दू तो जीव को ब्रह्म के ऊपर चढ़ा देता है। वेदान्त वाक्यों को सुनने के लिये और आत्मा को जगाने के लिये उपनिषदों का पाठ करना चाहिये। इससे यह मार्ग सुगम हो जाता है। याज्ञवल्क्य ऋषि ने मैत्रेयी को उपदेश दिया कि जानने वाले को कैसे जाना जाये ? जलते दीये को दीया लेकर देखने कैसे जायें ? कबीर ने गाया है, 'पिया मिला मोहे मेरे घर में', इससे ये समझना चाहिये कि केवल मुख ही फेरना है। जो बाहर देखता है, उसका मुख ही अन्दर की ओर मोड़ दो। साधक तो आप ही अपने आप को देख सकता है। अपना आप अन्दर ही बताने लग जायेगा। जो यह सोचता है कि आत्मा कौन है, वह यह सोचे कि वह कौन है, जो विचार कर रहा है ? कर्ता को सामने करे, फिर जैसे बुल्लेशाह ने कहा है– अपने आप ही कहेगा, 'तेरे जया न दिसदा कोई।'

मैं क्या हूँ ? मैं अपने आप को देखूँ, तब स्वयं ही पता चलेगा। इस प्रकार जब साधक बहुत चिन्तन करता है, तो लक्ष्य पर पहुँच जाता है। जैसे मूँज की पूली में से तिनका अलग कर लिया जाता है, इसी प्रकार पाँच तत्त्व से चेतन को अलग करे, फिर समझे। यह यत्न कोई नहीं करता। न्यारिये ने सोने की कनी अलग कर दी। अलग की हुई दिखला दी। फिर भी मोह-माया की, दम्भ की रेत में मिलाते हो–यह अपराध किसका ?

आत्मा का स्वरूप

पिछले प्रकरणों में उपनिषदों के वाक्यों का वर्णन होता रहा है। कल कहा था कि साधक अपना आत्मा जानने की चेष्टा करे। जैसे मूँज के पूले में से तिनका निकाल लिया जाता है, ऐसे ही आत्मा को प्रकृति से पृथक करे और जाने।

पृथक करने के कई उपाय हैं, सांख्य की पद्धति है– 'नेति-नेति, यह भी नहीं, यह भी नहीं। अर्थात् आँख आत्मा नहीं, प्राण आत्मा नहीं, यह आत्मा न जल है न आकाश है– यह नेति-नेति की पद्धति है।'

महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है कि आत्मा प्रकृति की वस्तु नहीं है। जो उसको जानते हैं, उसको आँखों के सामने लायें। चेतन वस्तु प्रकृति से भिन्न है। प्रकृतिवादी मनुष्य उसे अनुभव करने की चेष्टा करते हैं। वे मिश्रण और विश्लेषण की पद्धति से देखते हैं। तीन चार वस्तुओं को मिलाकर क्या रंग आता है। पृथक-पृथक करके देखना विश्लेषण है। इससे आत्मा का ज्ञान नहीं होता। आत्मा प्रकृति का अंश नहीं है। स्थूल न होने से यह इस रीति से जानने योग्य नहीं है। तो जब तक स्वरूप न बनायें, उसको कैसे समझें ? जैसे– आकाश चित्र में दिखाना हो, तो नीला दिखाया जाता है। उसका प्रतिबिम्ब दिखाया जाता है। ऐसे ही यह रीति है कि हम स्वरूप बांधते हैं।

रूप में कोई वस्तु प्रकट हो जाये, तो कोई आश्चर्य नहीं। दो वस्तुओं के मिलने से एक तीसरी वस्तु पैदा हो जाती है। रगड़ से बिजली पैदा हो जाती है। यदि है, तो पैदा होती है।

साधक पहले स्थापना करे कि वह है। यदि यह न हो, तो इस मार्ग पर चल नहीं सकता। उपनिषद् ने यह कहा है कि यह मानना चाहिये कि जो तत्त्व

भाव है, उसका स्वरूप प्रकट होता है। यदि स्थापना न करें तो प्रकट क्या करें ? यह कहे कि आत्मा है। फिर यह किस स्वरूप वाला है ? अपने आप को मानना बहुत बड़ी बात है। परमेश्वर भी अपने आप को मानने से प्रकट होता है। एक मानता है कि ब्रह्म अनिर्वचनीय है, निर्विशेष है, हर स्थान पर व्यापक है। अब उसका लक्ष्य क्या है ? कोई कहे कि मैं ब्रह्म ज्ञानी हूँ, तो उसने यह कैसे जाना ? विष्णु का जानना तो आता है, प्रकट होना भी आता है। मुझे कहना यह है कि यह भाव रखें कि परमेश्वर किस स्वरूप में अवतरित हो। यदि न हो, तो उसके लिये क्या बात है ? यदि जानना है तो किस स्वरूप में ? जिन्होंने जाना है, वे कहते हैं, 'हे मेरे प्रभु तू है– वेदाहं अनुपम पुरुषं, वेदं आदित्यवर्णम्—मैं उस पुरुष को जानता हूँ, वह आदित्य वर्ण है।'

अज्ञान से परे उस पुरुष को जान कर, यह पुरुष मृत्यु से पार हो जाता है। दूसरा कोई मार्ग नहीं है। यह बात जानी हुई है और इसमें स्वरूप बाँध दिया है। ऐसे संत भी हुए हैं, जिन पर वह प्रकट हुआ है। ऐसा हम मानते हैं। श्रुतियाँ वर्णन करती हैं– 'तू इस यज्ञ में आ और बोल। जिससे तेरे शब्दों को हम सुन सकें। हमारे मार्ग में चलने वाला पथ प्रदर्शक हो। हे मेरे परमेश्वर! तू आप आ कर यज्ञ कर।' यह भक्तवाणी है।

जब किसी वस्तु को जानना होता है, तो उसका स्वरूप भी होता है। हम जिन स्वरूपों से परिचित हैं, उनमें वह प्रकट होवे और उन्हीं में होना चाहिये। इस को जिज्ञासु जाने। मानस-जगत में स्वरूप बांधना रीति है। हम तो ज्योति की कल्पना करते हैं। सम्भवतः ज्योतिर्मय ही हो। यह भी कहते हैं कि सूक्ष्म लोक अपने स्वरूप से प्रकाशमान है। यह ज्योतिर्मय आत्मा है। ज्योति तो आँख का विषय है। वह ज्योति किस प्रकार की है ? यह आँख बन्द करने से सूर्य नहीं दीखता। किन्तु आँख बन्द करने से जो ज्योति दिखाई देती है, वह बड़ी महत्वपूर्ण है। आत्मलोक ज्योतिर्मय है। ज्योति चर्मचक्षु की नहीं होनी चाहिये। सूक्ष्मलोक प्रकाशमय है। ऐसे स्वरूप में अंधेरा नहीं है। वह शुद्ध वस्तु है।

उपनिषदों ने और भी कहा है, 'वह आत्मा आनन्दमय है। इस शरीर से निकलकर, परम ज्योति के स्वरूप को लाभ कर अपने स्वरूप में चमचमा उठता है।' यह अनुभव के वाक्य हैं। एक प्रकाशमान वस्तु दीवा है। यह जो

स्वरूप बाँधा, तो जानने वालों ने कहा यह उसका वर्णन है। जो बादलों की घटा से बाहर है, इस माया से ऊपर, बन्धन से स्वतंत्र होकर उसका निरूपण है। वह आप का स्वरूप है।

यदि कोई कहे कि जब मैं नहीं रहा–मर गया– तो कुछ नहीं रहा–यह नास्तिकवाद है। इस प्रकार के असुर-भाव करोड़ों में पैदा होकर एक ही आसुरी मूर्ति बन जाती है। आस्तिक लोगों ने मनुष्य का बड़ा सुन्दर स्वरूप बनाया। उसे अद्‌भुत देव बना दिया। उसमें रहते हुये स्वर्ग का राजा हो सकता है। उपनिषदों ने उसके हृदय में चाँद, सूर्य और तारे निरूपण किये हैं। सारे विश्व का राज्य इस मनुष्य में स्थिर किया है। इस युग में इसी मनुष्य में बड़ी गन्दी-गन्दी धारणायें भर दी गई हैं। अब यह मयखाना बना दिया गया है। आस्तिकवाद से तो कोई बात आई, किन्तु नास्तिकवाद से कुछ भी नहीं आती। साधक अपने स्वरूप को जाने।

आत्मा अमर है

कल मैंने यह निवेदन किया था कि श्रुति आत्मा के सम्बन्ध में यह कहती है कि इस आत्मा को हम जानें। आत्मा को ज्योतिर्मय, प्रकाशमय समझें। यह तेजोमय आत्मा अमृत है, अविनाशी है, न मरने वाला है, न मिटने वाला है। इसका अर्थ यह है कि यह किसी से नहीं बना, मिश्रित भी नहीं। इसलिये उपनिषदों ने इसका नाम परम सत्य कहा है। सब सत्यों का सत्य है। सत्य और अमृत एक ही अर्थ को सिद्ध करते हैं। आत्मा अमृत है। यह आत्मा के स्वरूप का वर्णन करते हैं। सत्य आत्मा है।

साम्प्रदायिक-ग्रन्थ, धर्म के अनेक लक्षण कहते हैं। जैसे मनुष्य डरने वाला हो, खाने पीने में भ्रमी हो। किसी को छूने से धर्म नष्ट हो जाता है अथवा किसी विशेष वस्तु के सेवन से पतन हो जाता है। साम्प्रदायिक-ग्रन्थ, धर्म के लक्षण भिन्न-भिन्न वस्तुओं में भिन्न-भिन्न बताते हैं और ये लक्षण एकदेशीय हैं। धर्म का लक्षण सत्य तो सर्वव्यापी है। सत्य उसे कहते हैं, जो सदा रहने वाला हो। श्रीकृष्ण जी महाराज ने अर्जुन को भीरुता और दीन-भाव हटाने के लिये कहा कि जब दीन-भाव आ जाता है, तो राष्ट्र नहीं बनता। जब बड़े समूहों में दैन्य-भाव आ जाता है, तो वे गिर जाते हैं।

जब यह बात श्रीकृष्ण जी महाराज ने अर्जुन से कही, तब वह अत्यन्त विनम्र हो कर बोला, 'मैं हत्या नहीं करूंगा। युद्ध में यदि मेरी हत्या हो जाये, तो मेरा कल्याण हो जायेगा। मेरा धनुष तो मेरे हाथ से खिसक रहा है और मेरा मुँह सूख रहा है। मेरे अंग शिथिल हो रहे हैं। मैं खड़ा भी नहीं हो सकता। मेरा मस्तक चक्कर खा रहा है।' अर्जुन का यह दीन-भाव सत्य का बोध होने से हटा। भगवान ने कहा– 'तू आत्मा है।' अपना बोध हो जावे, यह बड़ी बात है। किसी वन में चार-पाँच शेर ही होते हैं। गीदड़ और चूहे करोड़ों हों, तो क्या? हम दीन-भाव के अधिक गीत गाया करते हैं। भगवान ने अर्जुन की दीनता को धिक्कारा है– 'यह जो तू कह रहा है यह तो अनार्य-कर्म है। यह तेरे ओछे दिल की बात है। यह तेरी जाति का काम नहीं है। यह नरक की वस्तु है। तेरे अपयश को फैलाने वाली है।' बड़ी भारी धिक्कार दी। उसकी दया को म्लेच्छपन और नपुंसकता कहा। जो अर्जुन की दया थी, उसको श्रीकृष्ण जी महाराज ने दीनता कहा। यह कोई ऊँचा दार्शनिक ही कह सकता है कि तू आत्मा है, तुझे कर्तव्य का पालन करना चाहिये।

जो नहीं है अर्थात् असत्य है, उसका भाव-होना, नहीं होता। अन्धकार से तो केवल अन्धकार ही पैदा होता है। सत्य नास्ति में प्रवर्तित नहीं होता। अस्तित्व नास्ति में नहीं आता, यह उपनिषद् का कहना है। प्रज्ञा का मूल सत्य है। यह निरपेक्ष वस्तु है, किसी से उत्पन्न नहीं हुई। यह सिद्धान्त तत्त्वदर्शियों ने देखा है। आत्मा सत्य है। उसका त्रिकाल नाश नहीं होगा। गीता का कहना कितना ऊँचा है। जब तक परमाणु की शक्ति नहीं निकली थी, तो मानते थे– होगी। किन्तु गवेषणा (खोज) से लोगों ने परमाणु की शक्ति को प्राप्त करके देखा। जो परमाणु तुच्छ समझा जाता था, उसने कितना बड़ा होकर दिखा दिया। यदि भगवान प्रकट होते हैं, तभी तो मनुष्य उपासना करते हैं। पतंजलि जी ने कहा कि स्वाध्याय से, आराधन से उसका साक्षात्कार होता है। सत्य वस्तु का प्रकटीकरण होता है। वह अपने आप को प्रकट करता है। जब द्वार ही बन्द कर दिया जाये, तो फिर प्रकट ही क्या हुआ? यदि मान लिया जाये कि आत्मा नहीं में से पैदा होता है, तो आप के आगे

क्या आयेगा? अपने अस्तित्व पर निश्चय हो कि– मैं सत्य हूँ और फिर गहरी डुबकी लगाये, तो अपने अस्तित्व का प्रकाश होना ही चाहिये।

भगवान ने अर्जुन को कहा– 'कभी ऐसा समय नहीं था, जब तू नहीं था। वह त्रिकाल और त्रिलोक में विद्यमान है और इन सब लोक-लोकान्तरों से बड़ा है। यह मेरा आत्मा है। आत्मा सत्, चित्त, शुद्ध, आनन्द-शक्ति है।' अहं भाव लाने से आत्म-भाव जगता है, इसको कैसे जाने– 'सुन-सुन अंधे पावें राह'। विश्वासी आदमी भी वहां चला जाता है, जहां और जाते हैं। 'यह मैं हूँ' इस प्रकार जाने। यह अपने अन्दर मनन करे। वह आप किसी दिन कहेगा कि वह मैं हूँ। यह भारतीय रीति बहुत ऊँची है। यह सिद्धान्त बड़ा पुरातन है। यह काल्पनिक बात नहीं है। यह धर्म है। धर्म में कोई अन्तर नहीं पड़ता। मत और धर्म में भेद है। मतों में बहुत कुछ अनुचित मिला होता है। धर्म तो शुद्ध गंगा जी की धारा है, जिसमें आचार्यों और दुराचारियों का हाथ नहीं लगा। जो इधर से, उधर से नहीं बनाया हुआ। शेष मूर्तियां आचार्यों की बनायी हुई हैं। धर्म का मूल आत्मा है। इसी का निरूपण, शास्त्र करते हैं।

जिसको पैतृक परम्परा में ऐसी सच्चाई मिली हो, उसे गौरव करना चाहिये। जो इतनी कमाई सम्भाल कर अपने पिता का ज्ञान लेने से रह जाता है, वह तो कपूत है। धर्म तत्त्व भारत से यात्रा करता हुआ, दूसरे देशों में गया जैसे अब भौतिक वैज्ञानिकता यात्रा करती हुई, यहां आ रही है। गीता का ज्ञान, उपनिषदों का अनुवाक (उपासनावाद) बड़ा ऊँचा है। हमारे ऋषियों ने इसे आत्मा की ध्वनि द्वारा कहा है।

समर्पणे त्यागम्

उपनिषद् बहुत ऊँचे ग्रन्थ हैं। इनमें ऋषियों ने अपने अनुभवों का वर्णन किया है। भारतीय विचारधारा पर इसका गहरा प्रभाव है। संतों की वाणियों में भी इनका प्रभाव है।

'ईशावास्यमिदं सर्वम्, यत्किंच जगत्याम् जगत्' – जो ये सब कुछ दीख रहा है, वह भगवान से बसाने योग्य है। इसमें भगवान को बसाओ। इसमें अपने आप को मत बसाओ। जो जितना ही अपने आप को इसमें बसाता है, वह उतना ही दुःखी होता है। ऐसा समझो कि ये सब वस्तुयें भगवान की हैं।

हमें तो केवल उपयोग के लिये मिली हैं। इनमें अपना ममत्व नहीं जोड़ना चाहिये। भगवान की सृष्टि में दुःख नहीं है। जीव मोह और लोभ के वश होकर अपनी सृष्टि रच कर दुःखी होता है। भगवान की सृष्टि ऐसी ही रहती है। ममता करने वाले लाखों आये और चले गये।

जिसमें यह भावना हो कि भगवान सृष्टि का आत्मा है, तो उसके लिये सृष्टि मधुर हो जाती है। तू त्याग से पदार्थों का उपभोग कर। अनुराग में ही वैराग्य है। जब भगवान का अनुराग हो जाये, तो संसार से स्वतः ही वैराग्य हो जाता है।

कीर्तन और हरि गीतों ने न जाने कितनी जनता को सन्मार्ग पर लगाया है।

'समर्पणे त्यागम्'—समर्पण में ही त्याग है। भक्ति-मार्ग में समर्पण ही त्याग है। यह बड़ा भारी त्याग है। हरि-चरणों में अनुराग ही वैराग्य है।

'तेन त्यक्तेन भुंजीथा'—भगवान की सृष्टि समझ कर, उसके पदार्थ समझ कर, उसका उपभोग करो। परमेश्वर की सब वस्तुयें हैं, ऐसा मनन करना बड़ा त्याग है। कोई एक महीना करके देखे, कितना आश्चर्यजनक लाभ होता है। जिसने अपना आप समर्पण किया हुआ है, वह बड़ा त्यागी है। समर्पण करके खाने वाला अमृत खाता है।

सांसारिक पदार्थों का उपभोग करो, किन्तु लोभ न करो। यदि मन में लोभ जाग्रत हो, तो सोचो यह धन किस का है ? अर्थात् किसी का नहीं। ऐसा सोचने से लोभ की वृत्ति दब जायेगी। धन के दो उपयोग हैं— एक उपभोग, दूसरा दान और दान न करो, तो फिर इसकी तीसरी गति होती है— नाश।



गीता

साधकों को धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिये। सुनने से या स्वाध्याय से ज्ञान प्राप्त होता है, किन्तु सुनने की अपेक्षा स्वयं स्वाध्याय करना अच्छा है, क्योंकि सुनने वाले सुनाने वाले के अधीन होते हैं। सम्भव है कि सुनाने वाले अनुचित विचार भी आपको दें। जैसा कि पुराने समय में पंडित लोग (अज्ञान के कारण) अनुचित बातें भी लोगों को कह देते थे।

कृष्ण महाराज द्वारा कही गई गीता बहुत महान ग्रंथ है। अनेकों भक्तों तथा साधकों ने इसके द्वारा अपने इष्ट तथा परमेश्वर तक की प्राप्ति की है। (श्री स्वामी जी महाराज ने गौरी-शंकर मंदिर में गीता पर प्रकट किये गये, श्री राज गोपालाचार्य के विचारों की प्रशंसा की)। हम सब को जन्माष्टमी के अवसर पर एक सप्ताह के लिये दैनिक गीता-पाठ तथा रामनवमी के अवसर पर नौ दिवस पर्यन्त रामायण-पाठ करना चाहिये तथा आम लोगों को भी इसके लिये प्रोत्साहित करना चाहिये, क्योंकि इससे जाति को लाभ होता है।

साधना-सत्संग होशियारपुर
दिनांक 26.12.1948
समय प्रातः 10.30 बजे



'गीता भाष्य' पर भगवान श्रीकृष्ण की साक्षी

(पूज्यश्री प्रेम जी महाराज के मुखारविंद से)

'महाराज के ग्रन्थों का पाठ करना चाहिये। उनके सद्ग्रन्थों का पाठ बहुत उत्तम सत्संग है। इनको पाकर भटकने की ज़रूरत नहीं। महाराज कहा करते थे कि जो भटकते हैं, वे भटकते ही रहेंगे। महाराज के सद्ग्रन्थ तो अवतरित हैं। वे लिखने बैठते थे, आदेश आते जाते थे। जहां कलम रुक जाती थी, बन्द कर देते थे।'

महाराज जब गीता पर भाष्य लिख रहे थे, तो उन्होंने कुछ श्लोकों का स्पष्टीकरण परमेश्वर से चाहा। आवाज़ आई कि जिसने गीता गाई है, उससे पूछो। महाराज ने श्री कृष्ण जी की आत्मा का आह्वान किया। वे आये, उन्होंने कुछ (श्लोक) को स्पष्ट करके बताया और महाराज के लिखे हुए बहुत सारे स्थानों (श्लोक) की प्रशंसा की– यह भी अच्छा किया है और यह भी अच्छा किया है।

साधना सत्संग, सांपला
दिनांक– 28.12.1972

❑❑

भक्त के लक्षण

1

गीता में आदर्श पुरुष के भिन्न नामों से लक्षण वर्णन किये गये हैं। दूसरे अध्याय में स्थितप्रज्ञ, बारहवें अध्याय में भक्त, चौदहवें में त्रिगुणातीत तथा सोलहवें में दैवी सम्पत्ति-सम्पन्न पुरुष के रूप में वर्णित हैं। जो परमेश्वर के व्यक्तित्व को मानते हैं अर्थात् ईश्वर में व्यक्तित्व का आरोप करके आराधना करते हैं, वे लोग अपने उद्देश्य को शीघ्र प्राप्त करते हैं, अपेक्षाकृत उनके जो किसी शक्ति का ध्यान करते हैं, जो कि समझ में न आये।

गीता में वर्णित भक्त के लक्षण बड़े सुन्दर हैं। उनको अपने जीवन में बसाना चाहिये। हम सब साधना के लिये आये हैं। इसलिये अभी से उनके लिये प्रयत्न प्रारम्भ कर देना चाहिये।

1. **अद्वेष्टा**– जो किसी से द्वेष न करे। द्वेष न करने का अभिप्राय यह नहीं कि दण्ड-योग्य को भी दण्ड न दे। दण्ड दे, पर द्वेष के वशीभूत होकर नहीं, वरन् कर्त्तव्य-पालन की दृष्टि से। द्वेष करना और है, कर्त्तव्य-पालन और है। शास्त्र-धर्म द्वेष-जन्य नहीं, कर्त्तव्य-जन्य है। कर्त्तव्य-बुद्धि से जो कर्म किया जाता है, वह कर्म न करने के बराबर है। उसका कर्त्ता के मन पर कोई संस्कार नहीं पड़ता। ईश्वर इतना महान कर्म करते हुए भी, इसीलिये अकर्ता है।
2. **मैत्री**– मित्रता सम्पादन करना। प्राणि मात्र के प्रति मित्रता का भाव रखना। उससे प्रेम करना। जो विरोध करे, उससे भी मित्र-भाव रखना। इससे विरोध का किला गिर जाता है।
3. **करुणा**– दुःखित अथवा पीड़ित को देखकर जो वेदना पैदा होती है, उसे करुणा कहते हैं। अमेरिका के प्रेसीडेन्ट ने सूअर को

कीचड़ में लाचार तथा दु:खित फँसे देख कर कीचड़ से बाहर निकाला था।

4. **निर्मम**– अर्थात् ममता-रहित होना। यह बात ईसा के उस उपदेश से कि– जो तुझ से कोट मांगे, उसे कमीज़ भी दे दे, बहुत ऊँची और गहरी है। कमीज़ देकर भी उसमें ममता रह सकती है, पर निर्मम होने का अर्थ है– वस्तु पास होने पर भी मेरापन न होना।
5. **निरहंकार**– अर्थात् अहंकार-रहित होना।
6. **क्षमी**– अर्थात् सहनशील होना।
7. **सम दुःख सुख**- सुख-दुःख में सम रहना।
8. **सतत सन्तुष्ट**– 'यहाँ यूँ भी वाह-वाह है और यूँ भी वाह-वाह।' इसका अर्थ यह नहीं कि पुरुषार्थ न हो। पुरुषार्थ होना चाहिये, पर सिद्धि-असिद्धि में तथा अपनी परिस्थिति पर सन्तुष्ट रहना चाहिये।
9. **योगी**– भगवान से जुड़ा हुआ हो।
10. **महात्मा**– जितेन्द्रिय हो।
11. **अर्पित मनोबुद्धि**– मन बुद्धि को भगवान में अर्पण करने वाला हो।
12. **दृढ़निश्चयी**– अर्थात् अपनी धारणा पर दृढ़ रहने वाला हो। इन लक्षणों का वर्णन गीता अध्याय बारहवें, श्लोक तेरहवें, चौदहवें में है। इसका मनन करना चाहिये।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 3.12.1951,
समय प्रात: 11.00 बजे

2

जो लोग भजन-पाठ करते हैं अथवा सेवा के क्षेत्र में काम करते हैं, उनको समझना चाहिये कि ये लक्षण उनके जीवन में आने चाहियें।

1. दूसरे लोग उन से व्याकुल न हों।
2. दूसरे व्यक्ति से वे स्वयं व्याकुल न हों। हर्ष, अमर्ष, क्रोध, भय और उद्वेग-इन से मुक्त हों।
3. भगवान को प्यारा वही होता है, जो प्रत्येक परिस्थिति में सम रहने वाला हो। संसारी लोगों को ही जो प्यारा नहीं होता, तो फिर भगवान को क्यों कर हो सकता है ? भक्त डरा नहीं करते। डरना भक्ति तथा भगवान से इन्कार करना है। भक्त को भीरु नहीं होना चाहिये। भक्तिवाद जीवन में परिणत होना चाहिये।

यह सत्संग, साधारण सत्संगों के समान नहीं। आये, उपदेश सुने, नाम-आराधन सुना और चल दिये। यह साधना-सत्संग है। इस में सम्मिलित होने वालों को यहां आकर जीवन बनाना चाहिये। साधन में लग जाना चाहिये। भगवान को प्रिय लगने के लिये निम्नलिखित गुण अपनाने चाहिये।

1. **अनपेक्ष**– दूसरे पर निर्भर न होना अर्थात् स्वावलम्बी होना।
2. **शुचि**– पवित्रता, तीनों प्रकार की पवित्रता–कायिक, वाचिक और मानसिक। क्षमा से विद्वान शुद्ध होता है। दानी, दान से शुद्ध होता है। जप से प्रच्छन्न पाप शुद्ध होते हैं। तप से शास्त्रों का जानने वाला शुद्ध होता है। सब पवित्रताओं में परम-पवित्रता धन की है, अर्थात् कमाई का पैसा पवित्र होना।
3. **दक्ष**– चतुर, समझदार।
4. **उदासीन**– पक्षपात-रहित।
5. **गतव्यथ**– जिसके अन्दर से पीड़ा, मानसिक व्याधि दूर हो गई है। मानस-व्यथा कई प्रकार की होती है। किसी प्रकार की चिन्ता, निरादर का भाव, व्यर्थ सोचना इत्यादि।

6. **सर्वारम्भ परित्यागी**– 'सब कामों में आसक्ति का त्याग करने वाला'– यह लक्षण जीवन में घटाना चाहिये। तब हम भगवान के प्यारे बन सकेंगे।
7. **जो हर्षित नहीं होता**– जो अनुकूल वस्तु से हर्षित नहीं होता। इसका तात्पर्य उस प्रसन्नता से नहीं है, जो आत्मप्रसाद के फलस्वरूप स्वयमेव उत्पन्न होती है।
8. **जो द्वेष नहीं करता**– प्रतिकूल वस्तु व पुरुष के संयोग से जो द्वेष नहीं करता। इसका अर्थ यह नहीं कि भक्त द्वेषी के दांव-पेंच से नहीं बचता। ऐसा तो वह करता है, पर उसमें द्वेष बुद्धि नहीं होती। भक्त संसार में खेलता है अर्थात् राग-द्वेष रहित होकर काम करता है।
9. **जो आकांक्षा नहीं करता**– अनुचित रीति से किसी वस्तु को नहीं पाना चाहता।
10. **शुभाशुभ संयोग से राग- द्वेष नहीं करता**– अनुकूल-प्रतिकूल को लांघकर अपने लक्ष्य की ओर चलता है। किसी जगह नहीं अटकता।

उपर्युक्त गुणों को लाने की चेष्टा करने से अपने अन्दर के दोष क्षीण होते हैं। यह अनुभव सिद्ध है।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 4.12.51,
समय प्रातः 11.00 बजे

3

भक्त कैसा सहनशील हो ? अठारहवें व उन्नीसवें श्लोक में यह बात आई है–

जो शत्रु-मित्र में समान हो।
जो मान-अपमान में समान हो।
जो शीत-उष्ण में समान हो।
जो सुख-दुःख में समान हो।
जो आसक्ति से रहित हो।
जो निन्दा-स्तुति में सम हो।
जो मौनी अर्थात् बहुत न बोलने वाला हो।
अर्थात्
जो जिस किसी प्रकार से भी संतुष्ट हो।
जो अपने स्थान में भी ममता नहीं रखता हो।
भक्त की प्रत्येक वस्तु दूसरे के लिये होती है।
जिसका निश्चय स्थिर हो, जो डांवाडोल न हो।
जो भक्ति करने वाला हो।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 6.12.1951,
समय प्रातः 11.00 बजे

❑❑

गीता का आदर्श भक्त

टिड्डियों का पंजाब पर अधिक आक्रमण हुआ। टिड्डी दल को विनष्ट किया गया। सैकड़ों विद्यार्थी आदि ने इसमें भाग लिया। यदि कोई कहे कि टिड्डियों को किस दोष से नष्ट किया गया ? ऐसा तो नहीं है, यह तो उनको नष्ट कराना कर्त्तव्य है। गीता में बारहवें अध्याय के तेरहवें-चौदहवें श्लोक में भगवान कहते हैं कि जो जन सब प्राणियों के प्रति द्वेष-रहित है, सब का मित्र है, दयावान है, ममता रहित है, अहंकार वर्जित है, सुख-दु:ख में सम है, क्षमावान है, जो भी स्थिति हो उसमें सुखी रहता है, जिसने जो निश्चय किया उस पर दृढ़ रहता है और डांवाडोल नहीं होता, सदा सन्तुष्ट रहता है, तथा अपने आत्मा को वश में करने वाला है– ऐसा भक्त मुझे प्यारा है।

भक्त के लक्षण वर्णन करते हुए भगवान ने आगे कहा है कि जिससे लोग अशांत नहीं होते और जो स्वयं भी किसी से व्याकुल नहीं होता, जिसे वस्तुओं की प्राप्ति से हर्ष न हो, जो किसी की बढ़ती देखकर कुढ़े न, जिसे अभाव का भय न हो, वह भक्त मुझे प्यारा है।

भगवान को वीर-धीर प्यारे होते हैं, न कि मोही, छली। भक्त स्वयं के लिये किसी अन्य की सहायता का विचार(अपेक्षा) न रखे, वह स्वतंत्र भाव का मनुष्य हो। अनपेक्ष हो। केवल राम के सहारे पर रहे, किसी और के सहारे क्या रहना, मनुष्य क्या पता कब सीढ़ी खींच ले ?

भक्त पवित्र रहने वाला हो। मेल-जोल का, मन का पवित्र हो। केवल कपड़े आदि तो आम नागरिक भी स्वच्छ रख सकते हैं। मनु ने कहा कि जितनी पवित्रता मन व धन की है, उतनी मल कर नहाने की नहीं।

जो स्वतंत्र है अर्थात् दल-बन्दी में नहीं आता, शत्रु और मित्र से भी अलग है, जिसको मन की पीड़ा नहीं।

भक्त के चिन्हों का मनन करना चाहिये। भक्त में तो निरालापन होना चाहिये। जो मायावी संसार में ही रहा, वह तो भक्त नहीं रहा। गीता में सब बातें वे कही गई हैं जो व्यवहारिक हैं अर्थात् वास्तविक जीवन में जिन्हें कार्यान्वित किया जा सके। यदि इन्हें याद किया जावे, तो यह संसार में बहुत काम आती हैं।

भय कोई और चीज़ है और विचार कोई और अर्थात् किसी बात से भय होना एक भिन्न बात है और उस बात का विचार होना भिन्न।

साधना-सत्संग नांगल,
दिनांक 21.12.1951

❑❑

दैवी-गुण

(गीता का सोलहवां अध्याय)

(क)

अब गीता के सोलहवें अध्याय का प्रसंग सुनाता हूँ। इसमें आचार का वर्णन है कि मनुष्य का आचार बड़ा ऊँचा होना चाहिये। दो श्रेणियों के जन वर्णन किये जाते हैं, देव और असुर। लोग ऐसा वर्णन किया करते हैं कि असुर बहुत सींगों वाले-डरावनी शक्ल के होते हैं और देव जो आकाश में रहते हैं। यह कम ही लोग विचार करते हैं कि जैसे हम हैं, वैसे ही मुंह, नाक, कान वाले और हम में से ही देव होते हैं और हम में से ही असुर होते हैं। देवों का गुण वर्णन करते हैं।

पहला अभयं–निर्भयता– वास्तव में यह ही दैवी गुण है। जो निर्भय है, तो समझो उसे परमेश्वर में विश्वास है। आत्मिक बल है। निर्भयता के गुण के कारण आदमी देव ही तो है। जिन जातियों में भय आया, वे दासता में आ जाती हैं। मेरी वस्तु न रहे, मेरा गौरव न रहे, मैं क्यों यह बात सच्ची कह दूं ? झूठ भी डर कर वह बोलता है।

दूसरा सत्त्व संशुद्धि अर्थात् अन्दर की पवित्रता– पवित्रता का दिखावा वे बहुत रचते हैं, पर विचारों में उनके कितनी निर्मलता है, यह वे ही जानें। उनमें छल-कपट बहुत होता है। बगुला बहुत स्वच्छ परों वाला होता है, पर यह तो उसकी बाहर की शुद्धि है। उसकी सफेदी उसमें देवत्व नहीं लाती । देवत्व तो आन्तरिक शुद्धि से आता है।

तीसरा ज्ञान--योग में स्थिरता– हर बात में हानि-लाभ को सोचने वाला, ज्ञानपूर्वक काम करने वाला होना। बहुत लोग भावनाओं से काम करते हैं– क्रोध से, अहंकार से। इन वृत्तियों से जो काम करते हैं, तो वृत्ि।यों से तो पशु भी, कुत्ता भी, जानवर भी करते हैं। ज्ञानपूर्वक काम करना कि मेरा कर्त्तव्य क्या है ? उसमें क्या हानि, क्या लाभ होगा ? सदा कल्याण के योग को प्रचलित

रखना। भले आदमी ज्ञानपूर्वक कार्य करते हैं, बाकी लोग कार्य वृत्तियों से करते हैं। यह हमारा कर्त्तव्य, देश का व बंधुओं का भी हो। वृत्ति वाला केवल स्वार्थ की दृष्टि से कार्य करता है। हमारी इच्छायें ही वृत्ति हैं। देवत्व ज्ञान में रहता है। आप चाहें कि आप के देश के लोग देवता बनें, तो आप देखें कि उनमें कितनी निर्भयता, शुद्धि और इसी ज्ञान-योग की स्थिरता है।

आप जो राम-नाम आराधन करते हैं। आप में यह विचार आये कि राम-नाम तारक है। विश्वास हो कि यह काल के चक्र को काटता है। यह ज्ञान-वृद्धि हुई। मेल-मिलाप, सामाजिक-जीवन में और पारिवारिक-जीवन में अच्छा, तो समझो कि सत्संगी ने देवत्व सम्पादन किया। देवत्व पृथ्वी पर ही है, उसको अलौकिक नहीं बनाना।

दान– जो दूसरे को दिया जावे। दूसरे को आदर देना, मीठी वाणी बोलना भी दान है। हरिद्वार में पण्डे को पैसा देने तक ही दान को सीमित नहीं कर देना। यदि आप सेवा करते हैं, तो यह भी बहुत बड़ा दान है। पैसा भी देना चाहिये। यह पैसा तो सारे देश की वस्तु है, केवल अपनी पूँजी न जानो। दान और भी हैं। यदि आप ने अपने मिलने वालों में राम-नाम का दीपक जला दिया, तो आप ने जन्म-जन्मांतर काम आने वाली पूंजी दे दी। सेवा की, तो यह भी दान। श्रमदान– कई देशों में, जिन्होंने बहुत शीघ्र उन्नति की, धन और श्रम को वहां सरकार ने अपने वश किया। कुछ ही वर्षों में हज़ारों मील सड़कें, नहरें आदि वहां बन गईं। श्रम उन्होंने तन्त्र द्वारा वश में कर लिया। गांवों में कीचड़ बहुत होता है। उसमें बुरा हाल होता है। यदि ग्रामीण एकता से गांव में श्रमदान करने लगें, तो गाँव को कीचड़ आदि से स्वच्छ कर लेना कठिन नहीं। हज़ारों ने मार्ग पर श्रमदान दिया। इससे कई उत्तम बातें हो गईं। यह जो श्रम देना है, यह बड़ी ऊँची चीज़ है। कौन है जिसकी बोलने को मीठी वाणी नहीं व करने को कोमल कर्म नहीं है।

दमन– किसी युग की बात है कि प्रजापति के पास तीन श्रेणी गईं और कहा कि उपदेश दो। प्रजापति ने उपदेश तीनों श्रेणियों को दिया–द, द, द। फिर तीनों को पूछा कि उन्होंने क्या समझा ? तो देवों ने कहा कि दमन करो।

दमन न हो तो पन्द्रह मिनट में सारे विश्व का नाश हो जाये। ऐसे हथियार बन चुके हैं कि (यदि उनके प्रयोग की इच्छा का दमन न किया जाये तो) प्रलय अपने हाथों हो जाये। आप के प्रधानमंत्री को सौभाग्य प्राप्त है कि उन्होंने रोक दिया है। मन का दमन करना है, अपने आप को काबू करना।

असुरों को पूछा, उन्होंने कहा कि आप ने हम को कहा है कि दया होनी चाहिये।

मनुष्यों ने कहा कि दान देना चाहिये। जगत स्वार्थ से नहीं, दान से चल रहा है।

उपदेश तो ऐसे दिया करते। अब तो लोग धार्मिक सिनेमा आदि से उपदेश की बात कहते हैं। धार्मिक सिनेमा यह तो पाखण्ड है। यह व्यापारियों की आरम्भ की हुई बातें हैं। यह तो हिन्दू-धर्म की अवहेलना है। राधा-कृष्ण बनना, गांव में लड़के बनते हैं, फिर पैसे मांगते हैं। मुझे यह कहना है कि लोग कहते हैं कि यह बड़ा उपदेश है। बहुत सुनने में कुछ नहीं रखा। चलने में है। यहां लोग लम्बे भाषण देते हैं। बाहर देशों में लोग कभी बीस मिनट से अधिक नहीं बोलते। दो-दो घण्टों की व्याख्यान की झड़ी वे बहुत नहीं देते। उन के वचनों का बड़ा प्रभाव होता है। यहां बहुत सुनने का रिवाज़ है, करने का नहीं है। जब तक बनिया सेना में नहीं जावे, वीरत्व उसमें कैसे आ सकता है ? आदमी को चलना चाहिये। उपदेश बहुत लम्बे नहीं हुआ करते। देवत्व का गुण दान है।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 20.11.1955,
प्रातः रविवार

(ख)

देवों के गुण, भले मनुष्यों के गुण कल वर्णन किये गये, फिर असुरों के गुण भी वर्णन हुए। दान और फिर दमन कहे गये।

यज्ञ– भाईयो ! मैं तो यज्ञ को अच्छा समझता हूँ यदि यह उच्च भावना व पुरातन रीति से किया जावे। पर आजकल जो यज्ञों का लोगों ने तमाशा बनाया हुआ है, उनका कोई परिणाम नहीं निकलता।

यज्ञ का अर्थ कोई अग्निहोत्र मात्र से ही नहीं। सभी भले कार्य यज्ञ कहलाते हैं। प्राणायाम भी यज्ञ, नियम से रहना भी यज्ञ। पुरातन शैली में सभी भले कर्म यज्ञ कहे गये हैं। अग्निहोत्र में यज्ञ शब्द को रूढ़ किया गया है। कल्याण के सभी काम यज्ञ हैं। देवपूजा, संगतिकरण और दान, यह यज्ञ का व्याकरण है।

स्वाध्याय– स्वयं पढ़ना – यह जो स्वयं पढ़ना है वह बहुत उत्तम है। अन्त में केवल सुनने पर ही रह जावे, तो सुनाने वालों के स्वार्थ भी होते हैं। तो न जाने कौन क्या कह जावे ? धार्मिक जगत में अज्ञान का कारण भी, स्वाध्यायशील न होना है। अपने आप पढ़ने का स्वभाव बनाना चाहिये। हमारा युग जिसमें हम सब विचर रहे हैं, इसमें बड़ी विशेषता है। इसका निरालापन है, बहुत सुगमता है, आकाश में चलो, पानी में चलो, जनता को भी लाभ, ऐसा यह युग है। आने में सुगमता, जाने में सुगमता और समय भी कम लगे अर्थात् (सुगम, शीघ्र यातायात की सुविधायें)। किसी विशेष श्रेणी के लिये नहीं, अपितु सब के लिये हैं। इसी प्रकार आजकल ग्रन्थों के अनुवाद बहुत हो गये हैं और वे बड़े प्रामाणिक लोगों के हैं। अब भी न पढ़ें, तो कोई क्या करे ? सब भाषाओं में श्रीमद्भगवद्गीता मिल जावेगी। फिर भी न पढ़ें, तो दोष किस का ? पढ़ने का रिवाज़ होना चाहिये। आपको शौक होना चाहिये कि सवेरे मंदिरों में जावें। मंदिरों में जाने का रिवाज उड़ गया। गांवों में बिलकुल ही नहीं, और शहरों में कोई जाते हों, तो पता नहीं। वहां कोई ऐसा आकर्षण नहीं। घर में स्वाध्यायशील हो और गीता का पाठ करे, तो गीता में श्रीकृष्ण मिलते हैं। ऐसे अन्य जगह भी और वृन्दावन में भी लोग देखते हैं, पर उसका विशाल रूप तो गीता में है। स्वाध्याय करके देखो।

गीता में महाराज कह रहे हैं कि तू आसुरी-भावों को काबू करके दैवी-भावों को ग्रहण कर। आप रामायण पढ़ते हैं, तो समझें कि आप रामदर्शन करने मंदिर में गये। मन्दिर तो ईंट, पत्थर, सोने के होंगे, पर वास्तव में रामचन्द्र जी का मन्दिर तो वाल्मीकीय रामायण है।

श्लोक 'सीता राम चरण रति मोरे। अनु दिन बढ़ऊ अनुग्रह तोरे।' स्वाध्याय न करो, तो जो मन में आया, किसी ने सुनाया—अपने नेत्र उनके लिये हुए नहीं। जिस महापुरुष की जो पुस्तक है, उसको पढ़ते हैं, तो समझो कि उसी महापुरुष के चरणों में हम बैठे हैं। यह स्वाध्याय देव-भाव है।

अब अपने शासन करने लगे, तो स्वराज्य कहलाया। अंग्रेजों के राज्य में परतन्त्रता थी। ऐसे ही कोई धर्म की दृष्टि से पराधीन रहे, आप (स्वयं) न पढ़े, तो समझो कि वह धर्म में गुलाम है। स्वतन्त्र वह जो आप पढ़े। पण्डित जवाहरलाल के परिवार की एक स्त्री ने उनके सिलसिले में कहा कि वे बहुत नहीं खाते। योगासन भी सवेरे दो तीन लगाते हैं। नाश्ता भी थोड़ा करते हैं। उनके विषय में एक पुस्तक में लिखा है कि जब वे सोते हैं, तो श्रीमद्भगवद्गीता का गुटका रखा जाता है। ऐसा ही होगा कि जब नेहरू जी उठते होंगे, तो दो चार श्लोक अध्ययन करते होंगे। इतनी शुद्ध बुद्धि, इतने ऊंचे विचार कि संसार उनके पीछे है।

एक स्त्री सदा डरा करे। पीपल के पेड़ से वह डरे। नीम के पेड़ से भी और कोई जानवर देखे तो गश आ जाये। कोई महात्मा आये। महात्मा ने उस से कहा, 'यह आत्मा जो हमारे शरीर में है, वह अग्नि से जलता नहीं और पानी से भीगता नहीं। अजर है, अमर है। यह सौ बार रोज पढ़ाकर, तेरे में बल आयेगा।' इस श्लोक को वह स्त्री जपती रही, महीने हो गये। तब एक स्त्री ने उसे कहा कि नीम के पेड़ पर चुड़ैल रहती है, तो उसने चिमटा उठाया और रात के साढ़े ग्यारह से बारह बजे तक खड़ी रही। चुड़ैल का नामो निशान नहीं मिला। फिर उसने मुहल्ले में कहा कि आज मैंने चार चिमटे चुड़ैल को मारे, तो अब वह चली गई।

पतंजलि का कथन है कि स्वाध्याय से इष्टदेव का विशेष मिलाप होता है। जो इन कर्मों को करे, तो दैवी कला उसमें चमकती जाती है। एक लड़का

जब स्कूल से निकला करे, तो दूसरे लड़के उसको छेड़ा करें। झंझोड़ें और भोंदु लाला नाम से उसे पुकारें। जो चिढ़े उसे ज़्यादा चिढ़ाते हैं। एक दिन वह दुःखी होकर, मां के पास जाकर कहने लगा कि मैं घर को छोड़ जाऊंगा। इस नगर में मेरा गुज़ारा नहीं है। मां का वह एक ही लड़का था। उसे कैसे अलग करे ? मां ने पण्डित को बुलाया, पण्डित आ गया। उसने लड़के के कान में यह शब्द कहा कि 'तू बलवान आत्मा है' यह जपा कर। मैं बलवान आत्मा हूँ, यह बड़ा भारी मंत्र है। दस दिन में सब छेड़ने से हट जावेंगे और महीने में तो तुझे बहादुर कहा करेंगे। इस मंत्र को उसने जपा। दसवें दिन विचार आया कि आज मेरा बल प्रकट होगा। एक लड़के ने उसे मारा। तो उसने भी तख्ती लगा दी। वह समझता रहा कि मंत्र का बल है। शोर मच गया कि आज वह इतना बिगड़ा। लड़कों ने हैडमास्टर को कहा कि उसकी जिसको तख्ती पड़ी थी उंगली सूज गई है, उसकी कमर पर भी चोट आई है। हैडमास्टर कहने लगा— वह तो बनिये का लड़का है, सूद समेत लेगा, जो तुमने उसे तंग किया। कहना यह है कि मनन करने से बल आता है।

बहनो और भाईयो ! आप सब को स्वाध्याय करना चाहिये । भगवान भी नाम जपने वालों के बस में हो जाता है। हां, तुम राम-नाम का आराधन किया करो। जहां उन का नाम होगा, वहां वे अवश्य आवेंगे। लाख आदमी हों उनमें कोई पुकारे— 'पंडित शंभुदत्त'। तो लाखों में नाम उसे खड़ा कर दे। यह नाम जो है, यह तो भगवान को बांधता है। वे उनके वशीभूत हैं, जो उनके नाम का आराधन करते हैं।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 21.11.1955,
समय सायंकाल

❑❑

दैवीसम्पद् के लक्षण

(गीता का सोलहवां अध्याय)

साधना का संगी है स्वाध्याय। स्वाध्याय करना साधना में बड़ा सहायक है। शास्त्र पाठ ज्ञान बढ़ाता है और साथ ही सिमरन में बड़ा सहारा मिलता है। वह कैसे ? ऐसे— जो पहले किये गये काम हैं, उनका भाव उतर जाता है और फिर सिमरन में बड़ी रुचि आती है।

'स्वाध्याय से इष्टदेव का महान् मिलाप होता है।'

भारतवर्ष में ही नहीं, अपितु अखिल भूमण्डल में श्रीमद्भगवद्गीता का बड़ा मान है। किसी मण्डलेश्वर का यह वाक्य बड़ी खोज वाला है कि गीता भगवान का कथन है। बड़ी बात यह है, इस बात का आदर भारतवर्ष में है। यह बोध हो जाने पर, कि ये भगवान के वाक्य हैं, तो वृत्ति जमने में आती है। अन्ततः भावना ही महत्व की बात है। वह ही किसी के वाक्यों को प्रभावी बनाती है। गीता का स्वाध्याय करते समय यह भावना होनी चाहिये कि इसका कथन करने वाला ऐसा व्यक्ति है, जिससे ऊंचा कोई और व्यक्ति नहीं है।

साधना-सत्संग में जहां और भी कथन होते हैं, वहां गीता का भी हो—ऐसा मेरा जी करता है। यह सुगम सुलभ पुस्तक है और यह माननीय भी है। कालीदास के ग्रन्थ, पुराण-वे जितने कठिन हैं, उतनी यह कठिन नहीं है। केवल यह अवश्य है कि यह एक ऊँचे विचार की पुस्तक है। इसलिये इस की समझ सुगम तभी होगी, जब भावना हो। आज यह भी सुगमता है कि अनुवाद भी प्रामाणिक व्यक्तियों के मिल जाते हैं। जैसे नलके से यमुना जल ठीक-ठाक करके दिल्ली में पहुँचाया जाता है। घर बैठे ही नल खोला और यमुना जल प्राप्त। ऐसे ही सुगमता ग्रन्थों के लिये भी प्राप्त है। पहले टीका होती थी— वह भी कठिन। पर इस समय जग सुगमता की ओर जाता है। सब को सुविधायें प्राप्त हैं, केवल प्रयत्न होना चाहिये और भावना भी। फिर यह ग्रन्थ अत्यन्त लाभजनक है और सुगम भी है। गीता में (सोलहवें अध्याय में) देव-भाव और

असुर-भाव का कथन है। तो अब यहां इस समय के जो कथन होंगे, इसमें इन्हीं का निरूपण किया जावेगा।

साहित्य वालों ने असुरों की शक्लें बनाई— लम्बे दांत, बड़े डरावने, बड़े भयानक। इसी प्रकार देवों की कल्पना कुछ इस प्रकार से की है कि देवस्थान जो हैं, वहां खाने-पकाने का झंझट नहीं। वहां तो कल्पना करते ही थाल भरे स्वादु भोजन अपने आप आने लगते हैं। पर कहना यह है कि महाराज श्रीकृष्णचन्द्र ने सोलहवें अध्याय में जो वर्णन किया, उसके अनुसार देव भी मानव रूप में हैं और असुर भी इसी भूतल पर मानव रूप में फिरते उपस्थित हैं।

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।

अभयम्

इसका चिन्ह, भय न होना, भय का अभाव, निर्भयता। मुझे एक व्यक्ति देहरादून में मिला। कहने लगा— 'अब मुझे पेन्शन मिल गई है। यह सोचा है एक कुटिया यहां बना लूं। वहां जालन्धर में मकान तो है, पर वह सीमा के पास है। वहां डर है।' वह जालन्धर का ही रहने वाला खत्री था, पर भय उसके मन में था। जिसने जालन्धर में आक्रमण करना है वह दिल्ली पर, बम्बई पर पहले ही बम डाल दे, और कोई आश्चर्य नहीं सीमा के निकट वालों पर बमबारी ही न करे। डर के मारे उसकी ऐसी कल्पना थी। भीरुपन असुर-गुण है। देव-भाव वाले तो निर्भय होते हैं। पर जो भीरु, उनको रात भर नींद नहीं आती। कुछ आवाज़ आई और दिल धड़क गया। दीवा लेकर स्त्री देखने आई तो मालूम हुआ चूहा था। पर रात भर नींद नहीं आई । ऐसे लोगों ने वीरता का, साहस का काम कभी किया नहीं होता। एक बार मित्र के पास गया। वहां छोटा-सा खेलने वाला कुत्ता था, पहरा देने वाला नहीं। मैं मित्र के पास अन्दर जा बैठा, तो वह छोटा-सा कुत्ता अन्दर नहीं जाता था। कारण यह कि कमरे में जो खाल बिछी हुई थी, वह शेर की थी। सम्भवतः आठ दस पीढ़ी में भी शेर इस कुत्ते ने न देखा हो। चिड़िया घर भी उस नगर में नहीं था। पर वह जो शताब्दियों पुरानी पीढ़ियों से भय की बात उस कुत्ते में थी, वह अन्दर न आने

का कारण थी। यह तो महात्मा गांधी ने अच्छा संस्कार डाला जिसने भय मिटाया, नहीं तो इन युगों में मानवता की कल्पना नहीं हुई। वैसे भी इतने सौ वर्ष तो कोई भी देश दास नहीं रहा। बात यह थी कि निर्भयता नहीं थी। यहां तक कि उस समय लोग लकड़ियां भी धोकर जलायें।

आत्म-भाव की कथायें यहां बहुत होती हैं। पर डर भी यहां के लोगों के हृदय में अधिक है। दूसरे देशों वाले आत्म-कथा इतनी नहीं करते हैं। वहां आत्म-कथा कम होती हैं। अच्छे प्रबल पुरुष आये, उन्होंने सभी लड़के, लड़कियों, नवयुवकों को खड़ा कर दिया– निर्भय बना दिया। अभयता– यह उत्पन्न होनी चाहिये, नहीं तो आदमी का तन चाहे कितना ही बड़ा हो, पर भारी शरीर के होते हुए भी दुर्बल है। बल कोई तन का नहीं, बल तो अन्दर का है। कीकरसिंह एक पहलवान था। मैंने पुरानी बात पटियाला की कही और देखा, कि एक दूसरे पहलवान ने जो उससे काफी हल्का था, उस (कीकर सिंह) का कंधा लगा दिया। वह पुकारे, या अली। महाराजा पटियाला ने उसको ठुड्डे मारे। मुझे कहना यह कि बल केवल तन का नहीं होता। लक्ष्मण जी का कथन है– 'हे राजन, बल तो साहस में है।' साहसी घबराता नहीं। उत्साह में सभी बल समाया है।

गांधी जी शरीर के बहुत तगड़े तो नहीं थे, पर वह कहते– 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।' वह राम-नाम का आराधन करता हुआ पाप से भी निर्भय था। पर यह क्या हुआ– 'मेरा कल्याण हो जावेगा जी ?' अरे, राम-नाम से नहीं तो फिर काहे से ? राम-नाम लेकर जिसका ऐसा विश्वास कि अब मेरा पतन कभी नहीं होगा। ऐसा मनुष्य जो है, वह देव-भाव वाला है। गीता में भगवान का वाक्य है– 'अनन्य-भाव से जो मेरा आराधन करते हैं, उनके योग-क्षेम का मैं उत्तरदायित्व लेता हूं।' ऐसी भावना लानी चाहिये। 'तू यह जान ले अर्जुन! कि मेरे भक्त का नाश नहीं होता।' यह विश्वास, यह धारणा बड़ी पक्की होनी चाहिये। ऐसी आन्तरिक दृढ़ता होनी चाहिये कि बुराई अब मेरे पास कभी नहीं आयेगी। साधक में यह बात आनी चाहिये कि हमने इस मार्ग को पाया है और यह मार्ग पाप-ताप से परित्राण देने वाला है। ऐसी धारणा वाले में फिर श्रद्धा की बेल कितनी पनपती है!

जो मार्ग से हटता है, वह भटकता है। तो जो भटकता रहता है, वह अटकता ही रहता है। सज्जनो, यह भरोसा हो कि अब उत्तरदायित्व उसका है। टिकट लेकर आदमी को भरोसा होता है कि अब मैं वहीं पहुंच जाऊँगा जहां का टिकट है। उसे उतारे कोई, तो वह उतरता नहीं। उसे डर नहीं होता कि अगले स्टेशन कोई उतार देगा। पर वह तो महाराज सिकुड़ कर बैठेगा जो बिना टिकट है। बात यह है कि जब राम-नाम का ले लिया टिकट, तो रास्ते में कोई भी उतारने वाला नहीं मिलेगा। सीधा परम-धाम का यह टिकट है। ऐसी अभयता कोई बाहर की चीज़ नहीं है, यह तो उन सभी को प्राप्त है, जिनको डराया नहीं गया। यूं तो कुत्ता भी मालिक के द्वार पर शेर होता है। पर निराली निर्भयता जो है, वह तो भगवान के नाम आराधन से आती है। 'त्रिलोकी के किसी कोने में भी कोई आदमी ऐसा नहीं, जो मेरी गति-मति को बिगाड़ सके' हनुमान जी ने कहा था–

'मेरा मार्ग है खुला, दश दिश तीनों लोक।'
'मेरे पथ को जन नहीं, सकता कोई रोक।'
'मेरी गति-मति-शक्ति को, सके न कोई टोक।।'

ऐसी निर्भयता नहीं आये तो सज्जनो! वे अभी बहुत पीछे हैं। ऐसा आदमी जिसमें निर्भयता है, वह खान-पान, द्वेष वालों से ऊपर रहता है। वह उसी के (परमेश्वर के) देवलोक में निवास करता है। ऐसी निर्भयता देवों में होती है। जहां निर्भयता है वहां देवभाव है। निर्भयता पहला देवगुण है।

अन्तःकरण की शुद्धि

कल के इस समय के कथन में यह दर्शाया गया था कि निर्भयता देवों में होती है। अगला लक्षण महाराज श्रीकृष्ण जी ने कहा–सत्त्व संशुद्धि– अन्तःकरण की शुद्धि, अन्तःकरण की निर्मलता। आदमी के अन्दर खोट रहता है। बाहर मुख कमल के समान, चन्दन की जैसी भीनी वाणी, पर हृदय में कैंची। दुरात्मा जो होते हैं, उनके मन में कुछ और होता है और वाणी में कुछ और। मन में बुरे विचार उत्पन्न न हों– देवत्व में यह पाया जाता है। दुर्वासना न पैदा होने देना-यह देवत्व है। खाली आदमी में बुराईयां आती हैं। मन को खाली न रखना, दुर्वासना पैदा न होने देने का एक अच्छा उपाय है।

किसी ने किसी वृद्ध से पूछा कि आपकी आयु कितनी है ? तो उसने वर्ष गिन कर बताये कि मैं सत्तर वर्ष का हूं। यह सुनकर उसने कहा कि तुम इतने अच्छे मालूम होते हो। भला इसका क्या कारण है कि तुम सत्तर वर्ष के दिखाई नहीं पड़ते हो ? वह बोला– कोई कारण और तो मुझे पता नहीं है। एक इतनी बात अवश्य है कि मैं मन को मैला नहीं बनाता। यह मैंने अपने पिता से सुना था कि मन को मैला नहीं बनाना। राह चलने वालों के पथ में ऊँचा-नीचा पथ भी आता है। संसार में बुरे भी आदमी मिलते, भले भी मिलते हैं। मैंने मन को मैला नहीं होने दिया– यह ही कमाई की है। फिर जो अवकाश मिलता है, उसमें भगवान का जाप किया करता हूँ। कठिनाईयां भी आई होंगी तुमको ? उसने कहा–हां, मेरी भार्या जो आई, तो उसके सम्बन्ध से, उसके बर्ताव से मैं कैसे कटुभाषी न बनता ? लेकिन यह मैंने सोच लिया कि मैंने अपने हृदय में कटुता नहीं लानी है। कभी मैंने उसको डांटा नहीं– ताड़ व तर्जना करी नहीं। मैं मन को मैला होने देता, तो ही यह अवसर आता। विवाह के पांचवे वर्ष उसने स्वयं ही कह दिया कि तुम्हारी धारणा ने मुझे झुका दिया, मेरा स्वभाव बदल दिया। मैंने कहा, यदि तुम्हारा स्वभाव बदल जाये, तो बड़ी अच्छी बात है। मैंने देखा कि वह बिलकुल बदल गई। यदि मैं दुर्वासना पैदा होने देता, मन में क्रोध लाता, तो मेरे घर का संसार और ही होता।

उसने फिर प्रश्न किया, 'जीवन में आपको और भी कठिनाई आई होगी ?' कहने लगा– मेरा भाई प्रमादी बहुत था। कारोबार में समय नहीं लगाता था। पिता जी के होते हुए तो वह ठीक चलता रहा। मैंने भी यही समझा, पिता जी ही समझायें। पिता जी के जाने के बाद उसने घर-बँटवारा करवा लिया। ज्यादा मांगा– मैंने दे दिया। तुम भाई हो, आवश्यकता हो तो यह भी ले लो। कुछ समय बीतने पर उसके बच्चों के तन पर शीतकाल में पूरे कपड़े भी न रहे। ऐसा होना स्वाभाविक ही था, संगति जो अच्छी नहीं थी। मैंने उसको कहा, मैं तेरा भाई हूं। यद्यपि बँटवारा हुआ था, पर मेरा घर जो है, वह भी आप ही का घर है। बन्धु-भाव से कहता हूं, यह कुछ कपड़े आदि ले लो। वह रो पड़ा। उसके बाद उसने मेरी निन्दा भी किसी के आगे नहीं की। कुछ दिनों के पश्चात् मेरे पास आ गया। कहने लगा– 'तेरे

मन की मधुरता ने मुझे जीत लिया है' और आज वह इतना गाढ़ बन्धु है कि दूसरा कोई उस जैसा नगर में देखने में नहीं आता।

एक और कठिनाई भी आई। अफसर कुछ अजीब आ गये। बात-बात में बुलायें। उनकी दृष्टि फिर गई। उन्हें भ्रम हो गया कि मैं चोरों के साथ मिला हुआ हूं। मैंने अपने मन में सोचा कि मैंने तो ऐसा कुछ किया नहीं। यह सोचते हैं, सोचें। जो कुछ किसी ने पूछा, मैंने साफ-साफ कह दिया। अन्त में सरकारी नीति भी यही है। एक ने हिसाब देखा, फिर दूसरे ने, फिर तीसरे ने। समय बहुत लग गया। मेरे लड़के भी कहें, मेरी पत्नी भी कहा करे, परन्तु मैंने किसी प्रकार की आवाज़ उठाने या सफाई देते फिरने की बात को नहीं अपनाया। अन्त में सरकारी रीति से सब बात साफ हो गई। दो वर्ष के बाद साख जम गई और महाराजा ने स्वयं निमंत्रित किया और बताया कि लोगों ने आपके बारे में बहुत कुछ कहा। इनक्वायरी (Enquiry) आदि हुई। उसका मुझे खेद है। पर मुझे कहना यह है कि पिता का पढ़ाया पाठ मेरे काम आया। मैंने अपने स्वभाव का ठंडापन नहीं छोड़ा, मन में मैल नहीं आने दिया और पिता के पढ़ाये पाठ से मेरे संकट, दुःखड़े आप ही आप दूर होते रहे।

मुझे कहना यह है कि अन्तःकरण की शुद्धि, अन्तःकरण की निर्मलता बड़ी बात है। यह देव-स्वभाव वालों में होती है और जो इस गुण को अपनाता है, उसमें दैवी सम्पत्ति समझी जानी चाहिये।

ज्ञान-योग में स्थिति

फिर श्रीकृष्ण जी महाराज ने तीसरा दैवी गुण कहा है– ज्ञान-योग में स्थिति। 'योग' 'वियोग' दो शब्द हैं। 'योग' शब्द अध्यात्मवाद में भगवान के साथ मिलाप के लिये उपयोग में आता है और जब 'वियोग' शब्द, तो फिर भगवान से मिलाप न रहा, तो वियोग हो गया। वैसे 'योग' शब्द का अर्थ जुड़ना और वियोग का अर्थ बिछुड़ना। तो यह जो ज्ञान-योग में स्थिति कही गयी। यह है इस प्रकार की समझ और विचार पर बल कि यह काम करने से मुझे क्या लाभ होगा ? न करने से क्या हानि होगी ? अर्थात् जो बात करना, बुद्धि-पूर्वक करना, अन्धाधुन्ध न करना, हानि-लाभ को सोच कर करना यह सब ज्ञान-योग में स्थिति में आ गया।

महात्मा गांधी ने सत्याग्रह चलाया। वे इसको समझते थे। सत्याग्रह अर्थात् सच्चा हठ। पहले युग में भी भरत ने कुटी के आगे धरने की बात कही थी। पर वह सत्य से हटाने की बात थी और भरत मान भी गये और सभी ने उन्हें समझा भी दिया। यह सत्याग्रह की बात तो ज्ञानपूर्वक होनी चाहिये। महात्मा गांधी जिसने चलाया था, उसको तो ज्ञान था। अब दुरुपयोग और मिथ्याग्रह होने लगा है। अब तो इस विचार से किया जाता है कि मिनिस्टरी गिर जाये, तो फिर हमारी पार्टी गवर्न्मेन्ट (Government) हथिया ले। यह मिथ्याग्रह की बात अपने आप से मिट जावेगी ।

सोचकर आगा-पीछा देखकर काम करना– देवों में यह बात पाई जाती है। सीता हरण के लिये जब रावण आया, तो मारीच ने उसे बहुत समझाया। उसने जो बात कही वह अन्धाधुन्ध नहीं थी, सोच-विचार कर कही गई थी। सीता ने भी अशोक-वाटिका में रावण को कहा था, 'तेरे देश में या तो सन्त हैं नहीं और हैं तो तू उनका कहना नहीं मानता।' रावण की क्रिया आवेश से पैदा हुई थी, ज्ञानपूर्वक क्रिया नहीं थी। तो फिर कितना नाश करवाया। सब बातें सोचना, विचार करना, तो ही ठीक चांदना आ जाता है।

एक आदमी बहुत उतावली से काम किया करे। उसके अधिक काम बिगड़ते भी थे। हानि भी उसने बहुत उठाई। जहां भी हुआ उसने बढ़कर बात करनी। वह साधु को मिला और छूटते ही कहा– 'मैं चाहता हूं कि साधु बन जाऊँ।' प्रार्थना की कि चेला बना लो। कहने लगा भगवा पहना दो। नगर के लोग मेरे बड़े विरोधी हैं। घर का दुःखड़ा बहुत है। मैंने ठानी है– संसार छोड़ दूं। साधु बोला–'जरा बैठ जा। भोजन कर ले, फिर सोचेंगे। अभी से तेरी बात मान लूँ, भगवा पहना दूँ, तो मैं समझता हूं कि पहले नगर के लोगों से विरोध किया और फिर तू साधुओं से लड़ेगा।' महात्मा ने, जो आश्रम में भोजन था, गरम करवाया और लड़के से कहा पीछे सोचेंगे, पहले भोजन कर लो। भूख थी, हलवा आया गरम-गरम, मुंह में डाला, जीभ जल गई– गरम जो डाला था। जीभ जलते में ऊपर को जो मुंह किया, तो कहने लगा, 'बाबा, आपकी कुटिया यह बनाई है, इसमें शहतीर जो पड़े हुए हैं, ये सीधे नहीं।' बाबा ने कहा, राज (मिस्त्री) भी तेरी तरह उतावला था। तू विचारपूर्वक काम नहीं करता। तेरी

उतावली से तेरी जीभ जली है। देख, विचारपूर्वक काम न करने के कारण ही युधिष्ठिर जैसा महान पुरुष भी बड़ा दोषी गिना जाता है। बड़ा धर्मराज माना जाता था, पर जुए पर कोई बुलाये, तो बहुत ही उतावला हो जाता। विचारपूर्वक काम न करने के कारण हानि होती है और बुद्धिपूर्वक करने से कठिनाई नहीं आती। कोई इस बात की परीक्षा करके देख सकता है। लड़ाई की चिट्ठी लिखनी हो, तो दो दिन ठहर कर लिखो, वृत्ति बदल जावेगी।

इस पर उसने महात्मा की इतनी बात मान ली कि कपड़े जो उसने रंगवा लिये थे, वे अब धुलवा लूंगा, घर वापिस आ जाऊँगा। घर में आया, किसी आदमी से रुपया लिया हुआ था और वह अब मुकदमा भी जीत गया था। अगले दिन कुड़की हो जानी थी। उसके पास गया और निवेदन किया कि आप तकाज़ा जो करते हो वह भी ठीक है, पर घर न रहा तो बाल बच्चे दुःखी होंगे। मैं एक साल में मेहनत करके कमाऊँगा और आपका पैसा लौटा दूंगा। उसकी विचारधारा में और बात की शैली में परिवर्तन देखकर उसने कहा, 'यदि तुम निश्चय दिलाते हो, तो मैं कुड़की रोक लेता हूँ। मकान हमारे पास है, उतावली तो है नहीं।'

यह उलझन सुलझा कर फिर सोचा कि मुनीम मालिक बन गया है। मुनीम की बातों से लगा कि उसने व्यापार में उलझन पैदा कर ली है। मैं प्रमादी जो रहा। मुनीम के पास गया और कहा कि मुझे तुम जो देना चाहते हो, दे दो। अब मैं किसी और व्यापार की सोच चुका हूँ। इस प्रकार बड़ी सुगमता से अन्धाधुन्ध की शैली को छोड़कर उसने विचारपूर्वक काम करना अपनाकर, व्यापार में जो उलझन आई हुई थी, उसे सुलझा लिया। फिर निश्चय किया कि पत्नी जो मायके गई हुई थी, उसको अब मना लाना चाहिये। जाकर उससे कहा, आप चलो, घर बरबाद हो रहा है। संयोगवश तीन वर्ष बाद साधु मिला और सब बातें बताईं। साधु ने कहा, 'अब बता क्या विचार है, भगवा पहनने का ?' तो कहने लगा, 'अब तो जिन्होंने पहने हुए हैं, मन ऐसा करता है कि उनके भी छुड़वा दूँ।'

ज्ञान-योग में स्थिति, सोच-विचार कर काम करे और अन्धाधुन्ध न करे, यह दैवी सम्पत्ति है।

दान

गीता के सोलहवें अध्याय से दैवी-सम्पत्ति के लक्षण वर्णन होते रहे हैं। अगला (चौथा) लक्षण– दानम्।

दान में लोग पैसा-टका ही प्रायः गिनते हैं। यह एक प्रकार की शैली चली आती है। लोग एक बात की ओर लग जाते हैं, दूसरे का निरूपण नहीं करते। 'दूसरे का उद्धार होता हो– ऐसी सब बातें दान में सम्मिलित समझनी चाहियें।' दान तीन प्रकार का वर्णन किया है–

1. ज्ञानदान 2. सुमति दान 3. सेवा दान

कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं जो दान न दे सके। धन-दान की गाथायें, वे सब अपनी जगह ठीक हैं, पर जिसके पास पैसा नहीं, पर जो विद्वान है, वह विद्या-दान दे, जिससे लोगों का भला हो। जिसको अनुभव है वह सुमति दान करे और जो कर्मी आदमी है, वह सेवा दान दे। कुछ एक देश एशिया में भी ऐसे हैं, और यूरोप में भी हैं, जिनमें धन और सेवा सरकार ने दोनों अपने हाथ में ले रखी हैं। माना, तन भी ले लिया और धन भी सरकार के हाथ में, जो मनमाने तरीके से व्यय करे। तो बात यह है कि कोई सड़क बनानी पड़े, तो लाखों लोग लग जाते, कोई न नहीं कर सकता था। यह अच्छी बात है कि नहीं, यह तो वह जाने। दोनों से देश को उन्होंने बहुत बढ़िया और सुन्दर बनाया। भारतवर्ष में भी थोड़ा इसका प्रदर्शन हुआ। टिड्डियां मारने अध्यापक जावें, ऐसे परिपत्र निकलें। अस्तु, लोग चिल्ला भी उठे। सेवा-दान मांगा। देहात के लोग, लड़के दौड़ उठे, तो टिड्डी दल को समाप्त किया। यह श्रम-दान उत्तरप्रदेश शासन और दूसरे शासनों ने भी चलाया। पिक्चरों में भी दिखाते हैं। इससे भी बड़ा लाभ होता है। जो काम आठ-दस वर्ष में हो, वह दो वर्ष में हो सकता है। लोगों ने ऐसा कम विचार किया कि सेवा में धर्म है। सेवा-दान मांगने से लोगों ने नगरों की सफाइयाँ आरम्भ की। स्वच्छ रहने की भावना आ गई।

तो मुझे कहना यह है कि इस युग में सेवा-दान का भी बड़ा महत्व है, नहीं तो लोगों ने तो यही जाना था कि आटे की गोलियां मछलियों को दे दीं, तो वही दान है। सैकड़ों सेवादार अधिक कोमलता से कुम्भ पर सेवा में जुट जाते हैं। ऐसे सेवकों का लोगों को वहां सुख पहुंचाने का बड़ा भाग है। इस

समय जातीय जीवन में सेवा का बड़ा महत्व है। कहना यह कि दान को संकुचित न कर लेना। बीमार कोई है, तो आप उसको औषधि ला कर दे देवें, तो यह सेवा-धर्म है। नहीं तो कोई कैसे वैतरणी को पार कर लेगा या इसी किनारे लुटिया डुबो देगा। तो यह बहुत थोड़ा सा जातीय कामों में सेवा-दान मैंने प्रदर्शित किया।

एक आदमी ने पण्डित जी से पूछा कि, 'महाराज, आप दान की बड़ी महिमा बताते हैं। हमारे नगर में तो इतना धन है नहीं कि हम लोगों को दे सकें।' पण्डित बोला, तू बड़ा भाग्यशाली है कि तू कमाई करता है। बहुत धन होता, तो आलसी बना पड़ा रहता। सांप भी जो धन पर बैठा रहता है, आलसी ही होता है। देख तेरे पड़ोसी भोले-भाले हैं। रात को स्कूल खोला कर। उनको कहो, नहाया करो, बाल भी कटवाया करो। कहने लगा आज तक तो किसी पण्डित ने हमें बताया नहीं कि इससे भी वैतरणी से पार हो सकना सम्भव है। उसने घण्टा डेढ़ घण्टा देना आरम्भ कर दिया। छह मास में मुहल्ला उन्होंने चमका दिया। लड़के बाल-उपदेश पढ़ने लगे और जो पहले से कुछ थोड़ा पढ़े हुये थे, वे रामायण पढ़ने लगे। वह पण्डित आया। उसने देखा कि मुहल्ला ब्राह्मणों के मुहल्ले से अच्छा है। उसकी प्रशंसा करते हुए पण्डित ने कहा कि भाई, यह जो तूने काम किया, यह उत्तम कमाई है। उसने कहा, 'महाराज आपने बताया, आपकी शिक्षा के दान का यह फल है। इस श्रम का बड़ा फल है। इसमें मेरा आत्मा एक भाव से लगा हुआ है।' पण्डित ने कहा, 'इसको विस्तृत करें।'

दमन

दान के बाद पाँचवां लक्षण दमन है। अपनी वृत्तियों को वश में रखना दमन कहलाता है। ऐसे लोग बहुत हैं, जो साँपों को वश में और शेरों को वश में करते हैं। मैंने एक साधु को देखा कि वह शेर को ललकार कर झिड़क देता। यह बातें पुरुष ही नहीं करते, लड़कियाँ भी मैंने सरकस में शेर की पीठ पर सवार होती देखीं। पर अपनी वृत्ति को वश में रखना, मन को दमन करना, यह बड़ी कठिन बात है। लोग बाहर की चीज़ों में ज्यादा जाते हैं, इन बातों की ओर कम विचार करते हैं। मनुष्य का अन्दर अच्छा हो। मनुष्य वृत्तियों को

अपने वश में रखे, यह बहुत उत्तम, बहुत श्रेष्ठ है। तो मन की वृत्तियों को मार्जित करना यह दमन है। यह बड़ा देव-भाव का गुण है। अपने मन को अच्छा रखना, यह भी देव-स्वभाव वालों का लक्षण है। मनुष्य आकार में देव भी है और असुर भी है। महाराज श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने इसी अध्याय में असुरों और देवों के चिन्ह वर्णन किये हैं।

स्वाध्याय

अगली बात, स्वाध्याय– छठा दैवी-गुण– स्वाध्याय और ग्रन्थ-पाठ यह भी दैवी-गुण है। भारतीय संस्कृति के सुन्दर फलों का स्वाद न लिया, तो भारतवर्ष में पैदा हुए का क्या लाभ? दासता में रहकर दास-वृत्ति हो गई। ज्ञान-विज्ञान भी बाहर की रीति से आना शुरु हो गया है। पढ़ोगे तो भी बाहर के साहित्य को, वह पढ़ना भी चाहिये, सार लेकर अपनी बात बनानी है। यदि दाल आप के पेट में जाकर दाल ही रहे, तो फिर उसे अस्पताल में होना चाहिये। जो हम खाते हैं, उससे शरीर में नव-निर्माण होते हैं। इसी प्रकार जो जीवित जातियां हैं, वे बाहर के ज्ञान को लेकर नये निर्माण में उसे उपयोग में लाती हैं। पर अभी तक यह बात अच्छी प्रकार आई नहीं है। अस्तु, यह भी दैव-योग से अपने आप होती जावेगी। बाहर के देशों का आचार-विचार यहां बहुत बसा हुआ है। इस कारण उसमें से जो अच्छा हो, उसे अपना कर अपने आप को स्वच्छ बनायें, उन्नत बनायें। यही अब भारत सरकार करने जा रही है। बाहर से सीखते भी हैं, पर अपनी चीज़ें भी बनाते हैं। जापान ने भी ऐसा ही किया। वह हमारे से, जर्मनी से, और अमेरिका से सीख कर हमसे बहुत सस्ती चीज़ें विदेशों में भेजने लगा।

मुझे कहना यह है कि सीखने योग्य को अपना लेना चाहिये। अब स्वाध्याय करते हुए, जो धर्म के अनुकूल होता है, उसको अपना लेना चाहिये। अंग्रेजी के ग्रन्थों में आया है, यह बड़ा ऊँचा पद है– वर्क इज़ वर्शिप (Work is Worship) काम को ही पूजा समझना। यह हमारी पांच हज़ार वर्ष पुरानी युक्ति है। चार वर्णों के कर्तव्य, यदि उन्हें व्यक्ति ठीक-ठाक पालन करे, तो इस प्रकार अपने कर्तव्य-पालन से व्यक्ति भगवान को प्राप्त होता है। अपने कर्मों से उस सर्वशक्तिमान को पूज कर लोग भगवान को पाते हैं। यह कितना उदार

विचार है, कि मनुष्य श्रीराम-नाम का पूजन भली-भाँति कर्तव्य-पालन से करे। मुझे कहना यह है कि स्वाध्याय से बोध होता है, परन्तु सद्ग्रन्थों का पाठ ही अपनाना चाहिये। उससे सात्त्विक वृत्तियाँ जगती हैं– ज्ञान होता है कर्म का, धर्म का और यह भी कि धर्म का क्या स्वरूप है? अच्छे मनुष्य बहुत कम मिलते हैं, पर ऊंची कोटि के पुरुष ग्रन्थ लिख गये हैं। ऐसे ग्रन्थों के पाठ से उच्च-वृत्ति बनती है। दान, दमन और स्वाध्याय का वर्णन आज किया गया। अगली बात कल वर्णन करूंगा। स्वाध्याय करना दैवी-सम्पत्ति का चिन्ह है।

तप आर्जवम्

कल मैंने स्वाध्याय का वर्णन किया था। भारतवर्ष में लोग तप को अधिकतर शारीरिक-तप से ही समझते हैं। पर तापस कौन है, यह गीता में से ही समझना चाहिये। सत्रहवें अध्याय में शारीरिक-तप के विषय में तो यहां तक आया है कि वे मुझे भी क्लेश देते हैं। तप तीन प्रकार का वर्णन किया है–

1. काया का तप 2. वाणी का तप 3. मन का तप

काया का तप क्या है– देव-पूजन, आराधन, गुरुजन का मान। इसमें माता-पिता भी गुरु समान। बुद्धिमान का भी पूजन, चाहे किसी भी प्रान्त का हो, किसी भी देश का हो। स्वच्छता-पवित्रता तन से, मन से, घर बाहर से, तो तप जो है– वह शुचिता। मनुष्य में सरलता हो, परन्तु सरलता– उस समय तक नहीं आती जब तक मनुष्य तपस्वी न हो, पेचीदा(कुटिल) न हो, द्विमुखी न हो। काया के तप में ब्रह्मचर्य– अपने आश्रम का पक्का रहना और अहिंसा– किसी को न सताना। यह सब काया के तप हैं। काया के ये तप जो नहीं करते, वे तापस नहीं होते।

दूसरा वाणी का तप– ऐसा वचन न बोलना जो बेचैन बनाये। सत्यवाक् बोलना। प्रार्थना और उसका प्रभाव छोटी सी पुस्तक है। उसको सामने रखते हुये 'हां, न' का पालन करना सीखें। छोटी-छोटी बातों में इस पर विवेक रहे, लपेट कर बात न की जाये। मैंने एक मित्र को कहा कि 'हाँ, न' का पालन खूब करना चाहिये। यदि कोई केवल 'हां, न' का ही पूरा पालन किया करे, तो पता चले कि इस छोटी-सी बात से जीवन में कितना परिवर्तन आया? यह बात बड़ी साधारण प्रतीत होती है, पर मित्र-मिलाप में यह बात

बहुत चलती है कि 'हाँ, न' ठीक नहीं चलाई जाती। एक बार खाना खाने से इंकार किया और फिर आग्रह करने पर खाने बैठ गया, ऐसा आचार कूट-कूट कर भरा हुआ है। तो मुझे कहना यह है कि बड़े विवेक से 'हाँ, न' जैसी साधारण बात का पालन किया जाये, तो साधक में इससे सत्य बसता है। गीता में श्रीमहाराज के मुख से वर्णन हुआ है– 'वह वचन बोलना जो प्यारा हो, सच्चा हो, यह वाणी का तप है। स्वाध्याय करना भी वाणी का तप है।' स्वाध्याय का अर्थ है स्वयं अध्ययन करना। दूसरे से पढ़वाओ तो उसका अपना स्वार्थ वर्णन करने में आ सकता है। यह दूसरा तप हुआ वाणी का और इसका थोड़ा-सा वर्णन किया गया।

फिर आता है मन का तप—मन का तप है मन को प्रसन्न रखना। बहुत मनुष्यों में यह बात है कि वे चाल डालते रहते हैं। मन को प्रसन्न रखना ही मन का तप है। दुःख-सुख, हानि-लाभ आया ही करते हैं,पर सुखिया रहना, यह तप है। मुरझाया हुआ चेहरा न हो। कैकेयी ने रामचन्द्रजी को पिता की आज्ञा बताते हुए वनवास जैसी कठोर बात कही। रामचन्द्रजी महाराज को तनिक भी दुःख न हुआ। मुखड़ा वैसे ही चांद-सा रहा। यह मन का तप—मुरझाया हुआ चेहरा न हो। आदमी चांद-सा मालूम हो। आज के युवक की तरह से नहीं कि चांद से मुखड़े पर मामूली-सी बात पर मुरझावा आ जावे।

मौनम्– बहुत बोलने वाला न हो। आत्म-निग्रह अपने हाथ में लगाम हो। भाव की शुद्धि हो। यह मनोमय तप है। जिन में यह तीन प्रकार का तप नहीं, उसके मण्डल में असुर होते हैं। इन तीन तपों से देव पहचाने जाते हैं। माया का जीवन तो संसार में सभी में आता है, पर यह बात निर्माण करने से आती है कि भला आदमी कैसे बने ? यहाँ मैंने आपके आगे यह निरूपण किया, जो श्रीमुख से श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में कहा गया है। यह जीवन बनाने की बातें हैं। यह कोई काल्पनिक नहीं हैं। इन गुणों को अपने जीवन में बसाना, यह बड़ी बात है।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।

अक्रोध

क्रोध न होना यह भी देव जीवन का चिन्ह है। क्रोध कोई काम करवाने का साधन नहीं है। तू क्यों गया ? क्यों ऐसा किया ? यह अहंकार का शब्द है, क्रोध का नहीं। इसमें थोड़े कठोर शब्द अवश्य हैं। अफसर अपने नीचे वाले के साथ मैस (Mess) में थोड़ा हँस भी लिया, पर परेड में जवाब पूछे– क्यों देर की ? ढीलापन क्यों ? मुझे कहना यह था कि यह क्रोध उस बात से भिन्न है। क्रोध मनुष्य का प्रथम शत्रु है, क्योंकि यह देह में रहता हुआ देह का नाश करता है। कई की तो मृत्यु का कारण बन जाता है, जैसे लकड़ी में आग रहती है, रगड़ते हैं तो पैदा होती है और पहले लकड़ी को ही जलाती है, फिर किसी दूसरी चीज़ को जलाने की बात आती है। माचिस पहले खुद जलती है, फिर किसी को सुलगाती है। क्रोध, जब तक क्रोध करने वाले को दग्ध न करे, उस समय तक दूसरे को आँच नहीं पहुँचा सकता। तो अक्रोध– क्रोध न करना यह दैवी सम्पत्ति है। यह देव-भाव का चिन्ह है। इस अध्याय में देवों के गुण वर्णन किये गये हैं। उनका बहुत मनन करना चाहिये। यह ही इस अध्याय के श्लोकों का तात्पर्य है।

त्याग

अगला दैवी-गुण त्याग वर्णन किया है। छोड़ना, त्याग कहलाता है। पर हम ने त्याग को केवल संन्यास समझ लिया है। एक आदमी ने दूसरे को कहा 'मैंने घर-बार सब छोड़ दिया है।' दूसरा कहने लगा तुम्हारे लड़के तो तुम्हारा बड़ा आदर करते होंगे। तुम्हारे इस संन्यास से उनको बड़ा दुःख हुआ होगा। वह बोला लड़के तो मुँह देखना भी पाप समझते थे। वे तो दुष्ट थे। फिर कहा 'घर बार छोड़ दिया, यह तो कोई बात न हुई। वह कुछ छोड़ना चाहिये था, जिस कारण वे आपका मुँह भी नहीं देखना चाहते थे। यह सोचना छोड़ना चाहिये था कि लड़के तो दुष्ट हैं। किसी कवि ने ठीक कहा है 'क्रोध न छोड़ा, लोभ न छोड़ा, राम-भजन क्यों छोड़ दिया ?' एक ब्राह्मण ने किसी साधु से पूछा, 'आप ने क्या त्याग किया ?' उसने कहा, 'मैं दुकान छोड़ आया हूँ और साधु बन गया हूँ।' वह ब्राह्मण मनोरंजन करने वाला था। बोला कि यहां

आकर जो इतना बड़ा मठ बना लिया है, यह आप ही के नाम से तो माना जाता है। वहां रह पसीना बहा कर कमाया करते थे, कमाना छोड़ यहां चढ़ावा लेना शुरु कर दिया। साधु कठोरता से बोला, 'तुम बड़े छिद्रान्वेषी हो। यह कुमति तुम में कहां से आ गई ?' वह फिर बोला तुमने क्या त्याग किया ? वहां एक पुत्र को छोड़ा और यहां बीस चेले अपना लिये। त्याग जो है, वह क्रोध का, मोह का, कटु वार्ता का है और यह त्याग दैवी-गुण का चिन्ह है।

शान्ति

अगला दैवी-गुण शान्ति, आवेश में न आना। वकील अदालतों में एक दूसरे पर बौछार कर देते हैं। दूसरा वकील डटा हुआ जबाव देता रहता है, आवेश में नहीं आता। ऊँचे स्तर के जो वकील होते हैं वही, यूरोप में कैबिनेट के मेम्बर होते हैं। वर्षों उन्होंने अभ्यास किया होता है, आवेश में नहीं आया करते। वे ही राज्यों को चलाया करते हैं। मुझे कहना यह है कि आदमी में शान्ति रहे। सांसारिक जीवन में, गरमी भी और ठण्डी पवन के थपेड़े भी होते हैं। पर जो जीना चाहता है, उसको इन्हें सहन करना चाहिये। कल जो प्रसंग होगा, उसमें जो बात सूझेगी, कहूंगा।

इस साधना-सत्संग में आये हुए सज्जनो! यह व्याख्यान जो गीता का होता आया है, आज का कथन, देवों के गुणों का वर्णन करते हुये अन्तिम कथन है। कल जो अन्तिम बात कही थी वह अक्रोध थी। शान्ति का रखना बड़ा आवश्यक है। अशान्ति से बड़े झगड़े होते हैं। बड़े काम जो दरबारों में होते हैं, वे शान्त-भाव से किये जाते हैं। वहां भी अशान्त भावना से जो काम करते हैं, वे किसी काम में सफल नहीं होते। कोई बड़े उत्तरदायित्व के काम करने लगे, तो ऐसे आदमी के आगे बाधायें आया करती हैं। वह शान्त-भाव से ही निपटाई जाया करती हैं। कितना ही कोई बुद्धि का धनी हो, गम्भीरता से काम न ले, तो सफलता को नहीं पाता। बड़े सौभाग्य की बात देश की यह है कि बाहरी और आन्तरिक समस्याओं को भी गम्भीरता से सोचते हैं। प्रायः देखने में आया करता है कि मित्र विपत्ति में फंसे, तो आदमी चाहता है, चाहे कुछ भी हो उसको निकाला जाये। काश्मीर के मामले में किस गम्भीरता से काम सुलझाया गया ? कोई किसी का शत्रु नहीं, कोई किसी का मित्र नहीं। अनुकूलता-प्रतिकूलता से मित्रता-शत्रुता होती है। शेख अब्दुल्ला बड़े मित्र, इसमें सन्देह नहीं। पर जब भारतवर्ष का प्रश्न आया, तो वे शेख जी भी कैदखाने भेज दिये गये। कोई पक्ष प्रधानमन्त्री जी ने नहीं लिया। इतना ही नहीं, एक तरुणी स्त्री, बड़े अमीर घराने की, शेख से मिलने चली। पठानकोट से ही वापस कर दी गई। वह कोई साधारण नहीं थी। उसने बंगाल में भी और सीमा प्रान्त पश्चिम पंजाब में भी गांधी जी के समय बड़ा काम किया था। जो कह दे वह प्रधानमंत्री मान लेते। ऐसे उसकी चर्चा थी। वह पत्र-व्यवहार करने लगी, तो सब अधिकार छीन लिये गये। इस बात का कोई विचार नहीं रखा गया कि उसने बहुत कष्ट उठाये। पेशावर तक जीवन घोर कष्ट में डालकर गांधी जी के साथ बड़ा काम किया। रुपये की भारी सहायता काँग्रेस को उससे मिलती थी। इस बात की उपेक्षा करके भारत का हित ध्यान में रखकर, वह एक प्रकार से सीमित क्षेत्र में कड़ी दृष्टि में रखी गई। यह गम्भीरता का विचार जिन भले आदमियों में होता है, वे ही उत्तरदायित्व सम्हालने के योग्य हुआ करते हैं। यह तो राज्यों की बात हुई।

पर पक्ष लेने की बात घरों में भी बूढ़े में आ जावे, तो वे घराने गिर जाते हैं। पुराने इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरपूर हैं। जब मित्र का विचार करके, जाति का विचार करके, निकट सम्बन्धी का विचार करके, पुत्र का विचार करके न्याय नहीं किया जाता था। नये इतिहास की भी उपमा देनी चाहिये। ऐसा मैंने सोचकर यह सब कहा। जहां शान्ति होती है, वहां निंदक, नमक-मिर्च लगाने वाला नहीं टिक पाता। एक बार रोहतक के कुछ विद्यार्थी दिल्ली में यमुना किनारे पहुँचे। एक पण्डित वहां भाषण दे रहा था। बच्चों ने पूछ लिया "महाराज, आप बहुत सुन्दर बोलते हैं, क्या मैं आपका नाम पूछ सकता हूँ ?" पण्डित ने जबाव दिया- 'महोपाध्याय श्री शान्ति स्वरूप जी'। ऐसा कथन सुन दूसरे बच्चे के भी मन में आया, पण्डित जी को नमस्कार किया और नाम पूछा। पण्डित ने कहा 'हमारा नाम है, महोपाध्याय श्री पण्डित शान्ति स्वरूप शर्मा'। तीसरे ने भी कहा, 'कोई अवज्ञा न हो तो क्या मैं भी नाम पूछ सकता हूँ ?' ब्राह्मण क्रोध में आ गया। कहने लगा– 'ठहर, अभी आता हूँ' लठिया उठाने लगा। विद्यार्थियों ने कहा 'न आइयो, हमने समझ लिया है, आपका नाम है– अग्निस्वरूप'।

निन्दक, नमक-मिर्च लगाना, ऐसा अवगुण देवों में नहीं होता। मौन रहना, बहुत न बोलना, बोलने से पहले विचार करना, फिर उसको ज़रा मुँह में गुंजाये, फिर अपने मुँह में डाली बात मीठी लगे तो बाहर निकाले। यह शान्त-भाव से ही हो सकता है। तो शान्ति यह दैवी-गुण है।

दया भूतेषु

दया एक बहुत अच्छा गुण है। दैवी सम्पत्ति है। पर लोगों ने इसे साम्प्रदायिक कूजे में बन्द कर रखा है। कबीर साहिब काशी के बाज़ार में एक आदमी से मिले। उसने झुक कर नमस्कार किया, कहा— महाराज आपकी कृपा से बाल-बच्चे भी सभी आनन्द से हैं। मैं एक माता जी के पास गया। कपड़ा माँगा। वह युग ऐसा था, लोगों के पास पैसा कम हुआ करता था। कबीर ने पूछा, 'माता जी ने आपको क्या दिया ? उसने कहा, 'मेरा जाल खराब था, उन्होंने मुझे सूत दे दिया। जाल की मरम्मत की। अब बड़ी तो क्या, छोटी मछली भी जाल से नहीं निकल पाती।' तो लोग कहें, पापी नरक पड़े नहीं, धर्मी नरक पड़े। दया तो अन्दर से उपजती है। एक पुरानी बात—माण्डू का रहने वाला एक बहली वाला ब्राह्मण था। कुछ आर्य-समाजियों के साथ मैं उसकी बहली में था। वह आर्य-समाजियों की निन्दा करे कि उन्होंने हरिजनों को सिर पर चढ़ा लिया है। उनका दिमाग खराब कर दिया है। अचानक बैल की पूँछ की ओर मेरी दृष्टि पड़ी। ब्राह्मण की मार के निशान से बैल की पूँछ पर रक्त दिखाई पड़ा। मैंने कहा, वह तो सूखे चाम को कूटते हैं। सूखा चाम तो लकड़ी के समान है। तुम तो जीवित चाम को कूटते हो। छुआ-छात सब रिवाज़ है न। अब जाट के सामने हरिजन बैठता है। कोई युग था, राँगड़ के सामने जाट भी बैठता डरता। तो बात तो खराब थी। एक ने साधु से कहा, हम ने एक साँड छोड़ दिया है। हम जीवों को छोड़ा करते हैं। इसमें क्या दया भाव ? उस बछड़े को जहां जाये, लाठी पड़ती। इसमें क्या दया हुई ? उसका कैसे गुजारा होता होगा ? विदेशों में भी साँड हैं, पर वे इस प्रकार छोड़ते नहीं। वे तो खिलाते, पिलाते, बांध कर रखते। तो दया दैवी-गुण है। प्रजापति के उपदेश में भी इस गुण का वर्णन किया गया है।

अलोलुपता

अगला दैवी-गुण अलोलुपता— लालची न होना। यह दैवी-गुण है। अधिक खाना यह लालच है। मेरठ की एक बारात में सभी को अतिसार हो गया, बहुत जो खाया था।

गोभी का फूल लिया और अदरक की गाँठ भी उठा ली, यह लालच है। दूध अच्छे भाव पर बिकता हो, फिर भी उसमें पानी मिलायें, यह भी लालच है। मोटा दृष्टान्त यह समझो कि एक पढ़कर प्रथम रहना चाहता है, दूसरा कापी चुराकर या नकल मारकर। एक तो भूख को मिटाने के लिये खाये और दूसरा स्वाद के लिये। साधना-सत्संग में यह बात मैंने इसलिये वर्णन की कि साधकों को अपने में विशेषता लानी चाहिये— लेन-देन में, व्यवहार आदि में। मिलावट तो मनुष्य की जीवनी पर व्यापार करना है। यह लालच की बात देवों में नहीं हुआ करती।

मार्दवम्

कोमलता यह दैवी-गुण है। पिछली शताब्दी की बात है, कुरुक्षेत्र के इलाके में जा रहा था। कई और साधु भी साथ थे। मैंने जगह का नाम पूछा। नाम बता तो दिया, पर पहले कड़ा शब्द बोला, तेरे माथे की फूट रही सै ? क्षेत्र का नाम है नरदक। अन्ततः लड़ाई जो इतनी हुई, तो नरदक ही हो जाना था न, यह हम ने समझा। सनातन-धर्म कहता है, यदि कोई घर में आये—तो पहले आँखें और मन उसकी ओर, फिर मधुर वाक्य आइये, बैठिये—यह है सनातन-रीति। रामचन्द्र जी की माता ने एक बार भी नहीं कहा कि तू वन मत जा। रोकर यह बार-बार कहा, 'मेरे तन में विरह की आग लगी है। मैं तेरे साथ चलूँगी।' रामचन्द्र जी महाराज ने सनातन-धर्म का संकेत देते हुये कहा, 'हे मैया, तेरा और मेरा सनातन धर्म है कि पत्नी, पति को छोड़कर पुत्र के साथ नहीं जाया करती।' बर्ताव में कोमलता रहनी चाहिये। दूध में जब उबाल आता है, तो वह बाहर आता है, तो इस से दूध की भी हानि होती है।

अचापलम्

देव-भाव वाला जो मनुष्य है, उसमें चपलता नहीं होनी चाहिये। बिजली का प्रकाश-चपला, चमकी और बन्द। अभी इधर फिर उधर– यह चपलता कहलाती है। देवों में यह नहीं होती। लाज-शर्म बड़ी भारी चीज़ है। निर्लज्ज हो जाना असुर-भाव है। बहुत-सा जग बुराई से केवल इसलिये बचा रहता है कि उनको अपनी लाज का विचार होता है।

तेजःक्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।।

तेज

एक आदमी कोठरी से निकला, चेहरा उतरा हुआ। चेहरा उतरा हुआ क्यों हो ? तेज होना चाहिये, यह दैवी-चिन्ह है।

क्षमा

सहनशीलता– सहनशीलता होनी चाहिये। दूसरे की वृद्धि देखकर कम लोग प्रसन्न होते हैं। मानव-जगत में दौड़ की जो होड़ हुई, उससे सहनशीलता बहुत कम हो जाती है।

भारत सरकार अभी कोई बड़े हथियार नहीं बना रही है। परमाणु का अनुसन्धान (Research) भी शान्ति के लिये हो रहा है। फिर भी बहुत से लोग और देश इसको सहन नहीं करते। सूक्ष्म बात यह है कि दूसरे की बात को सहन करना, शीत-उष्ण को सहन करना, ऊँच-नीच को पार करके लक्ष्य पर पहुँचना, यह सब क्षमा में आ गये। यह दैवी-गुण है। कभी समय मिला तो आसुरी-भाव का भी वर्णन कर दिया जावेगा।

सज्जनो! मैंने आपके आगे इस समय के प्रवचन में गीता के आधार पर दैवी-गुणों का वर्णन किया। मेरा तात्पर्य यही है कि ये बड़े मार्मिक हैं। इनको पढ़ने की प्रवृत्ति होनी चाहिये। इनको पढ़कर अपनी सम्पत्ति को जाँचना चाहिये। जो परम्परा से चली आती है, उसको देखना और उसका पालन करना और बन पड़े तो उसका प्रचार करना, ऐसी आशा मैं करता हूँ। यह

सत्संग अब समाप्त होता है। आप बड़े भाव-चाव से बातें सुनते रहे हैं। यह आपकी अपनी शोभा है और यह ही किसी को मधुर बनाती है, ऐसा मैंने समझा है। जो त्रुटि है– वह तो मेरी है, पर सौन्दर्य जो है, वह गीता के कमल का है। तेरी वस्तु तुझे समर्पण।



देव और असुर

गीता में देव और असुर क्या होते हैं ? इसका वर्णन किया गया है। कई ग्रन्थों में तो अलौकिक बातों का ही वर्णन किया गया है। ऐसी बातें जो इस देश में नहीं, इस युग में अथवा इस संसार में नहीं, परन्तु ऐसे युग की बातें हैं, उन देवों के विषय में, जो कि आकाश पर रहते हैं और परमाणु पर चलते हैं। हिन्दू साहित्य तो एक विशाल सागर है।

देव और असुर अलौकिक भी हैं और लौकिक भी। हमें सर्वप्रथम इस युग को देखना चाहिये। यहां देवों को देखना चाहिये, मानव जगत् का राज्य देखना चाहिये। भगवद्गीता कोई भी अलौकिक बात नहीं कहती। इस में सभी लौकिक बातें वर्णन की हुई हैं। मानव जगत् कैसा है ? देवों के क्या चिन्ह होते हैं ? यह सभी बातें भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज ने भगवद्गीता में वर्णन की हैं। यह सारी पृथ्वी, यह सारा विश्व एक लट्टू की भाँति लटक रहा है और वह भी बिना किसी आधार के, भगवान की शक्ति से ही लटक रहा है। यह इस प्रकार निराश्रय लटक रहा है और इसका सम्बन्ध दूसरे युग के साथ है। मान लो ऐसा लट्टू जो किसी कमरे में छत और फर्श के बीच बिना किसी सहारे या बांधने के लटक रहा हो। ऐसे जगत् के भीतर, जो देव मनुष्य का स्वरूप है, उसका पहला परिचय–चिन्ह, निर्भय होना है। निर्भयता में बड़ा बल है। भय प्राणी को नीचा करता है। जो डरता है, वह झूठा भी होगा, धोखा भी देगा और चाल भी चलेगा। डरने वाले साधारणतः उलझनी होते हैं। ठीक ऐसे जैसे बिल्ली, खरगोश और गीदड़ भीरु होने के कारण कई चालें चलते हैं और भय खाते हैं। किन्तु दूसरी ओर शेर हैं, हाथी हैं, जो कि बिल्कुल निर्भय हैं और अपनी मस्त चाल चलते हैं। जो डरते हैं वे मानव पद से नीचे ही रहने वाले होते हैं। निर्भय जातियों में दैवत् गुण होता है, आत्म-भीरुता नहीं होती। उनमें परिवार का डर नहीं होता। सबसे बड़ा गुण निर्भयता ही है। किन्तु इस युग में कई लोगों के मन में भय खूब बसा हुआ है।

एक स्त्री बड़ी ज्ञानचर्चा करती थी, खूब पाठ किया करती थी। रात को सोते समय गहनों का डिब्बा अपने सिरहाने के पास रखा करती थी। डिब्बा भी इस प्रकार से रखती थी कि जब सोते समय उसका कभी हाथ भी हिले तो उस डिब्बे पर अवश्य लगे, ताकि उसे सोते हुए भी ध्यान रहे कि वह डिब्बा सुरक्षित है। उसकी पुत्रवधू पढ़ी-लिखी थी। एक दिन उसके कमरे में रात को बिल्ली आ गई। दीवे की लौ मध्यम थी, बिल्ली ने कुछ खटका कर दिया। वह स्त्री डर गई और डर से अकस्मात् उसका हाथ गहनों के डिब्बे पर नहीं लगा। उसका कलेजा कांप गया और जोर से चीख मारी। आंगन में लेट गई। चोर-चोर कहने लगी। पुत्रवधू भागी-भागी कमरे में आई और अपनी सास की विचित्र मारधाड़ की अवस्था देखी। द्वार भी संयोग से खुला था। उसने कहा, 'यहां तो कोई चोर नहीं, यहाँ तो केवल बिल्ली है। आप उससे भी डर गईं ?' सास ने कहा, 'वास्तव में गहनों के डिब्बे को मेरा हाथ नहीं लगा था, इसलिये मैं समझी कि खटका चोर का हुआ है। दरवाजा खुला है और वह डिब्बा ले गया है।' पुत्रवधू ने कहा, 'माता जी, आप ग्रन्थ अवश्य पढ़ती हैं; किन्तु आपको अभी तक आत्मज्ञान नहीं हुआ।' सास को बहू की बात बहुत अखरी। कहने लगी, 'बड़ी आई है मुझे ज्ञान सिखाने वाली। यदि तेरे गहने जायें तो तुझे पता चले। बड़े परिश्रम से ये खरीदे गये हैं।' बहू वहां से चली गई। एक दिन सास ने बहू की परीक्षा लेनी चाही। उसके गहनों का डिब्बा अल्मारी में से रात को छिप कर निकाल लिया और किसी दूसरे स्थान पर अपने पास छिपा लिया। वधू जब प्रातःकाल उठी, तो उसने अल्मारी में से डिब्बा गुम पाया। किन्तु वह घबराई नहीं। चीख या पुकार नहीं की। चुपके से ढूंढ़ा भी, पर किसी को बताया नहीं। वह चुप रही। सास को उसी समय नहीं बताया। यह विचार कर कि सब ससुराल की ओर से मिले हुये गहने थे और यह भी सोचा कि सुन कर सास का न जाने क्या हाल हो जायेगा ? निश्चिन्त अपना काम करने लगी। सास भी मन में चकित थी कि इसने अभी तक पूछा भी नहीं। जब सभी दोपहर का खाना खा चुके, तो बहू ने बड़ी नम्रता से सास से कहा कि रात से गहनों का डिब्बा गुम है। सास बड़े आश्चर्य से बोली कि इतनी बड़ी हानि हो गई और माथे पर जरा भी बल नहीं। बहू ने कहा, 'चिन्ता करने से क्या बनता है ? जो

होना था हो गया। भगवान जो करता है अच्छा ही करता है। यदि गहने न भी पहने तो कौन सा पहाड़ टूट पड़ेगा? मैं ऐसे भी खुशी-खुशी ही रहूंगी'। सास बड़ी चकित हुई और अपनी बहू की वीरता को मान गई। उठी और उसके छिपाये हुए गहने दे दिये। कहने लगी कि 'मैंने तो तेरी परीक्षा ली थी। सचमुच तुझ में निडरता है। तुझ में आत्म-ज्ञान है, परनिर्भरता नहीं।' यह निर्भयता का बड़ा बल है। इस प्रकार की बातें कहने से, जिसमें निश्चय न हो, कोई भी लाभ प्राप्त नहीं होता। साथ-साथ मनन भी होना चाहिये। देव पूर्णतः निर्भय होते हैं। जो इस आत्म-ज्ञान को मनन करता है, हरि यश वर्णन करता है, उसमें निर्भयता आ जाती है।

लोग आज भी यही कहते हैं कि अंग्रेज का काल अच्छा था। राज्य अच्छा था। अपने राज्य को कोसते हैं। ठीक बात यह है कि राज्य मिलने के साथ-साथ लोगों के मन नहीं बदले। उनमें परिवर्तन नहीं आया। दुर्बल जातियों में अवगुण ही अवगुण होते हैं। जो निर्भय जातियां हैं, उनमें अधिक गुण होते हैं।

यदि कोई रोटी खाता हुआ भी दुर्बल रहे, तो यही समझना चाहिये कि उस पर खाया हुआ भोजन प्रभाव नहीं करता। उसे भोजन लगा नहीं। इसी प्रकार यदि सत्संग में आने से मन में भय बना रहे, तो यही समझना चाहिये कि आत्मा को निश्चय नहीं हुआ और सत्संग लगा नहीं।



मन की चंचलता व उसका समाधान

भगवान श्रीकृष्ण से अर्जुन ने कहा कि महाराज! यह मन बड़ा ही दुष्ट है। यह भजन में नहीं लगने देता। महाराज ने कहा– यह सत्य है, लेकिन इसको बस में करने का भी उपाय है। यह जो कामनायें पैदा होती हैं, जैसे कि मान, बड़ाई, दौलत, संसारी वस्तुयें तथा महत्वाकांक्षायें, जब इन कामनाओं में मनुष्य सफल नहीं होता, तब वह पाप करता है। इस कामना से ही वैर पैदा होता है और पाप का आचरण करता है। हे अर्जुन! इन कामनाओं का त्याग करना होगा।

काम सबसे बड़ा वैरी है। ज्ञानियों का नित्य वैरी है। इसने आत्मा की चेतन ज्योति को ऐसे घेरा हुआ है, जैसे गर्भ में झिल्ली से बच्चा, धुएं से अग्नि ढकी रहती है। मोह, मदिरा की अवस्था है, यह आत्मिक ज्ञान को इन्द्रियों में बैठकर फंसाये रहता है। काम, मोह बड़े शत्रु हैं। इन्द्रियों को राग-रहित होना चाहिये। इसलिये इन्द्रियों को संयम में करके इस काम पापी को मार। मोह आदि यह ज्ञान-विज्ञान के नाश करने वाले हैं। अपने आपका बोध होना चाहिये। इसे मेला देखने में भूल जाना ठीक नहीं है। अपने को पहचानो। इस स्थूल शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियों से आत्म-प्रकाश अधिक बलवान है। इन्द्रियों से मन अधिक बलवान है।

मन यदि दृढ़ न हो तो इन्द्रियां इसको बस में कर लेती हैं। मन से प्रबल बुद्धि है। विवेक से इन्द्रियाँ संयम में आती हैं। भ्रांतियाँ इन्द्रियों में स्फुरित होती हैं। बुद्धि से भी परे उसे प्रकाशित करने वाला आत्मदेव है। तू रथ का संचालक है, बलवान है। अपने आपसे, अपने आपको थाम कर कामना को

मार। संयम का मार्ग बहुत उत्तम है। मनुष्य को शरीर का शासक समझें, पाप का बीज वहाँ अंकुरित नहीं हो पाता।

वेदों और शास्त्रों का सार गीता में है। यह उपनिषद आदि ग्रन्थों से स्पष्ट है। इसमें बहुत प्रकार के योगों का वर्णन है।

मनुष्य में बनावटी भूख बहुत है। उसकी पूर्ति में मनुष्य कुछ भी पाप कर सकता है। आस्तिक-भाव की कमी है। मनोविज्ञान तो मन तक सीमित है। ग्रह नक्षत्रों को देखते हुए ऐसा मालूम पड़ता है कि इनका कोई नियंत्रक है। पल-विपल की चाल में भी अंतर नहीं है। ये नियम मानव-कृत नहीं हैं। ईश्वर निराला है।

यह सब कुछ जाना, किन्तु अपने आपको न जाना, तो क्या किया? विज्ञान बहुत बढ़ गया है, किन्तु इसमें आत्मा का ज्ञान नहीं कराया जाता। अध्यात्मवाद में अपने आपको जानने की बात बहुत ऊँची है। महाराज श्रीकृष्ण ने संयम द्वारा मन वश में लाने को सुझाया है।

परमात्मा नाम-रूप से परे है। ज्योति, सूर्य, प्रकाश, स्वरूप आदि में ब्रह्म प्रकट होता है। कृष्ण, राम, नानक आदि का स्वरूप आराध्य मानने पर भगवान का संकल्प तद्रूप होकर आता है।

आनन्द और शान्ति की प्रतीति भी ब्रह्म संस्पर्श का द्योतक है। हमारे पुराने पूर्वजों ने साक्षी दी है। कहाँ हूँ, कैसा हूँ, यह जानने से लय अवस्था ऊँची है। ज्ञानी से ज्ञान सीखो। गीता में कल्पना नहीं है, मतवाद नहीं है। सत्य का मनन, चिन्तन एवं पाठ करना चाहिये। गीता आदि ग्रन्थों का अध्ययन कल्याणकारी है।

ज्ञान जो कर्म में परिणित हो सके, वही ठीक है। पूँजी वही ठीक है, जो काम में लाई जावे। भक्ति-भाव से गाई तरंगें आकाश में व्याप्त होकर हज़ार मील दूर पर भी दूरस्थ व्यक्तियों को प्रभावित करती हैं। वही भक्त अच्छा है, जो मातृ, भ्रातृ, पितृ, बन्धु-बान्धव में प्रिय हो। अच्छा आदमी फूल की तरह हर जगह अच्छाई का परिचय देवे। त्याग से तात्पर्य है बदला न

चाहना। फल त्याग, न कि कर्म त्याग। राम इच्छा में रहना। आत्मसमर्पण-पूर्वक भक्ति करना सुन्दर है। कोई भी लौकिक कार्य त्याग बिना बनता नहीं। मनुष्यों को त्याग करना चाहिये। यज्ञ, दान, तप आदि कर्म त्याज्य नहीं हैं। केवल अग्नि-यज्ञ ही नहीं, वरन् अन्य सद्कर्म, साधना भी यज्ञ हैं। जैसे वाणी में सत्यता व शिष्टता का साधन तप है, कर्तव्य कर्म करना भी तप है। कर्तव्य कर्म छोड़ना नहीं चाहिये। भगवान श्रीकृष्ण ने अपना मत देते हुए कहा कि मेरा मत सुन– 'हे श्रेष्ठ! यज्ञ, दान, तप आदि कर्तव्य कर्म त्याज्य नहीं हैं। कर्म करना चाहिये, फिर चाहे कोई ज्ञानी ही क्यों न हो।' गंगा की गति में अवरोध हो जाने पर, खारा समुद्र बन जाता है। अतः मनुष्य में जब तक कर्म है, वह ठीक है, अन्यथा वह पवित्र नहीं रहता है। मूलतः बदले की भावना से सचेत होकर कर्म करना चाहिये।

पतंजलि ने कहा है, 'इस लोक तथा स्वर्गलोक के सुखों की भी कामना त्याग कर आराधना करनी चाहिये, भक्त तो भक्ति-भाव माँगता है।'

कमल-पत्र बन कर जगत में रहो। अनासक्त होकर संसार में सब कर्म करता हुआ, जब राम-नाम आराधन में बैठे, तो सब भूल जाये।

भक्ति-धर्म में वैराग्य सहज में प्राप्त हो जाता है। वैरागी के पहले तो थोड़े चेले होते हैं, फिर ठाट-वाट जमा कर लेते हैं। 'अनुरागे वैराग्यम्'– आस्तिक को नास्तिक से वैराग्य हो जाता है। जिस नवयुवक को पत्नी से प्रेम होता है, फिर उसे अन्य स्त्रियों से वैराग्य सहज में हो जाता है। अनुराग में वैराग्य है। कर्म में ही त्याग है। विषयानन्द में ब्रह्मानन्द है। कीर्तन कर्ण का विषयानन्द होता है, किन्तु भक्ति मार्ग में ब्रह्मानन्द देता है। नाम का जप भी एक प्रकार से विषयानन्द है। रूप भी अच्छे-अच्छे देखते हैं।

प्रकृति में सौन्दर्य के दर्शन करो। जगत इन्द्रजाल है। जगत में राम-लीला देखना शुरू करो। भगवान इन चीज़ों में प्रकट हुआ है। भगवान से इतना अनुराग हो जाये कि अन्य अनुराग फीके पड़ जायें, तो समझो बड़ी बात है। खाना, पीना, रहना आदि नहीं छोड़ना है, बल्कि क्रोध, अभिमान,

आलस्य, अहंकार आदि को छोड़ना है। नियत कर्म का त्याग नहीं करना है। आसक्ति और फल का त्याग करो। प्रातःकाल गीता में से मोहन-भोग औषधि रूप में लो, तो दिन भर चित्त प्रसन्न रहेगा। डबल रोटी, बिस्कुट, मिठाई तो बासी होती हैं। सुबह-सुबह श्लोक का पाठ करना, दिन भर के गीता पाठ से उत्तम है।

साधना-सत्संग ग्वालियर,
दिनांक 5-8.11.59
अपराह्न 4.00 बजे

□□

अज्ञान ही पाप का मूल है

भगवान ने अर्जुन से कहा कि हे परन्तप! तुम कितने ही पाप से परिलक्षित क्यों न हो, किन्तु ज्ञान के प्रकाश से तुम प्रकाशमय हो जाओगे। पाप कोई रूढ़िगत बात नहीं है। पुरखों के पाप से संतति पाप-रूपा नहीं होती। पाप वही होता है, जो आत्मा को पतन की ओर ले जावे। यह अंधविश्वास का रूप नहीं है। पाप वंश परम्परागत नहीं चलता। यह बात नहीं है– चूँकि मनुष्य के पूर्वज पापी थे, अतः संतति पापी हुई। गीता ने कितनी बड़ी बात कही है– 'पाप कितना ही बड़ा हो, प्रकाशरूप ज्ञान से तिरोहित हो जावेगा।' अंधकार, अज्ञान पाप की ओर अग्रसर करते हैं। जातिद्रोही, अवज्ञावान, द्वेषी इत्यादि सभी के मूल में अज्ञान है। अज्ञान ही पाप का मूल है। अविद्या ही पाप की जननी है।

अज्ञान अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे– 1. स्वगत 2. परगत और 3.कर्मगत। जीव स्वयं अपने को भूला हुआ है कि मैं क्या हूँ ? स्वयं अपने अज्ञान में रहने वाला अज्ञानी कुछ भी कार्य कर सकता है। बेचारा जानता ही नहीं कि कर्तव्याकर्तव्य क्या हैं ? वह तो स्वतः बौराया हुआ होता है। स्वयं के स्वरूप से विक्षिप्त यह पुरुष तो करुणा और सहानुभूति का पात्र है। आकाश, तारे आदि जानते हुए भी सभी अपने आपको भूले हुए हैं। स्वगत अज्ञान से स्वतः लिपटे हैं। मनुष्य को स्वज्ञान महसूस ही नहीं होता। वह इसके मूल्य को न जानकर बाह्य ज्ञान को ही मूल्य देता है। यह स्वयं का अज्ञान ऊपर से बड़ा आकर्षक लगता है, किन्तु यह यदि बिगड़ जाये, तो अत्यन्त जहरीला भी है। हत्या और अपराध से यह अज्ञान बचाता नहीं है। अपने सुख उपभोग में यदि विघ्न आया तो फिर सभी प्रयत्न अपना लेने में भी नहीं चूकता। अपने वैभव को कायम रखने के लिये वर्तमान युग में मनुष्य कुछ भी कर सकता है। सामूहिक हत्याकाण्ड भी समाज और राष्ट्रहित के नाम पर कर दिये जावेंगे। स्वगत अज्ञान से ही भविष्य के जघन्य और

कुत्सित पापों की सृष्टि होती है। ऐसा मनुष्य आत्मा से भटक कर, दया, करुणा से दूर, अपना ही अस्तित्व कायम रखने का प्रयत्न करेगा। जानवर भी किसी की परवाह नहीं करता। आत्मा का अनन्य रूप-चिन्तन ही स्वगत अज्ञान की औषधि है। आत्म-अज्ञान के कारण ही समस्त दोष स्वतः एकत्रित हो जाते हैं। आत्मा का चिन्तन करना ही पाप की जड़ पर कुठाराघात करना है। स्वगत अज्ञान आत्मज्ञान से ही दूर होता है।

इसके अनेक प्रकार हैं— श्रवण, चिन्तन, मनन। आत्म-ज्ञान से युक्त पुरुष, आत्मा की आवाज़ के विरुद्ध कभी नहीं जाता। आत्मा की आज्ञा की अवज्ञा करना, जिसने निश्चय किया, उसने तो समझो सभी जघन्य पापों को कर डाला। यह महर्षियों का वाक्य है। स्वअज्ञान ही वह अवज्ञा है, जो आत्मज्ञान को प्राकृत ज्ञान बना देता है। हमने इन ज्ञानेन्द्रियों के अन्दर आत्मा को खो दिया है। हम इन्द्रियों को गिनते हैं, मगर सूत्रधार को भूले रहते हैं। अब तो कोई चोट देवे, तो यह खोया हुआ रत्न मिल जाये, प्रकाशहीन व्यक्ति तो ठोकर खायेगा ही। बड़े-बड़े विद्वान भी कभी पाप जैसा कार्य कर जाते हैं। मनोविज्ञान तक ही हम सीमित रह जाते हैं। आत्म-विचार से हम सदैव दूर रह जाते हैं। श्रीभगवान ने कहा है कि हे अर्जुन! ज्ञान के समान पावनकारी और कोई साधन नहीं है, ज्ञान ही पवित्रता का स्रोत है। आत्मज्ञान से रहित मनुष्य कभी शुद्ध नहीं होता। बाह्य उपचार व्यर्थ होता है। देखो चेतन व्यक्ति ही जागता है, मृत नहीं। तुम अपने चेतन से ही जागोगे, बाह्य उपचार से तुम कुछ प्राप्त नहीं कर सकते। तुम स्वयं जागो। यह युक्ति से समझी जाने वाली बात नहीं है, यह तो तुम्हें स्वयं होगी। दिये से दिया नहीं देखा जाता, वे तो दोनों प्रज्ज्वलित हैं। आत्मा को जानने के लिये मनन और चिन्तन करो। अन्य बाह्य क्रियाओं से तुम नहीं चेत सकते। देखो आत्मज्ञान न होना बड़ी हानि है। विदेश में जाकर कमाई न करी, तो यात्रा व्यर्थ हो जायेगी। एक दिन, अज्ञान में आत्मा रो पड़ेगा। पापों की सर्वमूल जड़ अज्ञान ही है। आत्मा के पतन से पुत्रत्व, पैतृत्व व मातृत्व आदि सभी का पतन हो जाता है। देखो आत्म-तत्त्व ही परम जानने योग्य वस्तु है।

कर्म का प्रचार पाप से त्राण पाने के लिये होता है। सब धर्मों की प्रवृत्ति

यह है कि मनुष्य पाप से हटकर ऊँची वृत्ति की ओर जाये। सभी धर्म सदा से पाप की निन्दा व उससे घृणा करते आये हैं। पाप का मूल अज्ञान बताया है। जितने भी घोर घृणित कार्य होते हैं, सभी का मूल यही है। अज्ञान में रहते हुये मनुष्य जानता है कि मैं यहां ही सब सुख प्राप्त कर लूँगा। परलोक या आस्तिक भावना का तो उसे ज्ञान ही नहीं। आज उन्नत, सूक्ष्मदर्शी और बुद्धि के इतने ऊँचे स्तर पर जाने वाला मनुष्य हुआ है, तो साथ ही मनुष्य इतना पातकी भी कदाचित ही हुआ होगा। यदि एक ओर वह इतना उन्नत है, तो दूसरा पक्ष इतना निम्न है।

यह तो संस्कृति का प्रभाव है, कि भारत में इतनी जल्दी जनतंत्र का निर्माण कर लिया, अन्यथा इसी कार्य के लिये लाखों आदमियों को मौत के घाट उतारना पड़ता। यहां हमें लोहे और कँटीले तारों की दीवारें खड़ी नहीं करनी पड़ीं। राज्य सदा अन्दर से ही विकसित हुआ करता है। शान्ति तो यहां मूल में बसी हुई थी। प्रथमतः डोडी, फिर कली और तब फूल बना करता है। किन्तु भारत की तो बात ही और है। बिना रक्तपात के इतने बड़े जनतंत्र का निर्माण, वस्तुतः संसार के इतिहास में अद्वितीय है। मानव के दोनों ही पक्ष आज के वातावरण में बहुत ही आश्चर्यजनक हैं।

पाप की प्रवृत्ति अज्ञान से ही होती है। जातिगत अज्ञान, समाजगत अज्ञान तथा देशगत अज्ञान जब तक दूर न हो, तब तक सच्ची उन्नति नहीं हो सकती। ठोकर से बचने के लिये दीपक की आवश्यकता होती है। पाप का युग कहकर कलयुग को दोष मत दो। यह तो तुम्हारा अज्ञान है। तुम्हारी रूढ़िवादिता है, जो तुम्हें यों बनाये हुए है। लौकिक ज्ञान पाप के निरोध में सहायक नहीं होता। लौकिक ज्ञानी भी पापी होते हैं। युद्ध से, पापों से घबराओ नहीं। उपनिषद् में स्पष्ट कहा है कि मनुष्य में, 'मैं बना रहूँ' यह प्रवृत्ति है। संस्कृति का मोह आदि मनुष्यों को कभी भी युद्ध करके सर्वथा नष्ट नहीं होने देगा।

वर्तमान में, धर्म में अरुचि उत्पन्न होने का कारण यह है कि धर्म, ज्ञान के विपक्ष में खड़ा हो गया है। किन्तु भारत में ऐसा नहीं हुआ। यौक्तिक बात करने वालों से भी यहां भारत में सद्व्यवहार किया गया। ज्ञान, विज्ञान और धर्म में

भारत में बड़ी उदारता रही है। आज जो अस्थिरता है, उसका कारण यह है कि पश्चिमी विचार यहां आ रहे हैं। ये पश्चिमी विचार केवल सैद्धान्तिक ही हैं, जिन पूर्वजों ने वे विचार चलाये थे, उनके परिणाम भी उन्होंने देखे थे, यह निश्चित नहीं है। पश्चिमी देशों में मानी हुई बातों को धर्म कहते हैं और यह भी सैकड़ों, हज़ारों वर्ष पहले की बातों को आज धर्म माना जा रहा है। पूर्वजों के पापों की गठरी अगली संतति पर भी लगेगी, अगर इस पर श्रद्धा नहीं की अथवा उनके इन विचारों को नहीं माना, तो अधार्मिक होगा। कयामत के दिन जब न्याय होगा, तब फरिश्ता तुम्हें बचा लेगा, यह सोचना धर्म है, किन्तु देखा जाये तो वैज्ञानिक मत में इसका कोई मूल्य नहीं है। मत, मानी हुई बातों को कहते हैं, किन्तु धर्म आचार होता है। मत को धर्म नहीं कहते। 'आचारः परमोधर्मः' आचार ही परम धर्म है। मत को, मानी हुई बात को सम्प्रदाय कहते हैं। 'अहिंसा परमोधर्मः' हिंसा का समर्थन नहीं है, उसे परम धर्म नहीं कहा जा सकेगा। यह धर्म की अनेक बातों में से एक है। परम धर्म तो आचार है। अगर विश्वास नहीं है तो आचार का क्या मूल्य है? मानना तो अंधेरे में वाण चलाना है, चाहे वह लगे अथवा नहीं। मत सम्प्रदाय कहलाता है, किन्तु उसे धर्म न मानकर हम उसे, उस काल की उत्पत्ति कहते हैं। उस समय की प्रवृत्ति को सम्प्रदाय कहते हैं, धर्म नहीं। भगवान राम ने वाल्मीकीय रामायण में कहा कि बड़ों की बात मानना धर्म है। कथन राजा का मानना ही चाहिये, अतः उसे कौशल्या और राम ने समझा। आचार को धर्म कहा जाता है। आचार-हीनता और अज्ञान ही पाप है। हिन्दू संस्कृति में कर्तव्य को ही परम धर्म माना जाता है। मत, सम्प्रदाय और धर्म हमारे यहां प्रकट रूप में लिये जाते हैं। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का धारण, जिन कर्तव्यों से होता है, उसे धर्म कहते हैं। कर्तव्य से पतन ही पाप है। यह मत समझना कि शाक्य मुनि तथा शंकराचार्य ने कर्तव्य का त्याग किया था। दोनों ही पूरी मानव जाति को तथा समूचे हिन्दू धर्म को पुनर्जीवित करने के लिये अवतरित हुए थे।

अनन्य-भाव से सत्संग में लीन पुरुष समस्त पापों से मुक्त होकर साधु हो जाता है। भगवान ने गीता में कहा है कि मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता। पाप से परित्राण पाने का एक ही मार्ग है 'राम विश्वास'। नियमों से नहीं, अपितु भक्ति-मार्ग हृदय बदल देता है, फिर शरीर तो स्वतः बदल जाता है। सत्संग से कौन नहीं सुधर जाता! पाप से पार पाने का यही परम साधन है। पाप का नाश राम के दृढ़-विश्वास से ही होता है। अपने अहं को शान्त करो। विश्वास रखो, सृष्टि पर भी किसी का नियंत्रण है।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ (गीताः अध्याय9/34)

अनन्य मन से, एक मत से, निश्चय धारणा से मेरा चिन्तन कर, मेरा भक्त बन। भगवान तुझे पापों से मुक्त कर देंगे।

आचार और भगवद्भक्ति, दो अलग-अलग साधन नहीं हैं। पाप का मूल अज्ञान है। चाहे वह व्यक्ति का हो, समुदाय या जाति या समूचे देश का हो। इसे दूर करना चाहिये।

साधना-सत्संग ग्वालियर,
दिनांक 24-26.10.1957
अपराह्न 4.00 बजे

□□

चरित्र-निर्माण

(दैवी भाव का सम्पादन)

एक वर्ष होने लगा है जब मैंने आप सभी के सामने ईश्वर की महिमा का वर्णन किया था। आप सब सज्जन इस समय भगवान का गुण-गान सुनने के लिये एकत्र हुए हैं। आज आप सभी के सामने मैं जिस विषय पर कहना चाहता हूँ वह है– 'चरित्र-निर्माण।'

मनुष्य के जीवन को चरित्रवान एवं प्रभावशाली बनाने के लिये श्रीभगवद्‌गीता में बहुत अच्छी तरह बताया है। श्रीभगवद्‌गीता पुरातन समय से ही एक उच्च साहित्य में हमेशा से उच्च स्थान ग्रहण करती रही है। श्रीभगवद्‌गीता में मनुष्य के जीवन को सुन्दर और उच्च बनाने का तरीका बहुत उच्च ढंग एवं सलीके से दिया है। यद्यपि मानव ने उसे बहुत बार और अनेक ढंगों से पढ़ा, परन्तु ठीक तरीके से उसे कुछ इने-गिने महात्माओं ने अपनाया और समझा। फिर भी इसे अपनाना ही बेहतर है। जिस तरह बच्चा अपने बड़ों से कुछ सीख कर या सिखाये जाने पर बहुत कुछ सीख सकता है। उसी तरह हमें भी गीता से बहुत कुछ अपनाना चाहिये।

आज भी लाखों मनुष्य गीता को पढ़ते हैं, परन्तु उसे भावना के साथ भजते नहीं हैं। यद्यपि श्रीभगवद्‌गीता हिन्दू धर्म ने अपने सामने आदर्श रूप ही रखी है।

चरित्र-निर्माण के बिना जीवन सार्थक नहीं है और न ही जीवन-स्तर ऊँचा उठ सकता है। मानव, माया-मोह के झंझटों में तो पशुओं और पक्षियों से ही मिलता-जुलता है। गाय, सिंह के मुंह से अपने बछड़े की जान बचाने के लिये आप सिंह के सामने आती है। ममता का यह उच्च स्तर मनुष्य में भी पशुओं और पक्षियों की तरह पाया जाता है। प्रकृति के अनुसार मानव से कहीं अच्छा उनका रहन-सहन है। इस आमोद-प्रमोदमय जीवन में तो मानव भी बड़ी दिलचस्पी लेता है। परन्तु वह जीवन प्राणमय जीवन के दुर्गुण हैं। इस जीवन में झगड़े भी बहुत हैं। कीड़े और वन-पशुओं के अंदर भी यही भाव है। जिस तरह समय के बीत जाने पर और अधिक समय हो जाने पर साथी के बगैर भी जीवन नीरस हो जाता है। माया-मोह का परदा धीरे-धीरे हट जाता है। प्राणमय जीवन में भी इसी तरह किसी से बिछुड़ने का दुःख, मोह धीरे-धीरे पशुओं की भाँति हट जाता है।

सन्तान की रक्षा एवं पालन-पोषण का मोह स्वाभाविक है। पशुओं, पक्षियों में भी मानव जाति से कम नहीं है। अकसर मानव में मातृत्व की भावना अधिकता में पाई जाती है। यह मोह पक्षियों में भी है। यह प्राणमय जीवन की गति है, जो सब जगह समान है। परन्तु केवल मानव में ही बुद्धि और विवेक है। यही मानव-जीवन की क्रीड़ा है। परन्तु इसमें पाश्विक वृत्ति भी ज़रूरत से ज्यादा है। मानव-जीवन में विचार और ज्ञान की मांग ही अधिक होनी चाहिये। जो अच्छे विचार वाले हैं वे ही दैवी-सम्पत के अधिकारी हैं। इसी दैवी-विचारों में निर्भयता प्रथम गुण है। इसके विपरीत भीरुता, क्रोध एवं विवेकहीन होना पाश्विक वृत्ति है।

मानव को दैवी-भावना अंकित निर्भयता का जीवन में सम्पादन करना चाहिये, परन्तु जब तक आत्मज्ञान न हो, तब तक यह भाव नहीं आते। जब तक आत्मज्ञान न हो, तब तक मानव और पशु में भेद ही क्या है ? यह जीवन के विकार–क्रोध, मोह, ममता, लालच ही तो मानव को इस गंदे कीचड़ में से नहीं निकलने देते। जब निर्भयता मानव में आती है, उसका आत्मज्ञान बढ़ता जाता है। बालक झूठ बोलने की आदत किसी के डर से तब तक नहीं छोड़ सकता, जब तक कि उसमें सच बोलने की निर्भयता नहीं आवेगी। ईश्वर के समीप जाने के लिये, जीवन के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये निर्भयता की सबसे बड़ी ज़रूरत है। दैवी-सम्पत के लिये सच बोलना आवश्यक है। यही कारण है कि आज निर्भयता के बलबूते पर भारत इतने ऊँचे स्तर पर उठ गया है। दुनिया के सामने भारत ही अपने महान् पुरुषों की निर्भयता-शक्ति और सच्चाई के बल पर पूरा उतरा है और बिना किसी लड़ाई-झगड़े के शांतिपूर्वक स्वतंत्र हो गया है। पहले नारी जाति को अबला, भीरू कितनी ही उपाधियाँ दी गई थीं। आज महात्माओं और महान पुरुषों ने निर्भयता का

प्रचार किया है। फलस्वरूप गोले बारूद से नहीं, इन महान् पुरुषों के इस निर्भयता के पाठ से भारत स्वतंत्र हुआ। निर्भयता मानव-जीवन में ही स्वतंत्रता नहीं लाती, वरन् ब्रह्म-धाम तक पहुँचाती है।

सत्संग
2.4.1959

यह जो दैवी-भाव हैं वह ईश्वर के समीप जाने के हैं। मानव तो विचारमय संसार में रमा रहता है। वह वैर-विरोध, द्वेष-कलह में बसा रहता है, परन्तु दैवी-गुण मानव को माया-मोह के चक्कर से निकालकर ईश्वरीय लोक में ले जाते हैं। यह तो पुरातन समय से रास्ता अपनाया गया है। इन बुरी भावनाओं को त्याग कर कल्याण की ओर ले जाने का इसमें पहला गुण है– निर्भयता। जब तक मानसिक भय दूर नहीं हटेगा, कभी आप राम का नाम शांतिपूर्वक नहीं ले सकते। जब तक विषय-विकारों से कदम पीछे हटाया नहीं जायेगा, आत्मा की शुद्धि व अन्तःकरण की स्वच्छता एवं मन में निर्मलता नहीं आ सकती।

इन राग-द्वेषों में फँसा मानव कभी राम-नाम नहीं जप सकता। तप करना, सत्याग्रह करना, व्रत रखना आसान है, परन्तु मन की निर्मलता रखना कठिन है। वास्तव में मन की शुद्धि रखना बहुत कठिन है। वस्त्रों की उज्ज्वलता का एवं बाहरी आडम्बर से, जिनसे कि मानव को क्षणिक मान मिलता है,वह तो बड़े परिश्रम एवं श्रद्धा से प्राप्त कर लिये जाते हैं, परन्तु मन की शुद्धि एवं भावों को शुद्ध रखने वाला तप बहुत कठिन है। निन्दा-रूपी कीचड़ को अपने अन्तःकरण में न भरने दें। मानव दिन-रात राग-द्वेष को अपने अन्तःकरण में से झाड़ू लेकर साफ नहीं करता, यही सबसे कठिन है। अपने अंदर धड़े-बंदी का कीचड़ नहीं आने देना ही तप है।

बाहरी सफाई दिखावा है। सामाजिक क्षेत्र में बहादुरी दिखाना और जनता की वाह-वाह लेना कोई तप नहीं है, बल्कि मानसिक निर्मलता ही बड़ा तप है। दूसरों को मजबूर करके अपने प्रयोजन सिद्ध करना यह बुरी बात है। परन्तु मन का मैल धोने का सत्याग्रह करना घोर तप है।

अपने दिल की सफाई का तरीका मानस तप है। अपने अन्तःकरण की निर्मलता एवं शुद्धि तो दैवी-सम्पत है। बाहरी आडम्बर तो अनेक हैं। वास्तव में मानव को अपने घोर परिश्रम से अपने अन्तःकरण की शुद्धि करना ही मानसिक-तप है।

सत्संग
3.4.1959

श्रीभगवद्गीता के प्रसंगों में से यह जो विषय लिया गया है, मानव को दैवी-सम्पत की ओर ले जाने का है। इससे पहले अन्तःकरण की निर्मलता पर कथन किया था। अन्तःकरण की निर्मलता के साथ-साथ ज्ञानयोग का विशेष ख्याल रखना पड़ता है। यही ज्ञानयोग की स्थिति बहुत कठिन है। मन अति चंचल होने के कारण विचलित हो जाता है। यही कि थोड़े समय तक राम-नाम का मनन किया, फिर विचलित हो गया। ज्ञान में संगति का भी बहुत प्रभाव पड़ता है। जब तक स्थिरता न हो, संगति भी कुछ नहीं कर सकती। स्थिरता ऐसी हो जिसमें भ्रम न हो। मानव-मन को दुर्बल न बनायें। जो इस तरह चलायमान रहता है, उसको लाभ नहीं होता है। दिल की संशयता मानव को स्थिर नहीं होने देती। जो ज्ञान सोच-समझ कर धारण किया जावे, उसी में स्थिरता होवे, यह है दैवी-सम्पत। परन्तु रजोगुणी हमेशा चंचल होता है। उसका तो एक काम लालच भी है। रजोगुणी भावना हमेशा चलायमान होती है। जिसमें भावना हो, जब तक उसमें विश्वास न जम जाये तथा संदेहरहित न हो जाये, तब तक आराधना करना कठिन है। मानव राम-नाम पर अपना निश्चय बिठावे तथा अपने दिल को खाली करके राम-नाम का जाप करे। जब दिल की थैली विषय-वासनाओं से भरी हो, तब तक राम-नाम का रंग उस पर चढ़ ही नहीं सकता। उस थैली को खाली करके अनन्यभाव से आराधन करो। ज्ञानयोग में भली प्रकार स्थिर होकर अपने विचारों को पक्का करो, तब भगवद्भक्ति आप ही प्राप्त हो जावेगी। जैसे सूर्य की किरणों से घी आप ही पिघल जाता है, उसी प्रकार अपना ध्येय अगर पक्का रखो, ईश्वर-भक्ति आप ही प्राप्त हो जायेगी। यही भावना सबसे ऊँची है। मित्र को मित्रता की दृष्टि से

देखना, अपने आराध्य-देव को अपनी दृष्टि से देखना ही वस्तुतः ज्ञान की स्थिरता है। दूसरों की दृष्टि से देखना, दृष्टिहीनों का काम है। ऐसी विचलित स्थिति मानव की न हो।

पुरातन समय से धन और अन्न के दान की प्रथा चली आई है। पितरों के रूप में भी दान दिया जाता है। परन्तु दान केवल धन तक ही संकुचित नहीं है। सेवा-भाव भी सबसे बड़ा दान है। आज के नवयुवकों में आलस्य का भाव बहुत बढ़ चुका है। वह किसी की सेवा करने में संकोच का अनुभव करते हैं। वह बैठे ही रह कर दूसरों पर निर्भर रहना सीख गये हैं। यही कारण है कि वह आधि-व्याधि के शिकार हो गये हैं। सबके अन्दर सेवा का भाव होना चाहिये। सेवा धर्म बहुत गम्भीर है। उसकी तह तो योगी भी नहीं पा सके हैं। इससे आगे जाकर ज्ञान-दान है। किसी को किसी चीज़ का बोध कराना यह सबसे बड़ा दान है। मानव भी आमोद-प्रमोद, लालच और ममता में पशुओं के समान है। उन्हें ज्ञान देकर मानव ही उन्हें ऊँचा उठाता है। उसकी शोभा गुण और ज्ञान से है। ज्ञानरूपी पॉलिश से उसे चमका देना यह बहुत बड़ा दान है। ज्ञान के समान संसार में पवित्र चीज़ कोई नहीं है। लोगों को अच्छे मार्ग पर ले जाना महान दान है।

सत्संग
4.4.1959

पिछले दिनों मैं जिन विषयों पर कह चुका हूँ वह दैवी-भाव की ओर ले जाने वाले विषय थे। दैवत-भाव के लिये ज्ञानयोग की स्थिरता एवं दान की भावना होनी चाहिये। इन सबके होते हुए भी मनुष्य में दमन की भावना होनी चाहिये। उन गुणों में से दम भी एक गुण है। मनोवृत्ति को वश में करना दम है। अपने बल, ऐश्वर्य एवं बलपूर्वक किसी पर दमन कर लेना तो स्वाभाविक ही आसान है। परन्तु अपनी मनोवृत्तियों को वश में करना अत्यन्त दुष्कर है। वास्तव में वीर-भाव वाला मनुष्य वही समझा जाता है, जिसने बलपूर्वक अपने मन को वश में किया हो। मन की वृत्तियों को अच्छे मार्ग पर लगाया हो। मन के वश में न होने से खून-खराबा, द्वेष भावना, क्रोध की अग्नि आदि की संभावना रहती है। ऊँची-ऊँची कल्पनाओं के भाव मन में आते और जाते रहते हैं। मन के वश में होने से यह संकट आप ही टल जाते हैं। मन को हमेशा ठीक रखना और द्वेष, वैर, निन्दा को न आने देना, उसमें उठते हुए वैर-विरोध के तूफान को शान्तिपूर्वक रोकना तथा चिन्तारूपी चिता से दूर रखना ही वास्तव में दम है। रात-दिन वैर-विरोध रूपी वैतरणी में गोते नहीं लगाना चाहिये। अगर अपने आंतरिक भावों को निर्मल करना हो तथा अपना हित चाहना हो तो अपने मन का दमन करो। वास्तव में किसी को विवश करके उसके भावों का दमन नहीं किया जा सकता। मन का दमन अपनी वृत्तियों से होता है। विचार और विवेक से मन का दमन करना चाहिये। विवेक-विचार से अपने को अच्छा बनाना भाग्यवान व्यक्ति का काम है। अगर आप दैवी-जीवन का अपने अंदर संपादन करना चाहते हैं, उसके लिये बड़ी चीज़ दमन है। दमन सभी के लिये बहुत बड़ी साधना है। यह जितना भी किया जा सके उतना ही अच्छा है। श्रीभगवद्गीता में यज्ञ का करना भी अनिवार्य बताया गया है। वास्तव में पुरातन समय से यह प्रथा चली आ रही है। इसका सही अर्थ बलिदान है। परहित के लिये अपना तन-मन-धन बलिदान कर देना, यह सीधा यज्ञ है। अपने जीवन को यज्ञ-रूप बनायें। मानव अपने जीवन को परमार्थ के लिये बनावे। अपना पुरुषार्थ दूसरों के जीवन के लिये सामर्थवान बनावे,यही देवत्व-जीवन है। भगवद्गीता के चरित्र-निर्माण का यह भी एक अंग है।

सत्संग
5.4.1959

अब तक दैवी-जीवन के गुण और लक्षण वर्णन किये हैं। देवों में यज्ञ बलिदान होता है। अपनी वस्तु किसी को अर्पण की जाती है, तो उसे बलिदान कहते हैं। पुरातन समय से देवों को अर्पण करना, यज्ञ बलिदान का रूप है। दैवी-गुणों में स्वार्थ नहीं होता। केवल आप खाना, वह पाप का खाना है। अन्न के विभाग करके खाना यज्ञ है। यज्ञ के शेष को खाने वाले संत लोग बहुत सारे पापों से मुक्त हो जाते हैं। पुरातन समय में स्वार्थ ही पाप समझा जाता था। यही

पाप सबसे बड़ा है। यज्ञ हमारे यहाँ प्रचलित शब्द था। यज्ञ शब्द का अर्थ-समझने वाला है। यज्ञ बड़ी ऊँची चीज़ है। उसके लिये वेदों ने बहुत अच्छा कहा है। भगवद्गीता ने भी यही कहा है– यज्ञ को संकुचित न रखके विस्तृत करना। जप-यज्ञ में बार-बार नाम का आराधन करना। यह दैवत-गुण है। शास्त्र का बार-बार पढ़ना– यह स्वाध्याय है। स्वाध्याय में राम-नाम की धुन अंदर से उच्चारण हो। शास्त्र के वाक्य याद रहें। उनका मर्म अन्दर बना रहे। भगवान का नाम बस जाये। नाम के विमान पर आरूढ़ होकर जाने के लिये स्वाध्याय सबसे अच्छी चीज़ है, यही वो मार्ग है, जिससे ध्यान की व ज्ञान की वृद्धि होती है।

सत्संग
6.4.1959

सदाचार का जीवन ही वास्तव में मूल है। आध्यात्मिक जगत में जो सुख है, वह वास्तव में देवत्व-जीवन है। अपने जीवन को देवत्व में बदलना अध्यात्मवाद में तप है। थोड़े खाने को हम तप समझते हैं। तप में अपने को सुखाते हैं। वास्तविक तप आंतरिक प्रकाश है, तापस दिखावा नहीं करते। तप अपने आप को सधाना है और वाणी में कोमलता के रूप में बसाना है। ऐसा वचन बोलना जो सत्य हो, प्यारा हो, मधुरता से भरा हो। सत्यवादी होना एवं कोमलता मन का तप है। देवत्व-गुण में आडम्बर और दिखावा नहीं है। आंतरिक भावना जितनी ऊँची हो वही देवत्व-भाव है। चुप रहने से सत्य बोलना अच्छी बात है।

दिनांक– 7.4.1959

देवत्व के गुण वर्णन करता आया हूँ। दैवी-जीवन अपने अंदर बसाना है। पुरुषार्थ करने की कामना हो, जीवन को सुंदर बनाना है। दैवी-गुण बसाने के लिये सबसे पहले अहिंसा है। दूसरे को सताना, दूसरे के प्राणों को पीड़ा देना हिंसा है। अहिंसा इसके विपरीत है। पीड़ा देने वाला अच्छा नहीं होता। जो दुःख देने वाला है, राम का कहना है कि उसका हनन अवश्य करना चाहिये। दूसरे को सताने वाला हिंसा के योग्य है। अभिमान भी दुर्गुण है। हिंसा दमन करने की चीज़ है। इसे संयम में लाना चाहिये। जिन देशों में शास्त्रों का नियंत्रण न हो, उसमें हिंसा की भावना तीव्र गति से आ जाती है। हिंसा की वृत्ति तभी मरती है, जब अंतर में इससे घृणा हो जाती है। भारत की जनता में अंदर से ही अहिंसा की वृत्ति है। यह अहिंसा उनकी धर्म-वृत्ति है। यह किसी के दबाये नहीं दबती। यह हिंसा की वृत्तियाँ संयम से दबायी जाती हैं। यह अहिंसा का ही प्रभाव है कि इतने दुःख के होते हुए भी आज भारत में धार्मिक नीति का ही प्रभाव है। धर्म जीवन का तत्त्व है, जो मानव के मन को कोमल बनाता है। इसका बड़ा सम्मान होना चाहिये। शुभ कर्म करना धर्म है। अहिंसा भी दैव-भाव है। देव वही है जिसमें दमन की शक्ति है। आसुरी भाव जितने ही दबाये जायें, उतना ही अच्छा है। पर उसके लिये दया होनी चाहिये। दैवत्व-जीवन के लिये दया सीखनी चाहिये और बुरे भावों का दमन करना चाहिये।

दिनांक– 8.4.1959

मनुष्य का चरित्र कैसा हो? श्रीभगवद्गीता में दैवी-सम्पत का वर्णन किया है, अहिंसा-हिंसा संसार में चली आई है। माया, मोह और स्वार्थ का चक्र चलता है। मानव को सबल होना चाहिये, जिससे दूसरा उसे अपना भोजन न बनाये। हिंसा से ऊपर उठना, दुर्बल को अपनी जगह पर जीने देना, यह दैव-गुण किसी भले आदमी में आता है।

अहिंसा भारत में पुरातन समय से चली आई है। यही कारण है कि भारत बिना हिंसा के स्वतंत्र हो गया। यही अहिंसा का प्रबल उदाहरण है। जनसंख्या का अधिक होना गरीबी का बड़ा चिन्ह है। जो समस्या हल नहीं होती, अहिंसा से हल होगी। इसी का समर्थन सभी देशों ने किया है। अगर यह देश दास बना था, तो वह कायरता के कारण। दया मानव को दास नहीं बनाती। भीतर आवेश का न आना यह भी दैवी-गुण है। आवेश आने से मानव का रक्त बिगड़ जाता है। हृदय की तारों का मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है। बहुत-सी बातों में मानव अपने आप को गंवा लेता है। क्रोध, लोभ व मोह रूपी मदिरा पीकर जगत मतवाला है। मानव को हमेशा प्रसन्न रहना चाहिये।

'राज़ी हूँ जिसमें तेरी रज़ा है, जहाँ तू रखे वहीं वाह वाह है।'

अपने अंदर शान्ति रक्खें। कभी घबराये नहीं। अपने को डांवांडोल न करें। यह दैवी-गुण है। साधना करने से ही शान्ति प्राप्त होती है। मानव को साधनशील होना चाहिये। व्यर्थ क्रियायें बहुत होती हैं। दूसरे की बात को करना, चुगली खाना बहुत खराब होता है। व्यर्थवाद बहुत अधिक है। मानव में अज्ञानवश यह क्रिया बहुत है, जो कि देवों में नहीं होनी चाहिये। उनमें कोमलता बहुत होनी चाहिये।

सत्संग
9.4.1959

दैवी-सम्पत– देवों की सम्पत्ति, जो उनमें आचार-विचार हैं, उनका नाम दैवी-सम्पत है। यह एक उच्च जीवन है। इसका गीता में सुन्दर वर्णन किया है। गीता के कई भाग ऐसे हैं जो ग्रहण करने योग्य हैं, जो जीवन को पुष्टि देने वाले हैं। दम्भ, बनावट, अहंकार ये आसुरी-वृत्ति हैं।

अधिक तृष्णा के ताने-बाने में लगे रहना, यह आसुरी-वृत्ति है। माया के जीवन में ये बातें पाई जाती हैं। कोमलता दैवी भाव है। बार-बार अपनी बात को बदलना चपलता है। दैवी-जीवन वाले भक्त के मुख पर तेजोमय भाव होना चाहिये। उसके जीवन में तेजो राशि का होना बहुत ज़रूरी है। उसके मुख पर हर्ष होना चाहिये। दूसरी चीज़ के प्रभाव को सह लेने की क्षमता होनी चाहिये। अच्छे-बुरे दिनों को हर्ष के साथ सह लेना। क्षमादान मानव का जीवन है। थोड़ी-सी बात न सह सकना दुर्बलता है। सहिष्णुता काम करते हुए पैदा होती है।

'सब दिन होत न एक समान' यह तो बदलते रहते हैं।

धैर्य– यह गुण भी देवों में पाया जाता है। दैव का गुण धीर रहना है– जल्दी डांवांडोल न होना है। इसी में मानव ठीक रहता है। समुद्र की तरंग बार-बार किनारे पर टक्कर मारती है। मानव को अपने को धैर्य से इसी तरह बनाना चाहिये। अन्न, वस्त्र, बुद्धि यह सब पवित्र होने चाहियें। बगुला वृत्ति छलवान होती है, जो विश्वास दिलाकर हनन करती है। श्रेष्ठ भाव वालों का

अंतःकरण साफ होता है। मन में कुछ और तथा ऊपर कुछ और नहीं होता। कमल की तरह मुख खिला हुआ और वाणी चन्दन की तरह चिकनी होती है। द्रोह न करो। मित्र-द्रोह, जाति-द्रोह, देश-द्रोह, दगा देना बहुत खराब है। मानव से अपने अन्दर के द्रोह का हनन नहीं किया जाता। द्रोह बड़ा दुर्गुण है। द्रोही का निस्तार नहीं है। इस पाप का प्रायश्चित नहीं है। अभिमान-अहंकार भी बुरी चीज़ है। मानव में अभिमान नहीं होना चाहिये।

'अति' सब जगह ठीक नहीं होती। अति का पतन होता है। अति-संचय कभी न कभी कम होने लगता है। बहुत अहंकार का बढ़ना– इसका अंत पतन है। अभिमान देवों का गुण नहीं। पशुओं-पक्षियों से जो ऊपर उठे हों, वे दैवी-जीवन वाले हैं, उनका जीवन भगवान की कला को ग्रहण करने वाला होता है। दैवी-जीवन 'पार्थिव' में भी है और अलौकिक में भी है।

सत्संग
10.4.1959
□□

रामायण

(स्वामीजी के अनुभूत वचन)

'मुझे रामचरितमानस से अनुराग है। उसे अनेक बार बड़ी श्रद्धा- भक्ति के साथ पढ़ा है और बड़ा प्रभावित हुआ हूँ। किन्तु मेरे मन में उसके आदि स्रोत को देखने की इच्छा हुई। मैंने वाल्मीकीय रामायण में उसका स्रोत पाया। मैंने उसे ध्यान से पढ़ा और मेरे मन में आया, इसका तो मैं भी रामचरितमानस की तरह दोहे और चौपाईयों में अनुवाद कर सकता हूँ और मैंने लिखना आरम्भ कर दिया। मेरे मन में भाव आते गये और मैं लिखता गया। मुझे ऐसा लगा मानो राम मेरे अन्दर बैठे स्वयं लिखा रहे हैं। यन्त्र बना मैं लिखता गया।'

मैं अपने आप को एक यंत्र के रूप में देखता था। उसका संचालक तो राम था। अनेक स्थलों पर मैं स्वयं मुग्ध हो गया कि कैसे कैसे भाव प्रकट हो रहे हैं। मैंने सारी रामायण का अनुवाद नहीं किया। जो स्थल सामने आते गये, उन्हीं का अनुवाद होता दीखता गया। इसका यह अर्थ नहीं कि मुझे अन्य स्थल पसन्द नहीं हैं, पर वह आजकल के समय के लिये उपयोगी नहीं जान पड़े। उनमें बड़ा आनन्द है और अच्छे भी लगे, पर उनका अनुवाद नहीं हुआ।

मैं बार-बार अनुभव करता रहा— राम बैठे लिखा रहे हैं। उनकी कृपा बरस रही है। उन्होंने जो लिखाया सो लिखा। मेरा इसमें कोई अभिमान नहीं है। जो प्रार्थना प्रकट हुई या अन्य सन्तों की प्रार्थनायें मैंने पढ़ी, मुझे लगा इनमें उनकी अपनी तरफ से जोड़ी हुई कोई बात नहीं है। सब हृदय के भाव थे, जो प्रकट हो गये। मैं प्रभु-कृपा को बार-बार अनुभव करता गया। लिखने के बाद, जब मैंने पढ़ा, तब स्वयं अपने पर मुग्ध हो गया। मुझे आश्चर्य हुआ— ऐसी रचना कैसे हो गई। इस ग्रन्थ में जो भी भाव हैं, सब पर राम-कृपा बरसी हुई है। ऐसा मैं अनुभव करता हूँ। मुझे अनेक स्थलों

पर ऐसा लगा कि राम की लीलाओं में, मैं भी शामिल हूँ और सब कुछ देख रहा हूँ। उन्हीं को लिख दिया गया। मुझे लगता है तुलसीदास ने भी रामचरित मानस में जो कुछ लिखा, राम का यन्त्र बन कर लिखा। जो अन्दर की आँखों से देखा, हृदय में स्फुरित हुआ, वही लिखा।

वाल्मीकीय रामायण जिसका अनुवाद मेरे द्वारा हुआ है, राम का लिखाया हुआ है, ऐसा मैं अनुभव करता हूँ।

इसका अर्थ यह नहीं, मैं कोई बड़ा भारी सिद्ध हो गया हूँ। मैं तो बहुत नगण्य व्यक्ति हूँ, तुच्छ व्यक्ति हूँ। पर राम ने मुझ से यह काम ले लिया है, यह मैं अनुभव करता हूँ।

□□

परिशिष्ट श्रीरामायण-सार

(नमस्कार सप्तक बोल कर, सत्संग आरम्भ किया)

परिशिष्ट

परिशिष्ट का अर्थ है– बाद में लगाई गई– पूरक अंश (Supplement)। यह रचना देहरादून में लिखी गई। इसमें कुछ गोस्वामी तुलसीदास जी के पद हैं और उनके पदों के उद्घाटन के रूप में कुछ अपने पद भी दिये हैं। राम-नाम, भक्ति, राम-कृपा, आदि पर मैं बहुत बोलता रहा हूँ। मैंने चाहा कि किसी और की साक्षी भी होनी चाहिये। मैंने तुलसीकृत रामायण से कुछ, पहले पेन्सिल से लिखना आरम्भ किया। प्रेम जी बाद में लिखा करें। उसने एक महीने की छुट्टी ली। प्रेम जी ने पूछा 'दूसरों के लिये विचार आना और उनके सुस्वास्थ्य के लिये प्रार्थना करना–क्या इसमें कोई हर्ज तो नहीं?' मैंने उत्तर दिया कि, 'दूसरों के हित के लिये प्रार्थना करना, यह बहुत अच्छा है। मैं भी राम-नाम के जपने वालों के लिये करता हूँ।' पूर्णमासी को जिन्होंने नाम जपा, उनका मन बड़ा अच्छा टिके। संकल्प में प्रार्थना से एकदम प्रभाव तब होता है, जब आदमी का अपना आप अच्छा हो। झूठ न बोलना, ईर्ष्या न होना आदि। इससे संकल्प में बल आता है, यह भी मैं ने बताया।

प्रेम जी को बड़ा सिधाया। उसने शादी की नहीं। मेरे कहने पर थोड़ा वेतन होते हुए भी सौ रुपये घर वालों को दिया करता। उसकी उस समय अस्थायी नौकरी थी। मेरे कहने पर होमियोपैथी (By correspondence) सीखी। बाकी मेरे कहने से ही पैसे भी जमा करता था। अब छः सात हज़ार जमा कर लिये। दिल्ली में साईकल पर बहुत फिरता था। उसके पास बाकी बहुत थोड़ा बचता था। पन्चर भी लगवाने पड़ते थे। साईकल भी बहुत पुरानी थी। मैं समझता हूँ, मरम्मत भी करवानी पड़ती होगी। देहरादून में जब रहा, तब वहाँ पचास रुपये मासिक देता। कोई पन्द्रह दिन में कॉपी निकाली। दिनांक 20-9-1957 से 8-10-1957 तक यह परिशिष्ट पूरा हुआ।'

परिशिष्ट 'श्री रामायणसार' में ऐसे हैं जैसे तुलसीकृत रामायण में उत्तरकाण्ड। इसमें बड़ी गूढ़ बातें हैं। गरुड़, शिव जी के कहने पर काकभुशुण्डि के पास गये, जिसका सबसे बड़ा गुण था– प्रतिदिन रामायण-गान। इसी कारण शिव जी महाराज उसको बड़ा विद्वान, ज्ञानवान मानते थे। पक्षियों का राजा, शिव जी महाराज के कहने से छोटे से पक्षी, काकभुशुण्डि के पास गया। उसी के मुख से सब उत्तरकाण्ड की रचना करवाई गई है। ऐसा तुलसीदास जी ने **'रामचरित-मानस'** का आधार बनाया है।

मेरे कुछ अपने आध्यात्मिक अनुभव हैं। मुझे दूसरे ग्रन्थों में जो किसी सन्त ने रचे हों, मेरी बात की साक्षी नहीं मिली, तो मैंने महत्वपूर्ण विषयों पर रामचरित-मानस के बालकांड और उत्तरकाण्ड आदि से कुछ अंश लिये। परिशिष्ट आजकल प्रेस में है, उसमें नीचे पाद-टिप्पणी (Foot-note) हैं कि मेरे निजी पदों के बाद रामचरित-मानस से कहां से मिलते-जुलते दोहे और चौपाइयां ली हैं। उत्तरकाण्ड में यह बात है कि भावना को बहुत ऊँचा करना है। मैं भी चाहता हूं कि भक्ति-भाव बढ़े, आन्तरिक-भाव जगें और साधक का मार्ग सुलभ हो जाये।

नाम महिमा

'नाम में नामी यों बसे, पुष्प में ज्यों सुवास।
शब्दार्थ गुण गुणीवत्, कहे एक निवास।।'
(नाम में नामी ऐसे बसे जैसे फूल में सुगंधि)
नाम देह नामी है देही, व्याप्य व्यापक माने वे ही।
इससे ऋषि सन्त मुनि ज्ञानी, शब्द में इष्ट ध्याते ध्यानी।।
राम-नाभ पावन वे गाते, परम-पुरुष है ध्येय बताते।
सर्व शक्तिमय ईश्वर जो है, परम-पुरुष परमात्मा सो है।।
'आनन्द कन्द चिद्घन अविनाशी, राम-नाम नामी सुखरासी।
राम-नाम से मिलता ऐसे, सुरसरि में शीतलता जैसे।'

नामी तो नाम में व्यापक है– नाम तो उसकी देह है। भगवान सर्वशक्तिमान है। वह चेतन है, आनन्द का मूल है, सुख की राशि है, सिमरन में सुलभ है, नाम में प्रकट होता है।

'रा, मुख से उच्चारते, पाप बहिः सब जाये।
फिर भीतर आवे नहीं, म, कपाट हो आये।।
रा, धुन मूलाधार से, जैवी शक्ति जगाये।
म, दसवें द्वार तक, तभी उसे पहुँचाये।।'

'रा' जब मुख से उच्चारण किया तो मुँह खुल जाता है, मानो 'रा' कहते ही पाप, जो मनुष्य के अन्दर होता है, बह जावे और फिर लौट कर न आवे, इसलिये 'म' किवाड़ का काम करता है। यह एक कल्पना की गई है। शब्द दशम-द्वार तक पहुँचाता है।

'इस से साधनशील सयाने, सहज योग भी इसको मानें।
राम-नाम में वे रम जाते, नीरस सुर-सुखों को बनाते।।
शब्द नाम कहिये अविनाशी, हैं सब रूपाकार विनाशी।
एक देश में रूप सुहावे, सर्व देश में नाम समावे।।'

रूप, आकार विनाशी हैं, पर शब्द अविनाशी है। वह सब देश में है। रेडियो का शब्द सब जगह प्रकट है, पर रेडियो पर ही प्रकट होता है। तो नाम तो पूर्ण आकाश में व्याप्त है। रूपाकार एक देश में और, दूसरे देश में और होता है।

'नव पुरातन क्षीण हो जाते, रूप भिन्नता सदा दिखाते।
शब्द एक रस रहे सदा ही, भिन्न भेद न पावे कदा ही।।'

आप 'राम' शब्द ही लिखने लगें, तो भिन्न-भिन्न चित्रकार जैसी उसकी अवस्था होगी। जैसी समझ आ जावे वैसा वेश पहना दे। चित्रकार दस बैठाओ, तो दसों भिन्न प्रकार के उसके चित्र बनावेंगे। मराठा किसी और प्रकार और मथुरा का किसी और प्रकार। पर शब्द में भिन्नता, भेद नहीं है। मथुरा में श्री कृष्ण के भिन्न-भिन्न चित्र हैं। जैसा कर्त्ता का मनोमय जगत, वैसी ही रचना।

'कर्त्ता कल्पित रूपाकारा, देश काल से नाम अपारा।
नामी नाम अनन्त बताये, रूपाकार सान्त हैं गाये।
बड़ा रूप से नाम बखाना, सब गत सम दिक्‌ काल में जाना।
सन्त-जनों ने नाम बड़ाई, इस से अधिक रूप से गाई।'

नाम और रूप में भारी भेद है, कितना ही चमकदार रूप क्यों न हो, पर वह फीका पड़ जाता है। सब गत और सम-सब जगह गया हुआ और एक समान, यह नाम की महिमा है। यह नहीं समझना कि रूप का यहाँ कोई निरादर है, रूप की अवहेलना भी नहीं है।

चौपाई

'समुझत सरिस नाम अरु नामी, प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी।
नाम रूप दुई ईस उपाधि, अकथ अनादि सुसामुझि साधी।।
को बड़ छोट कहत अपराधू, सुनि गुण भेदु समुझिहिं साधु।
देखिअहिं रूप नाम आधीना, रूप ग्यान नहीं नाम बिहीना।।
रूप बिसेष नाम बिनु जानें, करतल गत न परहिं पहिचानें।
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें, आवत हृदयँ सनेह बिशेषें।।
नाम रूप गति अकथ कहानी, समुझत सुखद न परति बखानी।
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी, उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी।।'

दोहा

'राम-नाम मनि दीप धरु, जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ, जौं चाहसि उजिआर।।'

नाम न होवे तो रूप से क्या पता चलता है। जयपुर जाओ तो वहाँ रूप गढ़े जाते हैं (मूर्ति पत्थरों की)। जब तक नाम न रखा जावे कि यह कृष्ण की मूर्ति, तो कैसे पता चलेगा? जो मूर्ति को लेने वाला है, वह भी जब तक स्थापित न किया जाये, उसे सन्दूक में ही रखता है। सौ आदमी खड़े हों, यदि नाम न होवे तो कौन पहचाने? यदि नाम न होवे, तो रूप भी पहचानना कठिन है। चाँद शब्द हो, तो चाँद का ज्ञान होवे। कोई पूछे यह क्या चीज़ है, तो नाम जाने बिना करतल (हथेली) पर रखी चीज़ भी पहचानी नहीं जाती, यदि नाम आता हो तो नाम से उस चीज़ का भी विचार आ जाता है, जो देखी भी न हो। अमेरिका का नाम ही सुना है, कितनों ने देखा है? बातों द्वारा वर्णन जो है, उससे आदमी को ज्ञान होता है। अकथ कहानी—जो कहने में न आवे। सगुण, निर्गुण दोनों का साक्षी, दोनों का बोध नाम करवाता है।

तुलसीदास जी कहते हैं– नाम जो दीपक है इसको दहलीज में रखो–देह की दहलीज में।

चौपाई

'नाम जीह जपि जागहिं जोगी, बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी।
ब्रह्म सुखहि अनुभवहिं अनूपा, अकथ अनामय नाम न रूपा।।
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ, नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ।
साधक नाम जपहिं लय लायें, होहिं सिद्ध अनिमादिक पायें'।।

जो गूढ़ गति जानना चाहे वह लगन लगाकर जीभ से ही नाम जपे।

भक्ति

गोस्वामी तुलसीदास एक अच्छे सन्त हुए। अपने युग में उन्होंने तुलसी रामायण रच कर बोली। अब तो समझो सब जगह उसका उपयोग हो रहा है। इससे साधारण-असाधारण सभी की उन्नति हुई। सच्ची चीज़ सब की होती है। क्या हरिजन, क्या ब्राह्मण। यह रामायण सब के लिये एक सांझी है। अगला प्रकरण जो परिशिष्ट में दिया जावेगा, वह भक्ति की महिमा का है। वह श्रद्धा में, प्रीति में, राम-नाम में विश्वास है तथा जप, सिमरन, कर्म में भी। परम-भक्ति का यह लक्षण वर्णन है।

अनन्य भक्ति–किसी और में न होवे, राम पर निर्भर होना–अनन्य निश्चय से, संशय-रहित विश्वास से। परा-भक्ति सब से उत्कृष्ट है। भक्ति सबसे बड़ी वह, जो हमारा बेड़ा पार कर दे। यह निर्भरता कहलाती है। अभंग परा-भक्ति भगवान पर निर्भर होना है। सत्य मोक्षधाम का एक ही सुलभ, सरल, सुगम मार्ग, राम-भक्ति समझना चाहिये और इसी में निश्चय-निश्चल, अचल, अविचल होना चाहिये। आदमी में बार-बार अभ्यास करने से अपने आप यह बात हो जाती है। सिमरन जाप करने से आप ही आप आ जाया करती है।

राम-आराधन तो भक्ति है ही, पर सत्कर्म करना, जन-सेवा यह भी भक्ति-धर्म में सम्मिलित हैं। परहित परता-परहित में लगा रहना। यह नहीं समझना कि भक्त वह है, जो इन कामों को न करके केवल पूजा ही करे। ऊँची भावना हो। ज्ञान कर्म बिन प्रीति न होवे। हिन्दुस्तान में ऐसे भी पंथ हैं, जो

केवल ज्ञान ही पर और कुछ केवल कर्म ही पर बल देते हैं। सरल और सच्ची बात यह है कि ज्ञान और कर्म, बिना प्रीति के पर्याप्त नहीं होते। आज से पचास वर्ष पहले कूट-पीटकर लड़के को सिखाना होता था। उस युग में यह बात थी कि लड़के को बांधकर भी स्कूल ले जाते थे। वे डर जाते थे। अब बच्चों को स्वयमेव स्कूल जाने की प्रीति हो जाती है। छोटा बच्चा शुरु में उदास होता है। आठ वर्ष तक इन को बोध नहीं होता है। उनमें स्कूल आने की रुचि हो जावे, तो चाव से आते हैं।

ज्ञान प्रीति के बिना नहीं आता। प्रीति पैदा करने के उपाय वास्तव में मनोविज्ञान से विचारने की बात है, पर अब यह बात है कि रुचि पैदा कर दी गई है। एक सज्जन अपने लड़के को अमृतसर बोर्डिंग में लेकर गया। उसने कहा कि यह खाने पर आग्रह करवाता है। बोर्डिंग वालों ने कहा दो-चार महीने में सब आदत सीख जाते हैं। घर भी तो स्कूल है, पर घर में बच्चे को प्रेम-प्यार की बात अड़ियल बना देती है। बच्चे को बहुत ज्ञान तो होता नहीं, फिर वह नींद का अभ्यासी हो जाता है। वहां बोर्डिंग हाऊस में नौ बजे तो बिस्तर में चले गये और फिर बोलते नहीं और यहां घरों में चुड़ैलों की, चोरों की कहानी सुनाने की प्रथा है। कर्म और ज्ञान में रुचि होनी चाहिये, भावना होनी चाहिये। माता-पिता की बच्चों को पढ़ाने की परिस्थिति न होने पर रुचिवान बच्चे रोने लग जाते हैं। लड़के मजदूरी कर के भी, ट्यूशन करके भी पढ़ते हैं। यह तो रुचि की बात है। वह जो प्रीति है और रुचि है, वह ज्ञान-कर्म में भक्ति है।

रोहतक में एक बड़े अफसर आ गये। वह ईमानदार माने जाते थे। उनको अपने कर्त्तव्य में बड़ी प्रीति थी– मेरे जो कर्म हैं, वे पूजा हैं। दूर क्यों जावें–इन दिनों में तो गर्म रोटी, गुड़ घर खावें (आप यहां साधना-सत्संग में आये हैं। आप को प्रीति है, तभी तो आये हैं। नहीं तो सर्दी के इन दिनों में आप घरों में, गर्म रोटी और गुड़ खाते होते)।

आप यहाँ सवेरे ठण्ड में नहाते हैं। कोई आप में प्रीति का भाव है तभी तो। कोई आप को मजबूर तो करता नहीं। कोई भावना जमी है, तभी तो दूर-दूर से लोग आराम को छोड़कर भी आते हैं। ज़मीन पर सोना, सादा

खाना, यह एक कैम्प के समान है। जीवन प्रीति से ही है। यहां साधना-सत्संग में सैकड़ों आदमी इकट्ठे होते हैं। भक्ति है, तभी आप एकत्रित होते हैं। कर्म, ज्ञान में जो प्रीति है, उसी को भक्ति कहते हैं। बड़ों में प्रीति विनय के साथ, बराबर वालों के साथ मित्रता और बच्चों में प्रीति प्रेम से उत्पन्न हो जाती है। पूज्य व्यक्तियों में या भगवान में प्रीति को, ज्ञानी जन-भक्ति कहते हैं। इष्ट में जो प्रीति होती है, उसको भक्ति कहते हैं। इष्ट का ज्ञान आना चाहिये, तब आदमी असली भक्ति करेगा।

ऐसे भक्ति है बड़ी, ज्ञान कर्म से जान।
जिस में रहते एक हो, सभी सुकर्म सुज्ञान।।

सुकृत-कर्म और ज्ञान, भक्ति में एक होकर रहते हैं। इस प्रकार की धारणा हो। भक्ति-मार्ग बड़ा ऊंचा है और यह राम के परम-धाम का मार्ग है।

मैंने पहले भी यही कहा था कि यह परिशिष्ट मुझे दूसरे ग्रन्थों से मिली नहीं। बाकी अध्यात्म-रामायण और नाटक भी हैं। इनमें मुझे ऐसी नहीं सूझी, जो इसमें सम्मिलित होवे सिवाय रामचरित मानस के।

रामचरित-मानस में जो वर्णित है, मैं वही कहता हूँ। उत्तरकाण्ड में यह बात है—

'जे असि भगति जानि परिहरहीं, केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं।
ते जड़ काम धेनु गृहं त्यागी, खोजत आकु फिरहिं पय लागी।।'

वे जो भक्ति को छोड़ कर केवल ज्ञान के लिये श्रम करते हैं, वे तो घर में कामधेनु को छोड़कर, दूध के लिये आक ढूंढते फिरते हैं।

'सुनु खगेस हरि भक्ति बिहाई, जे सुख चाहहिं आन उपाई।
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी, पैरि पार चाहहिं जड़ करनी।।'

हे गरुड़ ! तू मुझ से सुन, वह जो भक्ति को छोड़कर दूसरे उपायों से सुख चाहते हैं, वे बड़े सिन्धु को बिना नौका या जहाज के पैरों से पार करने की चेष्टा करते हैं।

'ग्यान पंथ कृपाण कै धारा, परत खगेस होइ नहिं बारा।
जो निर्विघ्न पंथ निर्बहई, सो कैवल्य परम पद लहई।।'

ज्ञान-पंथ जो है वह तलवार की धार है। उससे यदि वह पंथ निर्विघ्न निभ जावे, तो वह परम-पद पावे।

'अति दुर्लभ कैवल्य परम पद, संत पुराण निगम आगम बद।
राम भजत सोइ मुकुति गुसाईं, अन इच्छित आवइ बरि आई।।'

सन्त लोग कहते हैं कि केवल ज्ञान से मुक्ति बड़ी कठिन है। राम-भजन करते-करते वह मुक्ति अपने आप ही आ जाती है।

'जिमि थल बिनु जल रहिन सकाई, कोटि भाँति कोउ करै उपाई।
~था मोच्छ सुनु खगराई, रहिन सकई हरि भगति बिहाई।।
अस बिचारि हरिभगत सयाने, मुक्ति निरादर भगति लुभाने।
भगति करत बिनु जतन प्रयासा, संसृति मूल अविद्या नासा।।
भोजन करिअ तृपिति हित लागी, जिमि सो असन पचवै जठरागी।
असि हरि भगति सुगम सुखदाई, को अस मूढ़ न जाहि सोहाई।।'

कोई करोड़ों उपाय करे, जल-थल के बिना नहीं रह सकता। इस प्रकार, हे गरुड़ ! तू यह समझ कि मोक्ष हरि-भक्ति को छोड़कर दूसरी जगह नहीं रह सकता है। इसलिये सयाने भक्त कहते कि भक्ति करते हुए, बिना जतन के संसृति (जन्म-मरण) का आप ही नाश हो जाता है। प्राणी भोजन तृप्ति के लिये करता है। पर उसको पचाती कोई और ही शक्ति (जठराग्नि) है। यहाँ भक्ति आप ही पचती है। यह भक्ति-धर्म की महिमा वर्णन की है।

'सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धान्त विचारि।।'

हे गरुड़ ! सेवक, सेव्य-भाव के बिना तो संसार तरा नहीं जाता। उपासक और उपास्य— ऐसा सिद्धान्त मान कर राम का भजन करे।

'राम भगति चिन्तामनि सुन्दर, बसइ गरुड़ जाके उर अंतर।
परम प्रकास रूप दिन राती, नहिं कछु चहिअ दिया घृत बाती।।
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा, लोभ बात नहीं ताहि बुझावा।
प्रबल अविद्या तम मिटिजाइ, हारहिं सकल सलभ समुदाई।।
खल कामादि निकट नहिं जाहीं, बसइ भगति जाके उर माहीं।
गरल सुधासम अरिहित होई, तेहिमनि बिनु सुख पाव न कोई।।'

मोह और लोभ की हवा, भक्ति की ज्योति को नहीं बुझा सकती। कीट-पतंगा बहुत आते पर गिर-गिर कर समाप्त हो जाते (भक्ति रूपी ज्योति पर मोह लोभ आदि के कीट पतंगे गिरकर समाप्त हो जाते हैं)। तो राम-भक्ति मन बसे, तो सब बाधायें दूर हो जाती हैं। जिनके हृदय में भक्ति निवास करती है, विष इसके समीप अमृत बन जाता है और शत्रु, मित्र। राम-भक्ति की चिन्तामणि बिना, कोई मनुष्य सुख नहीं पा सकता।

चिन्ता, शोक ये सब मानस-रोग हैं। ये रोग शरीर को दुर्बल बनाते हैं। राम-भक्ति का चिन्तामणि रत्न जिनके मन बसे, दुःख का लवलेश उनको नहीं होता। भक्ति से परलोक तो कल्याणमय बनता ही है, पर इस लोक में भी यह कल्याणकारी है। ब्रह्मा, शुक, नारद आदि जो भी मुनि ब्रह्म के ज्ञाता हैं, उन सब ने यह बात वर्णन की है। श्रुति, पुराण सब कहते हैं कि राम-भक्ति बिना कल्याण नहीं। कछुवे की पीठ पर भले ही बाल उग आवें, वन्ध्या का सुत भले ही किसी को मार दे, आकाश में भले ही अनेक प्रकार के फूल खिल जावें, मृगजल के पीने से भले ही प्यास बुझ जावे, तो भी जो जीव हरि प्रतिकूल है, वह सुख नहीं पाता। पहली बार मैं मुल्तान को जा रहा था। बड़े दिनों की बात है। मैंने देखा आगे सड़क पर पानी नजर आ रहा है। मृगतृष्णा ग्रन्थों में पढ़ी थी, पर इसका स्वरूप नहीं देखा था। तारकोल की सड़कों पर भी मृगतृष्णा दिखती है। पास बैठे मुसलमान को कहा कि कौन दरिया आ गया है। उसने फारसी का नाम लिया, जो मृगजल के लिये था। चाहे खरगोश के सींग किसी को दीख पड़ें या उग आवें, अंधेरा सूरज के तेज को मिटा दे, परन्तु तो भी राम-विमुख जीव सुख नहीं पाते। भले ही पानी के मथने से घी आ जावे, रेत से तेल प्राप्त हो जावे, परन्तु हरि-भजन के बिना संसार नहीं तरा जा सकता, यह सिद्धान्त अखण्डित है।

तीर्थों पर लोग पाप धोने को दौड़ते हैं। कई कठोर व्रत, जोग, दम करते हैं। नाना प्रकार के कर्म-दान, जप, तप करते हैं। दया, ब्राह्मणों-गुरुजनों की सेवा, विद्या, विनीतता आदि लोग करते हैं। शिव जी पार्वती को कहते हैं, कि जहां तक यह साधन आदि वेद में वर्णित हैं, इन सब का फल हरि-भक्ति है। परम साधन राम-भजन है, यह समझना चाहिये। यह करना परम-पथ पर

चलना है। यह जो हमारा ध्येय है, इससे मानस-जगत आप अच्छा बनता है। अपने आप अन्दर से जो बात पैदा होती है, वह अच्छा बनाती है। बहुत मोटे कपड़े से भले ही आदमी मोटा लगने लगे, पर मोटापन कुछ और है। जिस लड़के की पाचन-शक्ति ठीक है, उसके अन्दर सूखी रोटी भी जा कर उसको मोटा कर दे, पर बाहर मलाई भी लपेट दो, तो कुछ बात नहीं हुई। मालिश भी बहुत अन्दर तक नहीं जाती। बड़े-बड़े जेलखाने हैं। उनमें चोर, छली, जेबकतरे भी होते है। वहाँ जेल के अन्दर वह चोर भी चोरी नहीं करता, क्योंकि जेल का बड़ा प्रबन्ध होता है। पर बारह साल की कैद काटने के बाद भी बाहर आने पर, वह चोर का चोर ही रहता है। सुधार के उपाय और होते हैं, अन्धेरी कोठियों में डाल देने से भलाई नहीं आती। भलाई तो चित्त पर चोट लगने से अन्दर से जागृत होती है। बाहर के कानून कायदे अच्छा नहीं बना सकते। सोना यहां व सभी देशों में बहुत पकड़ा जाता है। अन्दर जिसका बदल जावे, वह सोने की खान पर भी बैठ कर नहीं उठाता। बाहर से किसी को क्लोरोफार्म सुंघा दो, तो वह कैसे जगे ? जिसमें चेतनता है, वह ही जगाया जा सकता है।

रामचन्द्र जी कहते हैं, भक्ति-हीन विरंचि (ब्रह्मा) भी क्यों न हो, वह मुझे इतना प्रिय नहीं, जितना भक्ति वाला प्राणों से भी प्यारा, यद्यपि वह कितना भी नीच हो।

राम-कृपा

राम-कृपा जो है यह बड़ी ऊंची चीज़ है। पाप दोष सब इससे नष्ट होते हैं। गरुड़ को काकभुशुण्डि कहता है कि मैं अपना अनुभव कहता हूँ कि बिना भजन क्लेश दूर नहीं होता। राम की कृपा के बिना उसकी प्रभुता नहीं जानी जाती। उसकी कृपा बड़ी ऊंची चीज़ है। बिना उसकी प्रभुता जाने, उसकी प्रतीति नहीं होती और प्रतीति के बिना प्रीति नहीं होती। किसी की महिमा को जाने, तो ही उसमें प्रीति होती है।

बिना गुरु के क्या ज्ञान ? ज्ञान क्या बिना वैराग्य के हो सकता है ? क्या सुख हरि-भक्ति के बिना मिल सकता है ? क्या सहज संतोष के बिना विश्राम मिल सकता है ? चाहे कोई करोड़ों यत्न कर पच-पच कर मरे, क्या जल के बिना नाव चल सकती है ? बिना सन्तोष के कामनायें नहीं नष्ट होतीं। जिसमें

कामना है, उसको सपने में भी सुख नहीं। क्या कामना हरि-भजन के बिना मिट सकती है ? क्या पृथ्वी के बिना कोई चीज़ उग सकती है ? क्या कोई आदमी आकाश के बिना अवकाश (स्थान) को पा सकता है ?

मनुष्य तो इतना बढ़ गया है कि उसे रॉकेट और कृत्रिम उपग्रह का ज्ञान हो गया है। इन रॉकेट आदि का आधार तो अग्नि से विस्फोट ही है। भेद की बात ईंधन में है। आकाश में भी अवकाश (स्थान) है। श्रद्धा बिना धर्म नहीं होता, न ही कोरी बातों से होता है। पृथ्वी के बिना कोई वस्तु नहीं होती। क्या तप के बिना तेज का विस्तार हो सकता है ? क्या जल के बिना कोई रसीली चीज़ हो सकती है ? क्या शिष्टाचार ज्ञानी लोगों के सम्पर्क बिना हो सकता है ? क्या आत्म-सुख के बिना मन कभी स्थिर हो सकता है ? क्या हवा के बिना स्पर्श हो सकता है ? इसी प्रकार हरि-भजन के बिना जन्म-मरण के भय का नाश नहीं हो सकता। बिना विश्वास के भक्ति नहीं। उस भक्ति के बिना कृपा नहीं होती। राम-कृपा मांगनी चाहिये। इससे मन शान्त होता है। इसी से वासना मिटती है और शुभ आता है।

आगे रामोपदेश हैं। वे छः हैं। समय-अभाव के कारण वे तो वर्णन नहीं हो सकते। वाल्मीकीय रामायण से हमने कोई वर्णन नहीं दिया।

परिशिष्ट सुविशिष्ट है, प्रकरणों का सार।
सन्त कवि की रचना से, संग्रह सहित विचार।।
मननशील जन के लिये, है उपयोग सुरूप।
जी जीवन में ज्योति दे, भर कर भाव अनूप।।
रामायण कलि कमल में, है सुगंध मकरन्द।
हो नहीं कभी मन्द यह, याचे सत्यानन्द।।

आप राम-नाम की आराधना करते हो। इसमें भावना बनानी चाहिये। देव भावना में रहता है।

साधना-सत्संग, हांसी (वीर-भवन),
दिनांक 21.11.1957,
समय प्रात: 11.00 बजे

□□

अमृतवाणी

(स्वामीजी के अनुभूत वचन)

अमृतवाणी में राम-नाम की महिमा गाई गयी है। राम-नाम मेरे रग-रग में बस गया है। मुझ में रमा हुआ है। इसके सम्बन्ध में, जो-जो मेरी अनुभूतियाँ हैं, जो-जो भाव उठते गये, उन्हें लिखता गया। उन्हें मैंने स्वयं अनुभव किया है।

नाम की महिमा मेरी अपनी अनुभव की है। इसकी प्रत्येक पंक्ति में राम की महिमा बसी हुई है। मुझे इसकी रचना से बड़ा लाभ हुआ। मैं समझता हूँ, जो भी भक्ति पूर्वक पढ़ेगा, उसे भी लाभ होगा। उस पर राम कृपा होगी। मैं स्वयं इसका पाठ करता हूँ और भाव-मुग्ध हो जाता हूँ। इसकी रचना तो राम की प्रेरणा से हुई। जो इसे पढ़ेगा, उस पर राम कृपा होगी, जैसी मुझ पर हुई।

□□

ईश्वर सत्य-स्वरूप है

(भक्ति-प्रकाश)

परमेश्वर सत्-चित्-आनन्द है, यह हम कहते हैं। यह अनादि भाव है। यह प्रकरण मनन करने का है। ईश्वर के स्वरूप, सिमरन मनन करने चाहिये। इसी प्रकार आत्म-स्वरूप हैं। यह दोनों (भक्ति-प्रकाश में ईश्वर-स्वरूप पृष्ठ 103-122 तथा आत्मिक-भावनायें 183-195) बड़े आवश्यक हैं।

सत्य किसे कहते हैं ? यह पहले पद में कहा गया है। भक्ति-प्रकाश के 'राम सत्य-स्वरूप है' प्रकरण में वस्तु का जो होनापन है और शुद्ध स्वरूप है, वह भाव वाली वस्तु है।

परम सत्ता वाली वस्तु शुद्ध स्वरूप है। वह वस्तु, भाव (होने) के रूप में है। इसका स्वरूप सत्य है, जो सत्य कही गई है। जैसा है, वैसा ही वर्णन है। बना कर नहीं कही गई। उसमें झूठ अंश भी नहीं है। अखण्ड, जिसके खंड-टुकड़े नहीं हो सकते, ऐसा राम भगवान का स्वरूप है। सद्वस्तु अखण्ड है– इसका टुकड़ा भी नहीं होता है–वस्तुपन ही इसमें सत्य है।। 1 ।।

तीन लोक, तीन काल जिसकी नास्ति न हो– ऐसी सत्ता जो है, वह एक रस है। तीनों लोकों में ज़िसकी कभी कमी नहीं होती, वह सर्वदा विराजमान है। उसका अभाव कभी नहीं होता। उसकी सत्ता-अस्तित्व एक रस ही रहती है। इसी से सत्य और सद्भाव कहा गया है।। 2 ।।

जो घटने-बढ़ने और परिवर्तन के बिना है, जिसमें विकार नहीं है, जिसका आकार नहीं बदलता, जो नाश रहित वस्तु है, उसी को सत्य समझना चाहिये अर्थात् वही श्री भगवान का स्वरूप है।। 3 ।।

जिस वस्तु में परिवर्तन नहीं और किसी दूसरी वस्तु की मिलावट नहीं, वही वस्तु सत्य है, ऐसा ज्ञानी लोग कहते हैं। श्रीराम, होने से रूप में पूर्णतया बाधा-रहित है। इसका होना एक-रस, अन्त-रहित और बहुत ज्यादा है।

श्रीराम, होने में पूर्णरूप–इस का होना एक रस–जैसे सूर्य सदा ही प्रकाश वाला। अगाध– जिसकी थाह न हो।। 4,5 ।।

श्रीराम सब सत्यों का आधार है और साक्षात् सत्य का ही रूप है। निरपेक्षित– अपेक्षा रहित, किसी के सहारे से रहित है। हम जो भी कार्य करते हैं, किसी अपेक्षा, सहारे से करते हैं। किसी न किसी पर अवश्य निर्भर होते हैं, चाहे प्रकृति पर ही निर्भर हों, परन्तु भगवान किसी पर भी निर्भर नहीं, अपितु अपेक्षा-रहित सत्ता है।। 6 ।।

श्रीराम की सत्ता हर स्थान पर विकारों से रहित है। उसके आगे कोई नहीं। वह सदा शुद्ध है। उसका रूप ऐसा अपार है, जिसका अन्त नहीं ।।7 ।।

जिसका नाम तथा रूप है, उसका काल भी अवश्य आता है। जो काल है वह नाम-रूप में ही है जैसे गुलाब के फूल खिले और फिर मुरझा गये। किसी वस्तु का नाम और युक्त–जो दो मिलाकर बने, वह वस्तुओं के मिलने से बनी है, चाहे वह क्षणिक ही हो, परन्तु दयाल इन दोनों बातों से दूर है। उसका न काल ही है, न संयोग ही।। 8 ।।

हम कार्य हैं, जन जन्य हैं। जिसको पैदा किया हो उसे जन्य कहते हैं। प्रत्येक कार्य हम हाथ से करके दिखाते हैं। कोई वस्तु बनाई हो उसे जन्य कहेंगे। उसका नाश अवश्य होता है। जो जन्मा है उसका अन्त भी है। कार्य जो है वह पैदा हुआ है। जो चीज़ किसी से बनी वह कभी न कभी नष्ट होगी। राम किसी कारण से बना हुआ नहीं है। श्रीराम कार्य रूप नहीं है। वह शुभ सत्य प्रकाश है। प्राणी को कार्य कहा गया है, क्योंकि वह धीरे-धीरे तीनों अवस्था को प्राप्त करता है। किसी दिन उसका अन्त भी आता है।। 9 ।।

परन्तु जो एक ही अवस्था में हो, अचल हो, उसे निश्चल कहा गया है। वह परिवर्तन से भी रहित है। ईश सत्ता है। सब सच्चाइयों का घर है, पूर्ण रूप से सत्य है। ऋषि मुनि कहते हैं कि श्रीराम परिवर्तन आदि से तथा अन्त और आदि से रहित है। उनका पद अमृत है, मृत्यु से रहित है।। 10, 11 ।।

श्रीराम के सत्य-स्वरूप में काल तथा देश नहीं है। वह हर स्थान में है। किसी विशेष स्थान में नहीं बंधा, उनका स्वरूप अद्वैत, अद्वितीय है। उन समान

दूसरा कोई नहीं है, वह सत्ता सनातन है।।12।।

श्रीराम में कोई अन्तर नहीं है। राम के समान और कोई भी नहीं है। उनकी सत्ता सनातन पुरानी-पुरातन है। सब का ठौर-ठिकाना है। उनकी सत्ता अंशांशी भाव—दो अंशों के मिलने के भाव से रहित है। जैसे तार-तार मिल कपड़ा बना है— राम बहुत परमाणु मिल कर नहीं बना। राम सब की टेक है, रक्षा है, सहारा है और कार्य तथा कारण से रहित है। जिसके द्वारा कार्य किया गया, वह कारण है और जो किया गया है वह कार्य है।। 13, 14।।

किरण समूह जैसे सूर्य से जुड़ा रहता है, उसी प्रकार सब सत्ता राम में ही समाई रहती हैं। सारी सृष्टि माला के समान है। उसका सूत्र राम शोक-रहित है। सारे- लोक उसमें पिरोये शोभा पाते हैं।।15, 16।।

सब सत्यों के सत्य राम ! तुम्हीं सब के आधार हो, मुझे अपने सत्य-स्वरूप में प्यार दीजिये।। 17।।

यदि इन प्रकरणों को मनन किया जाये, तो ज्ञान दृढ़ होता है और भक्ति भी दृढ़ होती है। जितना कोई मनन करे, उतना ही भाव उस में आता जावेगा। तो यह मनन करें, तो यह दृढ़ीभूत हो जायेगा। मुझे यह हर्ष है कि आप सब भजन में लीन हुए। भजन में लीनता रस पैदा करती है। तन, मन, वचन से लीनता हो, तो लोगों पर बड़ा प्रभाव होता है।

हम ईश्वर को ज्ञान-स्वरूप समझते हैं, तो यह मनन करने की बात है। मनन करके जब हम कहें, तो ग्रन्थ के पढ़ने का लाभ और फिर रुचि उत्पन्न होती है।

इस पांच तत्व के पुतले में क्या है ? और भगवान क्या है ? यह भी हमें जानना चाहिये।

साधना-सत्संग हांसी,
प्रात:11.00 बजे,
दिनांक 21.11.1955



आत्मिक-भावनायें

(भक्ति-प्रकाश)

दैनिक स्वाध्याय के लिये पाठ्य-पुस्तकों का सुझाव देने की प्रार्थना करने पर महाराज जी ने कहा—अमृतवाणी का नित्य पाठ करना चाहिये। भक्ति-प्रकाश ग्रन्थ में आवश्यक बातें-साधन, साध्य, साधकों के सम्बन्ध में विस्तार से अपने अनुभव के आधार पर लिखी हैं। भक्ति-प्रकाश का पाठ करने वालों को 'आत्मिक-भावनायें' शीर्षक के अन्तर्गत—1. सत्य-भावना, 2. ज्ञान-भावना, 3. सुख-भावना, 4. शक्ति-भावना, 5. पवित्र-भावना, 6. शान्त-भावना, 7. प्रिय-भावना, 8. सफल-भावना, 9. मनोबल-भावना, 10. वैद्युत-भावना, 11. अनन्त-भावना, 12. अहं-भावना आदि का पाठ करना, मानो मन को अवलम्बन देना है। अपने आपको प्रबुद्ध करना है। इसका मननपूर्वक पाठ करें। मैं क्या हूँ ? यह आत्मिक-भावना में दर्शाया है। ईश्वर सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है। भगवान का भजन करना चाहिये।

जो इन आत्मिक-भावनाओं का जितना मनन करेगा, उतना ही मनोबल बढ़ेगा, कार्यों में सफलता मिलेगी। उसका आत्म-भाव जग जायेगा। इन्हें नित्य मनन करना चाहिये। यह है आत्मा का सद्भाव। एक होता है नेति-नेति का तरीका, जो वेदान्त का है, किन्तु यह उत्तम नहीं। वेदान्त में अपने को ब्रह्म मानते हैं तथा यह सब दृश्य-मात्र अर्थात् जो दीखता है, वह सब मिथ्या है, ऐसा मानते हैं। यह तो निराशावाद है। तुम्हें निराशावादी नहीं होना चाहिये। अपितु आत्मिक-भावना को दृढ़ करो। मोह में क्लेश है।

सत्य-पालनकर्त्ता के सब मनोरथ पूर्ण होते हैं। कोई विघ्न नहीं आता। नाम-जप की प्रार्थना द्वारा आत्मशक्ति को जगाओ, उससे सब प्रकार कल्याण हो जायेगा।

राम-राम सुमन्त्र से, कर्म दिये सब कील।
राम-राम के पाठ ने, पाप दिये सब पील।।
राम-नाम के जाप ने, मैं को दिया जगाये
अहं-भावना शुद्ध ने, अमृत दिया पिलाये।

श्रावणी-सत्संग, हरिद्वार,
दिनांक 20 जुलाई 1959
प्रातः 11.00 बजे
❑❑

सेवा-भाव

सेवा

मानव-जन्म दो प्रकार से सफल होता है। इस संसार में व्यक्ति, जहां कोई काम करता है, वहां भला हो। अच्छे विचार वाला और कर्म-धर्म में पक्का हो। यह एक प्रकार है। पशुओं में ये बातें नहीं होती। बुद्धि का विकास केवल मनुष्य में है। यह मनुष्य को बहुत ही अच्छा बनाता है।

वही जन्मा है, जिस के जन्म लेने पर किसी जाति और मनुष्य की उन्नति हुई। खेती वही अच्छी है, जो कि फली है, जिसको फल लग गया। जन्म वही अच्छा, जिस में सेवा का फल लगा। नहीं तो यह जन्म-मरण का चक्कर तो चलता रहता है। यह अनिवार्य बात है।

कौन मनुष्य है जो अपने लिये नहीं जीता। पक्षी बहुत अच्छे अपने घोंसले बनाते हैं। खरगोश का बिल ऐसा अच्छा कि दूसरा जानवर पहुँच नहीं पाता। यह तो सब में पाया जाता है। यदि मनुष्य भी ऐसा ही हुआ कि अपने ही काम में लगा रहा, तो पशुओं से कोई अच्छा जन्म नहीं हुआ।

वही आदमी जीता है, जो भलाई के लिये, दूसरे के हित के लिये जीता है। मनुष्य जन्म धारण करने से कोई बड़ा लाभ नहीं, पर जीना तो वही अच्छा है, जो दूसरों के हित में काम आवे। इस लोक का जीवन भी वही अच्छा, जो भलाई का है, नेकी का है। यह दूसरा प्रकार है।

एक बार किसी गांव से बहुत सी स्त्रियां मिलकर किसी तीर्थ स्थान को गईं। एक ने कहा कि तीर्थ स्थान पर आकर कुछ सुधार करो– कई स्त्रियां यहां आकर रहती हैं, उन की सेवा करना। तो कुछ ने कहा कि हम तो स्नान को ऊँचा मानती हैं। उसने कहा कि स्नान तो मेंढक भी, मछली भी करते हैं। वह भी करो, यह भी करो। तो उन्होंने एक मण्डली बनाई और स्वयं-सेवक संघ को सहायता दी। उन्होंने निश्चय किया कि भूली-भटकी स्त्रियों को यहां लायेंगे, उनकी सेवा करेंगे। मेले के पश्चात् उन को उनके घरों में पहुंचा देंगे।

एक बुढ़िया जिसे वे घाट से उठाकर लायीं थीं, बड़े दुःख, बड़े क्लेश में थी। बुढ़िया कहने लगी, पीड़ा जो है, वह अब कैसे जावे ? दवाई आपसे मिल रही है। वह यत्न तो आप कर रहे हैं। मेरा बाहर का कोठा तो क्षीण हो गया है। इस कारण ही धक्कम-धक्का में गिर गई। पर मैं अन्दर को शक्तिवाला बनाये रही। वे स्त्रियां उसे माई-माई कहें और सेवा करें। वे सेवा करें, तो उन का नाम भी होवे। कुछ दिनों के अन्दर वह स्वस्थ होकर भजन गाने लग गई। डॉक्टर कहने लगा, मैं तो समझता था कि यह मर जावेगी। वह बोली, तुम्हारी दवाई से बाहर के रोग और मेरी दवाई से अन्दर के रोग ठीक हुए। मुझे उसका भरोसा है। अन्त में यह दीवा तो (देह रूप दीवा) किसी न किसी दिन बुझ जावेगा। इस झोंके से नहीं तो आंधी में। पर अन्दर के दीवे को जगाओ। डॉक्टर ने उन स्वयं सेविकाओं के बारे में मेले के बड़े अफसर को बताया और सब लोगों ने माना कि वास्तविक तीर्थ-स्नान तो सेवा में है।

अपने लिये जीना, केवल अपने तन का पोषण करना, इस में कोई महत्व नहीं है। जो गेहूँ के ऊपर फल लगता है, उसमें भी कीट और शाक पत्तों में भी कीट होते हैं। तो यह समझना कि हम यह चीज़ें खाते हैं, इसलिये इसमें कोई बड़प्पन नहीं। किसी ने यह पूछा कि तुम्हें लोग बड़ा अच्छा कहते हैं। धन कोई है नहीं, न बिस्तर देने को है। साधारण कपड़ों में गर्मी-सर्दी काटते हो, पर लोग अच्छा कहते हैं। मुझे कहना है कि मैं जैसा हूँ तुम्हारे सामने खड़ा हूँ। मैं मित्रों को नगर में मिलता हूँ। मेरी आजीविका चल जाती है। अधिक की मुझे इच्छा नहीं। फिर जो समय मिलता है, उसमें फिर-फिराकर यह देखता हूँ कि कौन आदमी है जो हरि-साधना का अधिकारी है। जो धन भगवान ने मुझे दिया है, उसे मैं अन्यत्र देता फिरता हूँ। सेवा-भाव से देता हूँ। जिस प्रकार अपने बन्धुओं के लिये लोगों में प्रीति होती है, उसी प्रकार सब के प्रति मेरी प्रीति है। तुम्हारे नगर में कितने आदमी हैं, जिनको पूरा अन्न नहीं मिलता ? मांगने वाले तो बहुत हैं, पर अच्छे रहने वाले, जिन के पास पूरा अन्न नहीं है और वे मांगते हैं नहीं, उनको ढूंढ़ निकालता हूँ। उनका किसी वृत्तपत्र में समाचार नहीं देता।

चुपचाप उनको ढूंढ़कर स्त्रियों की सभा को बता देता हूँ। वे आये वर्ष हज़ारों रुपया ऐसे काम पर खर्च करती हैं। तो ऐसे काम ही करता हूँ। मैं किसी सभा में नहीं जाता। न मेरे कानों में रुचि है कि मेरी प्रशंसा करें। उसने कहा तुम बड़े ज्ञानी भी माने जाते हो। शास्त्रों को भी जानते हो। मैंने कहा, वह तो मैं अपने लिये करता हूँ। तुमने किससे पूछा था ? उसने कहा एक तुम्हारे मिलने वाले ने बताया। तो मैंने कहा कि मैं तो मन भर में तोला भर हूँ।

मुझे कहना यह है कि परमार्थ का जीवन बड़ा अच्छा होता है। इस से बड़ा लाभ है। परमार्थ का जीवन नहीं, तो अनर्थ, व्यर्थ कर्म होते हैं। बाग में से निकले तो छड़ी मारी और फूल गिरा दिया। एक फूल यदि टोपी पर रख भी लिया, तो कौन सी बात। चलते-चलते बैल को लाठी मार दी। अपने आप को कोई लाभ नहीं और फिर अनर्थ, अन्याय में ही रहना चाहें। छोड़ने योग्य तो ये कर्म हैं। किसी की गाड़ी पर बालक पत्थर फेंकते, तो यह अबोध हैं। ऐसे बहुत कर्म मनुष्य से हों, तो बड़ा समय व्यर्थ बातों में जाता है। घर के काम-काज करने वाली, यदि वे बचे समय को यूँ ही दूसरों की बातों में, निन्दा में नष्ट करती हैं, तो वे भले ही इसे अच्छा समझें, पर ऐसे काम बड़े व्यर्थ हैं। यह सब देशों में हैं। विदेश में भी दो-दो घण्टे ऐसी व्यर्थ की क्रीड़ा, होती है। यह मनुष्य के जीवन को अच्छा नहीं बनाती, खराबी लाती है। एक जुए का शौकीन दिवाली की रात को जुआ खेलना चाहे। स्त्री के आभूषण लेने के लिये घरवालों को धमकी देता, यदि आभूषण आदि बेचने के लिये नहीं दिये तो, नहर में डूब जाऊँगा, पर डूबा न करे। ऐसे ही एक बालक मां को डराये कि नहीं मानोगी, तो मैं छत से कूद पड़ूँगा। एक दिन उसका मामा आ गया। मामा ने कहा कि चल मैं तुझे छत से गिरा दूंगा। तू गिरने की धमकी ही देता है, गिरता तो है नहीं। तो कहने लगा, न जी, न जी, ऐसे करने से तो मैं मर जाऊँगा। व्यर्थ, अनर्थ कर्म बहुत करते हैं। ऐसे ही औरों पर मिथ्या-दोष लगाना। असैम्बली में भी कोई बात न सूझे, तो दूसरों पर दोष लगाने लग जाना। हिसार, रोहतक के जिले में हरेक जो निर्वाचित हो गया, उसके विरुद्ध याचिका दायर करता है– इलैक्शन

पिटीशन। उसमें भी हारता है। एक झूठ पर और झूठ। दूसरों की भी झूठी गवाही दिलवाता है।

तो वे अनर्थ कर्म, उन से झूठ, माया बहुत बढ़ती है। ऐसे जितने कर्म हैं, दूसरों को हानि पहुँचाने के, दुराचार को बढ़ाने के, ऐसे सभी अनर्थ और व्यर्थ कर्म छोड़ने के हैं। इन कर्मों के करने से पतन होता है। परमार्थ के कर्मों से यह लोक भी अच्छा और परलोक भी अच्छा होवे।

साधना-सत्संग, हांसी (वीर-भवन),
दिनांक 23.11.1957,
समय अपराह्न 3.30 बजे



व्यवहार

(क)

पंचरात्रि में जो प्रतिदिन प्रातः सात बजे से ग्यारह बजे तक का समय है। उसका सदुपयोग करना चाहिये। जाप अथवा स्वाध्याय करते रहना चाहिये। पांच मिनिट में एक हज़ार नाम-जप की संख्या होनी चाहिये।

सत्संग में साधक सीखने के लिये आते हैं। सत्संग में आने का लाभ तभी है, जब यहां से वापस जाकर भी नियम से रहें। यहाँ तो अनुशासन से रहना ही चाहिये। यदि किसी में क्रोध है और उसने क्रोध को नहीं जीता, तो सत्संग में आने का कोई लाभ नहीं। गन्दे घर में रहना तुम भी पसन्द नहीं करते हो, तो श्रीराम आपके मलिन हृदय में कैसे रह सकते हैं ? जहाँ क्रोध होता है, वहां मैल होता है। मैली आत्मा में राम कैसे आ सकता है ? राम और क्रोध एक साथ नहीं रह सकते। अन्तःकरण कपट-रहित होना चाहिये।

मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं– उत्तम, मध्यम तथा अधम। अधम मनुष्य का वैर पत्थर की लकीर के समान होता है, मध्यम का बालू की लीक की भाँति और उत्तम का जल की लीक के समान होता है। इसी प्रकार उत्तम जन की प्रीति पत्थर की लकीर की भाँति, मध्यम की प्रीति बालू की लीक की तरह और अधम की प्रीति जल की लीक की भाँति होती है।

जो जन परमार्थ को व्यवहार में नहीं लाते, जो अपने जीवन में नहीं बसाते, वे अपने को ही नहीं भगवान को भी धोखा देते हैं। अपने चरित्र को बनाना चाहिये। साधक में सत्यवाणी-सत्य वचन विशेष होना चाहिये।

साधना-सत्संग, दिल्ली,
दिनांक 4.4.1955,
समय प्रातः 11.00 बजे

(ख)

मनुष्य को अपने जीवन को संयमी बनाना चाहिये। अहंकार को दूर रखना चाहिये। मान नहीं आने देना चाहिये, उससे साधना में बाधा आती है। विनय बहुत आनी चाहिये। मान को विनय से और क्रोध को प्रीति से जीता जा सकता है। मान और क्रोध को जीतने का और कोई उपाय नहीं है। जब तक विनय, प्रीति और सेवा नहीं तब तक साधना चलती नहीं। उसमें वे बाधक हो जाते हैं। अतः क्रोध को प्रीति से, मान, अहंकार को विनय और सेवा से जीतना चाहिये। सेवा घर का श्रृंगार और सत्संग की शोभा है। बड़ा वही जो बड़ा सेवक हो। जो सेवक होगा वही निरभिमानी होगा। गोस्वामीजी में भक्ति और सेवाभाव श्रीराम के जीवन से आये। जैसे श्रीराम का भील-भीलनी से मिलना, निषाद को गले लगाना, उनकी सेवा स्वीकार करना, आदि। उदाहरणस्वरूप—गोस्वामी तुलसीदासजी का श्रीनाभादासजी से जूते में भोजन मांगना।

साधना-सत्संग, दिल्ली,
दिनांक 5.4.1955,
समय प्रातः 11.00 बजे

(ग)

साधकों में विशेषता होनी चाहिये। वृत्तियों में भी उबाल आता है जैसे दूध आदि में आता है। यदि माला जपने वाले साधकों में उबाल आता है तो उनमें विशेषता होनी चाहिये कि उबाल को कैसे शान्त करें ? एक-दूसरे को बढ़ता देखकर ईर्ष्या होती है। उसके पास इतना धन है, उसके पास इतना ऊँचा पद है, वह बड़ा है आदि। इस ईर्ष्या को दमन करने का उपाय यह है कि जिससे ईर्ष्या हो उसके गुणों की प्रशंसा करनी चाहिये, ईर्ष्या नष्ट हो जायेगी। साधक में ईर्ष्या डाह नहीं होनी चाहिये। उसे जीतना चाहिये। निन्दा भी बड़ा अवगुण है। नियम तोड़ो नहीं। झूठी सिफारिश मत करो। साधना-सत्संग में धन-कथा, जन-कथा और भोजन-कथा नहीं होनी चाहिये।

किसी आदमी तथा अन्न की निन्दा कभी नहीं करनी चाहिये। अन्न सामने आने पर चाहे जैसा हो, ठुकराना नहीं चाहिये और न छोड़ना चाहिये। चाहे कैसा भी भोजन हो, खराब हो या अच्छा हो, उसकी प्रशंसा करके खाना चाहिये। बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है, ऐसा कहकर खाना चाहिये। ऐसा करने से विशेषता आ गई। भोजन धीरे-धीरे, चबा-चबा कर खाना चाहिये। अधिक शीघ्र भोजन करने से मनुष्य अपने आपको धोखा देता है। वह अपने साथ, अपने शरीर के साथ, अपनी बुद्धि, दांत, आँतों और हृदय के साथ, अन्याय करता है। भोजन सामने आने पर क्रोध नहीं करना चाहिये। क्रोध भोजन में विष उत्पन्न करता है।

यदि घर में कोई अतिथि आये तो ठीक बात यही है कि घर का ही व्यक्ति, लड़का या लड़की, अतिथि के सामने भोजन की थाली लाये, नौकर के हाथ से नहीं रखवाये। यही एक हिन्दुत्व की बात है। इससे गृहस्थ-जीवन में सुन्दरता आ जाती है। भगवान कृष्ण ने स्वयं यज्ञ के अवसर पर साधुओं के पैर धुलाये थे।

पहले जो बरातें आती थीं, उनमें बिरादरी के लोग बरताते थे। इसमें जातीय संगठन और सौंदर्य था। लड़की के विवाह में लोग भोजन नहीं करते थे। बरताकर, घर जाकर भोजन करते थे। एक की लड़की सारे गांव की लड़की समझी जाती थी।

स्त्री-पुरुषों की निन्दा करना अच्छा नहीं। रावण जैसे कार्य करो और राम बनना चाहो, तो यह सम्भव नहीं। कोई काम लिया हो, तो उसे अच्छा करके बताओ। सत्संग में आने पर सीखना चाहिये। यह एक पाठशाला के समान है। निन्दा को प्रशंसा से जीतना चाहिये। इससे साधक अच्छा बनता है। किसी की निन्दा करना मुझे अच्छा नहीं लगता। वह अपना काम आप करे, जिसमें साहस हो वह उसे ठीक करे। जब आप में यह साहस नहीं कि भाई-बहन बन कर उसके चरित्र को सुधारें, तो उसकी निन्दा करके नस्तर लगाने से क्या लाभ ? सुधारक बनना चाहिये। मेरे सामने कोई उलझन भरी बात करता है, तो मैं उसे समझ लेता हूँ। यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती। मन की बात को छिपाना नहीं चाहिये। मेरे से कोई कुछ कह देता है तो मैं जानता हूँ कि सत्य कहां है ? यह छिपाने वाले को क्या मालूम ?

लोभ को जीतना चाहिये। धन मनुष्य को प्राणों से भी अधिक प्यारा है। दान करना लोभ को जीतना है। धन देना चाहिये। दीन, अनाथ और दरिद्र को धन या दान देना चाहिये। साधक को लोभ जीतना चाहिये। सफाई का ध्यान रखना चाहिये। अन्दर की सफाई का अधिक ध्यान रखो, इसलिये साधकों से कहता हूँ कि अपने को स्वच्छ रखो। साधारण मनुष्य से साधक में विशेषता होनी चाहिये।

साधना-सत्संग, दिल्ली,
दिनांक 6.4.1955,
समय प्रातः 11.00 बजे

❑❑

प्रार्थना

प्रार्थना -1

उपासना में प्रार्थना बड़ी चीज़ है। हम जो राम-नाम कहते हैं, यह भी प्रार्थना है। रात-दिन हम प्रकृति में रहते हैं, भौतिकवाद हम पर सवार है। इसलिये यह प्रार्थना बड़ी अच्छी चीज़ है। प्रकृति को आराधन करने से तो अन्ततः प्रकृति बलवान होवे, पर भगवान को याद करने से आत्म-जागृति हो जावे। इस का यह अर्थ नहीं कि आपकी संसारी यात्रा खराब हो जावे। इसमें न वैराग्य, न आडम्बर, न वह त्याग जिसको बहुत लोग त्याग कहते हैं। भक्ति-मार्ग में समझो, यह विचार करना कि यह भगवान के देव-द्वार का दास बनाने का मार्ग है। जितने महात्मा भक्ति वाले हुए हैं, उन्होंने अपने को भगवान का दास ही समझा है। हमारे इस युग में महात्मा गांधी बड़े आदमी हुए। यह देश डिक्टेटर शक्ति से काबू नहीं आ सकता था, किन्तु इसको आत्म-शक्ति ने उनके अधीन बनाया।

अध्यात्मवाद दूसरे देशों में भी है। कोई अभिमान नहीं कि दूसरे देशों में नहीं, पर यह बात सच्ची है कि यहाँ के लोगों ने आत्मा-परमात्मा को समझने की बहुत पहल की है। मेरा अपना अध्यात्मवाद तो एक विज्ञान की पद्धति पर है, बाकी दर्शनशास्त्र (Philosophy) कुछ और। दर्शनवाद में गहराई बहुत नहीं है।

मैं आपको यह कहना चाहता हूँ कि प्रार्थना बड़ी अच्छी चीज़ है और इससे बड़ा कल्याण होता है। मुझे हर्ष इसमें होता है कि यहाँ कोई न कोई इस बात की साक्षी देने वाला होता है। वे दूसरी लाखों वाली सभायें भी हमने देखीं हैं। जिनमें कहा गया तुम राम कहते हो, तो क्या होगा, पर मैं अपने भाइयों से बोलूँ, तो वे कहेंगे कि राम-नाम में तो बड़ा आनन्द आता है। यदि कोई एक कह दे कि स्वरूप उसने देखा, तो देखने वाले लड़कियाँ भी और लड़के भी, बूढ़े भी और बड़े भी। श्रीपरमेश्वर का रूप बनाना हमारा अपना काम है—ज्योति का आकार है। यह क्यों बतायें कि वृन्दावन का स्वरूप हो और वही दिखे। शास्त्रों

ने भी यही कहा कि यह तो उसकी इच्छा है। 'यह तो तू जानता है कि किस रूप में तू दर्शन देना चाहता है ?' हम आह्वान करते हैं। किसी पर शान्ति के रूप में, किसी पर अवतारों के स्वरूप में और किसी पर ज्योति के रूप में भगवान प्रकट होता है। मैं तो अपने भाइयों को यह कहना चाहता हूँ कि आह्वान करने से इतना लाभ है। जिससे इतने निमग्न हो जाते हैं।

लोग तो यही समझते हैं कि जो ब्रह्म को मानता है, वह गृहस्थ कैसे हो सकता है ? जितने आप के अवतार हुए, वे सब गृहस्थ थे और शस्त्रधारी थे। यह बात जो मैं कह रहा हूँ समझ कर ही कह रहा हूँ। हमारे साथियों में बीस हों, उनमें पांच तो जानने वाले होने ही चाहिये और यह है कि आदमी अपने को बहुत बढ़ाता है। मैंने तो कहा, 'भगवान के दास।' दास होने का भाव रखना चाहिये। अपने को बहुत बड़ा नहीं समझना चाहिये। श्रीरामचन्द्रजी के पास ऋषियों ने आकर कहा कि हम याचना करते हैं 'आप हमारे नाथ हैं, राजा हैं। हमारा हनन होता जाता है। राक्षस क्रोध करके हमारे कामों में बाधा डालते हैं। हमारी रक्षा करो। अर्थ के प्रयोजन से हम ने यह निवेदन किया है।' शरभंग आश्रम में यह बात हुई। इस प्रकार ऋषियों ने श्रीरामचन्द्रजी को सम्बोधन किया। इसके उत्तर में महाराज रामचन्द्र जी ने कहा कि आप मुझे कहते हैं कि आप नाथ हैं। मैं तो कहता हूँ कि आप मुझे आदेश करो। पिता की आज्ञा पालन करने मैं वनों में आया हूँ। मैं मुनियों की सेवा भी करता हूँ।

द्रुपद ने कहा हम सभा लगाना चाहते हैं। पाँडवों के अधिकार छीने गये हैं। तो महाराज कृष्णजी ने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया। कहा कि मैं तो विवाह पर आया हूँ। आप गुरु के समान हो, आप सभा करें। जब सब को बुला लेवें, तो मुझे भी सूचना देना। जिनकी आप पूजा करते हैं वे भी दूसरों को कहते हैं कि हम तो दास हैं।

हमने सोचा था कि अखण्ड जाप का प्रयोजन क्या होना चाहिये ? तब प्रयोजन पद निर्माण हुआ–

'वृद्धि आस्तिक-भाव की, शुभ मंगल संचार।
अभ्युदय सद्धर्म का, राम-नाम विस्तार।।'

यह उद्देश्य है– यह निष्काम कामना है। पहली बात है कि आस्तिक भाव की वृद्धि हो और शुभ मंगल का संचार हो। इसमें आप का अपना शुभ मंगल भी आ गया। सब संसार का शुभ मंगल, इसमें आप भी आ गये। सद्धर्म का प्रकाश हो। विशेषतया राम-नाम का विस्तार हो। संसार में अपने को मिलाना। दो-चार बार यह मंत्र पढ़ो। पढ़कर जप आरम्भ कर दो। इस संसार का काम भी एक गुण है। हमारा अस्तित्व इसी के बीच आ गया। बाहर हम रहे नहीं। ऐसी निष्काम प्रार्थना और क्रोध भी शान्त हो। आप अपने किसी भी मिलने-जुलने वाले से विरोध नहीं करते, द्वेष नहीं करते। आप न्यायशील हैं और सत्य का पालन करते हैं। फिर आप किसी जन के उद्धार की प्रार्थना करें। जीवन की ऊँची कला सुधर जावे, तो पता लगेगा कि वह प्रार्थना पूर्ण हुई। पर लड़ाई की प्रवृत्ति से किसी का बिगाड़ने की प्रार्थना करने का अधिकार नहीं है। ऐसे आदमी पाँच-सात हों, वे सात-आठ दिन कामना करें।

मेरे मिलने वाले ऐसे हैं, जो कहते हैं कि हमने कामना की और अगले दिन ही उसका बहुत सुधार हुआ। कामना की और आदमी सुधर गया। मैं पूछता नहीं कि किस के लिये कामना करते हो ?

प्रेमनाथजी जो प्रार्थना करते हैं वह पूर्ण हो जाती है। यदि प्रार्थना अनुचित हो, तो उन्हें आवाज़ आ जाती है कि यह प्रार्थना अनुचित है। एक मिनिस्टर था। वह बड़ा अड़ने वाला था। उसको (प्रेमजी को) विचार आया कि वह जीवित रहे। मिनिस्टर को दिल की बीमारी थी। वह लीडर था। उसने चाहा कि जीवित रहे, तो आगे जो वह अड़ जाता वह ऐसा न करे। उसने मिनिस्टर के लिये प्रार्थना की, तो प्रेम जी को आवाज़ आई कि ऐसी बात नहीं। कोई और बात करो। यह विचार होना चाहिये कि हमारी प्रार्थना को आगे कोई प्राप्त कर लेगा। व्यक्तिगत और स्वार्थपूर्ण प्रार्थना करने के लिये मैं दिल में विचार करूँ, यह तो सारी दुनियां करती है, पर सत्यानन्द को क्या पड़ी है ? जिसकी कोई जाति नहीं है। फिर मैं चुप हो गया, क्योंकि यह मेरा मार्ग नहीं है। निष्काम प्रार्थना करने वाले इस संगति में हों। तो कुछ व्यक्ति वर्ष के अन्दर-अन्दर दस लाख जाप करें। मैंने कहा कि लोक-हित की

प्रार्थना करो। मैंने अच्छे आदमियों के लिये, भारत सरकार के लिये, भारत की जनता के लिये भी सदा कामना की। चाहे मैं किसी हालत में होऊँ, चाहे मेरी काया कैसी ही हो जावे!, मैं चाहता हूँ कि चार-पांच व्यक्ति निष्काम प्रार्थना करने वाले हों।

साधना-सत्संग हरिद्वार,
दिनांक 2.4.1958,
समय प्रातः 11.00 बजे

❑❑

प्रार्थना -2

कल के कथन में आप के आगे प्रार्थना का वर्णन किया। इसके लिये अपने जीवन को संयमित बनाना होता है। हम सब बोलते हैं, तो तरंग पैदा होते हैं। किसी भी रेडियो से ये प्रकट होते हैं। एक विशेष कथन, जो पाँच हज़ार मील से भी हो– उसका तरंग रेडियो पर प्रकट हो जाता है। इसलिये जब तक अपने हृदय को स्थान (प्रसारण केन्द्र) न बनाया जावे, तब तक इस से लाभ कठिन है। वे शुभ कामनायें दूर तक प्रभावी नहीं होतीं।

हमने विश्व शांति के लिये यज्ञ देखे हैं। वहाँ पर बहुत लोग एकत्रित होते हैं। इतना रुपया, घी आदि लगता, पर वह यंत्र तो बना नहीं। उस का कुछ प्रभाव नहीं हुआ। वह किसी समय स्थान बनाते थे। इनमें तो ढोंग, व्यापार चलता है, कोई अपने को कम नहीं समझता। अतः अपने अन्तःकरण को यंत्र बनायें। पर जो स्वयं को यन्त्र बनाना चाहता है– उसको अपने जीवन को यंत्र बनाने योग्य स्थान बनाना चाहिये।

दूसरी सकाम प्रार्थना है। बहुत प्रकार के यज्ञ होते हैं– यथा अग्निमय-यज्ञ, ज्ञान-यज्ञ। सभी सुकृत कर्म जो हैं, वे सब यज्ञ हैं। जप-यज्ञ बड़ा है। यह मनु ने कहा था कि जप-यज्ञ, विधि-यज्ञ से दस गुणा अच्छा है। मुख के अन्दर जप करना सौ गुणा अच्छा और जो चिन्तन करता है, वह हज़ार गुणा अच्छा है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि मैं यज्ञों में जप-यज्ञ हूँ। मुझे कहना यह है कि जप-यज्ञ साक्षात् परम-पुरुष का आह्वान है। उसकी विधि भी है। जैसे भगवती का पाठ, चण्डी-पाठ करना है, जिस कामना से करना हो, वह अपनी बात कह देता है। धन के लिये कहा, तो महालक्ष्मी। इसके सात श्लोक हैं। इनको सम्पुट देकर पाठ करना होता है। यज्ञ समाप्त होने पर भी इस कामना का सम्पुट देकर पाठ करना चाहिये। आयुर्वेद की भाषा है, सम्पुट। सारा चण्डी-पाठ इस एक श्लोक से सम्पुट करते है। वैसे पाठ करे, तो निवारण-मंत्र आदि में पढ़ा और अन्त में तो सारा ही सम्पुट।

यदि याजक में विचार आवे कि मुकद्दमे के जीतने के लिये प्रार्थना करे, तो दूसरा कौन सा भगवती का शत्रु है? भगवती उसको कैसे खड़ा करे, जो पहले ही गिरा हुआ है? (मुकद्दमे में प्रतिद्वन्द्वी को हराने के विचार से पाठ आदि करना अनुचित है)।

यदि कोई परिचित है, तो उसका मुकद्दमा दूसरे जज के पास चला जावे,ऐसा भी प्रामाणिक जज करते हैं । याजक और यजमान की यह कितनी निकृष्ट भावना है कि वह इसके लिये अर्थात् दूसरे की हानि के लिये पाठ करे। मेरठ का एक ग्रेजुऐट मुझे कहने लगा कि मैंने एक पण्डित से कहा कि मुझे ऐसी पत्नी चाहिये। शिव-मन्दिर में वह एक लाख का जाप करने के लिये बैठता। तो उसको यह पता नहीं कि इसमें संसार-सागर तारने वाली शक्ति है। कई दिनों के बाद शिव जी की पिण्डी के पास सांप आया। वह उस पर लपका। अन्त क्या हुआ? धक्के लगे। लड़की वालों ने अपमान किया। वह मेरे सामने रोया। इतना ही धन्य हुआ। तो यह कितनी मति की हीनता है? सकाम यज्ञों में भी सोचना होता है कि वह कामना भद्र भी है या नहीं। यदि यह न सोचा जावे, तो देवता को क्या पड़ी है कि आपके लिये दौड़ पड़े? झूठे काम के लिये यदि हम भी किसी से कहें, तो कई नहीं चलेंगे।

मुझे कहना यह था कि सकाम प्रार्थना भी भद्र कार्य के लिये ही होनी चाहिये। कोई भी अभद्र कामना के लिये प्रार्थना करना अनुचित है। यदि कोई पत्नी अपने पति के चारपाई के पाये के पास बैठकर, उसके स्वास्थ्य लाभ के लिये प्रार्थना करती है, तो इसमें कोई दोष नहीं। ऐसे ही माता बच्चे के लिये, बहन-बहन के लिये, बन्धुओं के लिये कामना करने में कोई दोष नहीं। पहले कामना मन में धारण करके, फिर नमस्कार करके, जप प्रारम्भ कर दें। सब प्रकार के मन्त्र प्रचलित हैं। राम-नाम का भी जप चलता है। मुझे एक पण्डित ने कहा, उसको टाइफाइड या इसी प्रकार का बुखार था। वह अस्पताल पहुंचा दिया गया। वह भ्रमशील था। उसे अन्य मंत्र तो जपने का साहस हुआ नहीं। राम-नाम जपा। फिर बुखार कम हो गया। क्योंकि उसकी अश्रुपूर्ण तीव्र भावना थी। रोग दवाई से या भावना से जाता है। पर जो प्रार्थना की विधि, जनता में प्रचलित है, उसमें ठेकेदारी बहुत है। आप करें

तो कल्याण होगा, अन्यथा आप और बीबी, जो क्लब और हास-विलास में लीन अथवा अनाप-शनाप करते जायें और पण्डित बैठा हो जप के लिये, तो इससे कोई लाभ नहीं है।

भावनापूर्ण होकर प्रार्थना स्वयं करनी चाहिये। यजमान स्वयं इतने दिन व्रत-बंधन में ओज, चरित्र से रहे। यह परिस्थिति बनाई जावे।

अब मेरी कामना यह है कि मैं बहनों और भाइयों से कहूँ कि वे प्रार्थना भी किया करें। भावों को अच्छा बनायें और समझें कि बिजली की बैट्री में धारा बांधी गई है। देव तो भावना में विराजमान है। मंत्र देवता है। भावना जब होवे तब बात है। जप आप करना चाहिये। यहां यह प्रथा चल पड़ी कि दूसरा करे। काम करने वाले करते रहें और आप विलायत में, यह तो व्यापार की प्रथा है। यहां तो सीधा कहा जाता है कि राम-राम जपा कर। यजमान स्वयं बैठे या दूसरा बैठे, इसका भी उपयोग है। यह सम्भावित है कि इससे भी अच्छे तरंग होवें, पर अपने इष्टदेव को तो आप ही जपना चाहिये। तो जपना— फिर फल निकलना। संतों ने सभी बखेड़े हटा दिये, बस राम-नाम जपो। कई लड़के कहते हैं कि पर्चे कठिन होते हैं। मैं ने कहा कि राम-राम जपा करें। जो कुछ आ जाये लिख देवें। मैं तो कुछ जानता नहीं, यह सब बातें सन्तों ने कही हैं। संत लोग भगवान को बुलाते रहे हैं।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि भक्त का हृदय शुद्ध हो, तो भगवत्-कला अवतरित होती है। वह भगवत्-कला अलौकिक है। हम तो कला का ही आना मानते हैं। दास-भाव से वह भगवत्-कला ग्रहण होती है। मुझे एक प्रोफेसर ने कहा, स्वामी जी! बड़े आश्चर्य की बात है कि दो लड़के, दोनों एम.ए. या बी.ए. के विद्यार्थी थे, रास्ते से जा रहे थे। थोड़ी दूर गये होंगे कि एक सांप पीछे दौड़ता आया। साईकल फेंक दी और पेड़ पर चढ़ गये। वह सांप पेड़ के नीचे आकर बैठ गया। पेड़ पर चढ़ने की चेष्टा करे और फिर गिरकर बैठ जावे। उन्होंने पत्ते-वत्ते भी फैंके। अन्त में याद आया कि स्वामीजी ने कहा था कि राम-नाम जपा करो। चलो इस मंत्र का उपयोग करके देख लें। राम-नाम जपा और फिर आँखें खोलकर देखा, तो वह सांप वहां नहीं था। भावना होनी चाहिये, जैसे प्राणी को प्राण की, भूखे को

भोजन की होती है। यदि ऐसे भाव से प्रार्थना करें, तो पूर्ण होना स्वाभाविक है। उसको भी शान्ति, उसका मित्र करे, तो उसको भी। अफ्रीका, यूरोप में स्थापित मन्दिर हैं, जहां केवल प्रार्थना होती है। गरीब देशों में भी ऐसे प्रार्थना मन्दिर हैं। इस बात का विचार रखकर कि मैं संकट निवारण के लिये प्रार्थना कर रहा हूँ, प्रार्थना करें। श्रीमती का चाहना कि सास मर जावे, तो पति मुझ से प्रीति करने लगे, यह सर्वथा अनुचित है। राम को ऐसे काम में न बुलावें। इस प्रकार का संकट तो संकट नहीं कहलाता है।

विपत्तियां आ जाती हैं। संकट में घिर जाते हैं। यदि राम का सहारा करें, तो डगमगाती कश्ती में भी पार उतर जाते हैं। तो मुझे कहना यह है कि ऐसे संकट-काल में भावना से राम-नाम का जाप करें, तो यह संकट राम-नाम से दूर हो जाता है। कई लोग अभाव के लिये भी प्रार्थना करते हैं। जैसे एक साड़ी है, मेरे पास पांच साड़ी होनी चाहियें-- यह संकट नहीं है।

साधना-सत्संग हरिद्वार,
दिनांक 3.4.1958,
समय प्रातः 11.00 बजे

❑❑

प्रार्थना - 3

कल मैंने कहा था कि विश्वास बहुत दृढ़ होना चाहिये। इससे आदमी का अपना कल्याण तो होता ही है और वह जगत का भी कल्याण करता है। जिस हृदय से वह यह ध्वनि निकालता है, फिर प्रार्थना के प्रभाव को जांचता है। यदि हमारे हृदय में कोई पक्षपात है, तो सोचे कि एक दिन आदमी की सांस का आना-जाना बन्द होता है। नीतिवान भी जब जाते हैं, सब कुछ यहीं छोड़ कर जाते हैं। इसीलिये याचक ऊंचा उद्देश्य सामने रखे।

किसी के साथ आपका राग-द्वेष है, आप यह चाहें कि आपकी प्रार्थना का प्रभाव हो, तो राग-द्वेष को दूर करें। किसी भी मिलने वाले के लिये आप कचहरी में जाने को तैयार हैं, तो आप प्रार्थना के अधिकारी नहीं हैं। पर सूक्ष्म स्तर में तरंग तभी हो, जब राग-द्वेष न हो। राग-द्वेष से रहित होकर एक-दो नहीं हज़ारों लोग प्रार्थना करते हैं। वे डॉक्टरों को चैलेंज देते। तो मैंने सुगम बात कही।

परिवार में किसी भाई से वह मोह भी करता है, पर लम्बी डींग नहीं मारता। यह वही बात है कि गीदड़ी बैठी, उसके पास उसके बच्चे भी बैठे, तो उसका बच्चा कहने लगा कि मैं जाऊँ ? वह जो शेर है उसको मार डालूं ? तो गीदड़ी ने उसको कहा कि जिस वंश में तू पैदा हुआ है, वहाँ शेर नहीं मारा जाता। जो हम बड़ी बात चाहते हैं, तो उसके लिये विशाल हृदय आवश्यक है। एक साधक बीमार हुआ। लड़कियां-लड़के उसके लिये प्रार्थना करते। ऐसी जो निर्दोष बातें हैं, परिवार की फूट मिटाने आदि की, उनके लिये प्रार्थना करने का अधिकार सदा सब को ही रहा है। दूसरी बातों के लिये भी कौन रोके ? पर उनके लिये तो ऊँचा ही प्रार्थना करता है।

विश्व-शान्ति हो जावे—यह भाव तो अच्छा है, पर यदि आपकी तरंग तीव्र नहीं है, तो वह कैसे किसी अमेरिकन या रशियन के हृदय में जाकर तरंग उत्पन्न करे ? गांधी जी पक्षपात से पार थे। वे विश्व के ही बन गये थे। यद्यपि

उन्होंने अंग्रेजी हुकूमत के विषय में कहा कि यह शैतान गवर्नमैंट जैसी है। यह बात 'आप की बेवकूफी है' और 'आप बेवकूफ हैं', इन दोनों कथनों में भेद है। भारत को स्वतंत्र कराने के लिये गांधी जी को साधन बनाया गया। उन्होंने कहा कि मुझे यह आदेश हुआ। दुनिया कहे कि यह मेरा भ्रम है, पर मुझे विश्वास है कि मुझे ठीक ही कहा गया है। यदि वह होता, तो आज भी संकल्प करता, घोषणा नहीं करता। प्रार्थनाशील को इसका श्रेय व यश नहीं लेना चाहिये। वह तो भगवान की कृपा है।

दूर बैठे किसी के संकट को निवारण करना हो, तो फिर स्टेशन ऐसा प्रबल तरंग वाला हो, जो दूरगामी हो। सभी देशों में ऐसे आदमी होते हैं। थोड़े-थोड़े कामों के लिये हरेक आदमी यन्त्र है, जो किसी में भी परिवर्तन कर दें। यहां भी कई स्त्रियां हैं, जिन को स्वप्न आदि में प्रतीत होता है कि तुम्हारा लड़का जो अमेरिका में है, वह पास हो गया है, तुम्हारा पति जो युद्ध में है, वह सुरक्षित है आदि। बाद में उस की पुष्टि के समाचार आते हैं। बहुत पेट भरा हुआ हो, खट्टे डकार आते हों, ऐसी अवस्था में तो नींद में और ही प्रकार के सपने आते हैं। पर शुद्ध हृदय से जो प्रार्थना करने वाले हैं, उनके शुद्ध मस्तक के यंत्र में बहुत बातें प्रकट होती हैं।

विद्युत-वाहनी तरंगें ले जातीं और समाचार आते हैं। तो मस्तक भी तो यंत्र है, इसमें भी समाचार आते हैं। यदि किसी को अच्छा बनाना चाहते हो, तो प्रार्थना करो कि उसके चित्त में अच्छी बात आ जावे। यह बात हमारी समझ में आ जावे। होमियोपैथिक डॉक्टर की एक बूंद औषधि से समुद्र टिंचर का बन जाता है। इसमें औषधि कितनी क्या होती है!

यदि यह सूक्ष्म औषधि लाभ देती है, तो आपका सूक्ष्म संकल्प क्यों प्रभाव न डाले? केवल खराब संकल्प ही खराब करते हैं। होमियोपैथिक डॉक्टर तो दावे से कहते हैं कि इसका प्रभाव होगा। इसी प्रकार दावे से कहा जा सकता है कि किसी का संकल्प किसी की काया को पलट सकता है, पर उसका संकल्प शुद्ध होना चाहिये।

साधना-सत्संग हरिद्वार, दिनांक 22.4.1959, समय प्रातः 11.00 बजे



प्रार्थना-परम विश्वास व सत्य का पालन

कल मैंने कहा था कि साधक में परम सत्य हो। परम विश्वास भी होना चाहिये। सत्य का पालन तो मुश्किल है। कारण कि व्यवहार में विचलित हो जाते हैं और इसको साध नहीं सकते। इसलिये निभाना कठिन है, पर विश्वास तो आन्तरिक चीज़ है। इसका परिवार से कुछ सम्बन्ध नहीं। बच्चे को मां झूठ बोलकर बहलाती है, तो परम सत्य का पालन मुश्किल है और स्पष्ट कहना भी मुश्किल है। पर विश्वास, यह बात तो अन्दर की चीज़ है। दूसरे को झूठी बात से बहलाना उचित नहीं। जिनमें सत्य का विचार होता है, वे इस ढंग से उत्तर देते हैं कि मैं पूरा यत्न करूंगा, मैं आपको विचार लिखूंगा। छुट्टी लेनी हो, तो मां बीमार। कोई आपसे मिलने आये। आप पूछें अच्छा भाई भोजन खाओगे? आप ने बार-बार कहा तो खाने बैठ गया। पहले खाना खाने से न भी की और फिर आप से डेढ़ गुणा भी खा गया। ऐसे आप सोचेंगे तो मिथ्यापन संसार में इतना हुआ। इस कीचड़ से निकलना, बचना मुश्किल है, पर फिर भी ऐसे लोग हैं, जो सत्य का पालन करते हैं। पर विश्वास तो अपनी आन्तरिक चीज़ है। इसमें न परिवार का प्रश्न है, न सन्तति का सम्बन्ध। परम विश्वास हो, तो उसके जीवन में परिवर्तन आना चाहिये। मैं इन बातों की परीक्षा भी करता हूँ। मेरे पास कोई आये और कहे कि मन नहीं लगता, तो इसके लिये कितने ही उपाय होंगे, मैं उन में से कोई नहीं बताता। यही कहता हूँ कि जप और कर और इस का प्रभाव होता है।

मैं हरिद्वार में ठहरा हुआ था। एक स्त्री ने कहा कि मन उखड़ता रहता है। वह इधर-उधर बहुत जाया करती। पर मैं क्यों रोकूं? मैंने यही कहा तू यहां रहती है, तो जप कर। एक लोटा रख ले और चौकी पर बैठ। उसने दस-ग्यारह लाख जप किया होगा, तब उसने कहा कि मेरे मन का टिकाव

हुआ। संकट जो हैं, उनका निवारण चिकित्सा-शास्त्र से भी कठिन है और अध्यात्म से भी कठिन है। डॉक्टरों की दवायें बहुत अच्छी हैं। कोई ऐसी दवा भी है, जो शत-प्रतिशत आराम दे देती है। पर दवाईयां फेल भी हो जाती हैं। इस कारण दावे से कहा जावे कि ऐसा हो जावेगा, बड़ा कठिन है। इलाज है, बनी के सब इलाज हैं।

डुलेस को क्या डॉक्टरों की कमी थी– पर निराश होकर उसे अपने पद से त्याग-पत्र देना पड़ा। तिब्बत वाले तो और ही तरह से इलाज करते हैं। इनके यहां भी पचास-पिचहत्तर प्रतिशत अच्छे हो जाते हैं। जादू-टोनों से भी लोग इलाज कराते हैं। अब मुझे इधर इस विषय में बहुत नहीं जाना। कहना यह है कि यदि विश्वास हो और नाम का आराधन करे, तो यह भी चिकित्सा है, यह अध्यात्म-चिकित्सा है। एक बीमार का ऐक्सरे हुआ, तो पीड़ा का कारण मालूम न हो सका। पीड़ा इस प्रकार अचानक रुक जाने और फिर तीव्र हो जाना बताये कि कैंसर ही हो सकता है, लेकिन साबित न हुआ। बच्चा जिसको रोने की आदत हो जावे, तो वह मंगल के समय भी और कष्ट के समय भी रोने लग जाता है। मैंने एक सेविका को कहा कि तुम जाप रखाओ। उसने परिवार वालों को सुझाया, पर उन्होंने तो यह कभी किया नहीं। दो देवियां बाहर से आईं। डॉक्टर इलाज करते रहे। दस दिन उन्होंने वह अनुष्ठान किया 'राम-नाम मुद मंगल कारी, विघ्न हरे सब संकट हारी।' इस पद में बजाय पातक हारी के संकट हारी शब्द रखा। मैंने कहा कि पातक हारी की बजाय संकट हारी रखो। सारी मशीन और इंजन खड़ा हो गया, वह ठीक हो गया। मुझे कहना है कि ऐसा होता है। फिर भी कोई बात न माने तो नासमझी है। यह भी एक शैली है।

गाय के सिर में दर्द हो, तो गाय के माथे पर चन्दन लगाते हैं। पर जिसके सिर में पीड़ा हो, उसको तत्परता से जप-आराधन करना चाहिये। तो यह ठीक है कि सूली का कांटा बन जाता है, पर विश्वास हो। उसका नहीं जिसने जादू वाला भी बुला लिया, हकीम भी और एक जड़ी जानने वाला शूद्र भी। विश्वास की जो चिकित्सा है, इसमें पक्का हो, तो वह बहुत लाभ पहुंचा सके। यह दूसरों को बुलाने की बात नहीं। आप करें, पांच दिन, छः दिन, जहां तक बन

पड़े। इस प्रकार का अनुष्ठान स्वयं करें। दूसरों से क्या करवाना?

सत्य का पालन करना बहुत ठीक है। यह दूसरों पर भी प्रभाव डालता है। अध्यात्म-चिकित्सा के जानने वाले, यह तो बहुत बड़ी बात है, इनका भी निर्मूल नहीं है, मूल है। यह पुरानी प्रथा है। भारतीय लोग पहले यज्ञ किया करते। अब तो झूठ समझ लेते हैं कि घी सामग्री इकट्ठी करो और स्वाहा-स्वाहा। बच्चे भी, बड़े भी हरेक यों फेंकें। चने की मुट्ठी भी यों फेंको, तो भला आदमी स्वीकार नहीं करेगा। बच्चों से फिकवाओ, तो यह नाटक नहीं तो क्या? वहां तो ठीक बोलना, गलत न बोलना, यह सब महत्व रखता है। पर अब साले से भी, दोस्त से भी, बच्चों से भी फिकवायें। देवता से हंसी करने का आपको क्या अधिकार? आप अफसर के पास जाते हैं, तो कोई अनुचित व्यवहार नहीं करते, तो देव-द्वार जाकर ऐसा निरादर क्यों? सब चीज़ें नाप-तोल कर विधिपूर्वक हों। वास्तव में ऐसे चिकित्सा हो। पर उस समय अग्नि को भी शक्ति मानते थे।

मैस्मेरेज्म में आत्माओं को बुलाने की प्रथा है। एक साधक ने कहा कि अमुक रिश्तेदार को बुलायें। चाचा आवे, तो तिपाई दो बार हिले। फिर उस आत्मा से प्रश्न पूछे जावें। अब यह आत्माओं को बुलाने का ऐसा खेल है कि बड़ी सफलता तो इसमें कभी किसी को हुई नहीं। चण्डूखाना होवे, वहां तो सेठ-साहूकार भी एक-आध, पर ज्यादा तो गांठ-कुतरे होते हैं। तो ऐसों में दैत्य भी आ जावें। एक धनी सेवक के यहां दुर्गा-पाठ हुआ। बड़ी भावना के साथ और पुरातन ढंग से हुआ। आप एक विशेष स्थान से रेडियो से समाचार सुनना चाहते हैं, दूसरे स्थान से न मालूम कौन बोल रहा हो? इसलिये उस स्टेशन पर सुई लगाते हैं। पर उस स्टेशन पर भी दूसरी आवाज़ आ जाती है। पिछली लड़ाई में भी जब रेडियो बोलता, तो एक पक्ष वाले अपनी विजय की बात कहते, तो दूसरी आवाज़ कहती कि तुम अन्याय पर हो, तुम हार जाओगे। वह शक्तिशाली स्टेशन तरंग तोड़ कर बोलता। आपके रेडियो पर भी तो कभी बादल की गरज आ जाती है। भगवान पर, विश्वास न हो तो न जाने कौन आ जावे? बहुत दृढ़-विश्वास होना चाहिये। मुझे निवेदन यह करना था कि भगवान पर परम विश्वास हो, ऐसे जो आराधना करे तो अपने को, जीवन

को, समाज को, अच्छा बनाने में उसका बड़ा हाथ होता है। घरेलू काम में लड़-झगड़ कर साथी को अच्छा बनाये तो यह बात बढ़ जावेगी, पर किसी को विचार हो कि मेरा मित्र अच्छा हो जावे, तो वह इस विचार से उसके लिये निश्चय से जाप करे। उसको परिवर्तित होना चाहिये। इस कामना से कि वह सदाचारी बने। विश्वासी की प्रार्थना का तो प्रभाव होगा, उसकी नहीं जिसने मढ़ी देखी तो नमस्कार, पीपल देखा तो नमस्कार।

जो निश्चय वाले नहीं हैं, उन की बुद्धि बहुत शाखाओं वाली होती है। जो लोग इस प्रकार की चिकित्सा करते हैं, उनको ऐसा बोध होता है कि जप करने पर उसके बन्धु का चरित्र बदल गया। तलवारें ही काम करती हैं, यह क्या विश्वास ? यदि कुछ अच्छे आदमी, जो ठेका करके न करते हों, वह प्रार्थना करें। ठेकेदारी से प्रार्थना करने पर वह निष्फल रहेगी। ठेकों की दीवार में रेत इंजीनियर देखें नहीं, तो ठेकेदार न मालूम क्या कर बैठें ? पर किसी देश के भले आदमी, देश के लिये प्रार्थना करें कि शत्रु आक्रमण न करे, उनका देश शान्ति से आगे बढ़े, शान्ति से काम हो, बाहर का उपद्रव इसे खराब न करे, ऐसी वे प्रार्थना करें। आपको समाचार-पत्र में देने की आवश्यकता नहीं हैं। भारत के आप भी अंश हैं।

यह कोई शुभ-कामना नहीं कि चीन हार जावे और तिब्बत जीत जावे। जब यहां अच्छे आदमी सिफारिशें बहुत कम मानते हैं, तब भगवान क्यों माने ? भारत शान्ति से चले और दूसरे का अनुचित व्यवहार न रहे, इस प्रकार तो भगवान को आह्वान करना ठीक है, पर किसी के नाश के लिये कामना करना ठीक नहीं। अपने प्रकाश के लिये प्रार्थना करें। देव आह्वान जो हुआ, तो केस जब जज के सामने आवे तो जज को नुक्ता सूझ जावे, डॉक्टर को यत्न सूझ जावे, ऐसा प्रभाव होगा। देव आह्वान होता है, तो यह प्रभाव होगा। जो झूठा है, वह झूठा ही है, उसके विरुद्ध क्या कामना करनी ? अनुभवियों ने समझा कि जो बात सत्य है, उसी के लिये देव को आह्वान करना चाहिये। हमारी किसी से शत्रुता नहीं। यह बातें जरा समझ की हैं। निर्दोष काम ये हैं, कि बुद्धि निर्मल हो, किसी का चरित्र अच्छा हो,

आत्मा जाग्रत हो, आस्तिक भाव हो। यह प्रार्थनायें इतनी निर्मल, इतनी निर्दोष हैं।

यह भगवत्-इच्छा के अनुसार ही बातें हैं। इस भावना से करे, तो उसमें बल होता है। वह दृढ़ विश्वासी, ऊंचे चरित्र वाला प्रार्थना न भी करे, पर वह किसी से सहानुभूति भी करे, तो भी उसको लाभ होगा। मैस्मेरिज्म जो सोचते हैं, वह पहले हाथों की, फिर आंखों की प्रैक्टिस करते हैं। तो आप तो राम-नाम के जपने वाले हैं, आप के संकल्प में बल क्यों न हो ? इतना अभ्यास जिसने किया, तो उसकी तो वाणी शुद्ध हो जाती है। नाम के आराधन से जो अपना इष्टदेव है, उसका विशेष मिलाप होता है। यह उनका कथन है, जो भारत में अध्यात्मवाद में ऊंचे हुए। ऐसी बात हो, तो फिर आपके दोनों हाथों में लड्डू हैं।

साधना-सत्संग हरिद्वार,
दिनांक 21.4.1959,
समय प्रातः 11.00 बजे



निष्काम प्रार्थना

मेरा अपना विचार एक वैज्ञानिक आध्यात्मिक विचार है। आचार्य भी इसी कोटि में आते हैं। इसके अतिरिक्त तो निरा तर्कवाद है।

उपासना में प्रार्थना बड़ी चीज़ है। राम-नाम जपना भी एक प्रार्थना है। माया में रात-दिन रहकर हम आत्मा को प्रकृति रूप बना लेते हैं। भगवान का आह्वान करने पर आत्मा जाग्रत होता है। प्रार्थना करने का यह अर्थ नहीं कि आप अपने परिवार की गाड़ी न चलावें। इसमें तो सेवक भावना है। इसमें आडम्बर नहीं है।

भक्ति-मार्ग में सबने 'दासोऽहं' कहा है । महात्मा गाँधी ने आत्म-शक्ति से ही ब्रिटिश सरकार पर अधिकार जमाया था। वेदान्ती अछूतों से नहीं मिलते, तो वह व्यवहार में क्या रहा? वे बात केवल जीभ से उगलते हैं। उनका आत्मवाद समझ में नहीं आता। भक्ति का मार्ग उत्कृष्ट मार्ग है। हमारे यहां प्रत्यक्ष प्रमाण मस्ती आदि के मिलते हैं। अन्य जगह पन्द्रह मिनट के लिये भी मस्त नहीं होते, जब कि हमारे यहां घन्टों मस्ती रहती है। प्रार्थना बहुत ऊँची चीज़ है। भगवान की इच्छानुसार ही रूप आता है, अपनी इच्छानुसार नहीं। फिर वह रूप ज्योति हो, स्वरूप हो अथवा अन्य हो।

किसी एक आकार को ही भगवान नहीं समझना चाहिये। जितने अवतार हुए सब गृहस्थ थे। हम गृहस्थ में ही आह्वान करते हैं। किसी न किसी रूप में भगवत्-कृपा अवतरित होती है। अखण्ड जाप करने का उद्देश्य यह है—

वृद्धि आस्तिक भाव की, शुभ मंगल संचार।
अभ्युदय सद्धर्म का, राम-नाम विस्तार॥

हम श्री अधिष्ठान रख कर निष्काम भाव से जाप करते हैं। इस पद को पढ़कर अखण्ड जाप प्रारम्भ करना चाहिये। विश्व-भावी होकर जप किया जाता है। राम-नाम जपते समय आप में क्रोध, अभिमान, ईर्ष्या, विरोधादि

नहीं होना चाहिये। आप न्यायशील हों और सत्य का पालन करते हों। ऐसी वृत्ति हो, तो आप रोगी के लिये और अन्य लौकिक कार्यों के लिये प्रार्थना करें, तो वह सफल होती है। ऐसे पांच-सात आदमी भी मिल कर समय निश्चित करें और प्रार्थना करें, तो बहुत सुधार हो जाता है। प्रेमनाथ सेठी जी किसी के लिये प्रार्थना करें, तो वह पूरी हो जाती है। अनुचित होने पर उन्हें आवाज़ आ जाती है कि यह नहीं कोई और बात करो। साधक का हृदय निर्मल, पवित्र होना चाहिये। मानस-रोगी प्रार्थना नहीं कर सकता। निष्काम प्रार्थना करने वाले इस संगति में होने चाहिये।

एक वर्ष के अन्दर मैं ऐसे साधक चाहता हूँ। मेरा कार्य लौकिक नहीं है। मैं छोटे-छोटे लौकिक कार्यों के लिये प्रार्थना नहीं करता। मैं देश-विदेश के लिये, भारत के लिये, जनता के लिये, प्रधान लोगों के लिये, उनकी यात्रा पर प्रार्थना करता हूँ कि वे कुशलता से लौट आवें। इसके लिये कुछ नियम हैं, जो लिखित रूप में आ जावेंगे। कुछ साधक-साधिकायें उद्यत होने चाहियें।

साधना सत्संग हरिद्वार,
दिनांक 2.4.1958
समय प्रातः 11.00 बजे

❑❑

सकाम प्रार्थना

अपने अन्तःकरण को यन्त्र बनाया जाये। अपने लिये, बन्धुओं के लिये, जो जप करें, वह सकाम कहलायेगा। जप-यज्ञ सबसे ऊँचा है। हवन से बैखरी जप दस गुना अच्छा है। उपांशु जप सौ गुना अधिक फलदायक है। मानसिक जप हज़ार गुना श्रेष्ठ है। जप-यज्ञ से साक्षात् भगवान को आह्वान किया जाता है। सम्पुट की रीति निर्मूल नहीं है। स्वार्थ के लिये, झूठी बातों को सही करने के लिये, जप-यज्ञ करना निकृष्ट काम है।

भद्र-कामना ही पूर्ण होती है। झूठे कार्य नहीं। अन्यायी दुर्भावनायें सफल नहीं होतीं। इसमें मन्त्र का दोष न होकर उनके मलिन मन का दोष है।

किसी के स्वास्थ्य लाभ के लिये, उसके मां, पत्नी, भाई, बहन प्रार्थना करें, तो लाभ होता है। इसमें मन्त्र का जप हो। प्रथम कामना प्रकट करके नमस्कार-पूर्वक जाप प्रारम्भ करें। सम्पुट दें अथवा न दें।

शुद्धि का भी एक आडम्बर ही है। जहां राम-नाम है, वहां शुद्धि ही शुद्धि है। भावना तीव्र होनी चाहिये। रोग दवा से या दुआ से जाता है। यह प्रथा चलनी चाहिये। जो प्रथायें चली हैं, उनमें ठेकेदारी बहुत है। जप तो स्वयं करना चाहिये। पण्डित से अनुष्ठान कराते और आप मौज उड़ाते रहें, यह रीति ठीक नहीं। पण्डित लोग तो अपना स्वार्थ पूरा करते हैं। पण्डित जो अनुष्ठान करते हैं, वे उस समय कलावा बांधते हैं उसका अर्थ है कि यजमान उतने दिन पवित्रता, संयम से रहे। देव तो भावना में ही रहता है। मंत्र देवता का शरीर है। अपने इष्टदेव का आह्वान आप स्वयं ही करें, तो कितना सुन्दर हो! उसका फल मिलना ही चाहिये। भक्त का हृदय बहुत शुद्ध हो, तो भगवान की दया उसकी सहायता के लिये अवश्य आनी चाहिये। भगवत्-दया एक अलौकिक चीज़ है। जैसे भूखे को अन्न की, प्यासे को पानी की भावना होती है, ऐसी ही तीव्र भावना से प्रार्थना करनी चाहिये।

भले कामों में मन्त्र जपना चाहिये। सास का चित्त शुद्ध हो जाये, इसके लिये बहू जप करे तो ठीक है, किन्तु उसको मारने के लिये नहीं। संकट-निवारण के लिये जप किया जा सकता है। विपत्ति में यदि फंस गया हो और कोई साथ न दे, तो फिर 'राम' का सहारा लेना चाहिये। अभाव के लिये भी जप किया जा सकता है, किन्तु अभाव सच्चा होना चाहिये।

साधना सत्संग हरिद्वार,
दिनांक 3.4.1958
समय प्रातः 11.00 बजे

❑❑

सजीव विश्वास

वह परमात्मा हमारे अंग-संग है, यह भावना होनी चाहिये। विश्वास जितना प्रबल, सुदृढ़, सुनिश्चित होगा, उतना ही अधिक लाभ होगा। व्यवहार भी सुधरेगा और परमार्थ भी। जितना भगवन्नाम में भाव दृढ़ होगा, उतना ही लाभ होगा। भगवान के नाम में धारणा पक्की हो। त्रिलोकी में करोड़ों मन्दिर हों, किन्तु जो मूर्ति हमने अपने मन्दिर में स्थापित की, वह हमेशा आदरणीय है। अन्य इष्ट न हो। राम-नाम के आसन पर और आसन लगाना ठीक नहीं। इष्ट को सर्वोपरि माने। नाम अपने आप में पूर्ण है, ऐसी धारणा होनी चाहिये।

नाम धार कर मौन हो, जन राधे भगवान ।
बीज गुप्त रह भूमि में, बनता वृक्ष महान।।
नाम नाद उत्तम कहा, ऊँचा है वह धाम ।
अतिशय मधुर सुरस सना, नाद राम ही राम ।।

ईश्वर में परम विश्वास होना चाहिये। युक्ति अथवा तर्क को छोड़ कर उसके अस्तित्व में जीवित विश्वास होना चाहिये। पण्डित नेहरू जब रेडियो पर बोलते हैं, तो यह समझ कर कि वह जो कुछ बोलेंगे, वह भारत, अमेरिका, जापान आदि सब स्थानों में सुनाई देगा और प्रभाव डालेगा और होता भी ऐसा ही है। हमें भी इसी प्रकार से प्रार्थना के समय अपना भाव रखना चाहिये कि हमारे शब्द परमात्म-देव के पास पहुँचेंगे। निर्मल तथा बलवान मन से जो संकल्प उठते हैं, वे दूर तक जाते हैं। हमें भी विश्वास रखना चाहिये कि जो हम निष्काम भाव से जगत के कल्याण की दृष्टि से नाम-जाप अथवा प्रार्थना करते हैं, वह अवश्य प्रभाव डालेगी।

धर्म तो जीवन में उतारने की वस्तु है। आजकल के महात्माओं ने तो दुकानदारी की हुई है। दूसरों के लिये शास्त्रोपदेश, किन्तु स्वयं के लिये जीवन में धर्म दृष्टिगोचर नहीं होता।

पंजाब के विभाजन के समय जब उत्पात होने की आशंका थी, तो महन्त लोग दो मास पहले अन्यत्र भाग खड़े हुए और उन्हें आश्रय भी मिल गया। तो बताओ ऐसे प्राण के भय से भागने वाले महात्माओं के जीवन में धर्म कहां उतरा? उनसे तो वे नवयुवक जो बलिदान हुए, प्रशंसनीय हैं, जिन्होंने वहीं रहकर आततायियों का सामना किया और प्राणों की आहुति दे दी।

रामायण से आचार-विचार का भाव जागना चाहिये। केवल रोकर रामायण का आदर करना तो कायरपन है, वीरता भी आनी चाहिये। हिन्दू-जाति के लोग रामायण पढ़ कर भी कायर बने हुए हैं। यह लज्जा की बात है। उनमें वीरता आनी चाहिये।

भगवान के साकार, निराकार, सगुण, निर्गुण स्वरूप की उपासना के सम्बन्ध में क्या कहा जाये! भगवान के नाम का आराधन करना मानो उससे सीधा सम्बन्ध करना है। नाम में नामी समाया होता है। भगवान क्या है? यह तो भगवान ही जाने! हमें तो इतना विश्वास होना चाहिये कि भगवान है, अर्थात् आस्तिक भावना हो। हम अपने आकार को नहीं जानते, फिर भगवान को क्या जान सकते हैं? वह तो वह ही जाने।

परम गुरु राम ही है, क्योंकि वह देशकाल से भी परे है। मानवी गुरु अथवा अवतार तो देश-काल में ही रहते हैं, किन्तु वह सर्वत्र व्याप्त है। उसकी परम सत्ता में परम विश्वास-पूर्वक सेवा और करुणा भाव जगाना चाहिये।

कुछ लोग समाधि की खोज में फिरते रहते हैं कि समाधि लगाना सीख जायें। इस समाधि से क्या लाभ? जड़ बनने से क्या लाभ? ये तो सोने जैसा ही है, पांच घन्टे सोते हो, अधिक सोना चाहो, तो सो सकते हो! किन्तु सोचो इससे क्या लाभ? ऐसी सुन्न अवस्था तो कीट, पक्षी, जानवरों को भी प्राप्त हो जाती है, इसमें कोई श्रेष्ठता नहीं। जीवन तो वही सुन्दर है, जिसमें भक्ति-भावपूर्वक सेवा-प्रेम बसा हुआ हो। जन-कल्याण में अपना जीवन व्यतीत करो। देश का, समाज के व्यक्तियों का चरित्र ऊंचा हो। इसके लिये हमारे जीवन में प्रयत्न हो, तो प्रशंसनीय है। अन्यथा कीड़े-मकोड़ों के समान सन्तान पैदा करके कुछ खा-पीकर मर जाने में कौन बड़ाई है? जियो तो कुछ

बन कर जियो। राम-काज में ही जीवन सफल है। आस्तिक भाव में दृढ़ता होनी चाहिये।

भारत में विद्वानों ने कुछ ऐसा जाल फैलाया हुआ है कि उन्होंने लोगों में स्वतन्त्र बुद्धि नहीं रहने दी। प्रत्येक बात के लिये शास्त्र प्रमाण लोग चाहते हैं, स्वयं अनुभव नहीं करते। स्वयं के पुरुषार्थ से मुक्त होने की बात सोच ही नहीं सकते। दूसरों के द्वारा अनुष्ठान कराके अथवा आचार्य की सहायता से ही पार होने की सोचते हैं। ब्राह्मणों ने भी वैसी बात शास्त्रों में लिख कर सब कुछ अपने हाथों में सीमित रखा हुआ है। यह ब्राह्मणों का स्वार्थपूर्ण कार्य है।

किन्तु हमारे साधन में नाम की कुँजी सीधे आपके हाथ में दे दी जाती है। आपको सीधा सम्बन्ध परमेश्वर से मान कर आराधन करना चाहिये। आपका जाप, ध्यान, प्रार्थना आदि कार्यों में विश्वास होना चाहिये कि मैं अपने शुभ कर्मों से पार होऊंगा। गंगा, यमुना आदि तीर्थ माहात्म्य द्वारा नहीं या वैतरणी में गाय, ब्राह्मण आदि आकर तारेंगे, ऐसी बात नहीं। हम गाय, ब्राह्मण के पराधीन न रह कर स्वतन्त्र रूप से अपने जप आदिक शुभ कर्मों पर जाना ठीक समझते हैं।

'हमारे तो इष्ट राम ही हैं', इसका विस्तार हमारा उद्देश्य है। राम के विस्तार के साथ जगत में मंगल का संचार और आस्तिक-भाव की वृद्धि होती है। सब तीर्थ इसमें समाये हुए हैं। जिस प्रकार बीज में वृक्ष के भाग अर्थात् जड़, तना, डाली, पत्ती, फूल, फल सब समाये होते हैं। आवश्यकता है इस बीजाक्षर राम-नाम मन्त्र का आराधन करने की।

मोह-मायामय जगत् में चित्त को न रमाकर एवं वृत्तिमय जगत में न विचर कर, ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर जन-सेवा में लगना ही उचित है। परमेश्वर को अपने अंग-संग समझना ठीक है। जिस प्रकार हम परस्पर बात करते हैं, इसी प्रकार भगवान को आह्वान करने के पश्चात् उसकी उपस्थिति अनुभव करनी चाहिये। जब हमारा ही विश्वास न हो कि हमारी प्रार्थना सुनी भी जाती होगी अथवा नहीं, तो वह क्या फल लायेगी? दुर्बल मन की दुर्बल तरंग दूर तक न जाकर बीच में ही टूट जाती है। अतः हमारी प्रार्थना में बल होना चाहिये।

प्रार्थना करते-करते बड़ा बल आता है। डॉक्टर के कहने पर कि बिजली की मशीन के पास बैठो, उससे तुम्हारे अन्दर विद्युत-तरंग प्रवेश करके स्वास्थ्य प्रदान करेगी, हमारा विश्वास बैठ जाता है और लाभ भी होता है। तो क्या शक्तिपुँज भगवान के समीप बैठने से हममें शक्ति नहीं आयेगी? किन्तु ऐसा विश्वास लोगों को कम होता है। अतः हमें चाहिये कि हमारा विश्वास सजीव हो कि वह परम पुरुष हमारे सामने उपस्थित है।

साधना-सत्संग, हरिद्वार,
दिनांक 23.4.1959,
समय प्रातः 11.00 बजे



आस्तिक-भाव

(प्रार्थना में)

ईश्वर में सजीव विश्वास हो, तो इससे चरित्र बल बहुत ऊंचा होता है। जब हम उपासना करते हैं या आह्वान करते हैं, तो राम को अपने समीप, अंग-संग ही समझना चाहिये। यह बात दबाव से नहीं, मनन करते-करते आती है। जैसे विज्ञान की बातों में विश्वास होता है, वैसे ही जीवित विश्वास श्रीराम में होना चाहिये। यह अवसर जो आपकी भावना से प्राप्त हुआ है, इसका जितना लाभ उठाया जावे, उठाना चाहिये। यह बड़े भाग्य की बात है। जितनी अधिक कमाई होगी, उतना ही अधिक लाभ होगा। धन एकत्रित कर लिया जाये, फिर यत्नपूर्वक बांटा जाये तो फिर कभी कमी नहीं पड़ती। यह एकत्रित किया हुआ धन (राम-नाम का) जन्म-जन्मांतरों तक काम में आता है। अतः बड़े भाव-चाव से आराधना करते रहना चाहिये।

हमारा ईश्वर में परम विश्वास हो। मन, वचन, कर्म से हम रामानुरागी हों तथा सत्य हमारे जीवन में बसे, इसके लिये प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिये। (यह भावना प्रकट करने के लिये महाराज जी ने निम्नांकित दोहा लिखवाया)—

सर्व शक्तिमय रामजी, अखिल विश्व के नाथ।
शुचिता, सत्य, सुविश्वास दे, सिर पर धर कर हाथ।।

आपको यहाँ प्रातः-सायं नियत समय पर यह दोहा सौ बार पढ़कर यथाशक्ति जप करना चाहिये। इस प्रार्थना के करते रहने से मानो आपका सीधे भगवान से सम्बन्ध हो जाता है। आप उनकी कृपा पा रहे हैं, आपकी प्रार्थना सुनी जा रही है, ऐसी भावना करके आप प्रार्थना करें। (उपर्युक्त दोहा स्वामी जी को उसी समय स्फुरित हुआ था। आप घर जाकर प्रातः जागने पर एवं सोने के पूर्व सात बार इस दोहे का नित्य पाठ किया करें।)

(निरंकार, निर्गुण राम का हाथ सिर पर धरने से तात्पर्य पूछने पर स्वामी जी ने कहा कि) हमारा विश्वास सजीव हो कि हमारे सिर पर उस परम-पुरुष का वरद हाथ है। स्थूल-रूप में भी अनुभव हो सकता है। वास्तव में वह तो अत्यन्त सूक्ष्म है। प्रभु का आशीर्वाद प्रकट होता है— आनन्द, मस्ती, आवेश के रूप में।

हमारी अनेकानेक जन्मों से स्थूल पर ही दृष्टि रहती आई है। अतः हमारी चाहना स्थूल की रहती है। यह अनुभव में आ जाये, तो कोई आश्चर्य नहीं। यह तो वही जाने किसको राम-कृपा का आधार बनाये, हम क्यों उसके कार्य में बाधा डालें? परमेश्वर जिस धर्म का प्रचार एवं प्रसार चाहे उसकी वृद्धि हो, हम यही प्रार्थना करते हैं। हमारी साधना का उद्देश्य भी यही है जो निम्नांकित दोहे से प्रकट है—

वृद्धि आस्तिक भाव की, शुभ मंगल संचार।
अभ्युदय सद्धर्म का, राम-नाम विस्तार।।

शब्द सद्धर्म है। कोई विशेष पंथ, धर्म अथवा सम्प्रदाय जैसे वैष्णव, शैव अथवा शाक्त धर्म आदिक पांथिक धर्म का नाम हम नहीं लेते। क्योंकि यह तो ईश्वर ही जाने इस युग के लिये कौन सा धर्म उपयुक्त और श्रेष्ठ है? हाँ! जगत में आस्तिक-भाव की वृद्धि हो, सुख शान्ति हो, लोगों का जीवन धर्ममय हो।

(महाराज जी ने आगे कहा) मैं तो भक्तिभाव को अधिक महत्व देता हूँ। वेदान्तवाद तो बुद्धिवाद है। इसमें तर्क जाल अधिक है, किन्तु वह भी जीवन में नहीं पाया जाता। वेदान्त में ईश्वर को अवैयक्तिक कहते हैं, किन्तु स्वयं वेदान्ती महात्मा अपने जीवन में ही अपनी समाधि के लिये मन्दिर बनवा लेते हैं और उसके नीचे अपनी कब्र बनवाते हैं। अपनी पूजा कराते हैं तथा स्वयं ब्रह्म बनते हैं। ये तो धर्म की दुकानें खोले हुए हैं, जीवन में धर्म नहीं है। न मालूम कितने महात्माओं ने गंगा किनारे अपनी समाधियाँ बनवाई हुई हैं!

भारत में लोगों की दर्शनशास्त्र में अधिक रुचि है। जीवन में धर्म को नहीं बसाते हैं। न मालूम कितने लोगों ने मुझ से नाम साधन लिया होगा, किन्तु

साधन में लगे रहने वाले थोड़े ही होते हैं और उन में भी सत्संगों में सम्मिलित होने वाले प्रति वर्ष और भी कम आते हैं। ऐसा होता है, पेड़ के सब फल पेड़ पर नहीं पकते हैं, कुछ आँधी, तूफान में गिर जाते हैं, कुछ को पक्षी खराब कर देते हैं। कुछ ही फल पेड़ पर पक पाते हैं और लोगों के काम आते हैं। इसी प्रकार साधकों की बात है।

तर्क का सहारा छोड़ कर धर्म की कमाई करो। युक्ति के कमरे को बन्द कर, साधक को परम विश्वास, प्रीति तथा श्रद्धा से साधन में लग जाना चाहिये।

प्रार्थना से बड़े लाभ होते हैं। प्रार्थना के सम्बन्ध में ''प्रार्थना और उसका प्रभाव'' पुस्तक में सब बातें विस्तार के साथ दी हैं। साधक को इसे भली-भाँति, मनन-पूर्वक जीवन में उतारना चाहिये।

इस साधन में लोगों को शीघ्र ही लाभ होता है, क्योंकि इसमें इस मन्त्र के अधिष्ठाता स्वयं भगवान हैं। अतः इसके पीछे बड़ी शक्ति है, किन्तु साधक उसका समुचित आदर नहीं करता और जीवन में उस शक्ति-अवतरण को स्थायी बनाने के लिये प्रयत्नशील नहीं होता। जिस प्रकार करोड़पति धनवान के पुत्र को सहज में धन प्राप्त हो जाता है, तो वह उस धन को महत्व नहीं देता, बड़ी निर्दयता से खर्च कर देता है। भोग विलास में फंस कर धन, सम्पत्ति और जीवन-शक्ति से भी हाथ धो बैठता है। उसी प्रकार साधक इस साधन में प्राप्त शक्ति को ठीक मार्ग में उपयोग न करे, तो कुपथगामी हो जाता है तथा कालान्तर में निराश होकर साधन छोड़ बैठता है।

अतः यह आवश्यक है कि मनोनिग्रह (इन्द्रिय-संयम) करके साधन में तत्पर रहे। अन्य मायामोह के कार्यों में संयमित हो, जीवन को राम-काज में लगावे।

भारत में रीति-रिवाज़ कुछ बिगड़े हुए हैं। छोटी अवस्था में ही बच्चों का विवाह कर देते हैं। युवावस्था आते-आते वे कई बच्चों के बाप बन जाते हैं। विद्या-उपार्जन के साथ-साथ उन्हें ढेर बच्चों के साथ गृहस्थी का पालन करना पड़ता है और एक दिन अपने पीछे विधवा पत्नी और अनाथ बच्चों को छोड़ परलोक सिधार जाना पड़ता है।

ऐसा जीवन व्यतीत करने के स्थान पर, जिसको जीवन का महत्व समझ में आ जाये और जो साधक परमात्मदेव का यन्त्र बनना चाहता है, उसे तो आवश्यक है कि इन्द्रिय-निग्रह करे, वृत्तिमय जगत में न विचर कर उच्च लक्ष्य पर आरूढ़ हो जाये। अपना जीवन उच्च बनावे, देश तथा समाज का जीवन उच्च बनाने के लिये सेवा करे।

प्रभु से प्रार्थना करे— देश, समाज का कल्याण हो। उसका जीवन प्रार्थनामय हो। दैनिक समय में कुछ समय इस सकाम और निष्काम प्रार्थना के लिये भी नियत करे। वह इस प्रकार स्वयं का जीवन तो अच्छा बनाता ही है, साथ ही दूसरों का भी कल्याण करता है। वैसे इस साधन में हम परिवार छुड़ाते नहीं। लौकिक कर्त्तव्य करते हुए ही, वह राम-काज कर सकता है। इसमें आवश्यक है कि वह निरभिमानी हो, सबसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करे, राग-द्वेष, कलह-क्रोध से परे हो। परनिन्दा, पिशुनता (चुगली) आदि दोषों से मुक्त हो। सत्याचरण हो। ऐसा सत्कर्म करता हुआ भी, ध्यानस्थ हो अर्थात् ब्राह्मी स्थिति में हो।

ये उपरोक्त स्थिति जड़ समाधि से कहीं बहुत ऊँची है। लोग शंकराचार्य, विवेकानन्द आदि के प्रामाणिक वचन कह कर पुष्टि चाहते हैं, स्वयं अनुभव की ओर नहीं बढ़ते। आवश्यकता इस बात की है कि स्वयं अनुभव करें। आजकल भौतिक विज्ञान भी उस सूक्ष्मशक्ति के महत्व को प्रकट करता है अर्थात् ऐटम बम, रेडियो, टैलीविज़न। हमें इससे भी मननपूर्वक शिक्षा लेनी चाहिये।

अतः सुन्दर बात चिन्तन करने योग्य यह है कि तुम समझो कि तुम आत्मा हो, शरीर नहीं। धर्म-पालन में शरीर छूटे तो छूट जाये। प्राण— भय से, धर्म से च्युत होना तो उचित नहीं। आत्मज्ञानी भीरु नहीं होता। वह रात में, अँधेरे में चोर, भूत आदि से क्यों डरेगा? नित्य मनन करो— तुम आत्मा हो। इन्द्रिय निग्रह करो। राम-काज में अपना जीवन समर्पण करो।

श्रावणी-सत्संग हरिद्वार,
जुलाई 1959,
समय प्रातः 11.00 बजे

❑❑

प्रार्थनाशील की पात्रता

प्रार्थना से आत्मबल बढ़ता ही है, मनोबल भी बढ़ता है। जिसका जितना मनोबल अधिक होगा, उसका उतना ही तीव्र संकल्प-तरंग आकाश में दूरगामी होगा।

मनोबल बढ़ाने के लिये सावधानी बरतनी चाहिये। प्रार्थनाकर्त्ता में परम शुचिता, परम सत्य तथा परम विश्वास का होना आवश्यक है। इन तीन व्रतों के साथ-साथ 'हाँ' को 'न' में और 'न' को 'हाँ' में नहीं बदलना चाहिये। जैसे मान लो कि आपने किसी को पचास रुपये देने को कहा, किन्तु बाद में विचार आया कि यह लौटा नहीं सकेगा, तो मना कर दिया। ऐसा करने से आपके पचास रुपये तो बच जायेंगे, किन्तु आपका मनोबल कम हो जायेगा। अतः वचन देने के पूर्व भली प्रकार विचार कर लेना चाहिये और बाद में उसको पालन करने की पूरी चेष्टा करनी चाहिये।

किसी मित्र से उसके यहां जाने का कोई समय नियत किया हो, तो फिर उस समय पर जाना चाहिये। यदि किसी कारणवश जाना सम्भव न हो, तो उस समय के पूर्व उसे सूचित कर देना चाहिये। इंगलैन्ड के नागरिकों के जीवन में ये बातें उतर गई हैं, किन्तु भारतीयों में यह बात आई नहीं। वचन पालन करने में पूरी तत्परता बरतनी चाहिये।

प्रार्थना किसी व्यक्ति के लिये करनी हो, तो पात्रता भी देखनी आवश्यक है। किसी अपराधी को न्यायालय में मुकद्दमे से छूट जाने के लिये प्रार्थना करना तो न्याय में विघ्न डालना है, पर क्योंकि वह मेरा साला है, इसलिये प्रार्थना करना आवश्यक है, ऐसा नहीं सोचना चाहिये। जब साधारण लौकिक सज्जन अनुचित व्यक्ति का अनुमोदन करना पसन्द नहीं करता, तो फिर भगवान को कांटों में क्यों खींचना ? फिर प्रार्थना करने पर भी ऐसी प्रार्थना निष्फल ही रहती है। पहले इस बात की सावधानी से जांच करने की

आवश्यकता है कि हम उचित व्यक्ति के लिये प्रार्थना कर रहे हैं। तत्पश्चात् ही हमें प्रार्थना करनी चाहिये।

ऐसे अवसर आते हैं कि परिवार के सम्बन्धी, मित्र कहते हैं कि अमुक के लिये आप प्रार्थना करें। चाहे वह फिर अपराधी ही क्यों न हो और मना करने पर रुष्ट भी होंगे, परन्तु उनकी रुष्टता का विचार न करके अस्वीकार कर देना चाहिये। जगत की रुष्टता से न डर कर भगवान की रुष्टता से डरो।

(शुचिता के विषय में स्वामी जी बोले) जैसे कोई अधिकारी है और उसे लड़की के विवाह के लिये रुपयों की आवश्यकता है और वह यदि सोचे कि घूस ले ली जावे, तो क्या बुराई है ? सरकार की दृष्टि बचाने के षडयन्त्र रचकर घूस ले लेता है। हर चोरी की तो जाँच होती नहीं। फिर जांच होने पर चोरी भी सिद्ध नहीं हो पाती, क्योंकि वह पहले ही बचने की व्यवस्था बना रखता है। किन्तु इसमें अशुचिता तो है ही। सरकार की दृष्टि से बचा जा सकता है, किन्तु ईश्वर की दृष्टि से नहीं। इससे मनोबल घटता है। ऐसे लोग कभी सत्य-संकल्प नहीं हो सकते।

जो चोरी करते हैं, वे पकड़े जाने पर घूस भी बहुत देते हैं, क्योंकि चोरी में कमाई प्रचुर होती है। अनुचित कमाई का पैसा आता है, उसे खर्च करने में भी दर्द नहीं होता। ठेकेदार अभियन्ताओं को घूस देते हैं और अपना बचाव करते हैं अर्थात् सरकारी चोरी करते हैं, अशुचिता से रुपया बचाते हैं। कुछ उसमें से अभियन्ताओं को घूस में देते हैं। ऐसा व्यक्ति प्रार्थना के लिये उपयुक्त नहीं।

रेडियो यदि ठीक हो, तो दूर-दूर के केन्द्रों की ध्वनि पकड़ सकता है और प्रसारण केन्द्र बड़ा हो, तो दूर-दूर तक शब्द फेंक सकता है।

ध्वनि तो सब ही आकाश में तरंग रूप से जाती हैं, किन्तु प्रार्थना के समय मनोबल से संकल्प तरंग सूक्ष्म-शक्ति के साथ दूरगामी होता है। यह हमारा विश्वास होना चाहिये कि हमारी प्रार्थना भगवान के पास सुनी जा रही है।

जिस प्रकार कि रेडियो स्टेशन पर गाने वाले अथवा भाषण देने वाले को विश्वास होता है कि मेरे शब्द देश-विदेश में जायेंगे और सुने जा सकेंगे। रेडियो से वे तरंग कहीं भी पकड़े जा सकते हैं।

प्रार्थना के समय हमारा विश्वास होना चाहिये कि हमारी प्रार्थना सुनी जा रही है। कभी-कभी शाब्दिक उत्तर भी मिल जाता है। इसके लिये प्रार्थी का मन निर्मल तथा मनःसंकल्प तीव्र होना चाहिये।

श्रावणी-सत्संग हरिद्वार,
जुलाई 1959
समय प्रातः 11.00 बजे,

❑❑

प्रार्थनाशील की पर-हित सेवा

व्रत लेकर सदस्य बनने के पश्चात्, मार्गदर्शन करने की प्रार्थना करने पर महाराज जी ने कहा– प्रार्थना का व्रत लो, फिर पर-हित के लिये तुम प्रार्थना कर सकते हो। इसके लिये मण्डल बनाने की आवश्यकता है। जैसे Magic circle होता है, उसी प्रकार यदि किसी को परीक्षा पास कराने के लिये प्रार्थना करनी हो, तो उसको भी सूचित कर दो कि खूब पढ़े तथा प्रार्थना करो, तो उसका अवश्य फल निकलेगा।

किसी की आजीविका के लिये भी ऐसी प्रार्थना की जा सकती है, किन्तु किसी की हानि के लिये प्रार्थना नहीं करनी चाहिये। जिनका जीवन प्रार्थनामय हो जाता है, उनका पथ-प्रदर्शन स्वयं ईश्वर करने लगता है, ऐसा ईश्वरी आदेश भी होता है कि इस विधि से चार दिन तक प्रार्थना करो अथवा इसके लिये प्रार्थना न करो, सप्ताह तक प्रार्थना करो या कोई और प्रार्थना करो।

प्रार्थना करते समय परमात्मदेव की उपस्थिति की प्रतीति भी होती है, शब्द भी सुनाई देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस मार्ग में साधन आरूढ़ होने पर अनेक अद्भुत अनुभव होते हैं–करने से पता चलेगा। भक्ति-भाव से तत्पर होकर साधन में लग जाओ।

प्रतिवर्ष जुलाई मास में कुछ छुट्टियां लेकर यहां रहकर साधना करो। कुछ मित्रों के साथ जिनकी प्रार्थना में वृत्ति हो, साधन करने को यहां आओ। रामकाज करो, तो सब प्रकार से कल्याण होगा, पारिवारिक स्थिति भी सुधरेगी।

खूब साधना करो। प्रार्थना संगठन स्थापित करो। सेवा-कार्य (Missionary work) करने में जुट जाओ–राम-कृपा तुम्हारी सहायता करेगी। तुम्हारे में वचन-बल बढ़ेगा। जीवन में सत्यता लाओ, झूठ से घृणा करो, इन्द्रिय-संयम करो।

मैं यह पसन्द नहीं करता कि कोई डींग मारता फिरे कि मुझे यह सेवा-कार्य सौंपा गया है, अपितु चुपके-चुपके वह सेवा-कार्य करे। मान की भूख न हो।

एक बार एक मित्र को रुग्णावस्था में देखने के बाद मुझे उसके लिये प्रार्थना करने का विचार आया। क्योंकि मैंने सोचा कि उसका कुछ वर्ष और जीवित रहना आवश्यक है। किन्तु जब मैं प्रार्थना करने के लिये बैठा, तो आवाज़ आई कि इतने हैं, उसके स्थान पर कोई और काम कर लेगा। मैंने समझा कि इस लोक में अब उसका ठहरना कठिन है। एक बार कुछ दिन फिर चार-पांच महीने लगातार किसी के लिये प्रार्थना की। वह व्यक्ति अब ठीक है। यदि आप त्याग को खो देते हैं, तो आपने सब कुछ खो दिया। आपको त्याग तथा भावनाओं में वृद्धि करनी चाहिये। महात्मा गांधी की उनके निःस्वार्थ भाव के लिये मैं प्रशंसा करता हूँ। उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। वे चाहते तो गवर्नर जनरल या प्रधानमंत्री बन सकते थे।

श्रावणी सत्संग हरिद्वार,
जुलाई 1959,
समय प्रातः 11.00 बजे

❑❑

वाणी एवं काया का तप

वाणी से कोई ऐसा वचन न कहना जो दूसरे को अशान्त कर दे, यह वाणी का तप है। मौन रहने से यह व्रत ऊंचा है।

दूसरे को कोई ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये जो असत्य हो। सत्य का अर्थ है, 'जैसा समझना, वैसा कहना।'

उदाहरण के रूप में– कई बार कोई हमें पूछता है, 'कहां जा रहे हो ?' हम जा कहीं रहे होते हैं, यूं ही कह कहीं देते हैं। खाने के लिये कोई व्यक्ति कहता है, तो झूठ कह देते हैं, 'मैं खा के आया हूं।'

वाणी को ऐसे-ऐसे अकारण झूठ से रोक लेना, इसी से हम उस शाश्वत सत्य की ओर बढ़ने का और उस अनन्त सत्य में विभोर होने का प्रयास कर सकते हैं।

सत्य पालन में किसी को प्रिय लगने के लिये भी झूठी बात नहीं कहनी, यह भी वाणी का तप है। प्रायः हम किसी को प्रसन्न करने के लिये झूठी बात कह देते हैं। ये छोटे-छोटे असत्य हमें अनजाने ही बड़े असत्य की ओर धकेल देते हैं। किसी को आने के लिये समय देना, उस पर पहुंचना नहीं, यह बात भी बड़ी असत्य है। उसकी बजाय यह कहना अधिक उचित है, 'मैं पहुंचने का प्रयत्न करूंगा।' शब्दों को सोच-समझ कर कहना, फिर उन पर पूरा उतरना, यह ही आपकी सच्चाई का मुंह बोलता चित्र है।

शरीर के किसी भाग को कष्ट देकर सुखाना, यह काया का तप नहीं है।

क्रोध में संयम से रहना, यह काया का तप है। बहुत से लोग क्रोध में आपे से बाहर चले जाते हैं।

मुझे एक जमींदार अपने गाँव ले गये। उनकी धर्मपत्नी ने मुझे कहा, 'इन्हें क्रोध के लिये समझाओ। छोटी-छोटी सी बात पर आवेश में आ जाते हैं'। मैं उन्हें क्या समझाता, वे स्वयं बोल उठे, 'क्या करूं स्वामी जी! क्रोध में तो बावला हो जाता हूँ। वाणी के अतिरिक्त हाथ-पांव भी काबू से बाहर

निकल जाते हैं।' आप सोचें, जब वे यह बात कह रहे थे, उस आर्य महिला की दशा क्या हो रही होगी ? 'क्या यही देश है, जहाँ नारियां पूजी जाती हैं और देवता निवास करते हैं ?' उस बेचारी पत्नी की हालत इतनी बात से ही मिट्टी हो गई थी।

यह क्रोध का संयम ही काया का बड़ा भारी तप है। यही सनातन धर्म है। धर्म वही जिसे धारण किया जाये। कोई बहुत ज्ञानवान हो गया, पर इस धर्म को धारण नहीं करता, तो वह ज्ञान का भार ही ढोये फिरता है।

साधना-सत्संग हरिद्वार,
दिनांक 24.4.1959,
समय प्रातः 11.00 बजे

❑❑

भक्ति-योग

अनन्य-भक्ति

रात्रि के समय भजन करने वाले को सन्त-कृपा प्राप्त होती है। भक्त रात को राम-धुन गाता हो, आकाशलोक का कोई दर्शक सुन ले 'सारी दुनियां इक पासे, मेरा राम अकेला इक पासे' तो गायक आशीर्वाद पाता है। सन्तकृपा का एक क्षण, जीव की जन्म भर की कमाई से अधिक महत्व रखता है।

बी.ए. और एम.ए. की परीक्षा के लिये अधिक से अधिक समय लगाते हो, किन्तु राम-भजन में नहीं। विचार-शक्ति से काम लो। राम-कृपा सहज नहीं है। वह अधिक से अधिक श्रम करने से ही सम्भव है। अविराम निरन्तर साधना करनी चाहिये। बड़े मान और आदर के साथ ध्यान में बैठना चाहिये। चारों ओर शान्ति हो, ऐसे समय में अभ्यास करो। भावना ऊँची होनी चाहिये। इस कार्य के लिये अधिक से अधिक समय दो। समय प्रशान्त होवे। अखण्ड जाप भी पुरुषार्थी के लिये है। जप करते-करते अनुभूतियाँ होती हैं, यह एक शिक्षण है।

'भगवान में अनन्य भाव यदि हो, तो उद्धार हो ही गया। मरने से बचने की चिन्ता की कोई बात नहीं है।' भगवान का वचन है, भक्त को विश्वास दिलाया है। प्रामाणिक वचन भगवान के विश्वसनीय हैं। फिर सन्देह की बात इस भगवद्-वाक्य में क्यों हो ?

लिखे-पढ़े आदमी में सन्तोष बहुत कम है। कारण कि उसकी इच्छायें बहुत हो गई हैं, जो पूरी होनी असम्भव हैं। मनुष्य में धारणा नहीं रही। धार्मिक जगत भी बहुत चंचल है। इस कारण भगवान की विभूतियों का अवतरण नहीं होता। भगवान तो उद्धार करते हैं, किन्तु तब, जब कि हमारी भक्ति अनन्य हो, अन्यत्र दृष्टि न हो। जब मन बुद्धि भगवान में लग जाये, तो भगवान में ही भावना से, भावनामय जगत में, मनुष्य भगवान के समीप रहता है। भंवरा दूर वन से कमल में आ जाता है, किन्तु पानी में रहने वाला मेंढ़क कमल में नहीं

आ पाता।

अनन्य-भक्ति बड़ी ऊंची है, मनन करने से वह आती है। भगवान के द्वार पर जाकर, फिर अन्य द्वार जाकर खटखटाता फिरे, तो शोभा नहीं देता। अनन्य-भक्ति सर्वश्रेष्ठ भक्ति है, सर्वोच्च है। परा-विद्या ही अनन्य-भक्ति है।

नारद भक्तिसूत्र में कहा है– 'परमेश्वर में परम प्रेम हो', पतंजलि ने कहा है– 'यज्जपस्तदर्थभावनम्।' बार-बार आराधित किया हुआ भगवान, उस व्यक्ति पर अनुग्रह करने लगता है। सब ग्रन्थ इस बात को दुहराते हैं। अतः अनन्य-भक्ति का साधन करो। अवश्यमेव कल्याण होगा। गीता के अध्याय बारह में, वर्णित अनन्य-भक्त के लक्षणों का पाठ करो, कण्ठाग्र करो और जीवन में उतारो, तब लाभ होगा।

साधना-सत्संग हरिद्वार



भक्ति अनन्य हो

अपने विश्वास को बड़ा पक्का रखना चाहिये। वेदान्त में भगवान का व्यक्ति के रूप में प्रकट होना नहीं माना। ब्रह्म क्या है? अनिर्वचनीय है (Which cannot be defined), ऐसा वेद कहते हैं। भक्त तो तब तक आराम नहीं करता, जब तक वह उसके (परमेश्वर के) साथ बातचीत न करे और उसके कामों में सहायक न हो। वेदों में आया है कि 'अपने तन को बढ़ाकर हमारे यज्ञ में सम्मिलित हो। तू हमारे साथ बोल।' ऋगवेद में ये बातें हैं, जिससे वह पवित्र है। अब तो फिलॉसफी चल पड़ी है। भक्तों ने तो भगवान को देखा और जाना। फिलॉसफी में तो बोधक विनोद से अधिक कुछ भी नहीं है। वह विष्णु का परम-धाम है। भगवान वैष्णवों पर ही प्रकट हुए। जिस का निश्चय नहीं है, उस पर भगवान का क्या प्रकट होना! फिलॉसफी केवल बोधक है, फिलॉसफी मैं करता नहीं। मुझे पता है कैसे प्रकट होता है? भक्त कहता है, 'मेरे परमेश्वर! मैं आपको देखना चाहता हूँ।' आवाज आती है, 'किस रूप में?' नाम का उपासक बोला, 'जिस रूप में तुझे पसन्द हो।' विश्वास रखने वालों पर ही भगवान प्रकट होते हैं।

भगवान का स्वरूप आज भी लोगों पर कुछ अंशों में प्रकट होता है। विश्वास बड़ा हो। गाँधी जी जैसा बड़ा व्यक्ति, जिस में भारी निश्चय था, बोला कि उसे कहा गया है कि तू आक्रमण कर। इसलिये कहा है कि अनन्य-भक्ति से जो जानते हैं, उनका योगक्षेम भगवान स्वयं निभाते हैं। भक्त की बड़ी भावना होनी चाहिये।

'जो किसी अन्य देवता की श्रद्धा से पूजा करते हैं, वे भी किसी न किसी प्रकार, अविधिपूर्वक, मेरे को ही प्राप्त होते हैं। मैं ही सब यज्ञों का भोक्ता हूँ' (गीता अध्याय 9, श्लोक 23 व 24)। परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी देवता की पूजा करना, अविधि कहा है। जैसे एक व्यक्ति ने स्वयं गंगा जी में फूल चढ़ाये और एक ने नौकर के हाथ। कितना अन्तर है दोनों में! तो मुझे

कहना यह है कि भक्ति अनन्य हो। गुरु को परमेश्वर समझना ठीक नहीं। भगवान का आसन आपने एक कुली को दे दिया, तो क्या महत्व ? यह त्रुटि हिन्दुओं की प्रगति में बड़ी बाधक है। मुझे कहना यह था कि भक्तिवाद में अपनी स्तुति के लिये कोई स्थान नहीं है। ब्रह्म-समाज को आधा क्रिश्चियन कहते हैं। वे भी मानते हैं कि हज़रत ईसा ही केवल ईश्वर का पुत्र क्यों ? ईश्वर तो सब का पिता है। यह बड़ी ठगी है कि परमेश्वर उसी में प्रकट, औरों में नहीं। आप को विश्वास हो कि भक्त का कभी नाश नहीं होता। गीता में महाराज ने भक्ति-धर्म का बड़ा अच्छा निरूपण किया है 'मैं सब में सम हूँ।' यह पृथक बात है कि किसी में संशय और किसी में विश्वास, पर ऐसा तो नहीं कि सूर्य किरण दूसरे पर पड़ती नहीं। लाभ तो ग्राह्य-शक्ति पर निर्भर है। बारहवें अध्याय में भक्त के लक्षण वर्णित हैं। इनसे गिरा हुआ, तो गिरा हुआ ही है। इन लक्षणों का मनन किया करो। भक्तों के लिये तो भगवान ने कहा है कि 'उनमें मैं रहता हूँ और वे मुझ में रहते हैं।'

हम यदि कहें कि गाय वह जिसके सींग, तो भैंस, बकरी, बैल आदि सब के सींग होते हैं। ऐसे ही मनुष्य वह जिस के कान, तो कान तो गधे के भी होते हैं। वास्तव में, जिस में मनन-शक्ति, वह मनुष्य है। भगवान में वह भक्ति होनी चाहिये, जो दूसरे देव में न हो। वैसे लोग गीता को बहुत मानते हैं, किन्तु चलते किसी और दिशा में हैं। यह समाज में परम्परा से दोष है। 'जो मुझे इस प्रकार अनन्य-भक्ति से पूजते हैं, वे मुझ में और मैं उनमें निवास करता हूँ। वे चाहे कितने ही हों।' सारी दुनिया के कांटे तो उठाने मुश्किल हैं। पर जो बूट पहने, उसके लिये तो सारे संसार में चर्म बिछ गया। भक्त तो विश्वास का जूता पहने। ऐसा मनुष्य हो जावे, तो फिर उस का कल्याण हो जाये।

मेरा एक मित्र सेना में बड़ा अधिकारी था। छुट्टी के दिन वह दूसरे बड़े अधिकारियों को मिलता। वे कहते बुराई बाहर से आती है, किन्तु वह कहता बुराई अन्दर से आती है। प्याज़ खा लिया तो बुराई (गंध) अन्दर आती है। इसी तरह विरोध अन्दर से आता है। यह पंथों ने बाहर से समझा कि तम्बाकू खाने न खाने में ही सारा धर्म निहित है। दोष तो अन्दर से और गुण भी अन्दर से आते हैं। यदि हृदय में हर्ष, तो आंखों में भी हर्ष। चेतना हो, तो व्यक्ति में शक्ति भी होगी। अन्दर का हर्ष मुख पर दीख पड़ता है। यह नहीं कि पाउडर से मुखड़ा खिल जायेगा। पाउडर लगाना बुरा नहीं, पर भीतरी रौनक से मुखड़ा खिला होना तो अधिक अच्छा है।

कोई बड़ा पातकी, पापी भी यदि हो, तो यदि किसी प्रकार भक्ति-सागर में प्रवेश कर गया, तो बड़ा धर्मात्मा हो जाता है। सदा रहने वाली भक्ति को प्राप्त हो जाता है। 'सब पापों से स्वयं मैं उसे छुड़ा देता हूँ। हे कुन्तिपुत्र! तू यह अच्छी प्रकार जान ले कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता' यह तो भगवान ने अपने ऊपर उत्तरदायित्व लिया है। कितना ऊँचा यह उपदेश है!

आदरणीय भाइयो! जब एक देव पर विश्वास हो, तो बेड़ा पार। पर जब अनेक पर विश्वास, तो क्या है ? यमुना जी में स्नान कर के एक देवी चली। मार्ग में कोई वैरागी बैठा था, उस के चरणों में प्रणाम किया। आगे एक मुस्लिम कब्र पर माथा टेका। साथिन ने कहा तू सब को मानती है। बोली कलियुग है। कोई तो कठिन समय में काम आयेगा। पर आज आप ने भजन सुना—मीरा ने तो यह कहा था, 'चित्त चढ़ी मूर्ति, हृदय में आन अड़ी।' पर जो इतने देवों को पूजते हैं, वे कैसे तरेंगे ? यह विश्वास का धर्म है। भगवान उसमें बसे हुए हैं, जो अनन्य भक्त है। मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता, यह उनकी प्रतिज्ञा है।

भगवान को अर्पण करना ही भक्ति-धर्म है। भक्तों के कार्य के लिये वह स्वयं प्रकट होता है। पंथों के कारण इस का स्वरूप कुछ और है, जिस से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं। हमें तो अपने परमेश्वर पर दृढ़ विश्वास है। उसी पर सुनिश्चित निश्चय होना चाहिये।

साधना-सत्संग हरिद्वार,
दिनांक 13.4.1957,
समय प्रातः 11.00 बजे



भक्ति-महत्व

भक्ति शुभ की राशि है। भक्ति भगवान में श्रद्धा, सुविश्वास से पैदा होती है। अपरा भक्ति तो साधारण, पर आन्तरिक भक्ति, संशय रहित अनन्य निश्चय के साथ जुड़ी हुई है। अनन्य निश्चय यह है कि एक वह ही है। राम पर पूरे भाव से निर्भर होना जैसे समर्थ रामदास, तुकाराम, रामानन्द, तुलसीदास। जैसे बच्चा मां पर निर्भर और किश्ती पर बैठा नाव पर निर्भर होता है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि ऐसे जो लोग मुझ में जुड़े हुए, मिले हुए होते हैं, उनके योगक्षेम मैं स्वयं चलाता हूं। परा-भक्ति, हम राम-नाम से भक्ति कहते हैं। कोई खुदा नाम से कहे, उस से हमारा कोई झगड़ा नहीं व विवाद नहीं। पर पानी कह कर आग डालने की कोशिश नहीं होनी चाहिये।

हम अपने राम-नाम, जिस से भक्ति-प्रार्थना करते हैं उससे, हमारी बड़ी प्रीति है। हम समझते हैं कि परम-पद से हमें प्राप्त हुआ है। सत्य-कर्म, जन-सेवा, दूसरे का हित करना ये भी सब भक्ति में सम्मिलित हैं । केवल माला फेरना ही भक्ति नहीं है। भगवान के मन्दिर तो बहुत हैं, विस्तार से कहें तो शुभ कर्म जितने हैं, वे सब भक्ति का भाग हैं। राम-नाम की लहर चली है– जो जितनी जन-सेवा करता है, उतना ही उसका राम पूजन होता है।

पण्डित लोग वर्णन किया करते हैं, उनकी बातों में नहीं जाना चाहता, पर तुलसीदास जी कहते हैं 'ज्ञान कर्म बिन प्रीति न होए' फिर प्रीतियां कई प्रकार से पैदा होती हैं। पारिवारिक सम्बन्ध के कारण भी कर्म किये जाते हैं। प्रीति जबरदस्ती से नहीं होती। लड़के को हाथ पकड़ कर स्कूल छोड़ आना कोई और बात है। शुरू-शुरू में तो बच्चा छुट्टी पसन्द करता है, चाहे मास्टर की मां भी मर जावे। बाल उपदेश पढ़ने वाला, जब कॉलेज जाने लगता, तो बाद में वह रोकने से भी नहीं रुकता। उसमें प्रीति पैदा हो चुकी होती है। भक्ति के बिना ज्ञान और सुकर्म कठिन। प्रीति से ज्ञान बढ़ता है। पहाड़ में पानी न हो, तो चश्मा नहीं निकलता। सुकर्म भी और भले कर्म भी उन में होते हैं जो प्रीतिवाले

हैं। इस को पण्डित भाषा में भक्ति कहा जाता है। किसी ने कहा कि वह लड़का माता-पिता का बड़ा प्रेमी है। यह कहना ठीक नहीं। ठीक कहना हो, तो कहना होता है कि यह लड़का माता-पिता का बड़ा भक्त है। पर लड़के की बजाय बाप की बात हो, तो ठीक कहना यही कि वह पुत्र का बड़ा प्रेमी न कि वह पुत्र-भक्त। विषयों से जो प्रीति है, वह प्रेम नहीं कहला सकती। इसी प्रकार इष्ट ज्ञान से भक्ति कहलाती है।

भक्ति-भाव में ज्ञान और कर्म दोनों का मेल है। वह मनुष्य नहीं जो सेवा नहीं करता, जो समय पर जाप-आराधन नहीं करता। जिस में देश प्रेम नहीं, सुविश्वास भी नहीं, वह भक्त नहीं। भक्ति ज्ञान से बड़ी है। तुलसीदास जी कहते हैं कि जो ऐसी भक्ति को जान करके भी केवल ज्ञान के लिये परिश्रम करते हैं, वे जड़मति वाले कामधेनु को छोड़ कर वन में आक से दूध निकालने जैसी बात करते हैं।

❑❑

अव्यभिचारिणी भक्ति

ब्रह्म अनिर्वचनीय होता है। सच्चिदानन्द भी उनका विशेषण है। भक्त तो भगवान को बुलाता है और तब तक विश्राम नहीं लेता, जब तक वह उसके कार्यों में आकर भाग नहीं लेता, साथ नहीं देता। भक्तों ने भगवान को जाना है, बौद्धिक लोगों ने जाना नहीं है। वे केवल बौद्धिक आनन्द उठाते हैं। भगवान को जो व्यक्तित्वरहित मानते हैं, उन पर रूप अवतरित नहीं होता। जो व्यक्तित्व में विश्वास रखते हैं, उनके विश्वास के अनुरूप, रूप अवतरित होता है। आज भी भगवान के रूप प्रकट होते हैं। गाँधी जी को ब्रिटिश सत्ता से टक्कर लेने को भगवान का आदेश हुआ।

'अनन्य भक्ति करने वालों का योगक्षेम मैं चलाता हूँ। जो दूसरे देवताओं को पूजते हैं वे मुझे जानते नहीं हैं।' 'जो भूतों को पूजते हैं वे भूतों को प्राप्त होते हैं। जो मुझ को पूजते हैं, वे मुझे प्राप्त होते हैं।'

हिन्दुओं में वेदान्त से गुरुओं में ईश्वर के रूप की मान्यता आई, किन्तु यह विचार शोभा नहीं देता। यह विचार भारत की स्त्री जाति में अधिक पाया जाता है। वे गुरु को ईश्वर मानती हैं। यह तो ठगी है। केवल एक व्यक्ति में ईश्वरी-कृपा अवतरित होती है, ऐसा पन्थवाद में ही पाया जाता है। केवल ईसा ईश्वर का पुत्र नहीं था, वरन् हम सब ईश्वर के पुत्र हैं, यह बात मान्य है।

अव्यभिचारिणी भक्ति होनी चाहिये। आदमी अन्दर से अच्छा होना चाहिये। बुराई बाहर से नहीं आती, अन्दर से आती है। यदि अन्दर हर्ष होवे, तो मुख स्वयं खिल जाता है। यदि हृदय में चिन्ता की चोट लगती है तो मुख पर विषाद की झलक आ जाती है। यदि भलाई अन्दर हो, तो वह भी प्रकट होती है। भगवान अन्दर आ जाये, तो भलाई भी बाहर आती है। जिस प्रकार हृदय की तरावट चेहरे पर व आँखों में छा जाती है। उसी प्रकार भक्ति भी भक्त के जीवन में छा जाती है। भगवान की भक्ति बार-बार चिन्तन करने से आती है।

पीपल में पानी देना, कब्र को नमस्कार करना, यह व्यभिचारिणी भक्ति है। मीरा के अनुसार भगवान की मूर्ति तो हृदय में होनी चाहिये। लोगों ने तो न जाने मन में क्या-क्या बसाया है?

भगवान की भक्ति निष्कलंक कैसे हो, यह बार-बार चिन्तन करना चाहिये। भक्ति बार-बार चिन्तन करने से पुष्ट होती है। उसमें सुनिश्चय होना ज़रूरी है।

साधना-सत्संग, हरिद्वार,
दिनांक 13.4.1957,
समय प्रातः 11.00 बजे



नाम-भक्ति

जैसे फूल में सुगन्ध तथा गुण में गुणी बसता है, उसी प्रकार नाम में नामी बसता है। शक्ति और शक्तिमान अलग-अलग नहीं होते। शिव-पार्वती और विष्णु-लक्ष्मी इसी बात के प्रतीक हैं। जैसे देह और देही, व्याप्य और व्याप्त होते हैं, उसी प्रकार नाम में नामी स्थित है। प्राण-प्रतिष्ठा के बाद मूर्ति नमन योग्य हो जाती है। शब्दों के फेर में न पड़ो। जो भेद हैं, वे स्वरूप और वस्तु भेद हैं। नाम से भेद नहीं होता। यों तर्क का तो कोई पार नहीं है और न तर्क से सत्य की पुष्टि ही विश्वसनीय है।

'रा' जैवी शक्ति को उद्दीप्त करता है तथा 'म' उसे दशम-चक्र तक सहज ही पहुँचा देता है। अतएव इसे सहजयोग कहा जाता है। राम शब्द अविनाशी है, किन्तु रूप बदला ही करता है।

धार्मिक रीति पर गठित हमारा समाज यद्यपि कहीं-कहीं बड़ा संकुचित भी है, किन्तु फिर भी हमारे यहां उदारता बहुत है। अन्य धर्मों की तरह यहां भी इतने धर्म-ग्रन्थ होते हुए भी, धर्मानुयायियों ने किन्हीं को निषिद्ध नहीं किया। अनेक ग्रन्थ होने के कारण विशेष सम्बन्ध किसी ग्रन्थ से नहीं रह पाया।

गीता भारत का अत्युत्तम ग्रन्थ है। जीवन गठन के मूल तत्त्व इसमें भरपूर हैं। गीता भारत ही नहीं, वरन् संसार के साहित्य में अमूल्य है। भाषा की दृष्टि से भी किसी ग्रंथ का निर्माण काल सिद्ध हो जाता है। रामायण का निर्माण काल भाषा की दृष्टि से उपनिषद् काल तथा महाभारत का निर्माण उसके पश्चात् ठहरता है।

श्री तिलक जी ने गीता-रहस्य लिखकर पूर्व और पश्चिम के दर्शन का तुलनात्मक विवेचन करके भारतीय दर्शन का स्थापन किया।

क्रान्ति का आह्वान जब भी होता है, तब अनेक बलिदान होते हैं। जब ऑपरेशन होता है, तब बुरे के साथ अच्छा खून भी बहुतेरा निकल जाता है।

क्रान्ति युग में गाँधी जी ने भी गीता को अपनी उपासना में सम्मिलित कर लिया। अतः क्रान्तिकारी भी धर्म का विरोध नहीं कर सके। उन्हें दिशा मिल गई। प्रत्येक भारतीय को गीता का अवश्य ही अध्ययन व मनन करना चाहिये।

प्रत्येक व्यक्ति सुखार्थी है। सुख तीन प्रकार के होते हैं– सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। आरम्भ में विषवत्, किन्तु परिणाम में मधुर सुख ही सात्त्विक है। वह सुख बुद्धि के प्रकाश से प्राप्त होता है तथा आत्मबुद्धि की प्रसन्नता से उत्पन्न होता है, अतः आत्म बुद्धि 'प्रसाद'– सुख होता है। विषय और इन्द्रियों पर आधारित सुख पहले अमृत सदृश्य होता है, परन्तु परिणाम में मृत्यु तुल्य होता है। यह सुख राजस है। निद्रा, प्रमाद और आलस पर आधारित सुख तामसी होता है। राजस और तामसी सुखों को त्यागना चाहिये।

शंका-रहित भक्ति से पराभक्ति की प्राप्ति होती है। इसी को अनन्य व निर्भरा-भक्ति कहते हैं। मोक्ष का सरल और निश्चित मार्ग राम-नाम पर अटल विश्वास है।

जन-सेवा भी भक्ति का प्रकार है। तुम्हारा प्रत्येक कार्य भगवान की पूजा है। सतत् परहित और सेवा में लगे रहो, यही सच्ची भक्ति है। आध्यात्मिक जगत में प्रीति या प्रेम को ही भक्ति कहते हैं। प्रीति के अभाव में ज्ञान या कर्म संभव नहीं होते। बिना प्रीति के कर्म, कर्म के रूप में नहीं हो सकता। झरने उसी पहाड़ में से निकलते हैं, जिसमें जल होता है। फिर भला बिना प्रीति के ज्ञान और कर्म कैसे सम्भव होंगे ?

इष्ट के प्रति प्रीति को भक्ति कहते हैं। देखा जाये तो ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों एक ही रूप हैं। बिना प्रीति के न ज्ञान सम्भव है न कर्म और न भक्ति ही हो सकती है। भक्ति को ज्ञान और कर्म का समन्वय कह सकते हैं। जब प्रीति गूढ़ हो जाती है तो वही भक्ति कहलाती है। वैसे बड़ा छोटा कहना केवल वाणी-विलास है। कौन को बड़ा कहा जाये और किसे अल्प समझा जावे ?

कागभुशुण्डि जी ने कहा है कि बिना भक्ति के भवसागर तरना, समुद्र पैरों से पार करने के समान है। ज्ञान-मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलने के

समान अत्यन्त कठिन है। ज्ञान-मार्ग पर चलने से जो कैवल्य-पद प्राप्त होता है, यह भक्ति मार्ग से अनायास ही प्राप्त हो जाता है, जैसे- जल और थल साथ-साथ ही रहते हैं।

दृढ़-निश्चय ही सफल सिद्धि का मूल होता है। संतों का निश्चय बड़ा अटल होता है। पिता तुम्हारे धन-धान्य से प्रसन्न नहीं होता। वह तुम्हारी प्रीति का भूखा होता है। तुम्हारे इतर ज्ञान से परमेश्वर को कोई प्रयोजन नहीं है। तुम्हारे ज्ञान और कर्म में यदि भक्ति का माधुर्य नहीं है, तो उसका कुछ भी मूल्य नहीं है। भक्ति को संकुचित मत करो। राम-भक्त को बड़ा सेवाभावी, बड़ा सेवक होना चाहिये। उसे सर्वभूतों में स्थित कर परमेश्वर को पहचानना चाहिये। सभी हृदय भगवान के मंदिर हैं। उन सब में ही तुम्हारी निश्चल प्रीति होनी चाहिये।

साधना-सत्संग ग्वालियर,
दिनांक 27-28.10.1957
अपराह्न 4.00 बजे

□□

कर्म-योग

दो मार्ग

अतिशय मंगल स्वरूपाय, परम कल्याण कारिणे।
सर्वशक्तिमद्देवाय, श्री रामाय नमो नमः॥

देवियो और सज्जनो ! कल मैंने आपके सामने कर्तव्य-पालन का वर्णन किया था। यह मनुष्य जीवन बड़ी दुर्लभ चीज़ है। इसको पाकर कमाई करनी चाहिये। दुकान पर कोई बैठा हो, तो उसको कमाई करनी चाहिये। दुकान जुए के लिये नहीं, ताश के लिये नहीं है। दुकान तो कमाई के लिये होती है। किसी ने किसान को बीज दिया, यदि वह उस बीज को बीजे, तो वह सौ गुना हो जाये, पर चिड़ियों के आगे डाल दे, तो यह किसान की बुद्धिमत्ता नहीं है। आयु के एक-एक पल के दाने को विषयों के हेतु, जो फेंक देते हैं, वे प्राणी कितने मूढ़ और भाग्यहीन हैं ? इसके लिये बड़ा प्रयत्न करना चाहिये। उत्तम प्रयत्न यह है कि अपने जीवन को राम के मार्ग, राम के पथ पर चलाना चाहिये। दो मार्ग हैं, एक स्वयश का और दूसरा परयश का। एक आनन्द सुख मनाने का और एक कल्याण का।

किसी अच्छे पण्डित ने सभा में यह कहा कि दो रास्ते हैं। एक ईश्वर का और एक माया का। माया के मार्ग में प्रलोभन है। आदमी उसमें खिंचता है, पर अन्त में उसमें कष्ट है। मछली आटे को देख कर ही आती है, तो कांटा मुंह में फंस जाता है। कबूतर और तीतर पकड़ने वाले जाल बिछाते हैं, दाने डालते हैं, तो फिर डार उसमें आती है। आकाश का रहने वाला स्वतन्त्र पक्षी प्रलोभन के कारण फँस जाता है। प्रलोभन के पीछे दौड़ना अपने आपको हनन करना है। प्रलोभन का मार्ग अन्त में कष्ट की ओर ले जाता है। परिणाम होता है, दुःख और चिन्ता। राग-द्वेष और कलह में माया पनपती है। माया का मार्ग आत्मा के लिये हानिकारक होता है। जो पुरुषार्थी और उद्यमी है, वह कभी भी भूखा

नहीं रहता। आलसी पास रखी हुई चीज़ के लिये भटकता रहता है और पुरुषार्थी के लिये हज़ारों कोस की चीज़ भी समीप ही होती है।

माया का मार्ग आत्मा के लिये बड़ा हानिकारक है। किसी मेले में चार आदमी गये। एक ने कहा, मेरा जी तो खेल देखने को चाहता है। सो जिधर वीरता के खेल हो रहे थे, उधर वह चला गया। एक साथी ने कहा, मैं तो कुछ खाऊँगा। तीसरे ने कहा कि मेरी तो यह रुचि है कि मेले में ज़रा मस्ताना होकर घूमूँ। वह शराब की दुकान पर चला गया। चौथे ने विचार किया कि यह भक्त लोग जो गीत गा रहे हैं और किसी से कुछ माँगते नहीं हैं, उनके पास बैठूँ और उधर चला गया। सायंकाल सब इकट्ठे हुए। एक का बुरा हाल, मुँह में झाग, नशे में चूर, बार-बार उठाते हैं, पर वह बार-बार गिरता है। खेल तमाशा देखने वाला, जिसने दांव-पेंच का खेल देखा, उसने जोश की बातों की चर्चा की और उसके जी में आया कि मैं भी दांव-पेंच सीखूँ और यही बात उसने शाम के समय साथियों पर प्रकट की।

तीसरे ने कहा कि दो रुपये की मिठाई खरीदी, पर अब मुझे प्रतीत हुआ है कि वह रंगदार, ऊपर से अच्छी पर अन्दर से बहुत खराब थी। न जाने क्या डाल रखा था? खाते ही डकार, कै और बुरा हाल और गिर गया। भले आदमी कोई थे, वे अस्पताल ले गये। दवाई दी, बच गया। हैज़ा था, पेट में दर्द अब भी है। दिन चढ़े उसने कहा कि मैंने कानों को हाथ लगाया कि मैं मेले में कोई चीज़ नहीं खाऊँगा।

चौथे ने कहा कि मैं सत्संग में गया था। जो मुझे आन्तरिक सुख हुआ, वह जन्म भर कभी नहीं हुआ। खेलने वाला कहे वह सुख कौन-सा है, क्या तुम्हें अब भूख नहीं लगेगी? उसने कहा कि ये तो अन्दर ही जानता है। खेलने वाले ने कहा, मेरे मन में तो वीरता का ही भाव पैदा हुआ।

मुझे कहना यह था कि प्रलोभन का मार्ग तो ऐसा ही है, जैसे मेले में रंगदार मिठाई। माया का मार्ग अन्धेरे का है, अज्ञान का है। इसमें हानि-लाभ का भी विचार नहीं रहता। मृग गीत पर मस्त होकर दौड़ कर जाता है और गोली खाता है। पतंगे चमकती वस्तु पर, बिजली या बत्ती पर, प्रलोभन के कारण जाते और भस्म हो जाते हैं। यह दुराचार का मार्ग

और हत्या का मार्ग है।

पण्डित ने दूसरा मार्ग बताते हुए कहा, दूसरा मार्ग सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। आत्मा-परमात्मा का मार्ग है। उसमें आँखों का, कानों का प्रलोभन नहीं। केवल आन्तरिक-वृत्ति से बात आती है। जो उसके जीवन को ऊँचा बनाती है। जो नर-नारी इस मार्ग पर चलते हैं, उनकी सभी प्रकार की कमी दूर हो जाती है। वे बहुत अच्छे रहते हैं। उनको आनन्द हो या कुछ भी हाल हो, हर हाल में स्वाद ही आता है।

कुछ सज्जन कार में आये और नहर के किनारे जा बैठे। खाने की चीज़ें निकालीं और चर्चा शुरू की कि देखो रसोइये ने चटनी और अचार दिया ही नहीं। खाने में कोई स्वाद ही नहीं है। घर वालों ने यह क्या दे दिया? यह मट्ठी तो गले में अटकती है। वहीं नहर के किनारे एक किसान भी आकर बैठ गया। उसने सोचा एक बज गया है, रोटी खाऊं, और अपनी रोटी निकाली, प्याज़ निकाला और मज़े से खाने लगा। एक ज्ञानी वहाँ से जा रहा था। उसने कार वालों की बातें सुनीं और कहने लगा, इतनी चीज़ें तुम्हारे लिये बनाई गई हैं। घरवालों और रसोईये ने मेहनत की है, परन्तु तुम खोट निकाल रहे हो। वे कहने लगे कि स्वाद नहीं आया। ज्ञानी ने कहा कि यह स्वाद की बात उस किसान से क्यों नहीं पूछ लेते, जो प्याज़ से रोटी खा रहा है।

वे उस किसान से कहने लगे, 'क्या कारण है, जो हमें स्वाद नहीं आया?' किसान ने कहा, 'स्वाद क्या खाक आता? स्वाद तो मेहनत करने से जो भूख लगती है, उसमें होता है और जो मिले उसे धन्यवाद सहित खाने में होता है। तुम्हारी मट्ठियां, जिन्हें खाते हुये तुमने धन्यवाद तो दूर, कोरे खोट ही खोट निकाले, मेरी नज़र तो उन पर जाती थी, पर मन नहीं जाता था। मुझे तो पराये परांठों से अपनी रूखी-सूखी अच्छी।'

जैसे भूख लगती है, तो उसमें स्वाद का पता होता है और बिना भूख बहुत पदार्थ खाने पर भी पता नहीं चलता। तो जो आन्तरिक सुख होता है, वह निराली चीज़ है। वह माया के मार्ग में नहीं मिलता। माया का मार्ग तो स्वभाव से प्रलोभन का मार्ग है। वास्तव में साधारण व्यक्तियों का इतना दोष भी नहीं।

उन्हें सत्संग नहीं मिला।

एक देहात की स्त्री गंगा किनारे माला फेर रही थी। एक बड़े घर की स्त्री बड़े अच्छे वस्त्र पहने हुए, उसके पास आकर कहने लगी, तुझे एक घंटे से माला फेरते हुए देख रही हूँ। क्या इससे तुझे धन मिल जायेगा ? गाँव की स्त्री ने कहा, मेरे लड़के बड़े परिश्रमी किसान हैं। महाराज ने मुझे सब कुछ दिया हुआ है। यहां नीलधारा के समीप जो सुख है, वह अन्य वस्तुओं में नहीं। धनी स्त्री ने पूछा, राम-नाम कहने में क्या रखा है ? उसने कहा यह तो करने से अनुभव होता है, तुझे कैसे वह रस बताऊं ? यह तो करने की बात है, कहने की नहीं। तुझे यदि चाव है, तो किसी सन्त से विधि पूछ कर करो। उस की शान्ति देखकर उसे चाव पैदा हुआ। खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है। वहाँ उसने गंगा-जल लेकर संकल्प किया, एक व्रत लिया। सोचा कि ताश खेलने में जो घंटों समय नष्ट होता है, सहेलियों में जो अनाप-शनाप चलता है, वह सब बन्द हो जायेगा। कहने लगी मैं जप करने में आलस कर गई। यह सोच कर कि जप में क्या रखा है ? और बाज़ारों में यूँ ही घूमने में उमर बिता दी। तुम्हें देखकर चाव हो गया। उस में इतना परिवर्तन देखकर उसके सम्बन्धियों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। पूछने लगे यह सब कैसे हुआ ? बोली श्रीराम-नाम के जाप से। उसकी वाणी में बल था। कहने का प्रभाव हुआ।

आत्मा में ही सब सुख का संचार होता है और आत्मा-परमात्मा का मार्ग ही कल्याण का मार्ग है और यह बहुत ही उत्तम मार्ग है।

साधना-सत्संग हांसी (वीर-भवन),
दिनांक 22.11.1957,
समय अपराह्न 3.30 बजे

❑❑

सुकृत कर्म

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत (कठोपनिषद्)

(उस आत्मा को जानने के लिये उठो, जागो और श्रेष्ठजनों को पाकर उनके सत्संग से भगवद्भक्ति को समझो अर्थात् श्रेष्ठजनों (अनुभवी संत) की शरण में जाकर अपने आत्म-कल्याण का मार्ग प्राप्त करो।)

देवियो और सज्जनो! मुझे आप में बैठकर कुछ कथन करने में बड़ा हर्ष होता है। यह अवसर जहां स्त्री-पुरुष, अच्छे भाव वाले या अच्छे भाव से एकत्रित हों, तो उनमें राम-नाम के मार्ग का कथन बड़ा शुभ है।

आपको सुनाने की एक बात मेरे पास यह है कि हरेक व्यक्ति, कोई सुकृत कर्म, जो उसकी आत्मा का कल्याण करे, नित्य किया करे। नहीं तो यह जो सारी प्रकृति है, पशु-पक्षी भी अपने प्राणों को पोषण करने के लिये प्रयत्नशील होते हैं। एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं। अमेरिका के किनारे की मछलियां, अपने बच्चों का पालन करने हेतु, यूरोप के पानी में आती हैं। हज़ारों मील की दौड़ करके अमेरिका के पक्षी चोगा चुगने रूस जाते हैं और फिर वापस उड़ान भरते हैं। जाते हुए तो रास्ते में एक स्थान पर उनका एक दिन का विश्राम होता है। पर आते हुए वह तीन हज़ार मील बिना विश्राम दौड़ते हैं। पर यह सब तो केवल तन का पोषण हुआ। कोई इसमें बुराई नहीं, पर बड़ाई भी क्या है ? एक बुद्धिमान प्राणी होकर, एक समझ वाला तन-धारी होकर, मनुष्य भी वही क्रिया करे, जो पशु पक्षी करते हैं, तो इसमें उसकी कौन बड़ाई है ?

बुद्धिमान सदा आगे बढ़ते हैं। भील तीरों से, ग्रामीण ईंटों से लड़ते थे। पर अब लड़ने वाले बुद्धिमान ऐसे कि हज़ारों मील के ऊपर उनकी आतिशबाजी और फिर जिस स्थान को निशाना बनाया, उसी स्थान अस्त्र टकराया। पहले जंगल के जानवरों की छालें लोग पहनते थे, पर अब सब प्रकार के कपड़े पहनते हैं। दो हज़ार छः सौ वर्ष पहले की बात है, पटना से राज्य चलाया जाता था। यूरोप का एक बड़ा जनरल और राजा सेना लेकर आया। पंजाब के

लोग उस समय केवल प्राणों का पोषण करने वाले नहीं थे। इतनी लड़ाई लड़ी कि उस जनरल का आगे आने का साहस मन्द पड़ गया। कितने ही मर गये। वे पटना तक जाना चाहते थे, पर उन्हें बहुत क्लेश हुआ। उनकी ऐसी दुर्दशा में भारत के वैद्यों ने उनकी सेवा, उपचार किया और वे वापस लौट गये। पटना में सफीर (दूत) छोड़ गये। उन्होंने रोजनामचे (दैनंदिनी) लिखे। उनसे इतिहास सुगठित किया गया। तो बुद्धिमान कितनी उन्नति करते हैं! उस समय यूरोप में कपास का ज्ञान नहीं था। दैनंदिनी में यूनानियों ने लिखा कि जैसे हमारे यहां भेड़ों को ऊन लगती है, ऐसे ही भारत के पेड़ों पर लगती है। ऐसा भी कहा कि लकड़ियां यहां पर बड़ी मीठी होती है। क्योंकि यूनान में ईख होता नहीं था। कहना यह है कि बुद्धिमानों ने कितनी उन्नति की! तो मनुष्य नाम से जो प्राणी है, वह केवल प्राणों के पोषण तक नहीं रहता। ज्ञान-विज्ञान में बहुत बढ़ता है। क्या-क्या प्रकृति में है ? वह यह खोज करता है और उसका प्रयोग करता है।

ऐसे चाहे पशु-पक्षी, चाहे मनुष्य, केवल प्राणों का ही पोषण करे, तो उसमें बुराई नहीं, पर बड़ाई भी नहीं है। बड़ाई तो इसमें है कि बुद्धि पाकर क्या प्राप्त किया ? क्या दूसरों को दिया ? क्या बात विचार से खोज कर चलाई ?

किसी के घर की बिजली का लट्टू टूट जावे, तो यह समझना कि बिजली खत्म हो गई, ऐसी बात नहीं। बिजली आई, पर गमन बन्द। जैसे ये बातें बुद्धिमानों ने निकालीं, ऐसे ही पण्डितों, महर्षियों ने अपने दैविक बल से, यह बात समझी कि मनुष्य के जीवन का जो दीपक है, वह इस तन से बंधा हुआ नहीं है। यह अमर-ज्योति है। इस को जाग्रत करना चाहिये और यह भावना भगवत्-प्रीति से, परमेश्वर की प्रीति से, जागती है। जैसे बसन्त ऋतु में कलियां अपना मुंह खोलती और सुगन्धि देती हैं, इसी प्रकार ऐसे विचारों की सुगन्धि चारों ओर फैले—यह हुई उसकी महिमा को बढ़ाने वाली बात। उसका महत्व इसी में है कि वह आत्मा को समझता है।

यह भावना दृढ़ हो कि मैं आत्मा हूँ। शरीर तो है, पर मैं इस के अन्दर रहने वाला आत्मा हूँ— न मिटने वाला, न बुझने वाला, मेरी ज्योति आंखों में, कानों में। वास्तव में मैं अमर सत्य हूँ। इस देह के किले में घिरा हुआ आत्मा हूँ। ये भाव सत्संग में आने-जाने से सुदृढ़ और बहुत जाग्रत होते हैं। आप सब का

और हम सबका इसी में महत्व है, इसी में बड़ाई है। इस को समझना, इस बोध को प्राप्त नहीं किया, तो जन्म लिया और मरे, इतने में ही सारी यात्रा समाप्त हो गई। घास पैदा हुई और ज़मीन में फिर मिट्टी हो गई।

यह सब भारतवर्ष ने खोज किया। अनुभूतियों से, युक्तियों से इस गीत को बहुत गाया। दूसरे देशों में भी इस के बोल के दीये जले, पर भारत की यह अपनी सम्पत्ति है, किसी की दी हुई नहीं। क्या-क्या वस्तुयें मांगते हैं, पर अध्यात्म में एक रत्ती भी नहीं मांगते। लेना बुरा नहीं, पर अवसर ही नहीं है।

देवियो और सज्जनो ! मैंने यह वर्णन किया कि बड़ाई खान-पान, मकान में नहीं, है, पर इतनी नहीं, जो आत्म-ज्ञान में है और वह भगवद्-भक्ति से प्राप्त होता है। उसके और भी प्रयत्न वर्णन में आते हैं। सब ठीक हैं, पर सुगम प्रयत्न तो भगवद्-भक्ति है। जितना चिन्तन उसका करेंगे, उतना ही लाभ होगा और वह श्रीराम के दरबार में सफल होता चला जायेगा।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 23.11.1957,
समय अपराह्न 3.30 बजे



परमार्थ कर्म

कल मैंने आपके सम्मुख चार प्रकार के कर्मों में से तीन प्रकार के कर्मों का वर्णन किया। व्यर्थ और अनर्थ कर्म को त्यागने का ही धर्म का उपदेश है। चौथा प्रकार परमार्थ का–परम प्रयोजन को सिद्ध करने वाला धर्म। इसका निरूपण ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर हुआ है। यह आत्म-कल्याण का कर्म है– अपना कल्याण करना। ऐसा कर्म जिससे आत्मा को संतोष हो, अज्ञान दूर हो और बुराई अन्तर में उसको न पकड़ने पावे। इसके लिये संत लोग-पुरुष, स्त्री जो आये, वे कह गये। यह सुगम बात है। आदमी जो काम धंधे में फंसे हुए हैं, उनको यह बात बहुत अच्छी लगती है। इससे उनका अगला लोक सुधर जावे।

बहुत से पुरुष इकट्ठे होकर गंगा जी जाने लगे। पहले रेलगाड़ियां नहीं होती थीं। उन युगों की यह बात है, लोग मिलकर जाते थे। वे मिलकर चले। सैकड़ों कोस से खड़ा हुआ गंगा-गंगा कहे, तो वह पापों से छूट जाता है। उनमें यह बात थी। हर स्वभाव के आदमी संगों में होते हैं। एक आदमी बहुत से रुपये लेकर चला। इस विचार से कि मैं वहां जाकर किसी और जगह चला जाऊंगा। गठरी में रुपये बहुत थे। वह नोटों का युग नहीं था (रुपये धातु के होते थे)। हुण्डी तो व्यापारियों की चलती थी। जब आधी रात हुई, तो उसकी गठरी एक आदमी ने जिसको पता था कि उसमें रुपये हैं, चुरा ली। प्रातः जब उसने देखा कि गठरी गायब है, तो बड़ा दुःखी हुआ। कहे "कौन हत्यारा? जिसने यह कर्म किया? हे भगवान!" तूने क्या बुराई मेरे साथ की! अब सब लोग, जो उसके साथ चले थे, सोचने लगे कि उसकी गठरी कहां गई? सब गठरियां दिखाईं। पर उनमें से उसकी कोई न थी। किसी को यह विचार नहीं आया कि उनमें से एक आदमी नहीं है, जो वास्तव में चोरी करके चलता बना था। उसने बहुत गालियां दीं, पर जब वह नहीं मिला, तो बहुत कोसने लगा। तो एक बूढ़े ने कहा कि हमने तो

अपना सब सामान तुम्हें दिखा दिया। अपने अज्ञान को कोस कि क्यों रुपया लेकर चला? यदि हमें बता दिया होता कि तेरी गठरी में इतने रुपये हैं, तो हम उसकी चौकीदारी भी करते। उस व्यक्ति ने कहा कि मुझे क्या पता था कि तुम सब चोर थे? एक स्त्री ने कहा कि सबको बुरा बनाने की क्या बात है? अपने आप को कोस कि इतने रुपये साथ लेकर परदेश में जाता था। उसने कहा, बुढ़िया! तुझको नहीं पता कि मुझे छुरी लगी है। कोई मनचला बोला कि चलो गंगा में नहायें। लड़ाई तो हमने की नहीं। हमने हाथ नहीं हिलाये, तो तुझे छुरी कैसे लग गई? उसने कहा तुम कितने आदमी चले थे? उत्तर मिला-पता नहीं। फिर पूछा कि ढाबे में जहां सबने इकट्ठा भोजन किया था, कितने के पैसे दिये थे– सबके पैसे कौन देता था? वह बता। कहने लगा सब लोगों को गिनकर देखो। गिनने से पता लगा कि उनमें से एक व्यक्ति कम था, तब पता चला कि चोर तो निकल गया है। लाला ने सबको हाथ जोड़ कर कहा कि मुझे भी उसी पर संशय था। पर मैंने सबको कोसा। गई सो गई, अब राख रही को। कहने लगा– मैं पहले दे देता। मेरी तो चली गई (मैं अपने हिस्से का खर्च पहले ही दे देता, तो अच्छा था। अब तो मेरी सारी गठरी ही चोरी हो गई है, कहां से दूंगा?)। किसी जगह कथा-वार्ता हो रही थी। कथाकार ने कहा आदमी के पीछे दुष्टकर्म-रूपी चोर लगे रहते हैं। तो यह सुनकर वह व्यक्ति जिसकी चोरी हो गई थी कहने लगा कि मेरे पीछे भी एक चोर लगा था। कथाकार बोला– सब से बड़ा चोर अज्ञान, दूसरा चोर दुराचार, तीसरा वैर-बुद्धि, इस प्रकार उसने एक कर्म को कहा।

आत्मा का धन हरण हो, तो फिर आदमी कंगाल है। फिर उसने पूछा कि क्या आत्मा का भी कोई धन होता है? आत्मा का धन शांति, संतोष, धीरज है और राम-भजन है। जिसके पास यह धन है, वह मालामाल है। उसके लिये संसार की सभी हालत अच्छी है। कथाकार ने उस व्यक्ति को कहा कि इसका तुझे बोध नहीं है। इसलिये माया ने तेरे आत्मिक धन को लूट रखा है। अच्छा, गंगा-स्नान करेंगे तो यह आत्मिक चोर सब मर जावेंगे। कहने लगा कि अब पता चला। यदि क्रोध लेकर, अभिमान लेकर गंगा में

प्रवेश करेगा, तो फिर क्या लाभ होगा? ऐसे स्वर्ग तो क्या, यह लोक भी नहीं मिलेगा। यही है कि पाप छोड़ दे, अपने भीतर दिया जला। उसके मन में कुछ बात लगी। धर्मशाला में नहा कर आये, तो वह चुपचाप बैठ गया। थोड़ी देर के बाद सोचा कि सबसे क्षमा मांगूं। शराब ही मतवाला नहीं बनाती, अपितु शोक भी मतवाला बना देता है। शराबी का कौन बुरा माने! कहने लगा गंगा तो बोलती नहीं है, सत्संग से पता चला करता है। अब मैं गांव जाकर सत्संग में जाया करुंगा। सायंकाल फिर नदी के किनारे गये, तो कुछ यात्री झगड़ रहे थे। उसने सोचा ज्ञान और सत्संग, ये बड़ी चीज़ें हैं, जो मनुष्य को बड़ा अच्छा बनाती हैं। जो होना था, वह हो गया। पहले भी कमाई की थी, आगे भी करेंगे। सत्संग से उसको यह बुद्धि आई। इस उपदेश के प्रभाव से, गठरी चोरी हो जाने पर उसने जिनको कोसा था, उनसे माफी मांगी। औषधि के समान, अच्छी और ऊंची बातें प्रभावित करती हैं। इनका संस्कार रहता है। ये प्रभाव अवश्य करती हैं, चाहे देर से करें। तो कहना यह है कि परमार्थ के जो कर्म हैं– वे धैर्य, धीरज और संतोष हैं जितने ये हो सकें, उतना ही व्यक्ति परम-पद की ओर जाता है। पानी पहाड़ पर बरसे, तो वह नीचे की ओर जाता है। इसी प्रकार मंदिर के कलश से भी यदि मशीन लगा दी जावे, तो चालीस-पचास मील तक पानी को पहुंचाती है।

रॉकेट, फेंकने वाली मशीन द्वारा कई सौ मील दूर चला जाता है। गन्दे जोहड़ का पानी भी सूर्य की किरणों से सूक्ष्म बनकर आकाश में चला जाता है। सत्संग के प्रभाव से मलिन आत्मा-पुरुष भी उस परम-पद को जा पहुंचता है। भगवान के नाम को लेना अपनी आत्मा को उठाना है। इससे व्यवहार भी अच्छा होता है, परलोक भी और परमार्थ की तो पदवी सिद्ध हो जाती है। इसलिये हर स्त्री-पुरुष को सिमरन, जप करना चाहिये-स्वाध्याय भी करना चाहिये। बड़ाई कोई अच्छे आभूषण में ही नहीं, अपितु ज्योति को निर्मल बनाना चाहिये। मृत्यु होने पर लोग रोते हैं और कहते हैं, वह छोड़ गया। मरता कोई नहीं है (आत्मा मरता नहीं है)। जैसे कोई घर से खेत में गया,

घर में तो है नहीं। रोना अपने सुख और स्वार्थ का है। पर वह लौट कर तो आता नहीं है। बल्ब फ्यूज़ हो जाये, तो क्या बिजली ही बंद हो गई? इस आत्म-शक्ति को जाग्रत करना। स्वाध्याय, सत्संग, जप, पाठ, आराधन करना। अनर्थ और व्यर्थ कर्म छोड़ना। बहनो और भाइयो ! इन बातों को स्मरण रखना, इनको पालन करना। राम, सब पर कृपा करें। सब को आशीर्वाद।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 24.11.1957,
समय अपराह्न 3.30 बजे

❑❑

कर्म उपासना

सतत परहित में परायण रहना भक्ति ही है। यह कर्म द्वारा ईश्वर की उपासना है। भक्ति बिना ज्ञान के नहीं होती। प्रभु के प्रति प्रीति, भक्ति कहलाती है। पारिवारिक प्रीति न होने पर, पारिवारिक कर्म नहीं हो सकते। बिना प्रीति के, ब्रह्म मुहूर्त्त में उठकर जपादि क्योंकर होगा ? इष्ट में प्रीति को भक्ति कहते हैं। ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों एक हैं।

यह संसार ठाकुर-द्वारा है। ईश्वर ने सारे विश्व को विस्तारा है। अपने कर्म से उसे पूजकर परम सिद्धि प्राप्त करें। कर्म सामाजिक भी हैं और आध्यात्मिक भी। केवल ब्राह्मण द्वारा ही पूजा, पूजा है, यह नासमझी है। चारों वर्णों के अपने-अपने कर्मों द्वारा ईश्वर पूज्य है। जब से हिन्दुओं में ये भाव आये कि वृन्दावन में, काशी में या हरिद्वार में रहने-मरने में कल्याण होता है, तो लोग अपने कर्मों को छोड़कर वृन्दावन, काशी भागने लगे। सत्य तो यह है कि जीव अपने कर्त्तव्य-कर्म करे और उसी में राम-पूजन समझे। उसका कल्याण इसमें ही है।

स्वभाव से जो कर्म नियत हैं, उसको करते हुए मनुष्य पाप को प्राप्त नहीं होता। विहित कर्म का संन्यास नहीं कहा है। संन्यास शब्द वेदों में नहीं है।

ज्ञान, मनन, सजीव श्रद्धा से बना रहता है। श्रद्धा बनी रहे, निश्चय बना रहे– इसके लिये निश्चयानुसार कर्म करना चाहिये। जैसे शरीर नित्य के अन्नपान से चलता है, इसी प्रकार सुकर्म करते रहने से, उसमें निश्चय बना रहता है। कर्म करने वाला ही निश्चय वाला है। कर्म न करने से निश्चय नहीं बना रहता। सुख न मिले, तो मनुष्य कर्म छोड़ देता है।

नेताओं की सन्तान उनके समान नहीं होती। इसका कारण यह है कि उनका घरेलू जीवन उनके सार्वजनिक जीवन के समान नहीं होता। सन्तान मनुष्य के आचार-विचार, व्यवहार की प्रतिबिम्ब मात्र है।

प्रत्येक कर्म को करके समझना चाहिये कि इससे हम हरि-पूजन करते हैं। (महाराज जी ने एक माई का दृष्टान्त दिया– जो अपने आपको बड़ा दु:खी मानती थी। वह भगवान को गाली देती थी, फिर दूसरी स्त्री ने उसको समझाया)। जो आग यत्नों से बुझाई, उसको न सुलगा, बाबा। जिस पेड़ की खोह में अग्नि है, वहां हरी बेल कैसे चढ़ सकती है ?

अच्छे-अच्छे साथी चले गये। पाकिस्तान बनने पर कुकृत्य देखकर जीवन से उदासीनता आ गई थी। पर अच्छे आदमी मिलने से अब जीवन अच्छा लगने लगा। सफलता में ही सुख है। अनन्त की ओर जाने के लिये अपने हृदय को निर्मल बनायें।

साधना-सत्संग, हरिद्वार
अप्रेल मास
समय प्रातः 11.00 बजे



क्रियाशीलता

निष्क्रियता धर्म नहीं है। धर्म तो कर्मात्मक है। वह पुरुषार्थ से उपार्जित है। क्रिया से निष्पन्न होता है। इसलिये ज्ञानियों ने धर्म का लक्षण 'प्रेरणा' वर्णन किया है। उसे ऐहिक और पारलौकिक सुख-सिद्धि का साधन बताया है। स्मार्त्त धर्म के व्याख्याता भगवान मनु भी धर्म के लक्षण क्रिया-रूप में ही वर्णन करते हैं।

यदि अक्रियारूप धर्म हो, तो भेड़ें और बकरियां कभी असत्य भाषण नहीं करतीं। मिमियाने के सिवाय वे दूसरा कोई शब्द नहीं बोलतीं। तब तो वे सत्यवादियों में सर्वशिरोमणि हो जायें। भोले-भाले मृग मनुष्य के पांव की आहट सुन कर कोसों दूर भाग जाते हैं। कभी किसी की हिंसा नहीं करते, परन्तु कोई अकर्मवादी उनको परम-दयालु नहीं मानता। एक अंधा, बहरा, मूक और विकल शरीर मनुष्य, वन में जीवन के दिन काटता हुआ न अशुभ बोलता है और न अशुभ करता है, परन्तु वह मुनि नहीं कहला सकता। उन्मत्त अथवा मूर्छित मनुष्य अशुभ संकल्प-विकल्प से शून्य तो होता है, पर वह महात्मा नहीं माना जाता। गहरी नींद में कोई अशुभ क्रिया नहीं होती, परन्तु वह समय पुण्य-उपार्जन का नहीं समझा जाता।

अशुभ विचारों को शुभ विचार और शुभ आचारों द्वारा धक्का देकर भीतर से निकाल देना, उनको अपने निकट न आने देना, शुभ सम्पत्ति सम्पादन का क्रियाजन्य सर्वोत्तम साधन है। यही धर्म है।

आर्यों में जब से निष्क्रियावाद ने घर किया है, तभी से उनका विनिपात होना आरम्भ हुआ है। जातियों में जो नर-रत्न होते हैं, वे प्रायः धार्मिक भी हुआ करते हैं। समाज के लिये उनका जीवन अत्यन्त उपयोगी होता है, उनका समाज से पृथक हो जाना, समाज को अवनत करना है। निष्क्रियावाद के निष्ठावान् सज्जन, जन-समूह से दूर भागते हैं। उनको समाज-संशोधन, समाज-सुधार और समाज-संरक्षण कर्त्तव्य-कर्म ज्ञात नहीं होते। अपितु वे

उल्टे इन कर्मों से घृणा करने लग जाते हैं। यही कारण है कि अकर्मवाद की पोषक पुस्तकों में धर्म-पुरुषार्थ का निरादर है। गृहस्थ को पाप और बन्धन वर्णन किया है। माता-पिता, पुत्र-कलत्र आदि सम्बन्धों को दुःख का कारण माना है। क्षात्र धर्मादि उत्तम धर्मों को प्रशंसित नहीं समझा गया। आर्य-प्रजा के अनेक दीप्तिमान् रत्न, इसी अकर्मवाद की उलझन में उलझ कर, अपनी उपयोगिता नष्ट कर गये हैं। उनकी उज्ज्वल कान्ति से किसी ने कुछ लाभ नहीं उठाया।

इसी निष्क्रियावाद की बेल के फल का नाम त्यागवाद है। त्यागी कहलाने में लोग जब से मुक्ति और महत्ता मानने लगे हैं, तब से आर्य जाति में नाना अनिष्टों की, दुःखों की और अभावों की सृष्टि हुई है। यहां लाखों त्यागी वास करते हैं। उनकी आँखों के पास, उनकी कन्दराओं के निकट और उनके आश्रमों के समीप दिन-दोपहर में उनका धर्म-धन लूटा जा रहा है, लोग अपना पुरातन धर्म परित्याग कर रहे हैं। अनाथों की बिलबिलाहट और कृश प्रजा का करुण-क्रन्दन हो रहा है। इसे देखकर पराये भी पिघल गये हैं। परन्तु ये ऐसे सर्वत्यागी हैं कि दुर्दिन-दलित, दरिद्र बन्धुओं पर दूर खड़े, दया दिखाने में भी आनाकानी करते हैं। इस संकीर्णता का प्रबल कारण है, वहां के त्यागियों ने त्याग के अर्थ छुआछूत समझ रक्खे हैं। इसका तात्पर्य घृणा करना, पृथक हो जाना, संकुचित बनना और पीड़ित प्राणियों को भी क्रियात्मक सहायता न देना, निकाला है।

सच्चा त्याग वही है, जिसमें घृणा का त्याग है, वैर-विरोध का त्याग है, अभिमान का त्याग है। दूसरे को सुख देने के लिये, परोपकार करने के लिये, अपने प्राणों तक की ममता न करना सच्चा त्याग है। यह परम त्याग ईश्वर-भक्ति और प्रजा-प्रेम से उत्पन्न होता है। भक्ति और प्रीति, पुरुषार्थ और शुभ क्रिया के बिना प्राप्त नहीं होते हैं।

❑❑

सत्कर्मों को स्वयं करना

हमारा यह सत्संग राम-भजन के लिये होता है, पर और भी मिलने-जुलने वाले आयें, तो थोड़ा समय दिया जाता है। यहां राम को प्रेरणा करनी होती है। इसमें भी जितना संयम हो, उतना ही अच्छा होता है।

बहुत बोलने और बहुत सुनने की बजाय, करने की रीति अधिक अच्छी है। सिनेमा से कोई व्यक्ति सुधर जाये, ऐसी बात नहीं। सभा कैसे रीझे, यह इनका उद्देश्य होता है। क्योंकि इसमें पैसा अधिक आता है। हमारे यह छोटे से साधन हैं। इसमें जो स्वयं करने की बात है, वह बहुत ही अच्छी है। सभा की उपेक्षा की नहीं जाती। करना जो है, वह बहुत ही अच्छा है। दिल्ली जाने की बात हो, बीच में रोहतक आता है, चलने से ही आदमी पहुँचता है। करने की प्रवृत्ति होनी चाहिये। यह एक बड़ी बात है, जो हृदय में रखनी चाहिये। यहां सुनने की रीति इसीलिये अधिक है कि पढ़ने वाले बहुत नहीं, अपितु सुनने वाले अधिक हैं। आदमी यह चाहता नहीं कि मेरे मुकाबले में कोई हो। आगे चलने की ओर प्रवृत्ति होती नहीं। तुलसी रामायण कई सुनें और एक चौपाई याद नहीं, तो बात यह हुई कि जनता वहीं खड़ी है, जहां पांच सौ साल पहले थी। यह स्वयं न करना ही इसका कारण है। आप करने को बहुत महत्व देना चाहिये। स्वयं सीखना चाहिये, सीखने से विस्तार होता है। ऋषि सनत्कुमार का यह बहुत पुराना वाक्य है कि जब कोई करता हो, तो उसका ज्ञान बढ़ता है। यहां तो जप के लिये भी दूसरे को बैठाने की रीति है, दूसरों से कराने की आदत है। अपनी प्यास दूसरों को पानी का गिलास पिलाने से तो नहीं मिटती। पण्डित आदि को अपने लिये जप करवाने बैठाना, इसका कोई महत्व नहीं रह जाता। थोड़ा-सा यह रह जाता है कि संस्कार अच्छा फैलता है। नहीं तो यूं ही समझो कि यह तो भगवान तक को रिश्वत देने का रिवाज़ हुआ। किसी को रिश्वत देकर अपना व्यर्थ काम पूरा करवाना हुआ। देवता तो इस बात के भूखे नहीं। दवाई किसी और ने खाई और आराम किसी और को हो– यह तो नहीं

होता। ये एक दो कारण वर्णन किये। मुझे कहना यह है कि हरेक की रुचि यह होनी चाहिये कि अपने शुभ कामों को मैं आप करूँ। यह बात अच्छी नहीं कि वह अपने आचार संवारे नहीं और दूसरों को रिश्वत देकर अपना कल्याण चाहे। यह थोड़ा-थोड़ा सत्संग इसलिये कि अपने आप को अच्छा बनाया जावे। सारी जनता का यह कर्त्तव्य है कि अपने जीवन को आप अच्छा बनाये। आदमी के पास समय बहुत होता है। पर समय का उपयोग बड़े थोड़े करते हैं। एक साधु नगर में आया। उसने कहा कि जैसे भेड़ें, बकरियां, बैल रहते हैं, उसी प्रकार तुम नगरों में रहते हो। एक ने उठकर प्रश्न किया कि महाराज, आप को तो पता नहीं कि समय हमारे पास है नहीं। साधु ने पूछा यदि समय नहीं, तो बताओ कितने बजे उठते हो ? उत्तर मिला, महाराज ! कॉलेज पढ़ता हूँ, इसलिये साढ़े सात बजे उठता हूँ। फिर दातुन, कुल्ला आदि करते नौ बज जाते हैं। फिर नाश्ता आदि किया तो दस बज जाते हैं। इस प्रकार सारे दिन का काम कह डाला। साधु बोला, अच्छा, तो हम बतलायें कि तुम सात बजे उठा करो और इसी प्रकार फुर्ती से काम करके गिनवा कर साधु ने एक घंटे से अधिक समय बचा हुआ दिखा दिया। फिर वह लड़का कहने लगा कि ऐसे होता नहीं है। फिर साधु ने कहा कि बात तो यह हुई कि लगन तुमको है नहीं। इसी प्रकार एक नगर में किसी ने बड़ा गड्ढा देखा। उसमें बहुत गन्दगी और मच्छर भी। उसने कहा, यहां तो यह गड्ढा रहना नहीं चाहिये। इससे मच्छर और दुर्गंध फैलती है। कहने लगे कौन करे ? सरकार बड़ी खराब है। उसने गांव वालों से श्रमदान मांगा और कहा कि दस मिनट मुझे देवें। कहने लगे, क्या करोगे, बाबा ? बाबा लगा और शाम तक सब ने मिलकर गड्ढा बंद कर दिया।

श्रमदान बड़ा उचित है और फिर अपने कल्याण के लिये तो बहुत ही उचित है। अब श्रम के दिन आये हैं। श्रम के यज्ञ पुराने काल से भी चलते आये हैं। पहले मैंने देखा है कि कटाई भी मिलकर करते थे। यज्ञ किसी समय थे। मेरे देखने में भी आये। श्रम करने लगें, तो नागरिकों और ग्रामीणों के पास भी समय बड़ा होता है। इतना जो खाली समय ग्रामीणों का हुक्के आदि पर और नागरिकों का ताश और नॉवल पर नष्ट होता है, यह लोग समय पर छुरी चलाते हैं। अपने कल्याण के लिये अवसर निकालना चाहिये। एक बूढ़ा बाबा

था। जाट का छोरा साधु बनने उसके पास आया। साधु ने कहा, भाई ! मेरा गुरु जब बूढ़ा था, तो ऐसे ही एक छोरा आया और वह उससे पैर दबवाया करता। जब बहुत बूढ़ा हो गया, तो एक दिन पैर दबाते में गला दबा दिया। छोरा बोला ''न बाबा।'' बाबा ने कहा कि फिर साधु बनने से तो तू आलसी हो जायेगा। बोला, ''नहीं बाबा।'' अस्तु, अन्त में चेला बना लिया।

बिना परिश्रम का भोजन सब को बोदा बना देता है। जो काम नहीं करता, उसमें परिश्रम का रस रहता नहीं। पर लड़के ने कहा, नहीं मैं तो अवश्य करूंगा। बन गया चेला। दो वर्ष हो गये। बहुत लोग बुढ़ापे का विचार नहीं भी करते। यह तो हिन्दुस्तानियों का रिवाज है, कहना कि अब तो बूढ़े हो गये। हर समय ऐसे कहना भी खराब करता है। चौधरी! तेरी तो मूंछ सफ़ेद हो गई। यह कहकर उसको तो बूढ़ा बना दिया। हंस के बच्चे भी तो सफेद होते हैं। सर्दियों का मौसम आया। वर्षा हो रही थी, कीचड़ था, तब ठाकुर-द्वार की रोटी खाकर छोरा आलसी हो गया था। गुरु जी ने कहा कि आज ठाकुर जी की रसोई बनानी है, जाओ, आटा मांग कर लाओ। बोला, ''आज तो जुकाम हो गया, निमोनिया हो गया तो फिर सेवा करने वाला कोई रहेगा नहीं। आज आप ही जाओ।'' साधु आलसी नहीं था। अन्त में गिरता पड़ता बूढ़ा आटा ले आया। ऐसे ही पकाने के आदेश को भी टाल दिया। फिर भोग लगाने का आदेश टाला। फिर खाने को कहा, तो सब से पहले बैठ गया। समय सबके पास है।

पंजाब में उर्दू का बहुत रिवाज़ है। एक किताब मैंने लिखी। चौंतीस वर्ष हुए। पंजाबियों ने कहा– उसका उर्दू अनुवाद करवाओ। मेरे मिलने वाले सैकड़ों ने हिन्दी सीखी। आलस्य न हो, तो सब सीख लेता है। किन्तु लोग न माने। अन्त में पांचवें संस्करण में अनुवाद कर ही लिया। फिर दूसरी पुस्तक मैंने सन् 1926-27 में लिखी। अनुवाद नहीं होने दिया। यत्न करे, तो सब सीख लेता है। तोते पढ़ जाते हैं। मनुष्य लगन करे, तो आकाश की बातें जानने लग जावे। बड़ा निश्चय हो, तो इस प्रकार थोड़ा-थोड़ा समय देने से बड़ा अन्तर पड़ जाता है। दिन में आधा घंटा दे, तो यह सब कुछ हो जाता है। चीन जब आज़ाद हुआ, तो हरेक के लिये यह कर्त्तव्य लगाया। मुहल्ले के लड़के स्कूल जाने से पहले और बाद में मज़दूरों और व्यापारियों, सब को जो इकट्ठे

हों, स्थान-स्थान पर मुहल्ले में पढ़ावें। इस प्रकार दो वर्ष में ही उन्होंने सारी जनता को पढ़ा दिया। बड़ी आयु के सब पढ़ गये। तो पुरुषार्थ से बहुत कुछ हो जाता है। इस कारण अपना कर्त्तव्य पालना, केवल सुनने पर नहीं रहना। उन पर चलने का प्रयत्न करना। खाली सुनने से तो कोई लाभ नहीं। शास्त्र के वाक्यों को सुनना, फिर मनन करना और उन पर चलना–यह है परिश्रम का फल। करने की चेष्टा करनी चाहिये। इस चेष्टा पर महाराज ने सादा व मनोरंजक उदाहरण दिया।

फिर बोले, एक विचार होता है कि बाहर के आदमी थोड़े ही हों, तो फिर दूसरी बात कही जाती है। भगवान का आशीर्वाद हो कि हमारे कर्म करने की ओर विचार बढ़ें। हम चाहते हैं, चलने वाला लाभ सब को होवे।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 20.11.1954,
समय अपराह्न 3.30 बजे

❑❑

आचार

आजकल आचार इस बात को गिनते हैं कि अचार नहीं खाना, शलजम नहीं खाना, प्याज़ नहीं खाना इत्यादि। अमुक वस्तु नहीं खाना, इसको लोग आचार मानते हैं। आजकल इसमें अपने आप को बांध देते हैं। ये तो इस दुनियां के लोगों ने अपने आचार की बातें बनाई हुई हैं। ये कोई शास्त्रों की बातें नहीं हैं। ये अपने तरीके की बातें बनाई हुई हैं। ग्रन्थ लिखने वाले अनेक व्यक्ति होते हैं, जो शास्त्रों की व्याख्यायें करते हैं और अपने मत के अनुसार व्याख्या करते हैं। शास्त्रों की भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न व्याख्या होती है। इस प्रकार के आचार की बातें वैष्णव-काल से चली हुई बातें हैं—बहुत पुरानी नहीं। कोई आश्चर्य नहीं कि कोई व्यक्ति अपने आपको भगवान के समीप मानता हो, परन्तु उसके आचार ऐसे हों कि वह भगवान के दरबार में जाने योग्य ही नहीं हो। आजकल ग्रन्थों की भरमार है, कोई काशी में बनता है तो कोई वृन्दावन में—उनमें एकता नहीं पाई जाती। अपनी वृत्तियों को कोमल, मधुर, शान्त बनाना आचार है। विजयिता होना यह बड़ी बात है। यह बड़ा आचार है। किसी ने अपने पारिवारिक जीवन को नहीं बनाया, तो वह आचार नहीं। यदि अच्छा पुत्र नहीं, अच्छा पिता नहीं, पुत्र ने माता-पिता का अनुशासन नहीं माना, उनकी बात नहीं मानी, घर में कलह हुआ, तो क्या आचार रहा ? यह आचार तो नहीं हुआ। कोरी बाहरी वस्तुओं से कुछ नहीं बनता। यदि कोई कुरूप हो और अपने मुंह पर कुछ भी लगाये, तो वह सुन्दर नहीं हो सकता। कुरूप ऊपर की वस्तुओं से ठीक नहीं हो सकता। ऐसे ही बाहर से दुराचार ढका नहीं जा सकता। बुरे आचार ढकने से कोई अच्छे आचार वाला तो नहीं बन सकता। लकड़ी धोकर जलाने वाले ने क्रोध को नहीं जीता, पारिवारिक जीवन को नहीं बनाया, तो उसकी आत्मा मलिन ही है। आचार तो अन्दर से ही होता है। अन्दर में शीतलता हो, क्रोध, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष की वृत्तियां दूर हों, तब आचार होता है।

मनुष्य का जीवन अन्दर से शुद्ध होना चाहिये— आडम्बरों से नहीं। उड़द की दाल नहीं बने—यह कोई आचार नहीं। वह युग बीत गया, किसी समय यह बात होगी। अपने पारिवारिक जीवन को अच्छा स्वरूप देना चाहिये। कोमलता, मधुरता पैदा होनी चाहिये। इस दृष्टि से मनन करके देखोगे, तो स्वरूप का पता लगेगा। आचार तो परम्परा से चला आया है। जिसका आचार नहीं उसका धर्म कौन माने ?

ऐसा ही समझना चाहिये, मनुष्य का जीवन अन्दर से विकृत होता है, बाहरी पदार्थों से नहीं। कोई मन्त्री बन गया और वह यह चलाये कि उसके राज्य में दाल नहीं बने, तो यह कोई आचार नहीं। मनुष्य जीवन में जो अन्दर को बनाता है और अपने जीवन में लाता है, वह आचार है।

भगवान राम ने कहा है कि 'जो यहां के देवता अर्थात् मनुष्य को नहीं मानता, वह अलौकिक देवता की पूजा करता है, इसका क्या प्रमाण है ?'

अन्दर का जीवन बाहर प्रकट होने लगता है, उससे मालूम होता है कि उसका आचार कैसा है ? साधक का जीवन निराला होना चाहिये। उसका जीवन सर्वसाधारण जीवन से अच्छा होना चाहिये। क्रोधी, झगड़ालू जीवन होवे, तो विशेषता क्या रही ? यदि घर में अनबन होवे, तो वह दूसरों से मिलाप क्या करेगा ? यदि अपनी सन्तति उसके अनुकूल नहीं, तो वह दूसरों का क्या सुधार करेगा ? आपका यह सामाजिक नाद है। आपका प्रभाव अपनी सन्तति पर नहीं, तो दूसरों पर क्या होगा ? आचार न होवे, तो फिर यह प्रभाव नहीं होता। जैसे ज्वालामुखी से आग निकलती है और वह आस-पास की वस्तुयें नष्ट कर देती है। क्रोधी क्या आचार सिखा सकता है ? साधक के जीवन का प्रभाव उसके बन्धुओं पर, उसके परिवार के लोगों पर होना चाहिये। मनुष्य को वृत्तियों पर पूर्ण विजयी होना चाहिये। अभिमान को जीतना हो, तो सेवा करके विजय प्राप्त करे। जिस प्रकार अपने बच्चे की सफाई करते हैं, वैसे ही हरिजनों के बच्चों की अपने हाथ से सफाई करने से छुआछूत का भाव नहीं रहता। जिस स्त्री ने अपने सास-ससुर के पैर नहीं दबाये और वह यह आशा करे कि उसकी पुत्रवधू उसके पैर दबाये, यह तो मिथ्या हुआ न। उसने अहंकार को क्या जीता ? वह तो गुलाब के पेड़ में

कीट पैदा हुआ। लोगों ने अहं को जीतने के लिये सेवा का बड़ा कार्य किया, लोगों की जूतियां तक साफ कीं—संगठन पैदा किया, दूसरे देश वालों ने भी सेवा की।

प्रेमनाथ मेरे पास एक अमेरिकन महिला को लाये। उसका रहन-सहन सादा, आचार-व्यवहार अच्छा। थोड़े ही दिन में उसने यहां की भाषा सीख ली और उसने मुझसे हिन्दी में ही बातें कीं, जैसे यहां लोग करते हैं। कपड़े भी धोती पहने थी— उसने बताया उसके पास दो धोती हैं, दो जोड़ी कपड़े हैं, इससे अधिक नहीं। एक जोड़ा धो दिया और एक जोड़ा पहन लिया। खाना भी साधारण खाती। तो उसने भी भारत में ग्रामों में बहुत सुधार का काम लोगों के साथ रहकर धूप में, वर्षा में, परिश्रम करके किया—यह है सेवा-आचार।

❑❑

चरित्र-निर्माण -1

देवियो और सज्जनो ! अपना कर्त्तव्य-पालन करना यही जीवन का सार है। पाप क्या है, यह समझने के लिये पण्डितों ने बड़ा यत्न किया है। पर अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि प्रत्येक मनुष्य को अपना कर्त्तव्य ही पालन करना चाहिये। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में यह ठीक ही कहा है कि 'कर्त्तव्य का पालन ही परमेश्वर का पूजन है।'

'जो ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में रहता है, सर्वत्र विद्यमान है और सम्पूर्ण विश्व को चला रहा है, उसको अपने कर्मों से पूजना।'

हम पूजन को पत्तों और जल तक ही सीमित कर देते हैं। हम कर्म में कितने ही हीन हों, पर हम समझते हैं कि किसी के बगीचे से फूल चुरा कर ले आना और फिर उन फूलों से पूजन का तो हमें विचार होता है, पर कर्म का नहीं। फूल चढ़ाना कोई बुरा नहीं, पर एक मनुष्य कर्महीन, चरित्र उसका मैला हो और मन उसका गिरा हुआ हो और वह फूलों से भगवान का पूजन करे, तो समझो कि वह यह नहीं समझता कि बाहर जो फूल बगीचों में हैं, उनमें तो भगवान पहले ही विराजमान है। कर्म ही भगवान का पूजन है।

संत नाभादास जी एक बार गोस्वामी तुलसीदास जी से मिलने के लिये गये। उस समय श्रीगोस्वामी जी मन्दिर में पूजा कर रहे थे। श्रीनाभादास जी खाँस कर चले गये, पर गोस्वामी जी उठे नहीं। पूजा से कैसे उठते ? परन्तु पीछे जब उन्हें पता चला, तो वे नाभादास जी के यहां गये। नाभादास जी ने उनसे आंख नहीं मिलाई। अपमान किया। भोजन का समय हुआ, तो तुलसीदास जी भी बैठे। जो व्यक्ति पत्तलें बांट रहा था, उसे नाभादास जी ने गोस्वामी जी के आगे पत्तल न रखने का संकेत किया। नाभादास जी परोसते हुए जब तुलसीदास जी के पास आये, तो उनसे कहा, **'तुझे किस पत्तल में परोसूं'** पास बैठे एक सज्जन की जूती उठा कर गोस्वामी जी ने कहा, **'मुझे इस पत्तल में दे दीजिये।'**

नाभादास जी बहुत प्रभावित हुए और संत तुलसीदास जी की नम्रता देखकर उन को गले लगा लिया।

किसी नगर में एक मनुष्य रहता था। उसके कुछ मिलने वालों में यह बात फैल गयी कि वह बड़ी पूजा करता है। एक आदमी उसे देखने आया। उसने देखा कि न फूल न मूर्ति। वह थोड़ी देर बैठा और चला गया और मन में विचार ले गया कि उसकी कीर्ति यों ही हो रही है। लोगों ने यूं ही उसको प्रसिद्ध कर रखा है। किसी और से कहा कि वह तो कोई पूजा नहीं करता। न कोई ठाकुर उसके पास है, न कोई फूल, न सामग्री, पर वह कर कुछ अवश्य रहा था। जिससे वर्णन किया, उसने समझाया कि भाई ! उसी से क्यों न पूछो ?

अगले दिन वह फिर गया और उससे पूछा। वह मनुष्य कहने लगा कि भाई ! पूजा तो कोई और करते होंगे, मैं तो कर्त्तव्य का पालन करता हूँ। तू कर्त्तव्य-पालन किया कर, ऐसा मुझे किसी सन्त ने बताया। मैं प्रतिदिन अपनी दिनचर्या को देखता हूँ। मेरा किसी से वैर नहीं, किसी से विरोध नहीं। घर में शान्ति है। मैं अपनी आजीविका के लिये काम करता हूँ। फिर किसी संस्था में, जो लोगों की भलाई के लिये काम करती है, कुछ समय देता हूँ, यही काम है। मुझे जिस महात्मा ने कहा था, मैं समझता हूँ कि उसने ठीक ही कहा था। अनाथ कोई हो, उसकी सहायता करता हूँ। किसी को सेवा की आवश्यकता हो तो सेवा भी करता हूँ।

उसने पूछा तो आप इसको सेवा कहते हैं और इसी को पूजन समझते हैं ? उसने उत्तर दिया मुझे तो सन्त ने यही बताया है। मुझे तो निश्चय है कि यह जगत नारायण का है। इसमें जितने प्राणी हैं, सब में नारायण की मूर्ति है। उनके मन्दिर को स्वच्छ बनाना श्रेष्ठ ही है। वह सज्जन सन्तुष्ट न हुआ। नगर के ज्ञानी के पास गया और पूजा की चर्चा, आरती और घन्टी की चर्चा और आज की सुनी हुई नई प्रकार की पूजा, सब की चर्चा की। ज्ञानी कहने लगा यह तो बड़ी पूजा है।

पेड़ों के साथ लगे फूलों में भी भगवान विद्यमान हैं। फिर प्रातः तू यदि उसके पास जाता, तो शायद उसे नाम का चिन्तन करते हुए भी पाता। मैंने

तो उसे स्वयं देखा है। दूर देश का एक अतिथि मेरे मकान में रहा और वह बीमार हो गया। यहां आकर वह पुजारी उसकी सेवा करता और रात को सोता भी यहीं।

भाई उसकी बात क्या कहते हो ? वह तो सदा श्रीराम-मन्दिर में ही रहता है। ज्ञानी से यह सुन कर उस व्यक्ति को बड़ा आश्चर्य हुआ। बालकाल से मैं सुनता आया था कि पूजा क्या होती है ? किस प्रकार से की जाती है। परन्तु इस नगर के लोग खूब हैं, जो नये ढंग की पूजा बताते हैं।

फिर किसी और ज्ञानी के पास गया और कहा—आपकी सम्मति क्या है ? 'भाई, एक और एक दो, सभी गणित के जानने वाले मानते आये हैं।'

एक आदमी धोखा देकर, पैसे कमा कर यदि मन्दिर में फूल ले गया, तो उसने क्या पूजा की ? एक कोई भाई से लड़ा, घर में माँ-बाप से लड़ाई की और ठाकुर द्वारे फूल ले गया, राम तो ये सब जानते हैं। अपने कर्मों से भगवान को पूजने से ही सच्ची भक्ति होती है।

'कर्म प्रधान जगत् रचि राखा।'

तुलसी-रामायण में एक कथा आती है कि माया का कोई स्वयंवर था। नारद ने सुना कि राजा की लड़की ने मनचाहा वर वरना है। उनको वह धुन समा गई। हरि-लीला से उनका चेहरा भद्दा बन गया। वह मन में समझता कि मैं बड़ा सुन्दर हूँ। जब वरमाला लिये राजकुमारी घूमे, तो गर्दन उठा-उठा कर नारद उसे देखे। वह तो विष्णु की माया थी। किसी ने कहा, 'महात्मन् ! अपना मुखड़ा तो देखो।' जब देखा तो बड़ा भद्दा। इससे इतना ही कहना है कि व्यक्ति अपने चरित्र को देखे। शीशे में जब तक मुख न देखे पता नहीं लगता कि मुख कैसा है ? इसी प्रकार चरित्र को देखना और जीवन को अच्छा बनाना होता है। जिसका चरित्र अच्छा और जीवन अच्छा, वह आप भी अच्छा और भगवान का पूजन भी उसका अच्छा।

बाप अच्छे बेटे से बड़ा प्रसन्न होता है। यदि वह निकम्मा हो, तो पिता को आखिरी समय तक सुख की नींद नहीं आती। ऐसे ही समझो कि राम के समीप सेवा-भाव और सत्य-कर्म वाला ही उसका अच्छा भक्त है। जो आस्तिक भाव से आराधन करते हैं, राम का आशीर्वाद उनके अन्तःकरण में बसता है। यही

भगवान का पूजन है। इसी से मानव-मण्डल सुधरता है। यह भगवान का पूजन, आपके सम्मुख शास्त्र अनुसार बताया है।

माया के कारण संसार काला कीचड़ है और कीचड़ से परे रहना ही अच्छा है। पारिवारिक और सामाजिक जीवन को जितना आगे बढ़ाया जा सके, इसी से श्रीराम का आशीर्वाद प्राप्त होता है। यहां जो सत्संग लगाया है और उसमें जो सम्मिलित हैं, वे यहां यही सीखते हैं कि अपने अच्छे कर्मों की सामग्री से मन-मन्दिर में श्रीराम का पूजन करें।

ज्ञान को बढ़ाना और आत्मा को ऊँचा उठाने के लिये उसे बरतना, यह विद्यार्थी का काम है। यह जो चार दिन की पाठशाला है, इसमें जीवन को बनाने की बातें ही कही जावेंगी। काया से जो भगवान का पूजन किया जाता है, वह आज वर्णन किया। कुछ एक बातें इस के साथ मिलती-जुलती मैं सभी के अनुसार कल आप को कहूँगा।

साधना-सत्संग, हांसी (वीर-भवन),
दिनांक 21.11.1957,
समय अपराह्न 3.30 बजे

❑❑

चरित्र-निर्माण -2

जो साधन बतलाये जावें, उनको आप लोग स्मरण रखें तथा जीवन में प्रयोग में लावें। ऐसा अपना स्वभाव बनाना चाहिये। हम पढ़ते तो बहुत हैं, परन्तु सब नियमों का पालन नहीं करते। यह अच्छा नहीं। पुस्तकों में स्वच्छता की बातें पढ़ते हैं और सीखते हैं, परन्तु बरतते नहीं हैं। जब तक व्यक्तिगत स्वच्छता नहीं, तब तक कोई बात नहीं आती। किसी में आदत होती है कि चाट खाई, पत्ता वहीं फेंक दिया। जिस प्रकार साधना-सत्संग में आकर स्वच्छ रहते हो, उसी प्रकार घर में भी स्वच्छता रहनी चाहिये। व्यक्ति के स्वच्छ होने से देश भी स्वच्छ हो सकता है। स्वच्छ रहना बहुत उत्तम है। दूसरे देशों की मातायें बच्चों को बनाने में जिम्मेदारी समझती हैं। बच्चा जाति की शोभा हो, निर्मल और कोमल स्वभाव वाला हो, संयमी हो, अन्यथा घर को अनाथालय बनाने से क्या लाभ ? भारत में संयमित जीवन नहीं है। यदि साधक माला बहुत फेरता है, परन्तु मैले कपड़ों पर साबुन नहीं लगाता, स्वच्छ नहीं रहता तो क्या भली बात है ?

पूर्वी लोग बर्तन तो बहुत साफ रखते हैं, किन्तु कपड़े बहुत मैले रखते हैं। स्वच्छ रहने की आदत सभी को बनानी चाहिये। वाणी को नहीं बदलना चाहिये। जो बात कह दी, उसमें बदली करना चोरी करने के बराबर है। अपने वचन पर रहना चाहिये। दूसरों की निन्दा करना बहुत खराब है। अपनी बड़ाई का गोबर जमा नहीं करना चाहिये। जब भला आदमी गन्दे आसन पर बैठना पसन्द नहीं करता, तो भगवान हमारे राग-द्वेषपूर्ण अन्तःकरण में कैसे बैठ सकेंगे ?

नाम का सिमरन बड़ा ऊँचा साधन है। यदि साधन में राम-कृपा अवतरित न हो, तो समझो कि साधक के अन्तःकरण में शुद्धि नहीं। कई व्यक्तियों को

इस नाम के जपने से बहुत लाभ व शांति मिली है। राम-नाम बड़े गहरे घाव को भर देता है। चरित्र-निर्माण के साथ साधना करते रहने से व्यक्ति बढ़ता जाता है। चरित्रवान को जो सुख व शान्ति मिलती है, वह दूसरे को नहीं प्राप्त होती। जिस साधक के पास राम-नाम की परम औषधि है, उसका परम कल्याण हो जाता है।

साधना-सत्संग हरिद्वार



सजगता

जैसे गाड़ी चलाने वाला पथ पर दृष्टि रखता है, वैसे ही हमारी दृष्टि वृत्तियों पर होनी चाहिये। बुद्धि की विवेकवती-वृत्ति मार्ग पर रहनी चाहिये। यदि वह कभी मार्गच्युत हो जाये, तो विचारना चाहिये कि ऐसा क्यों हुआ ? दृष्टि ही ऐसी बना लेनी चाहिये कि बिना विचारे ही अपने आप पता लग जाये कि ऐसा क्यों हुआ ? इससे यह अपराध को ऐसे ही दिखा देगी, जैसे लैम्प चीज़ को दिखा देता है। जो चीज़ें संयम को बिगाड़ती हैं, उनके आगे दीवार खड़ी करनी चाहिये।

यदि कभी जानकर या अनजाने से कोई भूल अथवा अपराध हो जाये, तो उसका प्रायश्चित करना चाहिये। इससे अन्तःकरण निर्मल होता है और पाप का काँटा निकल जाता है। स्वाध्याय, जप, उपवास आदि प्रायश्चित हैं। जिनका ध्यान में मन नहीं लगता, उन को दस, पन्द्रह, इक्कीस, इक्तीस लाख अथवा इससे अधिक जप करना चाहिये। नाम का सवा करोड़ जप करने से तो वैसे ही मन शान्त हो जाता है और मंत्र सिद्ध हो जाता है।

अपने कार्यों पर दृष्टि रखनी चाहिये। इसके लिये प्रारम्भ में कुछ समय तक श्रम करना पड़ता है। फिर यह स्वभाव बन जाता है, तथा इसके लिये श्रम नहीं करना पड़ता, ऐसी वृत्ति ही बन जाती है। पर यह वे ही कर सकते हैं, जिनमें लगन अधिक है। ऐसा सोचना चाहिये कि हमने जो साधारण ज्ञान विज्ञान प्राप्त किया, उसके लिये कितना श्रम किया और हमने इस कार्य के लिये कितना श्रम किया है ?

मनु ने कहा है कि ब्रह्म-मुहूर्त में जागना चाहिये तथा उस समय धर्म, अर्थ तथा शास्त्र के तत्त्व का चिन्तन करना चाहिये।

प्रातः काल उठना उपयोगी होता है। ब्रह्म-मुहूर्त में साधना करने से अधिक लाभ होता है, क्योंकि उस समय बाहर के विक्षेप नहीं होते तथा प्रकृति भी शान्त होती है अर्थात् वातावरण में विक्षेप नहीं होता। आकाश में

मानस-तरंग भी चलती है, जो वातावरण को खराब करती है, किन्तु प्रातः काल अच्छे तरंगों को रोकने वाले तरंग कम होते हैं। उस समय सारे बुरे तरंग शान्त होते हैं। इसलिये प्रातः काल साधन के लिये बहुत लाभकारी है। दिव्य-लोकों के नाद भी अवतरित होते हैं। यह प्रातः समय ही सुनाई देते हैं, कोलाहल के समय नहीं। उनको सुनने से बड़ा हर्ष होता है। उनसे मन स्थिर हो जाता है, आत्मा जग जाता है।

साधना के लिये श्रम करना चाहिये। अन्ततः हम अन्य बातों के लिये भी श्रम करते हैं।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 5.12.1950

❑❑

आत्म-निरीक्षण

आप स्वच्छ वस्त्र धारण करते हैं और यह अच्छा है कि आप अपने आप को स्वच्छ रखते हैं। किन्तु अधिक मूल्यवान वस्त्र साधकों को नहीं पहनने चाहिये। वे तो केवल दूसरों को दिखाने के लिये होते हैं और हमारा उनसे कोई प्रयोजन नहीं। वस्त्र स्वच्छ तथा अधिक समय तक चलने वाला होना चाहिये। तड़क-भड़क आदि दूसरों को दिखाने की चीज़ें होती हैं। हमें उनकी ओर नहीं देखना चाहिये, अपितु अपने अन्दर की ओर देखना चाहिये अर्थात् आत्म-निरीक्षण करना चाहिये और अपने मन को साफ रखना चाहिये। हमें अपने दैनिक व्यय का हिसाब रखना चाहिये, क्योंकि यह लाभदायक है।

इसी प्रकार हमें सवेरे जल्दी ब्रह्म समय में उठना चाहिये तथा अपने अन्दर की दुर्बलताओं, अनेक भूल-परिणामों को सोचना चाहिये तथा भविष्य में ऐसी भूलों से बचने तथा आगामी दिन के लिये अच्छे कार्यक्रम के विषय में सोचना चाहिये। साधक को विचारना चाहिये कि जो कार्य वह करता है, उससे उसकी उन्नति होगी या गिरावट।

अपना मन साफ रखना चाहिये तथा फिर यदि दूसरे लोग आपकी बुराई भी करें, तो उनकी परवाह नहीं करनी चाहिये। यह अच्छा नहीं है कि यदि आप वास्तव में अच्छे नहीं हैं, तो भी लोग आपकी झूठी प्रशंसा करें।

अंग्रेजों का प्रेस यही कहता रहा है कि कांग्रेस वाले गुण्डे तथा बदमाश हैं। किन्तु उनके कहने से ऐसा हुआ तो नहीं।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 28.12.1948

❑❑

धर्म

धर्म

(क)

मनुष्य के जीवन का बहुत भाग आलस्य में व्यतीत होता है। अतः हर समय धर्म का पालन करने को तैयार रहना चाहिये। आत्मा का उत्थान करना चाहो, तो कार्य करने को तैयार रहो। कोई काम कल को नहीं छोड़ रखना चाहिये। एक पल की किसी को खबर नहीं, तो कल की क्या मालूम? 'काल करे सो आज कर, आज करे सो अब'। कच्चा मन आगे करने को टाल-टूल का संकल्प करता है। कच्चा मन समय टालता है। अच्छे कामों में देर नहीं करना, हिचकना नहीं। जो वचन दिया उसका पालन करना, उसे करना। वाणी का पालन करने से वाणी बलवती होती है।

मनुष्य को चैतन्य रहना चाहिये। सत्संग में जाकर समझने की चेष्टा करनी चाहिये। यही एक रहस्य है, उन्नति है।

साधना-सत्संग, दिल्ली,
दिनांक 3.4.1955,
समय रात्रि 9.00 बजे

(ख)

राग-द्वेष से रहित होना कठिन है। परन्तु यह साधना से सुलभ हो जाता है। धर्म में आचार का काम होता है। स्वार्थ आने पर वाणी काम आती नहीं।

आजकल धर्म-प्रचार का कार्य या धार्मिक संस्थायें, ऐसे लोगों के हाथ में हैं, अधिकार में है, जो रात-दिन झूठ, कपट आदि का सहारा लेते रहते हैं। वकील रात-दिन सच को झूठ और झूठ को सच बनाते हैं। दुकानदार, ठेकेदार सच कम बोलते हैं। ऐसे ही लोग धर्म के प्रचारक हैं। अतः धर्म पनप नहीं पाता है।

धर्म के प्रचार में (1) कठोर वचन न हो (2) अपने हाथ से किसी को न सतायें (3) पेट काबू में हो।

अन्दर के देवता की बात सुननी चाहिये। वह सुनाता है। तुझे पराई क्या पड़ी? अपने धन, मन, बुद्धि को अच्छा बनाओ। पराई गन्दगी को जीभ से धोना अच्छी बात नहीं। मैं अपने आप को अच्छा बना लूं। जब तक मैला धब्बा मेरे दुपट्टे पर है, दूसरे के धब्बे को क्यों देखूं? जो अपने अन्तःकरण को देखते हैं, उनका कल्याण हो जाता है। पाप-ताप उनके दूर हो जाते हैं। चरित्र-निर्माण बड़ी ऊँची बात है। यह धर्म से होता है, राजनीति से नहीं। द्वेष की चादर को दूर फेंक कर देखो, फिर आत्मा बोलता हुआ सुनाई देगा। फिर पथ-प्रदर्शन अपना आत्मा करने लगेगा। नियम मत तोड़ो और झूठी सिफारिश मत करो।

साधना-सत्संग, दिल्ली,
दिनांक 4.4.1955,
समय रात्रि 9.00 बजे

(ग)

धर्म का निरूपण

धर्म कभी बदलता नहीं। वह सनातन है। पारिवारिक जीवन के जो आदर्श कवियों ने वर्णन किये हैं, वे दूसरे देशों में भी हैं। पति-धर्म तथा पत्नी-धर्म के आदर्श आदि। धर्म और मत में बहुत भेद है। राय ही मत है। प्रतिदिन के कार्य करना मत है। जो बदल जाये वह मत है। धर्म अखण्ड है। अपरिवर्तनशील है। मत आदमी के बनाये हुए होते हैं।

धैर्य– धैर्य होना चाहिये। पत्नी का धर्म है कि आज्ञा का पालन करे। पति ही सब कुछ है। यदि वह उल्लंघन करती है, तो धर्महीन है। राम के वन जाने पर कौशल्या जी ने कहा कि राम मुझे वन साथ ले चल। यह नहीं कहा कि तुम मत जाओ। क्योंकि पति आज्ञा थी। पर राम ने बताया कि पति को छोड़कर जाना धर्म नहीं है। अतः आगे कौशल्या जी ने जाने को नहीं कहा।

सहनशीलता– 'धर्म जीवन-तत्त्व विज्ञान है।' जीने की योग्यता प्राप्त करना चाहिये। जीवन से मोह होना व योग्यता होना पृथक-पृथक चीज़ है। प्रकृति के थपेड़ों को सहन करना ही योग्यता सम्पादन करना है। जीने के लिये योग्यता सम्पादन करनी चाहिये। सहनशील बनो। प्रकृति व मान-अपमान को सहन कर सको। इसके बिना धर्म नहीं है। धर्म दूसरा करे, फल हमें मिले। दूसरे के कार्य से अपना कार्य नहीं होता। दूसरा रोटी खाये, पेट अपना भरे, यह नहीं हो सकता। यह पालन करना कठिन बात है।

दमन– पशुओं, आदमियों को दमन कर लेना सहज बात है, किन्तु इन्द्रिय-संयम करना व मन को दमन करने वाले विरले ही माई के लाल हैं। मन को वश में करना ही दमन है। यही धर्म है।

धर्म की कला चमकनी चाहिये। महात्मा गांधी अपने युग के धर्मावतार थे। धर्म सजीव होना चाहिये। धर्म मनुष्य को ओजस्वी बनाता है। जातीय गौरव बढ़ाता है। धर्म को धारण करना चाहिये। मतवाद के धर्म में पुरुष को अपने पर ही विश्वास नहीं है। तीर्थ आदि, गंगा-स्नान आदि करना मत के अन्दर है, जो धर्म नहीं है। 'धर्म तो जीवन-तत्व-विज्ञान है।' आडम्बर से बचो। मत में कोई बात निश्चित नहीं, धर्म निश्चित है। धर्म तो जीवन-ज्योति जगाने वाला है। धर्म से जीवन का कल्याण होता है।

साधना-सत्संग, दिल्ली,
5.4.1955 एवं 6.4.1955,
समय रात्रि 9.00 बजे

(घ)

भारतीय परम्परा को, जो पुरातन है, स्थिर रखना चाहिये। भक्तों के पद ही गाने चाहियें। धर्म त्रिकाल आराध्य है। रीति-रिवाज़ में धर्म निहित नहीं है। सब देशों में धर्म विद्यमान है।

अस्तेय (चोरी)– जेब काटना ही चोरी नहीं। आत्मा की चोरी करना भी चोरी है। अधिकारों की चोरी करना भी चोरी है। मुंह से कुछ कहना और हृदय में कुछ और हो, यह चोरी है। हक नहीं देना चोरी है। राजा को अन्याय नहीं

करना चाहिये। (महाराज ने दुष्यन्त-शकुन्तला का उदाहरण दिया)। झूठों की सिफारिश नहीं करनी चाहिये। ऊँचे पद वाले लोग सत्संगों में इसलिये नहीं आते हैं कि अन्य लोग परिचय बढ़ाकर उनसे सिफारिशें कराने लगते हैं। पापी की सहायता करने वाले व सिफारिश करने वाले सब पापी हैं। धर्मात्मा ही सदाचारी तथा धर्मशील होते हैं।

शौच (सफाई), पवित्रता– आचार बढ़ने से व्यवहार-मण्डल सुधरता है। कम देना बेईमानी करना है। अविद्या से आकाश भी खराब हो गया है, क्योंकि धर्म के ठेकेदार भी पैसे के लिये पापियों को मंत्र-जाप बताते हैं। सफाई का सदा ध्यान रखो। मन सत्य से शुद्ध हो। धन की पवित्रता सब पवित्रताओं से बड़ी है। कमाई पवित्र हो। अपवित्र कमाई हृदय, रक्त, नाड़ी, तन्तु, बुद्धि आदि को अपवित्र करती है। पापी यदि भगवान के समक्ष क्षमा मांगे, प्रार्थना करे, ऐसा करने पर अन्तःकरण निर्मल होता है। बुद्धि, ज्ञान से पवित्र होती है। शरीर जल से। पापी जप से शुद्ध हो। सत्य के ऊपर कोई धर्म नहीं है। विद्योपार्जन-ज्ञान विज्ञान से ही धर्म है। ज्ञान बिना धर्म नहीं चलता।

दो विद्या हैं। एक परा और दूसरी अपरा। ग्रन्थों के पाठ आदि अपरा-विद्या है। परा-विद्या से भगवान के चरण-शरण की भक्ति प्राप्त होती है। परा उत्कृष्ट है, अपरा साधारण। धर्म-तत्त्व को जीवन में उतारना चाहिये। रीतियों की रस्सी में नहीं उलझे रहना चाहिये। जीवन-कला धर्म-तत्त्व से ही ऊंची होती है। इसका नाद बजाना चाहिये। ऐसी भेरी ऊँचे स्वर से बजानी चाहिये। जीवन को निर्माण करना बड़ी बात है।

मैं तो अपने को बालक ही अनुभव करता हूं। बालक जैसा रहता हूं। बालक के समान हंसना, खाना, खेलना चाहिये। यद्यपि दुनिया मैंने बहुत पहले देखी है। छः साल पूर्व की घटना मुझे याद है और वह चित्र मेरी दृष्टि के सामने मूर्ति के समान दीखता रहता है। मैं उन जैसा नहीं हूं, जो चांदनी चौक में झाड़ू हाथ में लेकर खड़े हों और कैमरा वाला भी खड़ा हो और अपना नाम करता फिरूं।

साधना-सत्संग, दिल्ली,
दिनांक– 7.4.1955,
समय रात्रि 9.00 बजे ❑❑

धर्म के लक्षण

मज़हब, पंथ तथा मत आदि शब्द होते हैं। मत या पंथ का अर्थ है,राय यह सब समय तथा आचार्य के अनुसार बदलते रहते हैं। धर्म कभी नहीं बदलता। यह हमारे जीवन से सम्बन्धित है। अतः हमें धर्म का पालन करना चाहिये। धर्म के दस लक्षण इस प्रकार हैं–

धैर्य– धैर्य का अर्थ है, विचारों तथा कर्मों में बहुत प्रबल तथा सुदृढ़ निश्चय। ऐसे व्यक्ति हुए हैं जो अपने दृढ़ निश्चय के लिये इतिहास में विख्यात हैं। हम धैर्य के बिना धर्म का पालन नहीं कर सकते। यह धर्म का मूल सिद्धान्त अथवा लक्षण है तथा इसका दृढ़ता से पालन करना चाहिये। यथा भक्त प्रह्लाद, मीरा, ध्रुव, श्रीरामचन्द्रजी महाराज, राजा हरिश्चन्द्र, बाल हकीकत राय इत्यादि ने किया।

क्षमा– क्षमा का अर्थ है– सन्तोष तथा सहनशीलता। यह भी जीवन के प्रत्येक दृष्टिकोण में आवश्यक है। यदि कोई हमारे विरुद्ध कुछ कहे, तो हम क्रोधित न हों।

मन का दमन करना– मन को पूर्णतया वश में रखना या यूं कहिये कि मन को सिधाना। मन को सिधाना कुछ कठिन है, क्योंकि यह नदी अथवा किसी अन्य वस्तु की भाँति दिखाई देने वाली वस्तु नहीं है अर्थात् यह एक भिन्न वस्तु है। लोग नदियों को सिधाकर उन्हें एक विशिष्ट मार्ग पर या एक विशिष्ट दिशा में बहाते हैं। यह भी कहा जाता है कि इंग्लैण्ड की नदियां भारत की नदियों से अपेक्षाकृत अधिक सिधाई हुई हैं। यह भी विचारने की बात है कि वायु को किसी एक निश्चित दिशा में प्रवाहित किया जा सकता है, किन्तु वायु को पूर्णतया रोक देना न तो सम्भव है तथा न ही इसकी आवश्यकता है।

मन को वश में करने के तीन मुख्य साधन ये हैं–

(1) किसी न किसी काम में लगे रहना चाहिये।

(2) दिन के सब कार्यों का समय नियत होना चाहिये।

(3) अपने मन के विषय में यह निश्चय होना चाहिये कि यह मेरी वस्तु है तथा यह विश्वास होना चाहिये कि यह मेरे नीचे है और मेरी इच्छानुसार ही कार्य करेगा।

i. यदि कोई व्यक्ति काम में जुटा है, तो उसे कभी चंचल विचार नहीं आवेगा। एक बेकार लड़का अवश्य ही कोई न कोई दुष्ट कर्म करने लगेगा। इसीलिये किसी ने कहा है– बेकार समय में कुछ किया कर और नहीं तो कपड़े फाड़ कर सीया कर।

ii. जिसके सम्मुख कार्यक्रम होता है, उसके मन को उसकी आदत पड़ जायेगी। उसको नियत समय पर भूख लगेगी तथा नियत समय पर नींद आयेगी। इससे दुष्टता के द्वारा मन पर काबू पाये जाने की संभावना नहीं रहेगी।

iii. ठीक जिस प्रकार एक सेनापति को आज्ञा देते समय अपने अन्दर विश्वास होता है कि उसकी आज्ञा का पालन किया जायेगा, इसी प्रकार आपको भी ऐसा विश्वास होना चाहिये कि मैं अपने मन का अधिकारी हूँ अर्थात् मेरा अपने मन पर अधिकार है।

दूसरों की वस्तु पर मनोवृत्ति का होना (चोरी)– धर्म का चौथा लक्षण है कि हम न तो किसी अन्य की वस्तु पाने की चेष्टा करें तथा न ही ऐसा सोचें। किन्तु युद्ध तथा अन्य उपद्रवों के समय में बात और है। यदि हमारी सेना आक्रमणकारियों को खदेड़ कर, उनकी बन्दूकों, तोपों तथा गोलाबारी के सामान पर अधिकार करे, तो इस अवस्था में वह चोरी नहीं है। इसमें चोरी का कोई भाव नहीं है।

शौच-पवित्रता– इसमें मन की पवित्रता, बाह्य पवित्रता, वाणी की पवित्रता, तथा बुद्धि की पवित्रता सम्मिलित हैं। यह बहुत आवश्यक है। पुराने समय में तथा अब भी इसका पालन किया जाता है। यदि किसी जमींदार की खेती में कोई जानवर घुस जाये, तो वह अविलम्ब उसे बाहर निकाल देगा, रिपोर्ट करने पुलिस स्टेशन नहीं जायेगा।

इन्द्रिय-निग्रह– इन्द्रियों पर काबू अथवा इन्द्रियों का साधना।

बुद्धि– ज्ञान या धर्म-युक्त बुद्धि।

विद्या– दो प्रकार की– परा और अपरा।

सत्य– ''त्यागे असत्य हरि-अनुरागी, कर हरि-पूजन बन बड़भागी''।

अक्रोध– क्रोध बहुत बुरा है। पर जब कोई माता अपने बच्चे को कहती है कि तुम स्कूल क्यों नहीं गये, तो इसका यह अर्थ नहीं कि वह क्रोध में है।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 24 से 27.12.1947
समय अपराह्न 3.00 बजे



धर्म-पालन

धर्म का जो मार्ग है, वह दूसरे मार्गों से न्यारा है। धर्म का प्रचार जनता में मेल-मिलाप, आचार-विचार की उन्नति करता है। तीव्र और प्रबल विचार जिसका होता है उसे लाभ होता है, परन्तु जिस युग में हम विचरते हैं, इसमें राजनीति अधिक है। उनके कथन वृत्ति को चंचल बनाने वाले हैं। इस का कारण यह है कि पिछले चालीस वर्षों से यह जग शांति में नहीं है। जैसे मानसून के दिनों में समुद्र चंचल रहता है, ऐसे ही मानव जग में अशांत रहता है। इसका बड़ा कारण तो यह है कि राजनीति-प्रचार जो है, वह एक और धारणा को लेकर हो रहा है। इसकी भावना भय वाली है। वास्तव में बात यह है कि हमें धन और अपने गौरव को स्थिर रखना है। बैल के पास जाओ वह सींग हिलाता है। इस से भय पैदा होता है। इस प्रकार हर जाति अपने सींग हिलाती है। पिछले चालीस वर्षों से इसका ज़ोर रहा है– राजनीतिज्ञों की बुराई से मेरा सम्बन्ध नहीं है। मेरा अधिकार भी नहीं। न ही मैं करने की इच्छा रखता हूँ। बहुत बार अच्छी बात का भी परिणाम बुरा हो जाया करता है। राजनीतिज्ञों ने आत्मा-परमात्मा के विचार को निकालने का बड़ा– भारी यत्न किया। इस प्रकार नये तरुण जो आते हैं, उन पर इसका बड़ा प्रभाव है। वे पुण्य-पाप को, धर्म-अधर्म को भय दिखाने वाला समझते हैं। वास्तव में यह बात नहीं है। इस कारण मनुष्य कुछ नास्तिक-सा बनता जाता है। अपने देश में तो फिर भी कुछ स्थिर है, किन्तु दूसरे देशों में बहुत धक्का लगा है।

दूसरे देशों के नेता (धर्म-संचालक) ऐसे समाचार निकालते हैं कि धर्म का तत्त्व बना रहे।

वे वहीं से जहां इतना पाप है, अपने धर्म का प्रचार करते हैं। इसी कारण यूरोप की संस्था चल रही है। हमारे यहां इसकी कमी है। यहां तो परम्परा के कारण चल रहे हैं। बड़ा अन्तर है। यहां धर्म मनुष्यों से सुगठित नहीं है। सुगठित जाति में बड़ा बल होता है। लड़ता हुआ विरोधी कहता है कि तुझे

पानी बना दूंगा या यूं कहते हैं, मेरे सामने पानी-पानी हो गया। पानी कितना है, यह बात इसमें है। ऐसा कहने में पानी जैसा इतना पतला कहा जाता है, किन्तु जब यह सुगठित होता है, तो इसकी मार का विचार करो। लाखों रुपया नदियों के ठेकों पर खर्च होता है। कोसी जैसी नदी की मार को कम करने के लिये इंजीनियरों ने बहुत विचार भी किया है, किन्तु कहते हैं कि अभी तक कुछ समझ में नहीं आता। पर मनुष्य बड़ा प्रबल है। मुझे कहना यह है कि पानी जब सुगठित हो तो कितना प्रबल है! दो-ढाई माह पहले की बात है, बिहार, आसाम, पश्चिमी पंजाब में ऐसी बाढ़ें आईं कि इस को बड़े-बड़े बांध नहीं रोक सके। पहाड़ियां अपना स्थान छोड़ने लगीं। देखो, पानी जब सुगठित हो जाये, तो कैसे चट्टानों को रेत बना डालता है। वैसे पानी कितना पतला होता है। कनखल बचाने के लिये जो बांध बनाया था, सारा बह गया। संगठन का यह बल है।

भारतीय जाति में संगठन वैसे ही कम है। राज्य जो चल रहा है– यह राज्य की पूजा की रीति है। लोग हुए हैं– वह बात नहीं–अंग्रेजों के समय से भी, बादशाहों के समय से भी, इस प्रकार राज्य की पूजा की रीति प्रचलित रही है। जो लोग बहुत कहते हैं कि हमारा दादा बड़ा अच्छा था, मिथ्या युक्तियां देकर वे मिलान करते हैं। जैसे लड़का बाबा की लठिया को घोड़ा बनाये। यहां जो सभायें बनीं, वे लोगों ने अपना लीं। इसे परम्परा बचा रही है। अमावस का दिन था। उसने सुना था कि सब इलाका आर्य समाजी हो गया है, किन्तु लोग सड़कों पर झुण्डों में जा रहे थे। उसको बताया गया कि अमावस का स्नान है। यह थी परम्परा की मान्यता। इन्डोनेशिया की कैबिनेट का मेम्बर एक वकील के यहां पहुंचा। वहाँ उसने चाय पी। लोग गंगा-स्नान के लिये बैलगाड़ियों की कतार में जा रहे थे। उसने पूछा–नीचे सड़क पर क्या है ? कहने लगा– ग्रामीण लोग नदी पर जा रहे हैं। वहां मेला लगाते हैं और स्नान करते हैं। तो यह परम्परा है। वह गीत सुनने वाले और सुनाने वाले मर गये। किन्तु जनता परम्परा की डोर में बंधी है। कहना यह है कि परम्परा बड़ी चली आती है। उसको जल्दी निकालना भी नहीं चाहिये। कुम्भ का मेला था। उसके अभी भी दिन रहते हैं। वहां प्रधानमंत्री भी गये। उन पर पार्लियामेंट में प्रश्नों की बौछार

हुई। वियाना में नेहरू जी की परम प्यारी पत्नी का देहान्त हुआ। नेहरू साहब जब हवाई जहाज से उतरे, तो पत्नी की अस्थियां अपनी काँख में लिये थे। ऐसे आदमी को कोई कैसे कह दे कि वह धर्म नहीं मानते। यह बुद्धि से पीछे हट कर कहने की बात है। वे अस्थियां डालने के लिये प्रयाग में नंगे पांव गये और शोभायात्रा के साथ गये। धर्म गाने की नहीं, अपने जीवन में बसाने की चीज़ है। उन्होंने सभा में जवाब दिया कि हिन्दुस्तान के लोग वहां इकट्ठे हुए थे। तुम जो इतने जलूस निकालते हो। स्वतंत्रता का दिन लाल-किला जाकर क्यों मनाते हो ? यह सब भावना की चीज़ है। देश को ऊँचा करते हैं। संगठन पैदा करते हैं। कहना यह था कि यह जगत् भावनामय है। अब भी भावना बनी हुई है। उसको उठाना अच्छा नहीं, केवल सुधार की आवश्यकता है और वह सुधार होता रहता है।

यदि घर में शान्ति है, तो शान्ति है। समाचार-पत्र को देखकर और मित्र बुलाकर टटोल कर देखो, तो भी नहीं मिलेगी। विचार शान्त होने से शांति मिलती है। एक मित्र विलायत जाने लगा, तो बाबा ने कहा कि जो प्रार्थना सिखाई थी, उस को भी कभी पढ़ लिया करना। जब वह हज़ारों रुपया खराब करके घर वापस आया, तो दोस्तों ने पूछा, तब सब बातें और परिस्थितियां उसने वर्णन कीं। मित्र-मंडली बैठी हुई थी। चाय-पान कर रहे थे। एक सयाने वकील ने कहा, भाई साहब! आपने इतना रुपया भी खर्च किया, क्या देखा ? क्या वे लोग शान्त हैं ? जवाब दिया, बड़े चंचल जैसे मानसून के दिनों में समुद्र चंचल होता है। जहां जाओ वहीं चंचलता। रुपया इतना हमारे पास है, हम और बढ़ाना चाहते हैं। ऐसे ही व्याख्यान उनके प्रोफेसर करते। फिर प्रश्न किया कि क्या तुम्हारे मन में शांति थी ? तो उसने कहा कि शांति तो उस श्लोक में थी जो बाबा ने बताया था कि जिसकी वरुण, ब्रह्मा, इन्द्र सब स्तुति करते हैं, वह हमारा देव है। उन पदों में मुझे सुख-शांति का समुद्र मिलता था। किन्तु जब फिरता था, तो असीम चंचलता होती थी। पर शांति तो प्रार्थना से मिलती! वह तो बड़ा अवलम्बन थी। कभी-कभी विचार आता कि भारत में इतने हवाई-जहाज नहीं, गोले नहीं, विनाशकारी दूसरे हथियार नहीं, तो कैसे भारत-रक्षण होगा ? प्रार्थना करने

पर विचार आता कि तू क्यों चिंता करता है ? चिंता करने वाला भगवान जो है। जो सब की ओर है। इस युग में भारत के सब भागों में जागृति आ गई है। कहना यह है कि धर्म कई विभागों में है जैसे– आचार-विचार। विचार में राम-आराधन, तब मन शान्त हो। सोने का समय व जागने का समय शांत होता है, इस में श्रीराम-नाम का सिमरन करें, उच्चारण करें।

'हे परमेश्वर जैसा तू है, तुझ को नमस्कार।' किसी बंधु के वियोग से यहां जो रोते आदमी आये और उन्होंने कहा कि हमारा धैर्य टूट गया, हमारा मन डांवांडोल है। तीन-चार दिन के सिमरन से उन को शांति हो गई। यह विचार का धर्म बड़ा बलदायक, शक्तिदायक है। धर्म बड़ी मीठी चीज़ है। इसने बहुत दिनों तक जनता को शान्त रखा। धर्म ने मनुष्यों में दया, पुण्य और सेवा भरी। राजनीतिज्ञों ने हिंस्र जंतुओं जैसा खराब किया। सुन्दरता धर्म के हाथों बनी हुई है। यद्यपि समाजों ने टक्कर मानी है, गिराने की, किन्तु मनुष्यों की धर्म जो जड़ है, उसने बचाये रखा है।

परमेश्वर के आगे अपना दिल खोलने से शांति का विस्तार होता है। श्रीराम सब पर कृपा करें– अपने नाम का प्यार सब में बसायें।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 21.11.1954,
समय अपराह्न 3.30 बजे
❑❑

साधना-सत्संग

साधना-सत्संग का इतिहास

सत्संग का तात्पर्य यह है कि खाली समय का उपयोग करें। पहली बार यह सत्संग सन् 1936में हरिद्वार में लगाया गया। दो सत्संग वहां लगाये। प्रारम्भ में केवल दस या बारह अच्छे व्यक्ति बैठे। ऐसा ही विचारा गया। वहां भीमगोडे के पास अमृतसर वालों की धर्मशाला थी। मेरे मिलने वाले कमरे रिज़र्व कर देते थे। वैसे भी दिसम्बर के माह में लोग कम जाते हैं। पत्र उनको लिख दिया जाता, तो वे बड़े अच्छे कमरे रिज़र्व कर दिया करते। इसके बाद तीन सत्संग होशियारपुर, फिर लायलपुर और कपूरथला में लगे। फिर होशियारपुर में नियमित लगाने लगे। फिर सांपला में लगाने लगे, यह दूसरा था, चौथा ग्वालियर में। दो तीन साल से मेरठ में लगने लगे। दो सत्संग दिल्ली शहर में भी राम-नवमी से पूर्णमासी मिलाकर लगने लगे। मुख्यतः तो यह हरिद्वार में था। हम पांच आदमियों ने, भीमगोडे से ऊपर सप्तसरोवर कहलाता है, वहां स्नान कर के आचमन किया। सम्भवतः एक ने स्नान न किया हो। फिर व्रत लिया कि हम राम सेवा किया करेंगे। उनमें से दो चले गये। तीन बाकी रहे, एक तो काफी सेवा किया करता। तात्पर्य इसका यह था कि कुछ आदमी सध जायें।

हम यहां समय का, जिससे धन भी कमाया जाता है, बलिदान करके एकत्रित हुए हैं। इसलिये हमें इसका पूर्ण लाभ उठाना चाहिये और मेला, गढ़ अथवा प्रयाग के मेले में जाने वालों के समान– ऐसे ही यहां से नहीं लौटना चाहिये।

हमारी इच्छा है कि साधकों के छोटे-छोटे साधना-सत्संग लगें, जिनमें छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, नये-पुराने तथा हर जाति के व्यक्ति सम्मिलित हों, ताकि साधकों में परस्पर हीनता की भावना कदाचित् न रहे। लोग कहते हैं कि हमने तीस बार स्नान किये इत्यादि, किन्तु ऐसा कहने से कोई लाभ नहीं।

साधना का अर्थ इसीलिये तो खाली समय के उपयोग का कहा है। हम जानते हैं कि कोई जमींदारी छोड़कर, कोई पढ़ना छोड़कर यहां आता है, तो फिर समय का पूरा उपयोग करें। यहां सब काम नियम से होते हैं। साधारणतया भारतीयों में नियम का स्वभाव नहीं है। वैसे यहां पर कोई विशेष रोक नहीं। घूमने को भी कोई मील डेढ़ मील तक चला जाये, तो भी समय है, किन्तु उसको घंटी का विचार हो, नियम भंग न हो। यदि बहुत आदमी नियम का स्वभाव बनायें, उनमें प्रातःकाल उठने का नियम आ जाये। नियम फिर बहुत आदमियों में आया भी। पेट के रोगी यहां अच्छे रहते हैं। पश्चिम पंजाब का एक आदमी, उसने किसी संस्था को जीवनदान दिया। फिर आसाम में भी वह काम करता रहा। साधना-सत्संग नांगल पहली बार आया। उसको पेट की तकलीफ बहुत होती। पर भोजन सादा इतना अच्छा कि वह बहुत ही अच्छा रहा। जब साधक को तीन पाव दूध मिला, तब उसको घी की आवश्यकता नहीं रह जाती। फिर भी यदि घी खाया, तो उसकी या तो चर्बी बन जाये या वृथा जाये। दूध की मात्रा यहां अधिक है। ग्वालियर वाले दूध एक पाव प्रातः, एक शाम को सोते समय देते हैं। वे तो वहां के अनुसार, हमने आपत्ति नहीं की। यहां जितना दूध मिलता है, उतना नगरों में बाल-बच्चेदार को मिलता नहीं। यहाँ भोजन तो बहुत ही अच्छा होता है। मसालों की कमी से स्वाद बेशक कम। जो भी शिक्षण-शिविर होते हैं, वहां सिधाये जाते हैं। नियम के पालन का स्वभाव और नाम जपने का अभ्यास हो जावे। फिर तो चार दिन में स्फुरित हो जाता है। जिन को नाम जपने की आदत हो गई, वे पीछे घर पर भी करते हैं। फिर उसके प्रभाव की प्रतीक्षा नहीं होती। नाम-जाप के कारण रेल कब पहुँचेगी, ऐसा मालूम नहीं हो पाता। समय अखरता नहीं। दूसरे जिन को नींद कम आती है, दिमाग के रोगी होते हैं, उनको नींद बहुत अच्छी आती है। यहां हरेक को चाहिये कि नाम स्फुरित करे। इसलिये कहा जाता है कि कुछ सीख कर जायें। बहुत लोग बहुत आगे बढ़कर घरों को जाते हैं। वे स्वयं अनुभव करते हैं कि हमारे जीवन में बहुत अच्छाई आ गई। जो पहले सोची भी नहीं थी, वह भी आने लग गई।

नांगल में सांपला वालों का अब जो सत्संग लगता है, वहां से एक ने अखण्ड जाप से उठने पर मुझे कहा कि साधुओं की बहुत मण्डलियां जा रही हैं। जबकि यह संसार लोभ, मोह का है। बूढ़े बैल को जोतना बड़ा पाप है। कितनी लाठी उसकी पीठ पर पड़ती हैं! ज़मीन सब बोते ही हैं। तो फिर वह जिस खेत में जाये, जगह-जगह पर लाठी पड़े। तो यह कोई पुण्य का काम नहीं। आदमी को अपने भावों को अच्छा बनाना चाहिये। दूसरे ने उठकर बताया कि बहुत से संत वहां आ रहे हैं। दिव्य कान खुल जाते हैं। भावना से जाप करना चाहिये, बहुत लाभ होता है। प्रतीति न होवे, तो भी अखण्ड जाप में दो-चार बार बैठने पर उसमें आदत हो जाती है। नियम भी प्रतिदिन चलाने पर खुरदरा नहीं लगता। पहले सत्संगों में केवल चौबीस घंटों का अखण्ड जाप अन्तिम दिन हुआ करता। अब जाप में थोड़ी संगति होने पर, प्रत्येक भाई को दो बार अवसर मिलता है। नाम बसने पर ध्यान और जाप एक हो जाता है। अखण्ड जाप की यह बड़ी उत्तम बात है। साधना-सत्संग में अधिकतर साधन रहने-सहने के हैं और सबसे उत्तम साधन आध्यात्मिक कमाई है, जो जन्म-जन्मान्तरों तक काम आती है। जैसे रुपया बैंक में जमा किया और फिर जमाकर्ता विदेश चला गया, तो भी जमा किया हुआ रुपया उसे मिल जाता है। यह नाम-जाप पूंजी तो उस बैंक में जमा कराई, जिसका दिवाला कभी नहीं निकलता। तो इस कमाई को खूब कमाना। खूब आराधन, मनन करना।

यह मैंने सत्संगों का इतिहास वर्णन किया और जो कुछ सीखने में यहां आता है, वह भी वर्णन कर दिया और सबसे उत्तम बात यह कि जितना राम-नाम का आराधन निश्चय के साथ किया जा सके, हरेक को करना चाहिये। उतना ही लाभ होगा।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 19.11.1954,
समय प्रातः 11.00 बजे



साधना-सत्संग की प्रथम बैठक

(1)

जो साधक साधिकायें अपने स्थानों से आये हैं, राम-नाम के नाते से-उसी नाते से मैं आप सब का स्वागत करता हूँ। यहां रहना नियम संयम की बात है। तपोभूमि में तप का जीवन व्यतीत करना बड़ा अच्छा है। यह गंगा-स्थान तपोभूमि है। जो इस भूमि में राम-नाम का आराधन करते हैं, वे बड़े भाग्यशाली हैं। यह तप बाहर भीतर दोनों को अच्छा बनाता है। श्रीराम-नाम आराधन से बुद्धि, मस्तक, शरीर का आत्मिक-बल बढ़ता है। आत्मिक जागृति होती है।

यह साधना-सत्संग है। भजन करने का साधन सीखना है। वह पिता किस काम का, जो अपने पुत्रों को सिनेमा ले जाता है, परन्तु राम-नाम का उनमें कोई प्रचार नहीं करता। वह जननी भी किसी काम की नहीं, जो अपने बच्चों में राम-नाम का रस पैदा न करे। भक्ति-भाव अपने बच्चों में पैदा नहीं किया, तो वह माता-पिता किसी मतलब के नहीं।

आप यहां सीखने के लिये आये हैं। आपने सत्संग में आकर क्रोध को, निन्दा को, ईर्ष्या को जीतना सीखना है। जीवन बनाना है। स्वार्थी लोग झगड़े बढ़ाते हैं, आप तो परमार्थी हैं। साधना को जीवन का अंग बनाना है। समय पर सब नियमों का तत्परता से पालन करें।

प्रातः को दूध, दोपहर को साधारण भोजन, सायं को दूध-दलिया साधक का भोजन है। मुझे ऐसा भोजन मिले तो दो माह में स्फूर्ति आ जाये। सब्जी-भाजी में अधिक घी नहीं डालना चाहिये कि थाली में लग जावे। बहुत सी बीमारियां ज़्यादा खाने से होती हैं, कम खाने से नहीं। जो इस प्रकार का भोजन करेगा,

वह व्यक्ति सत्तर वर्ष का होते हुए भी पचास वर्ष का प्रतीत होगा। नियमों का पालन करना बहुत अच्छी बात है।

सत्संग में गीत पुराने भक्त-सन्त कवियों के ही गाना उत्तम है। क्योंकि उन गीतों में उन्होंने अपनी आत्मा उड़ेली होती है। वे मन्त्र का काम करते हैं। ये गीत उनके हृदय-कमल से निःसृत हुए होते हैं। सूर और तुलसी के पद भक्ति-प्रधान हैं। मीरा ने विरह-वेदना के पद गाये हैं। उनके गीतों से ऐसा प्रतीत होता है कि सब उनको दृष्टिगोचर हुए हैं। उनकी यह अनुभूत घटनायें हैं। आजकल के भजन-गीतों में शब्दों का खेल है। उनमें आत्मा नहीं होती। गीत में शब्दों का परिवर्तन नहीं करना चाहिये।

आप नाम-आराधन, भजन करने को यहां एकत्रित हुए हैं। जो उद्देश्य जहां का होता है, उसको वहां ही पूरा करने का महत्व होता है। दूसरी जगहों पर जहां दूसरे उद्देश्य-सिनेमा आदि– वहां उनका ही वासा। यहां तो भजन ही उद्देश्य है। बहुत व्याख्यान हो– ऐसी बात भी नहीं। जो बोलना, वह यहां मैं बोलता ही हूँ। इस समय यही कहना है कि नाम आपने लिया, लेते हैं, सुना और आपने धारण किया, आपको खूब अपने अन्दर रमाना है। ये ही उद्देश्य है और यह उद्देश्य पूर्ण तभी होता है, जब इसको महत्त्व दिया जाये। यदि दूसरा उद्देश्य हो, तो वृत्ति बिखरी रहती है।

यहां तो इसी पथ (राम-नाम) का भजन-कीर्तन और जो बोलना वह भी इसी पथ का। मुख्य उद्देश्य राम-नाम का आराधन करना है। वह ऐसे कि पूरा विश्वास हो जावे और नाम अन्दर रम जावे। तो फिर चैतन्य-शक्ति जग जावे। जब चैतन्य-शक्ति जग जावे, तो वह कभी न कभी काल-चक्र से पार हो जाये। यहाँ रोहतक से एक सज्जन आये हुए हैं। उनका सत्संग तो बड़ा अच्छा होगा। उन्होंने सोचा होगा, महाराज आवें, बोलें, तो उनका सत्संग पुष्ट हो जावेगा। उन्होंने मुझे चलकर बोलने को बहुत कहा। बाहर बोलना अब मैंने बहुत कम कर दिया है। सत्संगों के लिये ही फिरता हूँ। नाम की महिमा गायन करता हूँ।

मुझे स्वागत करने का हर्ष है। इस तपोभूमि में आप लोगों के आने-जाने और आपके भावों की प्रशंसा करता हूँ। आप सब साधक अपने साधना-शिविर में संयम-नियम के साथ समय व्यतीत करें। भगवान सबको बल दे।

साधना-सत्संग हरिद्वार,
दिनांक- 31.3.1958,
समय- सायं 4.30 बजे



साधना-सत्संग की प्रथम बैठक

(2)

पंच-रात्रि का साधना-सत्संग अब प्रारम्भ होता है। आप लोग दूर-दूर से आये हैं। मार्ग के कष्ट भी होते हैं। यहां का खाना-पीना सब तपस्या का ही है। फिर भी लोग बहुत पहले लिखने लगते हैं। इससे सत्संग में सम्मिलित होने का जो चाव है, उसका परिचय मिलता है। मैं आप सब का हार्दिक स्वागत करता हूँ और यह आशा करता हूँ कि साधना-सत्संग के नियम आप ठीक प्रकार निभायेंगे और अपने में नाम का संचय करेंगे। राम-नाम बसायेंगे।

ऐसी कोई धारणा नहीं बनाई कि यहां मुक्ति दर्शाई हो। यह तो साधना की चीज़ है और सीखने की है। जीवन में बसाने की है। दूसरों के भी सत्संग लगते हैं– कार्यकर्ताओं आदि के। वे सब सीखते हैं और काम करते हैं। साधना-सत्संग में यही भावना हमने रखी कि यहां हम नियमबद्ध जीवन बनावें। भजन-पाठ की हमारी प्रकृति बन जावे और जहां तक बन सके राम-नाम का विस्तार हो। यहां आने से कल्याण होगा, ऐसी धारणा नहीं की गयी। कभी स्वप्न में आई नहीं। साधना है और आप अपने मास्टर आप ही हैं। यहां से जाकर भी यह बात आपके जीवन में बनी रहे, ऐसा भी मैं चाहूँगा।

आदरणीय देवियो और सज्जनो! यह तो आपका स्वागत ही करना था, सो किया। मैंने उद्देश्य भी आपको बता दिया कि राम-नाम का संचय इसको दृढ़ करने के लिये फिर भी बोलता रहूँगा। बड़े भाग्यशाली हैं, जो यहां एकत्रित हुए। परमेश्वर की कृपा हम सब पर रहे। इन सत्संगों में चौ० मेहर सिंह सर्वाधिकारी हुआ करते हैं। अब उनके साथ हंसराज जी भी सहायक होंगे। प्रबन्ध हरेक आप ही करता है फिर भी कोई बात हो, तो उसके लिये व्यक्ति नियत किया जाता है।

यहां डॉक्टर भी हैं। वे ख्याल रखेंगे। हमारे यहां तो खाना अधिक नहीं होता। भगवान सब का स्वास्थ्य आप ठीक रखते हैं। पर परम्परा चलती है, सो डा. बेरी हैं।

यहां सभी काम समय पर होते हैं। यह मैंने कहा था कि यहाँ ही चाय पिला दो। न मालूम कौन कितना बाज़ार में जावे और खावे चंद्रकला (मिठाई)। फिर शाम को भूख न रहे, तो इस बैठक के बाद चाय आपको यहीं मिल जायेगी और यहां से ही, इस बैठक से ही, आप साधना-सत्संग में सम्मिलित हो गये।

यहां गंगा का भी बड़ा प्रताप है। वहां जावें, घूमें, साढ़े छः बजे फिर यहां एकत्रित होना है। आधा घण्टा ध्यान होगा, फिर गीत। बर्तन यहां आप ही साफ करते हैं। मेरे पुरातन मित्र मेजर जनरल शर्मा हैं। प्रेमनाथ जी ज़रा इनको सहायता देना। खैर वे सिपाही हैं। खाने के बाद थोड़ा विश्राम भी होगा। ऊपर कमरे में शाम से ही अखण्ड-जाप आरम्भ हो जावेगा। अखण्ड-जाप से तात्पर्य यह है कि टूटे नहीं। कर्मदेवीजी शुरू करायेंगी। रात्रि को अखण्ड जाप पुरुषों द्वारा चलता रहेगा। वे पंक्तियां बना लें। चाहे चार बैठें, चाहे कम-ज़्यादा। चौबीस की प्रातः को सत्संग समाप्त होगा। बारियां भी अखण्ड जाप की लिख कर लगा दी जावेंगी। सफ़ाई भी बहुत अच्छी होती है। बरताना भी बड़ी चुस्ती से यहां होता है। ढीला-ढालापन मुझे पसन्द नहीं। रामायणी-सत्संग में लड़कियों ने, बड़ी चुस्ती से बरताया, मुझे उसका स्मरण है।

ढीले-ढाले होकर नहीं रहना चाहिये। चुस्त होकर रहना चाहिये। सत्संगियों को आपस में प्रेम से मिलना चाहिये, पर यह मिलना प्रयोजन का

न हो और फिर ऐसा भी न हो कि अधिक समय बातों में ही व्यतीत हो जाये। अधिकतर समय भजन-ध्यान में ही व्यतीत हो और यहाँ आने का मुख्य उद्देश्य भी साधना करने का हो। कीर्तन में बोलने वालों के पीछे स्वर मिलाकर बोलना चाहिये। बोलने में व ताली आदि बजाने में संकोच नहीं करना चाहिये। खुल कर बोलना चाहिये। जब कोई आवेश आये, तो उसे रोकना नहीं चाहिये। इससे शक्ति का प्रसार होता है। भोजन के समय अधिक गम्भीर नहीं होना चाहिये। उस समय कुछ विनोद होना चाहिये।

चार बजे प्रातः घन्टी बजेगी, तो आप इस बात का बड़ा ध्यान रखेंगे और बड़ी सावधानी से सभी नियमों का पालन करेंगे। देखिये, मेरे मिलने वाले भी यहां बहुत हैं। आपके मिलने वाले भी हैं। पर यह जगह भी तो थोड़ी है और भी कई कारण हैं। गम्भीरता भंग हो जाती है, यदि सब को अनुमति दें। इसलिये नियम यही है कि केवल वे साधक, जिनको कहा गया, वही सम्मिलित हों। आप संयम करेंगे। संयम का बड़ा रस है। यह रस भी लेना चाहिये। तो मैं आपके लिये जो शब्द कहना चाहता था, वे मैंने कहे।

भगवान की बड़ी कृपा है। बड़ी दया है कि उसका यशोगान करने के लिये हम एकत्रित हुए हैं। ऐसे अवसर पाना सौभाग्य है। यह जीवन में ही सौभाग्य की बात है। जीवन में राम-नाम संचित हो। वह श्रीराम सब को अपने नाम में रुचि दे, सब को प्रीति दे और सब में उसका प्रकाश हो।

साधना-सत्संग हरिद्वार,
दिनांक 19.4.1959,
समय अपराह्न 4.30 बजे

❑❑

साधना-सत्संग में राम-नाम का आराधन मुख्य है

गाने वाले जो ऊपर बैठते हैं, उनका मुख व्यक्तियों की ओर हो या बराबर में हो जाये, केवल पीठ श्री अधिष्ठान की ओर नहीं होनी चाहिये। केवल दो बातें कहने की हैं। एक तो यह कि मैंने सुना है, प्रातराश नौ बजे करने से देर हो जाती है। तो आप साढ़े आठ बजे रख लें, यह ठीक रहेगा। एक आलोचना यह है कि लोग जल्दी-जल्दी खाते हैं। खाना तो धीरे-धीरे होता है। बहुत जल्दी करना कोई अच्छा नहीं। गपशप में हम अधिक समय लगा देते हैं। फिर मूल पदार्थ तो खाना-पीना ही है, ज़रा देर लगाया करें। आज साढ़े तीन बजे घंटी बजेगी तो समझना कि अमृतवाणी का पाठ होगा। अमृतवाणी होनी चाहिये। नेतृत्व श्रीमती शारदा जी का होगा। यह सूचना थोड़ी सी मैंने दी। उस समय का बोलना न हो और अमृतवाणी हो, यह मैंने अच्छा समझा!

आप सब यहाँ साधना-सत्संग में सम्मिलित हुए हैं, तो जो-जो आराधना के कार्य हैं, उनमें मुख्य तो राम-नाम का आराधन है। गीतों में, कथनों में, फिर जाप में भी यह बात ही मुख्य रहती है। अखण्ड जाप में भी राम-नाम का मुख्य स्थान है। पांच-रात्रि का यह अखण्ड जाप है और साधना है। इस साधना को जितना निभाया जाये, उतना ही अपने विकास का कारण होगी। हम जाप कम न करें और व्यर्थ बातों में अपना समय न लगा दें। दूसरे देश और प्रकार के हैं। वहाँ शासन भी और प्रकार का है। समय का वे भी बड़ा उपयोग करते हैं और यहां भी लोग करते हैं। मेरे देखते-देखते प्रत्येक क्षेत्र में विचरने वाले को अधिक काम करना पड़ रहा है। प्रत्येक बाबू दफ्तर में जाता है। नियम से जाता है। घड़ी की सुईयों के समान उसका यह नियम है। पहले शासन की रीति और थी, अब और पद्धति है। लिपिक बहुत बढ़ गये

हैं। इसमें कोई बहुत वैसी बात नहीं। अन्ततः देश में बेकारी की भी समस्या है। जल-प्रवाह के समान सड़क, साढ़े नौ बजे के आस-पास, साइकिलों से भरी होती है। नियम से बंधे हुए समय पर वे जाते हैं। ऐसा उनकी नौकरी का नियम है और उस नियम पर ही चलना होता है। पर जब उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार स्वतन्त्रता हो तो ऐसे बहुत थोड़े व्यक्ति होते हैं, जो समय पर आते हैं। मद्रास में पिछले दिनों हमारे प्रधानमंत्री दो घन्टे लेट पहुँचे। उन्होंने शोक प्रकट किया। मुझे कहना यह है कि प्रधान मनुष्य से लेकर साधारण मनुष्य तक समय का उल्लंघन करते हैं।

मेरे मित्र विनोबा जी भिवानी गये, तो शहर निवासी सब के सब बाहर आ गये। उस प्यारे को चलना मुश्किल हो गया। तो बात यह हुई कि **'जिह्वा पर तो रखते हो पैर और पैरों पर सिर'**। इस प्रकार से भीड़ और हुल्लड़बाजी से समय बहुत नष्ट होता है। समय का सदुपयोग होना चाहिये। यहां सब काम समय पर होते हैं और जो समय बच जाता है उस में बीस हज़ार जाप नियत है और लोग अधिक भी करते हैं। यहां साधकों को चिन्ता नहीं करनी चाहिये। चित्त को वे क्यों घुन लगायें कि चीन की मित्रता हट गई, तो कौन हमारा मित्र होगा? मुझे तो कहना यह है कि यह समय नष्ट करने की बातें हैं।

एक व्यक्ति ने प्रधानमंत्री पर बड़ा कटाक्ष किया। मैंने कहा, भाई! तेरे पास एक ही तो काम था। तू उसको भी नहीं कर सका। तेरी उस बीमा कम्पनी में थोड़े ही तो व्यक्ति थे। तू उन पर नियन्त्रण नहीं रख सकता। तेरा क्या अधिकार है कि तू उन पर कटाक्ष करे, जिनके पास बहुत बड़े काम, बहुत बड़ा देश, भिन्न-भिन्न विचार और भाषायें हैं। जब इतने झंझट हों और फिर सभी प्रकार के प्रबन्ध करने हों। उनकी आलोचना वे क्यों करें, जो दीवाले निकाल देते हैं। यह तो ठीक नहीं है कि हृदय के आवेश मित्रों के आगे निकालें। यहां तो राम-नाम ही जपना है और वह भी ऐसे कि अन्य बातों का अवसर ही न मिले। मन जो छलांगें लगाता है, उसके लिये बीस हज़ार जाप, उस अवकाश के समय के लिये रखा गया है, जो नियत समय से बच जाता है। यहां साधना का

मुख्य उद्देश्य राम-नाम की आराधना है। ये हमारे श्रीराम और हम उनके, यह वृत्ति बनी रहे। इसी दृष्टि से यह साधना-सत्संग रखा गया है।

फिर यह स्थान हरिद्वार-यहां गंगा की धारा साक्षात् बहती है। यहां तिल-तिल पर समाधियों के स्थान हैं। यह तो निर्मल रखने का स्थान है। मालवीय जी को यह यश प्राप्त है कि वे नालियां बनवा गये। नहीं तो काशी जी में लोटा भरें, तो गन्दगी आ जाती।

एक बार मैं स्वर्गीय जस्टिस जियालाल जी के साथ अश्वमेघ घाट काशी में गया। वहां अनेक बार गन्दगी हटाने पर भी गन्दगी बनी रही। यहां हर्ष के साथ गंगा के साथ-साथ घूमो फिरो, जप करते रहो। इसकी विभूति को देखो। ऐसी कोई एक आध नदी होगी। यहां की पवन भी बहुत अच्छी है और संस्कार भी बहुत अच्छे हैं। ऐसा विचार आया कि साधक गंगा पर जावें। इसीलिये कुछ खुला समय रख दिया गया। फिर भी मुझे कहना है कि इस खुले समय में जितना जाप उतना ही लाभ। हमारी मुख्य साधना यहां राम-नाम की है। यहां साधकों को ऐसा अवसर ही नहीं आता कि घर की बातें सूझें।

आदमी को अवलम्बन होना चाहिये। अवलम्बन न हो, तो मन की तरंगें बहुत उछलती हैं, इसके लिये यह सब अनुष्ठान होता है। करने योग्य काम को कृत्य कहते हैं। जितने कृत्य हैं, वे आप करने के होते हैं। अन्य पुरुष से कराने की यह रीति व्यापारियों की चलाई गई है। इसीलिये तो कहा है कि 'आयन्तु नः पितः।' 'हमारे पितर आवें।' जो हमारे स्थान पर कृत्य करेगा उसके पितर तो कोई और होंगे। तो जप आदि ये सब अनुष्ठान आप करने के हैं और आप ही करने चाहियें। वकील कानून में किसी के केस को लेकर लड़े यह तो ठीक, पर ये काम जो जपादि के हैं, ये सब स्वयं करने के हैं। यहां मैंने कीर्तन को और अखण्ड जाप को भी महत्व अवश्य दिया है। अखण्ड जाप की जो प्रार्थना है, यह भी बड़ी उत्तम है।

वृद्धि आस्तिक भाव की, शुभ मंगल संचार।
अभ्युदय सद्धर्म का, राम-नाम विस्तार॥

यह बहुत ऊंची प्रार्थना है। जो यह अखण्ड जाप की प्रार्थना रखी, इसमें

आस्तिक-भाव, परमात्मा के प्रति विश्वास की वृद्धि और शुभ मंगल का संचार हो, तो अपने आप को भी सब में मिला कर, इसमें सम्मिलित कर लिया है। तो यह प्रार्थना यहां होती है।

दूसरे देशों में भी लोग प्रार्थना करते हैं। पर जो भावना इसमें दर्शाई है, वह, अन्य स्थानों पर जो भावना होती है, उनसे नीची नहीं है। हमें यहां किसी बात को समझाने के लिये युक्तियां नहीं देनी पड़तीं। युक्तियां तो संशयशील को देनी होती हैं। आप तो बड़े विश्वासी हैं। विश्वास इस मार्ग में बड़ा काम करता है। जितना प्रबल आपका प्रसारण केन्द्र होगा, उतना ही प्रबल तरंग आप भेज सकेंगे। अरब में अरबी में, फारसी में समाचार पहुंचाने के लिये फगवाड़े के पास जालंधर आकाशवाणी केन्द्र को अधिक बल देने के लिये यन्त्र लगाये हैं। वे दूर-दूर तक तरंगें भेजते हैं, जो प्रबल होती हैं। दिल्ली का प्रसारण केन्द्र भी बहुत बड़ा है। तभी दूर-दूर तक उसके समाचार सुने जा सकते हैं। तो आपकी भावना जितनी ऊँची होगी, जितना आपका चित्त विश्वास से भरा होगा, उतना ही प्रबल तरंग आप उत्पन्न कर सकेंगे। ऐसी समझ वाले कुछ साधक होने चाहियें। वे अपने हृदय को शुद्ध करें। कुछ को ऐसा बनाया जाये कि उनका तरंग प्रतिहत न होवे। दूसरा कोई रोक न सके। इसके लिये परम सत्य का होना अत्यन्त आवश्यक है। अभियन्ता (Engineer) पानी का बहाव आघात लगाकर बदलते हैं। तो संसार में भी छल, कपट, विरोध में आघात है, जो परम सत्य पर चलने वाले के मार्ग को बदलते हैं। यह सब को कहना तो बड़ा कठिन है, पर किसी को न कहें, यह भी ठीक नहीं। सत्य का उपासक होना बड़ा आवश्यक है।

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा है– 'सत्यं एवेश्वरो लोके' कि जगत् में सत्य ही ईश्वर है। यह तो गणित के समान है। गणित में एक राशि में भूल हो जाये, तो सारा बहीखाता अशुद्ध हो जाये। साधकों में एक दो ऐसे व्यक्ति तो अवश्य हुआ करें, जिनके हृदय की तरंग खूब दूर तक जाया करे और उसको खूब प्रवृत्त करे। ऐसे कुछ व्यक्ति, जिन्होंने हृदय को खूब ऊंचा उठाया हो, हम में हों।

मुख्य जो साधना है, वह राम की है। चलते-फिरते उठते-बैठते राम-नाम की साधना का भाव बनाये रखना चाहिये। खाली समय निन्दा या चुगली में ही जाया करता है, वह राम-नाम आराधन में बिताने लग जायें, तो उसका बहुत फल है। अब ऐसा बहुत लोग करने लग गये हैं। लिपिक जो ऐसा करने लग गये हैं, वे भी बहुत अच्छे हो गये हैं। अधिकारी के भी भूलग्रस्त अभियोग कम हो जाते हैं। कोई व्यापारी है, तो वह भी बहुत अच्छा रहता है। राम-नाम का आराधन कभी भी व्यवहार व्यापार में अन्तर नहीं डालता। आराधन करने वाला तो अपने कार्यों में उत्साह की झलक दिखाता है। राम-नाम की आराधना होती रहे, ऐसी परिस्थिति हमें बनानी चाहिये। श्रीराम हम सब पर कृपा करें।

साधना-सत्संग हरिद्वार,
दिनांक 20.4.1959,
समय प्रातः 11.00 बजे



साधना-सत्संग के नियमों को जीवन में बसाना

(स्वामी जी के जन्म-दिन पर)

साधना-सत्संग का अभिप्राय है– साधना करना। आसन आदि भी साधन हैं। किसी स्थान पर नियम-पूर्वक रहना भी साधना है। घर में रहते हुए यह विचार कम आता है कि समय का उपयोग किया जावे। यहां साधना-सत्संग में– हल्का खाना, जप अधिक करना, न किसी की निन्दा करना। यह बातें घर में कम होती हैं। इनको यदि घर में भी बरतें, तो उनकी जीवन में बड़ी उपयोगिता आती है।

खाना जीवन का बड़ा आवश्यक अंग है। इसको खूब अच्छी प्रकार चबाना चाहिये। अंग्रेज़ किसी बूढ़े के साथ चलता हो, तो उस बूढ़े से भी कदम मिलाकर चलेगा। नहीं तो उसके साथ नहीं चलेगा। इसी प्रकार पंक्ति में जो धीरे खाये, उसके साथ चलना चाहिये। दलिये का भी मुंह में पानी बना लेना चाहिये। आप कहेंगे कि यह बात आप ने बड़ी साधारण कही। यह है भी साधारण। परन्तु जीवन के साथ अन्याय है, शरीर के साथ अन्याय है कि आप बिना चबाकर जल्दी-जल्दी खायें। प्याज़ लाभदायक है। वैष्णवों को इसका पता नहीं। मेरे विचार से तो चबाकर न खाना, प्याज़ खाने की अपेक्षा अधिक पाप है। खाना नहीं सीखा तो जीना नहीं सीखा। इन बातों को बहुत विचारना चाहिये। मैं समझता हूँ कि जल्दी खाने वाला, संगति में थोड़ा बहुत अपराध करता है।

घरों पर जाकर नियम से उठना, जैसे अब यहाँ सब चार बजे उठते हैं। यह नियम घर पर भी क्यों न चलाया जावे ? एक मित्र ने एक बार मुझ से कहा कि अमुक सिनेमा बड़ा अच्छा है, आप चलें। किन्तु मैंने कहा कि यह

तो खाने का समय है। उसने कहा कि यह सिनेमा बड़ा अच्छा है, तो मैंने कहा कि मेरे लिये तो खाना अधिक अच्छा है। जीवन को अच्छा बनाना अपने अधीन है। जो सवेरे उठता है, उसका सारा जीवन अच्छा रहेगा। यह साधना-सत्संग में सीखो। यह मोटी बात अवश्य है, किन्तु है पालन करने की।

फिर यहां गाना भी हुआ। इसमें भी मिलकर चलना। जब दो तीन चीज़ें मिलती हैं, तो औषधि बनती है। इसी प्रकार जब सुर और ताल मिलता है, तो इस में विचित्र रस होता है। गीत भाव पैदा करने वाले होने चाहिये। ताल-शब्द हाथ की ताली से बनता है, यह चाहे ढोल पर पड़े चाहे किसी और जगह पर। जी हरेक का चाहता है कि मैं गाऊं, किन्तु मैं हरेक से गाने को नहीं कहता, क्योंकि गाने वाला भजन में नीरसता पैदा न करे। खंडित फूल तो कोई पूजा में भेंट नहीं करता। भाव देखना चाहिये, नहले पर दहले वाली बात गड़बड़ डालती है। यह भावना गाने वालों में नहीं होनी चाहिये कि उसने ऐसा गाया, तो मैं उससे बढ़ कर गाऊं। अपितु उसे चाहिये कि उसका गाना आवश्यक हो तथा तुलना स्पर्धा से रहित हो। 'हे हृषीकेश ! यह बात उचित है कि तेरी कीर्ति से जगत खुश होता है, आनन्द की लहर होती है, बड़ा मनोरंजन होता है, बड़ा हर्ष होता है, राक्षस भयभीत होकर दिशाओं को भाग जाते हैं।' जहां राम-नाम का जप हो, यह हो नहीं सकता कि प्रेत उस स्थान से कम से कम एक फर्लांग तक रह जाये। पिछली जनवरी की बात है कि मेरा एक मित्र राम-नाम को छोड़कर दूसरी जगह जाने लग गया। वह एम.ए. था। किन्तु बाद में ऐसा बेहाल हुआ कि उसे छुट्टी लेनी पड़ी। मुझे एक मित्र उसके मकान पर ले गया। उसको मैंने कहा कि न तो तू पागल, न ही कोई और बात। मैंने उसको केवल इतना ही कहा कि तू उस संगति में न बैठा कर। जब फरवरी में मैं फिर आया और उससे पूछा, तो उसने कहा कि अब बहुत ठीक हूँ। तो फिर मैंने खोलकर कहा कि वहां अमुक लोगों के साथ न बैठा करो।

औषधि में तो बल है, किन्तु यदि खान-पान में बहुत अधिक उल्लंघन किया जाये तो औषधि क्या करे? 'वहां तेरी कृपा होती है, जहां तेरा कीर्तन होता है, वहां मंगल होता है, वहां शुभ का संचार होता है।' राम-नाम का जप जहां मुक्ति देता है, वहां परिवार तक के दुःखों का नाशक है। यह बात तो आप में दृढ़ता के साथ होनी चाहिये।

साधना-सत्संग दिल्ली (प्रथम),
दिनांक 28.3.1953,
समय प्रातः 10.30 बजे

❑❑

साधना-सत्संग जीवन में नियमों का पालन

कुछ बातें ऐसी होती हैं, जो जीवन में बरतने में आयें, तब ही अच्छा होता है। यहां भारतवर्ष में ये बरतने में कम ही लाते हैं। सुननी बहुत, ऐसा समझते हैं। मैं रामायण पर बहुत बोलता था, तो लोगों ने बताया कि जोश आता। रोने भी लग जाते। यही मन में आता कि राम अच्छे, सीता अच्छी सती, लक्ष्मण बड़ा अच्छा भ्राता, किन्तु अपने जीवन में उसे बसाया नहीं, क्योंकि वीरता नहीं। जब डाकू आते रहे और एक सिरे से दूसरे तक लूटपाट और अत्याचार करते रहे, तो किसी ने रोकने का साहस नहीं किया। छोटा-सा देश है हंगरी, जिसने रूसी टैंकों का आना रोका। इसमें बच्चे भी मरे और औरतें भी। फिर स्वतंत्र भी हुए।

लोगों के कहने पर हरियाणा के इलाके में आया। चलते-चलते एड़ी घिस जाती। जूते बार-बार न लाने पड़ें, इसलिये कीलें लगवाया करता, वरना बनिया व्यापार में चमड़ी उतार लेता। रामायण और गीता सुनने की चीज है, बरतने की कम, ऐसा ये समझते हैं। मन में कह दिया, किन्तु वैसे के वैसे रहे तो यह एक त्रुटि की बात रही है। गांधी की बात में बड़ी बात यह थी कि वह इन सत्याग्रहियों को बड़ी शक्ति के सामने खड़ा करने लगा। इतने पीटे नहीं जाते थे। यह कदाचित् होता, पर थोड़ा। गांधी की लड़ाई में बन्दूक किसी स्थान पर नहीं चली। अंग्रेज़ के समय में जब लोग रास्ता रोकें, तब गोली चली, बिहार में पाँच सौ मरे। उस बनिये गांधी में वीरता थी। उसने बनियों को लोहे का बना दिया था। वह लोगों को वास्तविक जीवन में ले आया था। यह थोड़ा-सा दृष्टान्त दिया। मुझे कहना यह है कि ऐसा हुआ। गांधी जी केवल उपदेश नहीं देते थे। वे

कहते थे कि ऐसा करो। हमारा प्रयोजन तो यह है कि यहाँ सीख कर जावें। स्वच्छता-सीखने की चीज़ है। जगह स्वच्छ रखें, जहाँ-तहाँ थूकना नहीं, कपड़े स्वच्छ रखें। खांसते को देखते ही दूसरे भी खांसते। लुधियाना में पहले दिन बहुत आदमी खांसे। मुझे कहना यह है कि कई आदतें हैं– इसमें सभी–क्या गौड़ ब्राह्मण, क्या जाट, स्वच्छता का विचार अन्दर होवे। झेलम व रावलपिण्डी– वहां लोगों के कपड़े स्वच्छ होते हैं। साफ रहने की आदत होनी चाहिये। गरीब भी स्वच्छ रह सकते हैं। बम्बई में जब पहले अंग्रेज़ आया, तो उसने मुंह में लहू जैसा देखा। पूछा क्या बीमारी है ? तो पता चला कि पान खाने की आदत है। यू.पी. का आदमी कितना ही अच्छा हो। किसी के घर आप ठहर जावें, तो देखेंगे कि दीवारें पान से लाल। यह आदतें खराब हैं। पान चबाना हो, तो इसको अन्दर ले जावें। यह शिविर ऐसा नहीं कि यूं ही चलेगा। यहां सिखाया जाता है, जूठा छोड़ना नहीं चाहिये। जूठा किसी को नहीं देना चाहिये, यद्यपि कोई कितना ही अमीर हो। यहाँ नियम से जागना, नियम से आराधन हो। यहां कैद की बातें नहीं। वहां कैदी बारह साल बाद भी डाकू का डाकू बना रहता है।

यदि यहां नियमपूर्वक रहने का प्रभाव न पड़ा, फिर तो जेल जैसी ही बात हुई। बारह साल मिलिट्री में रहकर भी यह नहीं कि घर में नियमितता बरतें। नैनीताल में, लाहौर मेडीकल कॉलिज का मेरा मित्र। बाद में वह सेवा में रहा। नियम से रहता। यह तो एक जीवन है। जप की आदत होनी चाहिये और अच्छे कर्मों की भी। मुझे कहना यह है कि नियम से रहना यहां सीखना चाहिये। किसी-किसी को मस्ती भी यहाँ आती है। उसका आत्मा साक्षी दे कि मैं पहले से अच्छा हो गया हूँ। इसी साल सितम्बर के अन्तिम सप्ताह की बात है, होशियारपुर में कुछ स्त्रियाँ, जो किसी के सत्संग में जाया करती थीं, वे मेरे पास मिलने को आईं। मैंने उनसे पूछा कि तुममें से कौन-कौन नारे लगाने बाज़ार में गईं। तो फिर तुम औरतें कहां रहीं ? आदमी जब धड़ेबन्दी में आ गया, तो वह साधक कहां रहा। अपना अन्दर साक्षी दे। समय पर जगना, समय पर खाना, क्रोध पर काबू रखना, धड़ेबन्दियों की युक्तियों में फंसकर अपने आपको गन्दा नहीं करना, चाहे जमींदार के नाम से वोट देना सो देना, पर हर युक्ति में न फंसे। जितना कम दिखावा उतना अच्छा।

ईर्ष्या, द्वेष, यह पाना वह पाना, यह क्या ? हिन्दुस्तान इसलिये ऊँचा नहीं कि प्रधान-मंत्री बहुत धुरन्धर विद्वान, अपितु इसलिये कि वह किसी दूसरे में नहीं मिला, तटस्थ (Non-aligned) रहा। वह रूस की भी और अमेरिका की भी टांग के नीचे से नहीं निकला। यदि अपना वोट अमुक को दो– इसी में रहे, हमारे पास आकर सीखा क्या ? अन्त में प्रजा के हितैषी थोड़े आदमी हैं। यहां सीखना कि ईर्ष्या न हो। जो आपका मार्ग नहीं उसमें दखल न दें। न कोई राज न राजा। दुर्बल की रक्षा करना सरकार का कर्त्तव्य है। न्याय पर साधक जितना रहे, उतना ही अच्छा। मैंने आप सब भाइयों को कहा, जो यहां सत्संग में आये हैं, उन्हें इसी प्रकार नियम पर सोना, जागना चाहिये। खाली समय जो चिन्ता में व्यतीत होता है, उसे जप में लगाना चाहिये।

यज्ञ, तप, दान, यह सब तीन प्रकार के होते हैं। भोजन जो किया जाता है, वह भी तीन प्रकार का होता है। सत् गुणियों का भोजन न्यारा होता है। वह आयु, बल, बुद्धि और रुचि को बढ़ाने वाला होता है। निरोगता देने वाला, सुख देने वाला होता है। हृदय को प्रसन्न करने वाला, ऐसा भोजन सात्विक भोजन होता है। जिसमें चिकनाहट मर्यादा की हो। मर्यादा लांघ कर तो अमृत भी विष हो जाता है। रजोगुणी ऐसे भोजन को पसंद करते हैं, जो अति कड़वा, अति नमकीन, अति गरम व बहुत मसालेदार हो, जो रोग दाह पैदा करने वाले नशीले पदार्थ होते हैं। यह भोजन दुःख, शोक और रोग का देने वाला है। अधिक समय तक इनका सेवन तो आमाशय को दुर्बल बनाता है। आन्तरिक शक्ति को दुर्बल करता है। इसी प्रकार अति उष्ण-बहुत जलती चीज़ को खाने से आन्तरिक हानि होती है। विधाता ने ऐसी मशीन बनाई है, जो बोलती नहीं। पहरेदार तो हैं। वे बचपन से पहरा देते हैं। मां-बाप प्यार में डालते (अधिक खिलाते) हैं। पर इससे बुद्धि तो उसकी प्रवृत्त नहीं हुई। स्वाभाविक पहरेदार

जिव्हा है। पर जब मां ने खिलाया, पिता ने खिलाया, तो पहरेदार कहना छोड़ देगा। इसी प्रकार किसी ऑफिस का चपरासी अधिक कार्य-बोझ के कारण सुस्त हो जाता है। ये इन्द्रियां पहरेदार हैं। पहले नाक बताती है, जीभ बताती है, किन्तु बाद में, यदि इनके बताने पर ध्यान न दिया जाये, तो यह बताना छोड़ देते हैं। मीठा रस भी अन्दर पैदा होता है और खट्टा रस भी। जवानी में तो पता चलता नहीं (अनाप-शनाप खाने से), पर बुढ़ापे में इन की हानि का पता चलता है। सब नशे अन्त में दुर्बल बनाते हैं। कहना यह है, जो लोग जवानी के जोश में इसको खुरदरे रास्ते पर चलायें तो जब यौवन की दोपहर ढलने लगेगी तो यह मशीन (शरीर की) यात्री को खराब करने लगेगी। अन्दर गया हुआ भोजन निकलता कम है। ऐसे खाने से लालच पैदा होता है। तो यह मन को दुर्बल बनाने वाली है। हमारे यहां मर्यादा कम है। यूरोप में भी हरियाणा जैसे इलाके हैं (खेतीबारी के)। वहाँ लोग दीर्घायु वाले होते हैं। जो आदमी सादा रहते हैं, वे देर तक जीते हैं। पर हिन्दुस्तान में लोग चीज़ें खाते-पीते ही मरते हैं। कारण, नहीं खाना (स्टारवेशन) और खाना, तो बहुत खाना (ओवरइटिंग)। मर्यादा में सब चीज़ें होनी चाहिये। मारवाड़ के आदमी की कम आयु होती है। कोई आश्चर्य नहीं, मिर्च का बहुसेवन इसका कारण हो। मेरा एक मित्र कराची में साठ मिर्ची की सब्जी खाता था। ऐसे ही राबड़ी जिसमें बहुत ही खमीर, ठीक नहीं। आंगन में सिर्फ इतना पानी छिड़कना चाहिये, जिससे धूल जम जाये न कि इतना कि कीचड़ हो जाये। बच्चे फिसलें। ऐसे ही अधिक खाने से पेट में भी कीचड़ हो जावे।

जेलों से मर्यादा के कारण ही लोग स्वस्थ होकर निकले। लीडरों का बुरा हाल रहा। आदमी को बोध होना चाहिये। निन्दा से कभी कोई चीज़ छूटी नहीं। मैं कई हज़ार के समूह में खड़ा हुआ था। वहाँ कॉलेज के लड़के थे। उनको देखकर मन प्रसन्न होता था। उस समय हिसार में दुर्भिक्ष पड़ा था। मैं रोहतक से चला। रास्ते में दुःखी होता चला गया। यू.पी. की ओर बछड़े ही बछड़े जाते थे। अन्दर जो साहस है, वह है बल, न कि बहुत मांस। शत्रु के लिये काँटे के पेड़ बोकर, तो अपने भी पैरों में कांटे लगेंगे। जैसे खेत की बाड़ काटने वाले

को, भी कभी कभार लगती है।

तामसिक भोजन सम्बन्धी गुण-दोष– जो अज्ञानी है, हठी है, मूर्ख है, बड़ा द्रोही है और बड़ा निन्दक है, ऐसे तमोगुणी व्यक्तियों को वह भोजन प्यारा होता है, जो बहुत बासी हो अर्थात् जिसका रस बदल गया हो। तो कहना यह था कि ऐसी बहुत चीज़ें हैं, जिनमें खमीर उठता है, वे अनुकूल नहीं होतीं। जिस का रस चला गया, जिसमें दुर्गन्ध पैदा हो गई हो, ऐसा तामसिक भोजन सेवन करने वालों में क्रोध अधिक होता है। यह तो अपने आप से शत्रुता है। हिरणी भांग नहीं खाती, भेड़ तम्बाकू नहीं पीती, तो क्या वह कल्याण वाली हो गयी ? ज्ञान आना चाहिये।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 24.11.1956,
समय प्रातः 11.00 बजे

❑❑

नियमितता - 1

मैं आदर और प्रेम से सब साधकों से कहना चाहता हूँ कि आपकी यह साधना बनी रहे। अब कल हम सब अपने-अपने स्थानों को चले जावेंगे। संयम, सिमरन, सादगी आदि जो हमने यहां सीखे और सीखते हैं, वे बने रहने चाहियें।

यहां प्रातः सब उठते हैं। कोई जगाता नहीं, हिलाता नहीं। तो यह बना रहना आवश्यक है। यह बड़ा लाभदायक है। यदि यह केवल साधना-सत्संग में ही रहे, तो यह पांच दिन का समय वर्ष में ऐसे ही है जैसे कुएं में थोड़ी सी खांड। यह तो फिर पंजाबी वाली बात हुई, 'असी गीता पढ़ छड्डी है', अर्थात् पढ़ के छोड़ दी है।

अन्त में आपके परिवार के अन्य मित्र आदि सभी कहते होंगे कि सत्संग में क्या सीख कर आया है ? पत्नी यह समझे कि बड़ा सदाचारी है, सच्चा है और वचन का कठोर नहीं। इसी प्रकार पुत्र आदि भी। मित्र को भी पता हो कि झूठ का कभी पक्ष नहीं करता। बात का धनी है। ऊँचे कर्म करने वाला है। यदि आप वैसे ही हेर-फेर वाले बने रहते हैं जैसे पहले थे या दूसरे होते हैं, तो गंगाजल में रह कर वही पत्थर का पत्थर रहा, का उदाहरण आपके लिये होगा।

साधक के संगी-साथी यदि साक्षी देवें कि अच्छा है, तो अच्छा। अन्त में कांटे पर तोला जाता है। दूसरों की दृष्टि तराजू है। मेरा कहना नियम के पालन करने वालों की साक्षी से है।

लाहौर के एक सज्जन का वर्णन है कि जब वह प्रातः सैर करने जाता, तो लोग यह कहा करते कि निःसन्देह घड़ी मिला लो। वह व्यक्ति पूरे मोल का, पूरे तोल का, जिसकी साक्षी नियम के पालन करने वाले लोगों की दृष्टि की तुला में पूरी है। यदि इसमें अधूरा है, तो अधूरा।

साधक तो फूल के समान सुगन्धि देवे। बिना सुगन्ध के फूल को पसन्द नहीं किया जाता। नियमों का पालन करना चाहिये और दूसरों के नियमों में रुकावट बनने की बात को छोड़ना चाहिये। जहाँ का कार्यक्रम नहीं, वहां पर व्यर्थ नेता को रोकना ठीक नहीं। यदि ऐसे रोका जाये, तो न नियम से खाना, न नियम से पीना। फिर जहाँ का कार्यक्रम वहां तीन घन्टे देरी से पहुँचना। ऐसे नेता को रोकना, नेता की जड़ मारने की बातें हैं।

नेताओं को भी चाहिये कि वे नियमों का पालन करें। यह उनके लिये ऊँचा उठने का कारण बनेगा।

साधकों में भी सौन्दर्य इसी में है कि वे नियमों का पालन करें। नियम का पालन दूसरे देशों में अधिक किया जाता है। यह नियम का पालन ही इन लोगों के सौभाग्य के सूर्य को फिर से उदय करता है। देखिये, जर्मनी आज फिर कारखानों से भरपूर है। जब एक जर्मन से प्रश्न किया गया कि कैसे तुमने नष्ट-भ्रष्ट होने के बाद भी, बिना अच्छी आर्थिक अवस्था के, इतना शीघ्र अपने देश में कारखाने चालू कर लिये ? उसने उत्तर दिया कि हम जीना चाहते थे, लोग तो जीवित थे, जो कुछ जिसके पास था, वह लेकर सब जुट गये। पुरानी मशीनों को जोड़-जोड़ कर काम शुरु किया गया और नई मशीनें तक बन गईं।

मनुष्य को जीवन बनाना आवश्यक है। मुझे पण्डित नेकीराम जी ने कहा कि आपके मिलने वाले जेल में भी भक्ति-प्रकाश आदि पढ़ते थे। जिससे जेलर भी प्रसन्न, सुविधायें भी बहुत और बहुत लोग इकट्ठे होते थे। (यह चौ. मेहर सिंह, सोहनलाल, गोवर्धनदास की बात है जब वे सत्याग्रह के कारण दिल्ली जेल में थे)।

साधनशील जिसका जीवन हो, वह व्यक्ति पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और भक्ति-मार्ग सभी में बहुत अच्छा रहेगा। वरना लाला के लड़के जैसा होगा। लाला बराँडे की दीवार बनवाता, लड़का शाम को तोड़ देता। लाला राजों (मिस्त्रियों)से बिगड़ता, किन्तु राज (मिस्त्री) उत्तर देते कि हम तो दिन में बनाते हैं, शाम को लड़का साफ़ कर देता है। कहना यह है कि आपने यहां नियम बनाये और घर जा कर तोड़ दिये, तो इसका तो परिणाम शून्य। नियम को तो

सदा रखना चाहिये। यदि आप नित्य करते रहेंगे, तो बड़े लाभ होंगे। यह तो स्पष्ट है कि इससे मनुष्य सन्तोषी हो जाता है।

बनावटी भूख अपने आप में पैदा नहीं करनी चाहिये। पदार्थों की बनावटी बाज़ारी भूख की तृप्ति, यदि सारा संसार भी आग में पड़ जावे तो भी नहीं हो सकती। राम-भक्त आलसी, दरिद्री नहीं होता। अच्छे साधकों की यह बनावटी भूख समाप्त हो जाती है।

सन्तोष न हुआ तो पहले न जाने कैसे कमाया और फिर भी टैक्सों के समय सरकार को कोसना, न्याय से परे जाना है। हम अनाचार करते हैं और फिर यदि सरकार का हाथ पड़ जाये, तो फिर उसको बदलना चाहते हैं। वे जो सिफ़ारिशी, अनाचारी की सिफ़ारिश करते हैं कहते हैं– भई जाना ही होगा, वोट जो लेना है। वे सिफ़ारिशी तो न्याय पर अपने बूटों की मेखें रखते हैं। साधक में यह दोष कम आना चाहिये। जो होना होगा, हो जावेगा।

साधक तो अपने किये को भगवान की दृष्टि में जाँचता रहता है। अमीर और गरीब दोनों श्रेणियों के नाम जाप करने वाले अच्छे रहते हैं। यह हम देखते हैं कि संसार में रहते हुए, उन्हें सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

भक्ति भी जिस जीवन में हम हैं, उसी में देखनी चाहिये। तो भाइयो! यह सत्संग का भाग समाप्त होता है। मैं समझता हूँ कि यह जो सम्पत्ति आपने यहां इकट्ठी की है, वह आपके साथ जायेगी। ऐसी मैं भावना रखता हूँ। यही मेरी आशा है और राम ऐसा ही करेंगे।

थोड़ी देर चुप रहकर महाराज ने फिर कहा– अब शाम को आखिरी बैठक में भजन कम और खुला कीर्तन होगा। तो दिल खोल कर करें। मैं यहां बैठा हूँ। कोई मरता तो है नहीं। यदि कोई वहां रह भी जाये, तो यह भी शारीरिक नींद है। चिंतन चलता रहे, पर शारीरिक नींद तो है। कोई उसे लाने न जाये।

साधना-सत्संग देवत-नांगल,
दिनांक 30.12.1953,
समय 3.00 बजे



नियमितता-2

हिन्दी भाषा का ही प्रयोग करना चाहिये। अंग्रेज़ी को अन्ततः यहाँ से जाना है। चाहे दस या बीस वर्ष में जाये। युग बदल रहा है। अब हिन्दी का युग आना है। मैं इतना कहना चाहता हूँ कि इसको हम साधना-सत्संग कहते हैं। उर्दू भाषा पंजाब प्रान्त में चलती थी, इसके कारण वहाँ के लोगों का बुरा हाल हो रहा है। वे लोग रेडियो भाषा को भी बड़ा कड़ा बताते हैं। उसमें केवल मिडिल तक की हिन्दी ही आती है। जिन्होंने मिडिल तक भी नहीं पढ़ी, वह हिन्दी पर छिद्रान्वेषण का क्या अधिकार रखते हैं ? वे हिन्दुओं में एकता नहीं आने देते। अब हिन्दुओं का बिखरना उन ही के कारण है। वे तो पक्के सौदेबाज हैं। हिन्दुओं को वह मार्ग सुझाते हैं कि दिनों-दिन हिन्दी कम-कम होती जावे। इससे कम और क्या होगी ? एक पंजाबी स्त्री आई, वह कहने लगी, साडा इत्थै कैम्प लगना है। यह कैम्प कहना छोड़ना चाहिये। यह तो साधना-सत्संग है। हमें कैम्प शब्द के स्थान पर साधना-सत्संग का प्रयोग करना चाहिये।

साधक-साधिकायें जो यहां एकत्रित हुए हैं, उनको यह सोचना चाहिये कि हमारी मनोवृत्ति ऐसी बने कि हम में राम-नाम बसे। हमें यही सीखना है। इसी में सत्संग की महिमा है।

दूसरी बात सीखने की है, नियमित जीवन। जीवन नियम के अनुसार चलाना सीखना चाहिये। सरकारी नौकर बड़े नियमित होते हैं। अधिकारी, कर्मचारी, कचहरी में समय पर जाते हैं। सबेरे साढ़े नौ बजे अजमेरी गेट पर देखो, साइकलों की गंगा, मनुष्य की नदी, वह दफ्तर का समय इस प्रकार छः दिन तो बड़े नियम से चलते हैं। पर जब रविवार आया तो पेटी खोल दी। इस दिन जितनी अनियमितता हो सकती है,करेंगे। हजामत भी देर से, रोटी भी देर से। मुझे कहना यह है कि रविवार को सब काम अनियमित हो जाते हैं। यह बुरी बात है। यदि सरकार उनको अनुमति दे, तो वे बारह

बजे दफ्तर लगावें और ढाई बजे बन्द करें। अंग्रेज़ हॉलीडे हो, तो उस दिन भी उसी समय खाना (नित्य की भाँति) और गिरजाघर से भी कदम मिलाकर निकलते हैं और यहाँ (भारतीय लोग) सब काम ढीले-ढाले करते हैं। छः दिन का नियमित जीवन, सातवां दिन उनके (अंग्रेज़ों के) जीवन में अनियमितता नहीं ला सकता। मुझे निवेदन यह करना है कि नियमितता सीखनी चाहिये, और भी यहां जितना रहना-सहना है, यह जीवन में लाना चाहिये। यह स्वास्थ्य की कुंजी है। समय पर खाने वाले के शारीरिक अंग भी नियमपूर्वक समय पर काम करने लगते हैं। समय पर भूख लगने लगती है। इस प्रकार रस ठीक बनता है। समय पर नींद खुलने लगती है। स्वास्थ्य भी सुन्दर बनता है। पर यह श्रीमान मनुष्य बड़ा अनियमित है। प्रकृति को दबाता है। रक्त यदि हमारे कहने से बहने लगे, तो हम कहेंगे कि इधर ज़्यादा बहना चाहिये। वह तो भगवान के आदेश से बहता है। अन्यथा ये तो कहेंगे कि इसको भी ज़रा आराम मिलना चाहिये। या किसी अन्य प्रकार से गति को बन्द या खराब करके हटें।

विशेष जागृति वाले पुरुष के साथ अर्थात् जगे हुए अन्तःकरण वाले के साथ सत्संग करे, तो उन्नति निश्चित होती है। जितनी जागृति वाला साधक होता है, उतना ही उसका भाव–स्पन्दन दूर-दूर तक प्रभाव डालता है। इसलिये सामूहिक सत्संग की आवश्यकता है।

प्रकृति जो है वह नियम से रहना सिखाती है। प्रकृति में नियम है। ज्यों ही आपके फेफड़ों में अनियमितता आई और आप अस्पताल में गये। अनियमितता आने पर मृत्यु की आशंका हो जाती है। यह शारीरिक यंत्र प्राकृतिक रूप से व्यवहार कर रहा है, किन्तु हम लोग अनियमितता लादते हैं, क्योंकि आलस्यमयी वृत्ति से विवश हैं। ये संस्कार हमने अपना लिये हैं। जिनसे अंतड़ियों में और फेफड़ों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। हमें नियम कठोरता से पालन करना सीखना है। कपड़े चुस्त हों, ढीले न हों। जिससे काम-काज में बाधा न हो। इसी प्रकार साधकों को भी घण्टी बजने पर उपस्थित होना आवश्यक है। नियम का जीवन यहाँ सिखाया जाता है। यहाँ जो नियमपूर्वक रहने का कड़वापन है, वह सिखाने के निमित्त है। सादापन

भी बहुत अच्छा है। जो नौकर बहुत रखते हैं, वे आदमी आलसी होते हैं। यहां का भोजन स्वास्थ्य के लिये बहुत अच्छा है। भोजन सादा होना चाहिये। पर चाटें (चाट मसाले) इसमें नहीं। मसालों से पौष्टिकता नहीं आती। मसालों से दिमाग की नसें कोई तेज हो जाती हैं, ऐसा किसी डाक्टर ने अथवा किसी बुद्धिमान ने नहीं कहा है। रस भी होना चाहिये। शास्त्रीय भाषा में इसके लिये नमक है। ग्वालियर वाले हींग का तड़का भी लगाते हैं। वह अपने ढंग से। वह भी सादा, घी भी इस प्रकार कम। यहां दूध ज़रा अधिक देते हैं। मेरे विचार में अधिक दूध की आवश्यकता भी नहीं है। खराब अशुद्ध, पानी मिला हुआ दूध फिर क्यों पीना, आधा सेर से क्या अधिक? चन्द एक अधिक खा जावें, तो क्या मतलब? आहार अल्प हो, अधिक भार बढ़ाने के लिये लोग अधिक भोजन करते हैं, किन्तु आध्यात्मिक सत्संगी को नियमित भोजन करना चाहिये।

बदन पोंछने का तौलिया, मैं मैला देखूं, तो आपत्ति करता हूँ। प्रतिदिन मैल निकाले, तो निकल जावे। किन्तु पाँच दिन का मैला हो जावे, तो निकालना कठिन है। जहाँ-तहाँ थूकना नहीं चाहिये। पुरुषार्थ आवश्यक है। मैंने एक को कहा, तुम्हारी धोती मैली है। उसने कहा कि प्रतिदिन धोता हूँ। पर धोना तो वह है कि वह चिट्टी हो।

सफाई सीखने की चीज़ है। यहां दस लाख वाले का घर भी उतना साफ नहीं, जितना मराठा स्त्री अपने घर को साफ रखती है। मराठा गरीब हो तो भी उसकी स्त्री मंदिर से अधिक घर को साफ रखे। मद्रास में रेस्टोरेन्ट्स साफ सुथरे होते हैं, किन्तु पंजाबी होटल गन्दगी का घर होते हैं। तो मुझे कहना यह है कि स्वच्छता की वृत्ति होनी चाहिये। मैं तो यह जानूं कि जिसका अन्दर साफ होगा, वह बाहर को भी साफ बनायेगा। आध्यात्मिक सत्संग में बाहर-भीतर दोनों साफ रहते हैं। बाहर से कुवेश बनाये रहने वाले अन्दर से भी निर्मल होंगे, यह भावना समझ में नहीं आती। पहले होशियारपुर में साधना-सत्संग लगाये, तो लोग आते थे, ढीले-ढाले। फिर बाद में तेज़ी से चलने लगे। उन दिनों मैं भी बहुत तेज़ चला करता था। मैं नैनीताल में गया, सन् 1941 में, तो देखा करता, गढ़वाली जो भरती

हुआ वह कैसे और दफ्तरी कैसे चला करे ? लाहौर में लड़कों को देखता। यह भी देखता हिन्दू कैसे चले और मुसलमान कैसे ? यह साधना-सत्संग का प्रयोजन वर्णन किया। मैं किसी को सत्संग में सम्मिलित होने के लिये न भी करता हूँ, तो इन्हीं बातों के कारण। बीमारी का भी विचार करता हूँ कि बीमार व्यक्ति न आये। मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि बिना बीमारी के भी बीमारी के ठाठ बनाये रखना। निरोग होते हुए भी बीमारों की भाँति ढीला-ढाला रहना। बरताने वाले कैसे हों ? एक बार साधना-सत्संग में बरताते समय एक की धोती लटक रही थी। मैंने कहा, वह बरताने वालों में से निकल जावे। वह फिर आया भी नहीं। आगे वह आया, तो पायजामा डालकर।

साधना-सत्संग हरिद्वार
दिनांक-11.4.1957
समय प्रातः 11.00 बजे
□□

साधना-सत्संग जीवन में एक शुभ-संस्कार

आज घण्टी थोड़ी देर पहले बजी, तो बातचीत चली, स्वामी जी ने कहा– 'पण्डित लक्ष्मीदत्त क्या हाल है ?' उत्तर– 'कृपा है महाराज'। 'चौधरी सवेरे दलिया खाया कि नहीं', उत्तर– 'हाँ, महाराज'। 'भाई चेहरा तो कुछ ढीला सा' कहकहा। 'ब्राह्मण और जाट की जाति में जन्म लेने का बड़ा लाभ– चाहे संस्कृत आये चाहे अनपढ़, पर ब्राह्मण के घर तो पण्डित कहलाये और जाट के घर तो चौधरी' कहकहा।

आप लोग यहां एकत्रित हुए हैं। इसमें अधिक तो राम-नाम जाप ही है। बीस हज़ार जाप प्रतिदिन करते हो। फिर अखण्ड जाप में और ध्यान के समय में भी। अधिक जाप करने से नाम बस जाता है। संस्कार इसका प्रबल होता है। बार-बार के अभ्यास का बड़ा लाभ होता है। संस्कार बहुत अच्छे बनते हैं। मनुष्य संस्कारों का ही बना हुआ है। जैसे शब्द सुने, जैसे कहे, जैसे पढ़े, वह इन्हीं से प्रवृत्त होता है और वही फिर उद्‌भूत होते हैं। वैसा ही वह बन जाता है। रिकार्ड जो भरे जाते हैं, वही फिर उनमें से उद्‌भव होता है। इसी प्रकार मनुष्य के जैसे संस्कार, वैसे ही उद्‌भूत होते हैं। अच्छे शब्द और गीतों का रिकार्ड है तो फिर उससे वही निकले।

साधना-सत्संग में भजन, पाठ, कीर्तन का लक्ष्य–अपने संस्कार अच्छे बनाना है। अन्तःकरण ऐसा हो जावे कि इसमें राम-नाम बसा हुआ हो और वह अपने आप स्फुरित हो। हमारे इन सत्संगों में बहुत लोग ऐसे हैं, जो बैठें तो नाम उनमें स्फुरित हो जाता है। आप समझो कि हमें इसी समय पर लाभ हो और फिर वह ऐसा ही बना रहे। दो मन होते हैं– आन्तरिक मन और व्यवहारिक मन। व्यवहारिक मन ऐसा जैसे दूध पर उफान। पर इन उफानों में हवा भरी होती है। दूध वास्तव में इतना नहीं होता, जितना फूल कर उफान

आने पर दिखाई पड़ता है। तो व्यवहारिक मन, इस प्रकार से उफान-अहंकार का, शत्रुता का, आदि। अब आदमी आराधना भी करे, लाभ भी हो, संस्कार भी बनें, और फिर वही काम करने लग जावे, तो इससे व्यवहारिक मन प्रबल हो जाता है। इसमें झूठ, स्वार्थ, विरोध, शत्रुता आ जाते हैं। भलाई जो संचित की थी, वह दब जाती है। यह समझना चाहिये कि अपना संस्कार ऐसा प्रबल करो कि वह व्यवहारिक मन को वश में कर ले।

यहां साधना की और फिर जाकर वैसे के वैसे हो गये, तो यह परिश्रम की हुई बात दब जावे। संस्कार तो रहेगा। यहां जो आप संस्कार बनायें वह इतना प्रभावी हो, प्रबल हो कि आपके व्यवहार में भी काम करे। यह क्या, रिश्तेदार ने कहा कि आपके झूठी गवाही देने से मेरा काम बन जायेगा, और आप मान गये, यह तो अन्याय हुआ और समझा जाये कि मन गिर गया। यह व्यवहारिक मन प्रभावी हो गया। इस प्रकार बुराइयां फैलतीं हैं। यह ऐसे होता है कि व्यक्ति तृप्त है– फिर मित्र कहे यह पेड़ा है, एक तो ले लो। आप ने पहले तो कहा न–फिर कहा चलो अच्छा ले लेता हूँ, यह साधारण बात, पर इस प्रकार से झूठ बस जाता है और कमाई हुई मन की आन्तरिक वृत्ति चली जाती है। इस व्यवहार को जहां तक हो सके शुद्ध करें। नहीं तो खेती पकने लगी और आप इसमें डंगर(पशु) छोड़ दें, फिर तो वह बीज डालने का, हल का, गोड़ी (खुदाई)का, सब परिश्रम बेकार। जो कभी हमने भलाई की खेती लगाई, उसको अपने आप ही नष्ट किया। ऐसा पक्का हो जावे जैसे हांसी का रहने वाला, एक वैश्य, हरिद्वार में बारह हज़ार लोगों में पुकारा जावे, तो दौड़ कर आये। या जब कभी विचार करे कि तुम कौन हो ? तो उसको यही विचार आये कि मैं वैश्य लोग नाम बदल भी लेते है। स्कूल में अपना नाम बदल लेने पर भी बोध बना रहता है। नाम जो रखा गया, वह इतना आद ी में रस जाता कि प्रोफेसर जब कहे रामप्रकाश आओ, तो रामप्रकाश सब में से निकल कर दौड़ कर आता है।

क्रिया और नाम दो ही हैं। इन दो में ही सब ज्ञान ओत-प्रोत है। आठ वर्ष के लड़के में नाम इतना प्रवृत्त हो गया कि वह शिक्षक के पुकारने पर सब लड़कों में से आ जाता है। इसी प्रकार संस्कार भी प्रबल होवे। फिर नास्तिक भी

मिले, खेल-तमाशा वाले भी, इनकी संगति में साधना जो की थी, वह रुल न जावे। बारह साल बैठकें करे, पहलवान दण्ड निकाले और फिर एक ही दांव में चित हो जावे, तो सारी पहलवानी राख में। इतना जप करते रहे, साधना में आते रहे, पर फिर भी थोड़ी-सी बात पर उबल गये, तो यह साधना किस बात की ? वहां शान्त रहे।

सत्य और न्यायशीलता बनी रहे। पक्षपात करने पर न्याय नहीं रहता। न्याय न रहने से आत्मा में जो बल आता है, वह नहीं रहता। यह साधारण बातें हैं, पर साधनशील में होनी चाहियें। जो इन को जीते न, वह कोई ऐसा पहलवान नहीं। नास्तिक भी ऊंचे हो जाते हैं। यह तो दुर्बलता है कि इतनी साधना करके भी गिर जावे, तो क्या बात हुई ? राग-द्वेष से ऊपर उठना कठिन बात है और कठिन नहीं भी है। कठिन इसलिये नहीं कि बहुत साधारण बात है। कोई कष्ट नहीं होता। एक हत्या करता है। उसके रिश्तेदार और मिलने-जुलने वालों का चार सौ-पाँच सौ का चक्कर। वे सब उसके अपराध को छुपाने की चेष्टा करते हैं। पैप्सू के डाकुओं के सिलसिले की बात– मिनिस्टर उनकी सहायता करते थे। डाके पड़ा करें और वे छूट जाया करें। झूठी गवाही बहुत प्रचलित थी। तो केन्द्रीय सरकार ने उन डाकुओं से निपटने के लिये एक मद्रासी नियुक्त किया। उसने पूछा, तो अफसरों ने कहा कि पकड़ते भी हैं, पर छूट जाते हैं। उसने कहा तुम पकड़ो ही नहीं, देखते ही गोली मार दो। मुकाबला किया न किया।

हरियाणा में भी इसी प्रकार एक बार शोर– पुलिस-राज, पुलिस-राज। वे परिस्थिति को नहीं देखते। किन्तु यदि पुलिस सख्ती न करती, तो दो-चार महीने में डाकू, सज्जन लोगों का रहना कठिन कर देते। लोग कहते कि पुलिस ने स्त्रियों को भी कहा कि तलाशी दो। यह बात तो होती ही है। अन्ततः जो औरतें डाकुओं को रोटी और सुरक्षा देतीं, उनकी तलाशी तो लेनी ही थी। लोग न्याय से नहीं सोचते। आदमी न्याय में रहने की चेष्टा करे। अन्याय बहुत बसा हुआ है।

यहां आप एकत्रित होकर बातें बहुत करते हैं। प्राप्त की हुई साधना को खोयें न। पूँजी को फेंक न दें। साधक में यह बात आनी चाहिये। यह बातें रहें तो

ठीक, नहीं तो गिर गये, तो कुछ नहीं। जिमनास्टिक में आसन सीखे तो जब चाहे उसी प्रकार कर सकें। जब पढ़ गये तो इच्छानुसार शब्द बोल सकें। परन्तु हो सकता है कि दूसरी नई-नई बोलियां सीखते समय अपनी पढ़ी हुई बोली भी भूल जावे। वह संस्कार की क्रिया, स्वार्थ की क्रिया से आप उठा न देवें। तभी यह साधना फलवती होती है। नहीं तो संस्कार कुछ न कुछ बने ही रहते हैं। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि साधना को आप अन्य सब बातों से ऊपर रखें। ऐसा करने से साधना फलवती होगी।

यदि ऐसा न किया तो फिर इतनी बात नहीं होगी। हां, फिर भी यहां की हुई साधना का शुभ संस्कार तो रहेगा ही। जैसे केसर की बोतल में सुगंध तो रह ही जाती है, इसी प्रकार दवाई की बोतल में भी दवाई की सुगंध रह जाती है। पर यदि कॉर्क खोलकर रख देवें तो इससे सुगंध उड़ भी जावेगी। ऐसे ही जब अपने अन्दर से वह संस्कार निकाल देवें, तो यहां की हुई साधना का वह संस्कार जा भी सकता है। सब चीज़ों में पक्का मन हो। दृढ़ व्रत का हमारे में बहुत आदर है। वह आदमी किस काम का जिस ने व्रत लिया कि मैं पत्नी-व्रत हूँ और वह बाज़ार में इधर-उधर अन्य स्त्रियों को देखता फिरे। वह स्त्री भी बुरी जो अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरुषों की ओर देखती फिरे। मैं दोनों ही को बुरा समझता हूँ। प्रायः लोग स्त्री को ही दोष देते हैं। पुरुष के लिये तो बहुत लोग यह भी उचित समझते हैं कि तीसरी पत्नी मरी तो भी वह चौथी शादी किसी लड़की से करे। यदि ऐसा कोई करे तो मैं इसे खराब और महा-खराब समझता हूँ। यह तो व्रत के माहात्म्य को न समझना है। अपनी एक रेल की यात्रा में एक इंजीनियर मिल गया। उस डिब्बे में हम दो ही थे। वह बड़ा हैरान-सा था। बार-बार बेचैनी प्रकट करे। मैंने पूछ लिया, तो आंखें भी भर लाया। उसको रोग लगा था। कारण, मकान में एक अन्य पुरुष रहता था। उससे वह रोग उसके घर में आया। यह भी पता लग गया। अब मेरा क्या होना चाहिये, इस प्रकार दुखिया रहता हूँ। अब आदमी ऐसी स्थिति में क्या बताये? निकाल दे पत्नी को, यह कहना भी बड़ा कठिन। मुझ पर इतना विश्वास कि घरेलू बात प्रकट की, यद्यपि पहले से परिचय नहीं था। मैंने कहा, वह आगे को क्या

कहती है? तो उसने बताया, कहती है कि भूल हो गई। आगे अच्छी रहूंगी। मैंने कहा कि तुम क्या समझते हो? उसने कहा, मैं समझता हूँ वह ठीक कहती है। मैंने कहा, यदि तुझे कभी विचार नहीं आया फिर तो ठीक है। यदि तुम ने विचारों में कभी लाया तो फिर इतना बेचैन नहीं होना। समझो अब से दवा शुरु।

जाट घर में यदि कोई पलटन में मर जावे, तो उसकी पत्नी का विवाह उसके दूसरे भाई आदि से करने की प्रथा है। पर यदि बनिया, ब्राह्मण के घर में, चाहे बारह वर्ष की आयु में कोई लड़की विधवा हो जावे, तो उस बेचारी को अपना सारा जीवन रो-रो कर वैधव्य में ही काटना पड़ता है।

मेरा कहने का अभिप्राय यह है कि अपनी पत्नी की पर-पुरुष से अवैध नाते की बात उस इंजीनियर के मन में बस गई थी। यह स्मरण करके उसी समय मुखड़ा उस का बदल गया। अब उस अवैध सम्बन्ध से उत्पन्न लड़के को देख कर उस को यह बात स्मरण हो आती। उसका गिला करना भी ठीक, जो स्वयं न्याय पर स्थिर रहा हो। मैंने उसे कहा कि तुम साफ रहे हो जो फिसले नहीं, कीचड़ में कूदे नहीं। दूसरे का कुकृत्य विचार कर क्यों दुःखी होते हो? बाद में उसने अपने जीवन को ठीक बनाया।

पक्का रहना चाहिये। दो बातें नहीं होतीं कि भगवान की बात भी रहे और आसुरी वृत्ति भी। आश्चर्य भी होता है कि बहुत फिसल जाते हैं, पर बहुत बच भी जाते हैं।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 25.11.1958,
समय प्रातः 11.00 बजे



राम-नाम आराधना

साधना को जीवन में उतारना चाहिये। इसे जीवन का अंग बनायें। साधना से जीवन में बहुत-सी अच्छी बातें जम जाती हैं, जिससे कल्याण हो जाता है। पांच-रात्रि के साधना-सत्संग को जीवन में लाना चाहिये। शिष्टाचार तथा सत्य-पालन, व्यवहार मीठा और सत्य होना चाहिये। स्वच्छ रहना चाहिये। प्रातः चार बजे उठकर दातुन-कुल्ला करके अल्प व्यायाम करना चाहिये। भगवान का भाव-चाव से भजन करना चाहिये, न जाने कब भगवान का पावन नाम बस जाये और आपके आत्मा का कल्याण हो जाये, यह संभावित है। इसमें ज़रा भी असत्य नहीं है।

साधना को स्वभाव में लाना चाहिये। स्वभाव तो वह है, जो सदैव सिर पर सवार रहे। मनुष्य अपनी आदतों का ही पुतला है। आदतें पुरानी होकर जीवन का अंग बन जाती हैं। आदतें दृढ़ हो जाती हैं। बुरी-भली सभी प्रकार की आदतें धीरे-धीरे बना करती हैं। जप करने की आदत डालनी चाहिये। प्रतीक्षा इत्यादि करने जैसे अवसरों पर, ऐसी आदत वाले व्यक्तियों को बड़ी सुगमता हो जाती है। अनेक लोगों को नींद भी नहीं आती, लोग दवाइयां आदि लेते हैं। वे ऐसी आदत डालें, तो बड़ा लाभ होता है। व्यक्ति को भावना भी बड़ा बल देती है। भगवान की कृपा पर पूरा भरोसा, विश्वास रखकर ऐसा करने से बड़ा ही लाभ होता है। भगवान की कृपा पर विश्वास होना चाहिये। भगवान को सर्वशक्तिमान मानकर यह समझना चाहिये कि वह सर्वत्र विद्यमान है। आराधना में दृढ़ निश्चय होना चाहिये। इससे दोनों ही लाभ होते हैं– ऐहिक तथा पारलौकिक। जब एक वाटिका लगाई जाती है, तो फल-फूल तो उत्पन्न होते ही हैं, किन्तु बैलों का भोजन भी स्वयमेव उत्पन्न हो जाता है। राम-नाम की आराधना में सभी भोग भी स्वयमेव प्राप्त होते रहते हैं। कष्ट मिटते रहते हैं। इस प्रकार आराधना का अभ्यास बना लेना चाहिये।

साधना का स्वभाव बनाना चाहिये। जो राम-नाम की आराधना करेंगे और खूब करेंगे, तो मन अपने आप टिक जावेगा। मस्तिष्क में ऐंठन होते हुए नींद नहीं आती। शरीर में भी ऐंठन न हो। जो विचारों को रोकने के लिये विचार करते हैं, वे गलती करते हैं, चाहिये तो यह कि जो विचार आते हैं, उनकी उपेक्षा करना और अपनी आराधना जारी रखें।

चारपाई पर पड़ते ही स्वभावानुसार नींद आयेगी, क्योंकि तनाव दूर हो जायेगा, किन्तु सिनेमा आदि के चित्रमय संस्कार लिये दिमाग में ऐंठन होगी, तो नींद नहीं आयेगी। अंदर के अव्यय नियम पालन से सध जाते हैं। समय पर माँग पूरी न करने पर उनकी पुकार बंद हो जाती है। नियम-पालन पर समय पर मांग होती है। खट्टे, मीठे, मसालेदार पदार्थ खाने से पाचन-शक्ति बिगड़ती है। आपकी अपनी शक्तियां बिगड़ती हैं। हर चीज़ का स्वभाव बनाना चाहिये। ऐसे ही भजन-पाठ का स्वभाव बनायें और नियत समय पर करेंगे, तो वृत्ति एकाग्र हो जायेगी। राम-नाम आराधना करने का स्वभाव बनाना चाहिये। इसका महत्व समझना चाहिये।

अनेक आश्रम तो चुंगी वसूली के लिये हैं, मानो मछली फंसाने के लिये जाल बिछा रखा है। श्रीकृष्णकांत मालवीय ने कहा कि नाम-जप से अनेक रोग मिट गये हैं। अभयदेव जी को हरिद्वार में बुलाकर दीक्षा दी, उन्हें तन से बाहर होना प्रतीत हुआ। स्वभाव से रस आता है। अभ्यास से इंद्रियाँ भी वैसी ही बन जाती हैं। राम-नाम का अभ्यास मन-बुद्धि को तद्रूप बना देता है। मन और बुद्धि अलग-अलग नहीं हैं, यही चेतन-शक्ति है। चंचलता और वैराग्य के लिये राम-नाम का अभ्यास है। साधना से एकाग्रता प्राप्त होती है। यह अनुभव बहुत संतों, महंतों तथा भक्तों का है। इसमें बहुत चित्त लगाना चाहिये और साधना में तत्पर होना चाहिये।

अपनी वृत्तियाँ भगवताकार बनायें, यह सुंदर बात है। दिन में जो बातें संस्कार द्वारा मस्तिष्क में रहती हैं, रात को वे ही संस्कार चित्त में स्फुरित

होते हैं।

श्री अधिष्ठान में स्वास्तिक चिन्ह है, जिसका शुभ कार्य में प्रयोग होता है। यह विदेशों में भी रहा है। यह मांगलिक भावना का द्योतक है। इसमें परमात्मा की बहुत बड़ी व्याख्या है– ''सर्वशक्तिमते परमात्मने श्री रामाय नमः''। सूर्य प्रकाश को प्रकट करता है। यह सारे विश्व का ज्योति स्थान और जीवन का स्थान है। ज्योति स्वरूप सर्वशक्तिमान भगवान राम है। ऐसी भावना रखके श्री अधिष्ठान के सम्मुख बैठें, तो अनेक लाभ हैं। साधना से प्राप्त अनुभवों को बहुत कहते फिरना अच्छा नहीं है। स्वरूपों का चिन्ह रेखांकन करना अपमानजनक है। ये स्वरूप भगवान के संकल्प से आते हैं, किसी की कल्पना से नहीं। ये आध्यात्मिक स्वरूप अन्तर्चक्षु (mental eye) से दिखते हैं। जिन साधकों को ये स्वरूप आसानी से प्राप्त हो जाते हैं, वे उनका आदर नहीं करते। स्वरूपों का दर्शन होना दुर्लभ होता है। साधकों को इनका आदर करना चाहिये। निरादर करने से वे फिर आते नहीं। अपनी पाचन-शक्ति को तेज करने के लिये पेट पर राम-नाम लेते हुए हाथ फेरो। किसी मंत्र को दस हज़ार बार जपने से वह सिद्ध हो जाता है। भगवान को किसी आसन विशेष की आवश्यकता नहीं। जिस किसी आसन में हो, भगवान की गोद में समझो।

एक लड़की को सांप के काटने पर उससे बचने के लिये भगवत्-वाक्य स्फुरित हुए। अंतःकरण शुद्ध होने पर ये स्फुरण होते हैं।

साधना-सत्संग में सावधान, चैतन्य, उद्यमी, साहसी व्यक्ति आना चाहिये। नास्तिक न आ जाये, इसका ध्यान रखें।

यहां भक्ति में जो मस्ती आती है, वो शराब से नहीं आती। यह मस्ती मठ आदि स्थानों में नहीं आती। भक्ति-भाव से सदाचारपूर्वक जो रहते हैं, उनमें यह भाव जगते हैं।

कबीर ने 'मन मस्त हुआ तब क्यों बोले' यह ठीक कहा है। 'सुरति कलारी भई मतवारी, मधआ पी गई बिन तोले'। इस कला को बनाये रखना चाहिये। तंत्र-ग्रन्थों में तो इन अवस्थाओं की बड़ी प्रशंसा की गई है। अपनी धारणा और

श्रम के अनुसार लोगों को अनुभव होते हैं।

'चिंतामणि चित्त चिंतन पूरक' पाठ करने से चिंता दूर हो जाती है। यह चेकोस्लोवाकिया के एक विद्यार्थी ने मुझे लिखा।

साधक मान-सम्मान आदि के भाव को हटाकर भक्ति-भाव से तालियाँ बजाये, तो उसमें भक्ति-भाव उछलने लगेगा। बाहरी बंधन ढीले करने चाहिये। फिर यह हो नहीं सकता कि उसमें कृपा अवतरित न हो।

साधना-सत्संग ग्वालियर,
दिनांक 5 - 8.11.1959
प्रातः 11.00 बजे

□□

साधना-सत्संग के नियमों का दूसरों में भी संचार करें

साधना-सत्संग में कोई बहुत तो बंधन नहीं--पर किसी-किसी बात का बंधन है। वास्तविक प्रयोजन है कि साधक अनुशासनपूर्वक रहे और भजन-पाठ में निपुण हो। कई और प्रकार के भी शिविर होते हैं। वहां भी सिखाते हैं जो एकत्रित हों, उनको यह शिक्षण मिले कि कैसे अनुशासन का पालन करें ? यही हमारा प्रयोजन है कि जो इस सत्संग में सम्मिलित हों, वे सुशिक्षित हों कि जीवन को कैसा बनाया जावे। तो यही बात आप लक्ष्य में रखें कि जो कुछ आप यहां सीखें उसे घर जाकर भी बनाये रखें। जप आदि के अभ्यास को भी बनाये रखें। नियम से यहां रहते हैं, तो वहां घर पर भी जीवन में नियम का पालन करें। अपने मित्रों आदि में भी राम-नाम की प्रीति फैलायें। साधना-सत्संग का जो प्रयोजन है, उद्देश्य है वह तभी सिद्ध होवे जब कि भावना वाले लोग आवें--रोगी न आवें और बालक और वृद्ध भी न आवें। यदि छांटें नहीं, तो दूसरे स्थानों पर संख्या भी अधिक हो जावे। हरिद्वार साधना-सत्संग में बड़ी सावधानी से प्रवेश दिया जाता है। वहां विशेष बात यह भी कि स्त्रियां भी आती हैं, वहां आने वाले आदमी अच्छे हों।

आप अपने जीवन को जहां तक हो सके ऐसा बनावें और दूसरों में भी संचार करें। रिश्तेदार को भी कहें कि खाने में जूठन न छोड़ें। आप कहेंगे कि लेने वाले भी तो जूठन लेते हैं। वे तो इसलिये लेते हैं कि भूखे होते हैं। पर जूठा भोजन क्यों दिया जावे ? लोग बूढ़े गाय बैल को खुला छोड़ देते हैं। यह अधर्म है। उन पशुओं का बड़ा निरादर होता है। इस प्रकार आवारा वे निचड़-निचड़ कर मरते हैं। मैं एक मित्र के पास ठहरा था। उन के मित्र आये और रोटी खाकर थालियां बाहर रख दीं। कुत्ते चाटें। मुझे यह बात बुरी लगी। पूछा तो कहने लगे कि थाली कुत्तों के चाटने से अधिक साफ हो जाती

हैं। किन्तु उनको यह ज्ञान नहीं कि कुत्ता तो मुंह में सड़ी हड्डियों को भी लगाता है--तो इस प्रकार थालियों में जर्म (कीटाणु) लगे, यह तो अच्छे घर की हालत है। मेरा कहने का भाव यह है कि जूठन घरों में भी नहीं होनी चाहिये। जैसे यहां नहीं होती। बन्धुओं को भी कोमल ढंग से यह समझाना चाहिये कि जूठन छोड़ना दोष है। इसी प्रकार सवेरे उठने के स्वभाव को भी बंधुओं में फैलाने की चेष्टा करनी चाहिये।

घरों में भी समय पर खाने का स्वभाव बनायें। जिससे भोजन का रस रक्त में भी समय पर जाता है। अंग्रेज़ों में यह बात है। वे लोग जब युद्ध में जाते हैं, वहां भी अनुशासन में खाते हैं। सैनिकों को समय पर रोटी मिलती है। काम क्या करेंगे जो खायेंगे नहीं। सब सामान साथ होता है। रसोइये भी साथ मार्च करते हैं। अब आप मिर्चें खाते हैं। अमृतसर में दो कारखाने मिर्चों के, बहुत बारीक पिसी हुई अदरक, मिर्च ऐसी पुड़ियों में जो बारिश में भी खराब न हों। यह बात ऊट-पटांग है कि हम ज़मींदारी करते हैं इस कारण कभी दो बजे रोटी मिलती है। लाला जी को रोटी दुकान पर भी ठीक समय पर पहुंच जाती है। समय पर खाने का स्वभाव बनाना चाहिये। इससे शक्ति भी आती है और बल भी। यह पेट कोई बोरी तो नहीं कि लाला ने इसमें चीजें जमा कर दीं। स्वास्थ्य इसलिये भी खराब होता है कि समय पर नहीं खाते और खराब वस्तुयें खाते हैं। गरीबी से तो और बात है। ज़मीन तो बढ़ी नहीं। कहां से खायेंगे ? जनसंख्या बहुत बढ़ने से देश में गरीबी फैल रही है। इसको दूर करने का मुझे कोई उपाय भी नहीं सूझता। समय पर खाये सूखे चने, बिन समय के हलवे से अधिक लाभदायक है। समय का परिपालन करें। समय पर जगो--समय पर सोवो।

पहले सत्संगों में मैंने कहा कि धोती मैली नहीं होनी चाहिये। इनमें जज भी होते, अमीर भी, जिनके घरों में दो-तीन नौकर, पर सत्संगों में अपने हाथ से अपने कपड़े धोते हैं। यह तो करने से होता है। उद्यमी-- पुरुषार्थी हो, तो मैला-कुचैला क्यों रहे ? साधना-सत्संग क्या है--साधना का अर्थ है शिक्षण। श्रेष्ठ बातें यहां कही जाती हैं। कैम्प का नाम मेरे कानों को अखरे। यह साधना-सत्संग है। साधक जप में, आराधन में, सवेरे उठने में, खान-पान

में, चलते-फिरते साधन-सम्पन्न हो। ज़मींदार ने जब भूमि संवार कर बीज डाला, यदि वह उगा नहीं तो बीज खराब। इसी प्रकार आपके पास रहने से बंधुओं में नया पेड़ अर्थात् साधना में विकास नहीं हुआ तो आप में कमी हुई। आपके पास नाम जपने का बड़ा समय है— यदि नाम लेकर जपा नहीं, तो यह नाम का बड़ा अनादर है। जिस का प्रभाव मित्रों पर नहीं, समझो उसमें मनोबल नहीं। साधना-सत्संग में आने से साधन-सम्पन्न हों, यही प्रयोजन है।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 24.11.1958,
समय प्रातः 11.00 बजे
❑❑

आत्म-भाव की जागृति

यहां जो साधना-सत्संग में आये हैं, उन्हें जिस प्रकार रहना है, वह साधारण दिनों से भिन्न होता है। यहां हार्दिक-वृत्तियां जाग्रत होती हैं और जब वे जाग्रत होती हैं, तब आदमी आगे बढ़ता है। हार्दिक-वृत्ति यह है कि एक को अपने किये पर पश्चाताप हो और उनके उद्धार का प्रयत्न करे, जाने और समझे। अन्तर प्रेरणा से जब कोई काम करने लगता है, तो उसकी उन्नति होती है। भिन्न-भिन्न प्रकार के वक्ता इसका भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन करते आये हैं। यह सत्ता है, इसको ऋषि लोग जानते आये हैं। मैं तो यही कहना चाहता हूं कि उसके दरबार में आन्तरिक-वृत्तियों को उपस्थित करके खड़े हों, तो लाभ अवश्य है। मैं नहीं रहूँगा, यह बाहर के जगत की बातें हैं। ऐसा विचार डराता है। आदमी शक्तिशाली होते हुए भी अपने को दुर्बल मान लेता है। तो इसको दबाना, यह साधक का काम है। पर जब आत्म-भाव जागे, तो यह सहज हो जाता है। आत्म-भाव न जागे, तो माया से ऊपर आदमी नहीं जाता। यहां मैं बताना चाहूंगा कि गोस्वामी जी ने ठीक ही कहा है कि माया हरि-भक्त के पास नहीं आती। यह ठीक है भक्त परमेश्वर के पास जाये, तो माया अपने आप हटती है। सत्संग में यत्न किया जाता है कि आन्तरिक, आध्यात्मिक वृत्ति जगे। उसके चिन्ह भी प्रकट होते रहते हैं। किसी में हर्ष का उद्गार, किसी के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। किसी में कुछ बातें स्फुरित होती हैं। जो बात उनमें बसती है, वह धीरे-धीरे उनको स्पष्ट होती जाती है। भीतर के जगत का जाग्रत होना, इधर-उधर की जो बहुत बातें हैं, उनसे भिन्न है। केवल बाहरी बातों में रहकर, हम हरि-दरबार में जाने के भागी नहीं हो पाते। अन्तःकरण वाली बात कुछ और ही है। साधना को घरों पर जा कर बसाना भी चाहिये। मिलिट्री में तीन मास रहकर समय पर परेड करे और फिर भी वैसा ही रहे, तो उसने क्या सीखा? जितने भी कैम्प, चाहे वे स्काउट्स के चाहे किसी और के, वहां लोग सीखते हैं कि कैसे सेवा करना, कैसे ग्राम सुधार

करना ? तो साधना-सत्संगों से भी सीख कर जाना चाहिये। आन्तरिक वृत्तियों को जाग्रत करना चाहिये। जितनी माया की वृत्तियां हैं, उन्हें सिधावें। देश-जाति की बात भी उनमें गहरी आनी चाहिये। निकम्मा-सा क्यों बने ? जाग्रत-सा अनुभव हो। उसको विचार होवे कि जाति और देश के शरीर में फोड़ा क्यों हो ? साधना-सत्संग में साथ-साथ यह बताऊं, इसी दृष्टि से मैं बोलता हूँ।

रूसी-उपग्रह (Satellite) से कोई संकेत आने पर उनका अर्थ दूसरे क्या जानें, क्योंकि कोड वर्ड (Code Word) उपयोग होते हैं। गणेश की मूर्ति, हाथी की सूण्ड, चूहे पर बैठा मनुष्य का मुख, ये सब संकेत की बातें हैं। जिसने वह मूर्ति बनाई वह ही जाने। तो मुझे कहना यह है कि इतनी दूर से एक जड़ वस्तु संकेत भेज रही है, तो आपकी चेतना कोई क्रिया पैदा क्यों न करे ? उपग्रह में कोई संचालक नहीं है, पर समाचार आते हैं। तो आप कोई समाचार आकाश में संचित करें, तो वे क्यों न आवें ? समाचार-पत्र मैं कुछ कम ही पढ़ता हूँ। आप पढ़ते होंगे। लिखा होता है कि हमने प्रार्थना भवन देखे। डॉक्टरों से निराश हुए लोग उन्हें लिखते हैं। वहां प्रार्थना होती और लोग अच्छे हो जाते हैं। जगह-जगह प्रार्थना-घर बने हुए हैं। प्रार्थना-घरों में केवल प्रार्थना ही की जाती है। प्रार्थना करने के इच्छुकों में चरित्र **सशक्त** होना चाहिये। चरित्र-निर्माण करना चाहिये। मुझे कहना यह है कि सिद्धि चाहने वालों में बुराई तो निकट भी नहीं होनी चाहिये। परमेश्वर से **शस्ति** योग्य चरित्र-पथ पर होने की दृष्टि मांगनी चाहिये। जो प्रार्थना करते हैं वे समझते हैं। कहते हैं उन्हें मार्गदर्शन (Guidance) भी मिलता है। मुझे भी इसका कुछ ज्ञान है और जब वे कहते हैं कि मार्गदर्शन मिलता है, मैं कहूंगा कि वे कोई नाटक नहीं करते। आप भी भगवान की कृपा मांगा करें। आजकल मैं प्रतिदिन कोई ऐसी बात भी करता हूं और लोग भी करें, ऐसा चाहता हूं। आन्तरिक वृत्तियां उनकी जागती, सुधरती हैं और जितनी सुधरती हैं, उतना ही भगवत्-प्रसाद अधिक मिलता है।

❑❑

रामायणी-सत्संग

1

बहनो व भाईयो ! यहां मिल कर विजयदशमी के पुण्य-पर्व पर श्रीरामचन्द्र जी की लीला मना रहे हैं। यह लीला आप की भाव-भावना की है। कितना आवेश आया, रोमांच हुआ-गद्गद् हुए व कितने आंसू टपके—यह आप सब जान गये। मैं जानता हूँ। बन्धुवर्ग ने राम-लीला यहां मनाई है। यह अद्भुत जीवन दान है। हर्ष है यह सब कुछ मैं देख रहा हूँ।

हे राम! मैं समझता हूँ कि इस पिंजरे में रहकर बहुत दिन देखे। जनसंख्या में तेरे नाम के गुण गाये। यह बात जब तक जीवित रहूं, बनी रहे।

आदरणीय देवियो और सज्जनो! मुझे हर्ष है, वाल्मीकीय रामायण को मैंने अपनी कथनी में, भावों में प्रकट किया है। इसका पाठ करके आपने और मैंने मधु-रस का स्वाद पाया। मुझे बहुत देर तक इस कुटिया में बसने की इच्छा नहीं है। कोई बड़ी बात देर तक इस जीवन में जीने की रह नहीं गई है। यदि कोई चीज़ प्रेरित करती है, तो केवल राम-नाम का स्मरण निरन्तर होता रहे। मुझे यह नाम प्राप्त हुआ जैसे किसी ने यह मणि मेरी झोली में डाल दी। पहले राम-नाम रस का स्वादन किया फिर उद्गार किया और अपने पदों में गाया। राम-नाम बहुत उत्तम, मधुरता करने वाला जाप है। आप अपने मित्रों में विकसित करते रहते हैं। मेरे जीवन के लिये एक ही काम बाकी है। मैंने बहुत रोटी, दाल, शाक, इत्यादि खाये। कौआ भी बहुत देर तक जीता है, परन्तु ऐसे जीने से कोई महत्व नहीं है। राम-नाम की ज्योति जगमगाती रहे। आप ज्योति मुझे प्रेरित करें। यह जीवन जड़ी है। मुझे यदि राम जीवन प्रदान करे, तो सदैव राम-नाम का रसास्वादन करता रहूं। यहाँ आने का सुअवसर मिला है। यह पुण्य तीर्थ स्थान अद्वितीय है। जो पृथ्वी तल पर एक ही है। दूसरा ऐसा स्थान नहीं है। आप अपने हृदय में

सत्य, परम-शुचिता का पालन करें। इस स्थान में रह कर शुभ कामनाओं को बली(बलवान) बनायें। इन भावों के साथ मैं आपको बधाई देता हूँ। जो राम-लीला आपने की है, वह उत्तम सिद्ध हुई है। भगवान आपके भावों से इस लीला को मनाते रहें। जब तक जीऊं, मेरी कामना यही है कि रामलीला विजयदशमी पर मनाया करें। बधाई देता हूँ।

हरिद्वार,
1959 विजयदशमी

रामायणी-सत्संग - 2

यह बड़ा सुन्दर सुअवसर है कि हमने रामायण का भावपूर्वक पाठ किया। मुझे प्रसन्नता है कि आपने भाव-चाव से भाग लिया। रामचन्द्र जी के कथनों में अनुशासन का भाव समझते आये। सत्संगों में अनुशासन बनाने वाली बात होती है। होशियारपुर में हर साल दिसम्बर में साधना-सत्संग लगा करता था। एक साधु आया। पहले मेरा उसके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। बी.ए. था। आजकल सम्भवतः विनोबा जी के साथ है। उसने विरोध करना आरम्भ कर दिया। मतभेद हो गया। मैंने उससे कहा कि तुम्हारा सत्संग में आना उचित नहीं है। आज तक भी मैं उसको मित्र समझता हूँ, विपरीत नहीं। वह प्रायः सत्संगों में आने की अनुमति माँगता है, परन्तु मैं उसको उत्तर दे देता हूँ कि तेरा भला इसी में है कि काम करता रहे। उसकी प्रीति पत्रों द्वारा वही है। अनुशासन की बात है, कौन आवे, कौन न आवे? यह रामचन्द्र जी के जीवन से सीखने की है। रावण को मारकर विभीषण से विदा हुए। उन्होंने पराये को कितना अपना लिया। जो तलवार लिये खड़े थे, उनको महाराज रामचन्द्र जी ने पुकारा कि वे सब मेरे आदमी हैं। इनको सीता के दर्शन पाने दो। उनकी यह उदारता चित्त को चकित करती है। उनके काम बड़े निराले हैं। रामचन्द्र जी शिविर से बाहर नहीं गये। हनुमान से कहा कि सीता को सन्देश देने विभीषण से पूछ कर जाना। यह राजनीति में बड़ी बात है, मनन करने योग्य है। परम्परा की मर्यादा रखने के लिये सीता को कहना कि 'मेरा जो कर्तव्य था, मैंने किया।' आदमी अपने जीवन को अच्छा बनाये, चरित्र-निर्माण करे। जो वनों में सीता के लिये रो रहा था, वह इतना दृढ़ हृदय थाम कर बैठा कि सीता को कहा, 'जहाँ चाहो तुम चली जाओ।' सीता जी राम के दर्शनों को लालायित थीं। उसने रामचन्द्र जी को सब कुछ कह दिया और फिर उनकी आज्ञा भी भंग नहीं की। राम ने आज्ञा दी कि अग्नि जलाकर इसमें बैठो। जब उसमें बैठीं, तो अग्नि शांत हो गई। दैवी घटनायें होती हैं, जगत में यह निराली बात है। रामचन्द्र जी पुष्पक विमान साथ लाये और वह विमान भी अयोध्या पहुँच कर वापस कर दिया। भारत से अंग्रेज़ कोहिनूर हीरा ले गये, जो अभी तक इंग्लैण्ड की रानी के मुकुट में लगा है। रामचन्द्र जी की बड़ी बड़ाई है। यह एक शोभा है (विजित देश से कुछ भी न हड़पना)।

भरत-मिलाप का वर्णन बहुत सुन्दर है। भावपूर्ण शब्दों में है। मुझे हर्ष है कि संगत में रामायण का उच्चारण बहुत अच्छा हुआ। सभी को बधाई देता हूँ।

कुछ कार्यकर्ताओं के बारे में कहा। प्रेमनाथ जी के बारे में कहा— "वह छैल-छबीला, सजा-धजा युवा है, बड़ा त्यागी, विनीत, पहुँचा हुआ है। भगवान की देववाणी का उस पर अवतरण होता है। किसी के लिये कामना करे, तो सुझाव के स्तर में तरंगें पैदा होती हैं।"

देवियो और सज्जनो, भावना के साथ दोनों कर जोड़कर नमस्कार करता हूँ। कल पूर्ण आहुति है।

मैंने विवेक- विचार से आप लोगों को अच्छा मार्ग दिखाया है। मेरा तो एक ही पंथ है— 'राम-नाम' और कुछ नहीं जानता हूँ। इस नाम में मेरी बड़ी धारणा है। इस कारण आसुरी माया से सर्वथा वंचित रहा हूँ। राम-नाम में मस्ताना होकर राम सर्वशक्तिमान परमेश्वर को भजता रहा हूँ। कभी लचक नहीं आने दी। लचक मृत्यु समान है। मेरे मित्रों ने मुझे कहा कि राम-नाम को न दे। हम सभाओं में, तेरे आसन का विरोध नहीं करेंगे। मैंने उत्तर दिया, यह असम्भव है। राम-नाम मेरी कमाई का नहीं है। मेरी झोली में किसी ने

डाल दिया। मैं 'न' नहीं करूंगा। मुझे राम-नाम में दृढ़ता है। इस नाते से आपका आदर करता हूँ। मेरे में किसी के साथ विपरीत भावना नहीं रही। यह सब कुछ आप लोगों की लीला है।

यह (श्रीरामशरणम्, हरिद्वार) सेठ जोधामल का स्थान है। जब इसकी नींव रखी गई थी, उन्होंने सत्यानन्द के नाम कराना चाहा। मुझसे कहा था, परन्तु मैंने इन्कार कर दिया। यहाँ दूसरी भावना पैदा न हो। इस स्थान में एक ही भावना हो– राम-नाम की। जब यह बन गया, उस समय–ऐसे साधक सम्मिलित किये गये थे जो, प्रतिदिन बीस-पच्चीस हज़ार जप कर सकते थे। उस समय एक करोड़ जाप यहाँ हुआ था। तब प्रवेश हुए थे। यह सत्संग का स्थान बड़ा सुन्दर बन गया है। उन्होंने (लाला जोधामलजी) बड़े चाव से यह धर्मशाला बनाई है। आप बहन-भाई यहाँ आ कर राम-नाम का लाभ प्राप्त करते हैं। शान्ति का राज्य आप बनाते हैं। अपना राज्य है, अपनी श्रेणी बनाई है। सूत्र मैंने विस्तृत किया है– ऐसा समझता हूँ।

मैं भगवान के विश्वास में बड़ा दृढ़ हूँ। यह भावना है। मैं स्वयं आपकी प्रशंसा करता हूँ कि आपने इन दिनों में अच्छी निभाई है। कोई त्रुटि हो किसी की ओर से, समझो मेरी ओर से है। सभी से हाथ जोड़कर क्षमा मांगता हूँ। मैं दास हूँ– इस दरबार का, राम का। मैं तो हर भाई-बहन के जूते भी झाड़ने के लिये तैयार हूँ। बड़े आदर, बड़े सम्मान से नमस्कार करता हूँ।

रामायणी-सत्संग,
अन्तिम बैठक हरिद्वार, 1956



साधना-सत्संग के समापन पर प्रार्थना

परमात्मा श्री राम परम सत्य, प्रकाश-रूप, परम ज्ञानानन्दस्वरूप, सर्वशक्तिमान्, एकैवाद्वितीय परमेश्वर, परम-पुरुष, दयालु देवाधिदेव है, तुझे बार-बार नमस्कार, नमस्कार।

देव! तू सर्वत्र विद्यमान है, तेरी सदा जय-जयकार हो। परमेश्वर! इस जगत जाल में हम मछली के समान फंसे हुए हैं। तेरे नाम से ही इस जाल से छुटकारा हो सकता है। रूप तो सदा रहने वाले नहीं। रूप की पहचान भी नाम के बिना नहीं। तेरे नाम में हमारी धारणा पक्की रहे।

परमेश्वर! अब यह वरदान दीजिये कि भगवती भागीरथी-भक्ति हम सबके मन में प्रवाहित हो। तेरे और हमारे में जो अन्तर है उसको नाम ही दूर कर सकता है। हे राम! इस भावना से हम तेरा आराधन करते हैं। देवाधिदेव! हम तेरे देखते हुए भी भारी भूलें करते हैं। आप अपराधों को सदैव क्षमा करते आये हैं। हमारे अपराधों को, त्रुटियों को भी क्षमा करना।

श्री राम! हम सब में बसने वाला तू ही माता-पिता है। अपनी त्रुटियों को देखते हुए तो तेरे दरबार में बैठने के हम अधिकारी नहीं। आन्तरिक वस्त्र मैले कुचैले रखते हुए तेरे सामने लज्जा आती है। परन्तु बालक जब गन्दा होता है और नाक बहती है, फिर भी माँ बच्चे को इस दशा में छाती से लगा लेती है। हम बालक समान हैं, हमें मलिन देखकर भी कृपा करो।

हमारा पूजन, कर्मकाण्ड, यज्ञ, ध्यान, सब आपको समर्पित है, स्वीकार करो, स्वीकार करो।

आरती उतारने की पुरानी प्रथा है। वैसे तो सारा संसार तेरी आरती उतार रहा है फिर भी श्रद्धा और प्रथा अनुसार हम तेरी आरती उतारते हैं–

श्री राम तेरी आरती, जगदीश तेरी आरती।

आरती सर्व प्रकार की प्रसन्नता की सूचक है। तू मेरे सब बन्धुओं के हृदय में विराजमान है। इन सब में तुझे देखते हुये इनकी आरती उतारता हूँ।

श्री राम! आप हमको जोत देवें। मोह माया के बादलों को हटा कर हमारे चिदाकाश में जो जोत प्राप्त हुई है, वह मन्द न होने पावे।

जोत से जोत जगा दे राम, जोत से जोत जगा दे।
जोत से जोत जगा लो बहिनो, जोत से जोत जगालो।
जोत से जोत जगा लो साजन, जोत से जोत जगालो।
जोत जगे, जोत जगे घट बीच, राम तेरी जोत जगे।
जोत जगे, जोत जगे जग बीच, राम तेरी जोत जगे।
बार-बार मिले राम मेला सजनां दा।
सर्वशक्तिमते परमात्मने श्री रामाय नमः।

(साधना-सत्संग की समाप्ति के अवसर पर अखण्ड जाप से लाई जोत को जो वहाँ स्थापित की हुई होती है, प्रार्थना आदि के पश्चात् भगवान की आरती उतार कर श्रीस्वामी जी महाराज साधकों के आगे घुमाया करते थे और कहते जाते थे, 'जोत से जोत जगा लो साजन, जोत से जोत जगा लो।' साथ ही साथ सब साधक इसे दोहराते थे। बड़ी श्रद्धा और प्रेम से साधक ज्योति की लौ पर हाथ फेरकर अपने मस्तक पर लगाते थे। ऐसा लगता था मानो श्रीमहाराज जी कह रहे हों कि 'मेरे हृदय में जो ज्ञान और भक्ति की लौ जल रही है उसे आप अपने हृदय में जगा लो।' सच्चे संत के पास जाकर ही अन्तरात्मा जाग्रत होता है।

ज्योति घुमाने के पश्चात् साधक कतारों में खड़े होते और श्रीमहाराज जी प्रत्येक पुरुष साधक के पास जाकर विदा होने से पहले एक-एक को आलिंगन करके मिलते और साथ-साथ कहते जाते थे, 'बार-बार मिले राम, मेला सजनां दा।' बड़ा मार्मिक दृश्य होता था और साधकों के नेत्रों से अश्रु बह रहे होते थे और यह ध्वनि गूंज रही होती थी– 'बार-बार मिले राम, मेला सजनां दा।')

'श्री राम'

प्रार्थना

(साधना-सत्संग की पूर्ति पर)

हे परम प्रभु! सर्वशक्तिमान! हम तेरी चरण-शरण में आये हुए हैं। हम बहुत आदर-सत्कार से तेरे चरणों में नमस्कार करते हैं। तू सर्वत्र विराजमान है। हम भाव-सहित तेरा पूजन करते हैं। तेरी कृपा सदैव हमारे ऊपर बरसती रहती है। तेरी जय-जयकार की ध्वनि सदैव गूँज रही है। हम इसी प्रयत्न में रहते हैं कि हमारे में जो कुवृत्तियाँ हैं, उन पर तेरे नाम के आराधन से विजयी हों, यह तेरे नाम की विजय है। हम तेरे नाम के प्रतीक का आराधन करते हैं। हम सब का नमस्कार स्वीकार हो। परमेश्वर! इस जटिल जाल में हम मछली की तरह फँसे हुए हैं। तेरे नाम लेने से यह जाल कट जाता है। पुरातन काल से संत लोग तेरे नाम का सहारा लेते चले आये हैं। नाम ही बड़ी चीज़ है। तेरे अनेक रूप हैं। परन्तु हम तो नाम का ही आराधन करते हैं। आज तेरी शरण में आये हुए हैं। तेरे से वर माँगते हैं कि हमारी श्रद्धा इस नाम में दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली जावे। इसके अलावा हमारा कोई दूसरा अवलम्बन नहीं है। तेरे नाम का आराधन ही अन्तःकरण को निर्मल कर सकता है। हम तेरी जय मनाते हैं। हे देवाधिदेव! तेरे द्वार पर हम खड़े हैं। जैसे भिखारी को तू देता है, वैसे ही हम तेरे द्वार पर खड़े हुए क्षमा की भीख माँगते हैं। भूलें तो हमने बहुत की हैं। परन्तु तू तो दाता है, हमारी खाली झोली में भिक्षा डाल दे। परमेश्वर! हमें क्षमा कीजिये। तू ही माता है, पिता है, सखा है, मित्र है। परन्तु हम पीठ कर देते हैं, जब माया में मस्त होते हैं। जगत के पिता! तू ही हमारा सब कुछ है। तू माता के रूप में है। हमारे अपराध बहुत हैं। बाल-लीला में रंगा हुआ बालक मैला-कुचैला, जिसको माँ गोदी में उठा लेती है, उसी प्रकार हम पापियों को भी अपनी गोदी में उठा लो। हमें और कहीं ठौर नहीं है। तेरा नाम पतित पावन है। हमको पार उतारिये। मेरा कुछ नहीं. सब कुछ तेरा है। हम सब

कुछ तेरे अर्पण करते हैं। हमारा आत्म-कल्याण करो। तेरे नाम का आराधन करते हैं। हे जगतगुरु! तुझे बार-बार नमस्कार हो। 'परम् गुरु जय जय राम'। तू, किस रूप में लीला करता है। हमें शांति वरदान दे। हम आन्तरिक नेत्र से देखें। तेरी कृपा हो, यही हम प्रार्थना करते हैं। आज हम इस साधना-सत्संग से विदा होते हैं। तुझे बार-बार नमस्कार हो।

जोत जगे, जोत जगे-घट बीच, राम तेरी जोत जगे।

बार-बार मिले राम मेला सजनां दा।

प्रार्थना

(साधना-सत्संग की समाप्ति पर)

हम सब श्रीराम चरण के भिक्षुक हैं– 'प्रसीद देवेश! जगन्निवास' श्रीराम! आपकी चरण-शरण सुख देने वाली है। आपके नाम का हम आराधन करते हैं। हे परमेश्वर! यह नाम प्राणी के पाप-ताप हर लेता है। सब तीर्थों का तीर्थ है। पावन है। परमेश्वर! इस भावना से हम आपके नाम का आराधन करते हैं। आपकी चरण-शरण में आये हुए हैं। हम सब आपको नमस्कार करते हैं। 'अहं भजामि रामम्, सत्यम् शिवम् मंगलम्।' हे परम देव! हमारे पास देने को कुछ नहीं है। केवल हृदय से आपके नाम का आराधन करते हैं। आप अपने भक्त-जनों पर कृपा करते हैं। हमारा आज पाँच रात्रि का साधना-सत्संग समाप्त हो गया है। भाई-बहनों ने जो जाप यहाँ किया है, सब आपकी चरण-शरण में अर्पित है। यह सब तेरी देन है। हमारे हृदय में तेरे नाम की भावना का आदर बना रहे। तेरा आशीर्वाद सबको प्राप्त हो। तू हमारा कल्याण करता है। हम मुक्ति की कल्पना नहीं करते। हमें तेरी शरण प्राप्त हो। तेरे नाम का आराधन करने वाला तेरी कृपा को माँगता है। तेरी अपार कृपा हमारे ऊपर है। हममें अनेक दोष हैं। तू उनको ढक लेता है। हमारे अन्दर के दोष तेरे दरबार में सब छुप जायेंगे। केवल तेरा नाम हमारा कल्याण करता है। तुझे नमस्कार है। 'रामाय नमः

श्री रामाय नमः' 'वन्दे रामम् सच्चिदानन्दम्'। 'जय बोलो, जय बोलो भगवान राम की जय बोलो' 'राम तेरी आरती जगदीश तेरी आरती।' 'जोत जगे, जोत जगे सब बीच, नाम की जोत जगे'। तू दीन-हीन को प्यार करता है। हम तेरी शरण में आये हुए हैं। तेरी कितनी कृपा हमारे ऊपर है! तेरा नाम सबके अन्दर निवास करे। आन्तरिक भूखों को ऊँचा करे और जाग्रत करे। तेरे नाम का ही भरोसा है। भक्ति तेरे पद की प्राप्त हो। तुझे नमस्कार हो।



विविध-प्रसंग

व्रत लेकर निभाओ

एक बार न कह दो तो फिर हां कहना ठीक नहीं। रोहतक जाकर मैं कई बार बोला। बहुत लोग मिले भी और नाम भी लिया। परन्तु उन्होंने पालन नहीं किया। मैंने इससे यही जाँचा कि लगन वाले नहीं। रोहतक में एक बार फिर मुझे बोलने के लिये कहा गया, तो फिर मैं इस प्रकार के ऐसे ढीले ढंग में बोलता नहीं। इसी कारण से बोलने को न कर दी। जो नाम को ले और आराधना नहीं करे, तो मुझे विचार होता है कि इनमें दृढ़ता नहीं। तो जिन्होंने नाम लिया, उन्होंने आराधना करने का प्रण लिया। प्रण फिर तोड़ा, कोई बात नहीं। मैं अपने हृदय के अन्दर अनुमान किया करता हूँ– कितना कौन विश्वासी और कितना इस मार्ग में बढ़ा? आपको बड़े प्रीति वाले, बड़े प्रण वाले रहना चाहिये। आप इस बात को दृढ़ता से जगायें– व्रत लिया है– हंसकर उसे प्राणों से पालन करेंगे।

भगवान की सृष्टि में रहो, माया तथा संकल्प की सृष्टि त्यागो।

भगवान ने संकल्प से ही जगत को रचा। दु:ख का जगत हम स्वयं बनाते हैं। दो आदमी आमने-सामने से आ रहे थे। एक हीरा मार्ग में पड़ा था। एक को वह मिल गया, जिसे मिला वह उसको पाकर हर्षित हुआ। दूसरा न पाकर शोक-ग्रस्त हुआ और एक तीसरा व्यक्ति जो दृष्टि टिकाये हुए देखता था, न हर्षित हुआ न शोकित। न पाने वाला रोया क्यों? क्योंकि उसने हीरे से ममता बांध ली थी, मोह की अपनी सृष्टि रची थी। दूसरा पाने वाला हर्षित हुआ इसलिये कि हीरा मुझे मिल गया, यह तो बड़ा कीमती है, इससे लड़की का विवाह ऐसा करूंगा कि सारी बिरादरी देखती रह जायेगी। इस प्रकार की उसने अपनी ही मोह की सृष्टि रची।

बात यह है कि हमारी सृष्टि तो संकल्प की बनाई हुई है। हमने जिससे कल्पना का सम्बन्ध बांधा नहीं, वह यदि रेल के नीचे कट गया, तो वृत्त-पत्र में उसका समाचार पढ़कर दु:ख नहीं होता है। मोह और संकल्प की सृष्टि ही दु:खमयी है। जो भगवान का यन्त्र बनना चाहे, उसको तो भगवत् सृष्टि में रहने वाला होना चाहिये।

❑❑

राम-नाम के प्रचार में संकोच क्यों?

आप नाम का आराधन करते हैं— तो आराधन होता है, इसमें पक्कापन होना चाहिये। सुदृढ़ निश्चय होना चाहिये। संशय आत्मा को दुर्बल बनाता है। देखो रस्सी को और समझो सांप, तो मनुष्य सारा कांप जाता है, इसलिये संशय को नहीं आने देना। जिसका जितना अधिक सुदृढ़ निश्चय, विश्वास होगा, फिर उसको उतना ही लाभ होगा। आराधन करने वाले का परलोक अच्छा होता है।

महाराज जी ने गीता का श्लोक बोला, जिसका अर्थ यह है कि— 'हे प्यारे! जो आराधन करने वाला है, वह कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता। केवल परलोक में क्या, इस लोक में भी उसकी अवस्था बड़ी अच्छी हो जाती है।' यह विश्वास का पौधा कभी भी कुम्हलाये नहीं, यह हुई एक बात। अब कहना यह है कि इसमें झिझक नहीं होनी चाहिये कि हम किसी को राम-राम जपने को क्यों कहें? हुक्का पीने वाला हुक्के को, शराबी शराब को, जुआरी जुए के लिये कहता झिझक नहीं करता। बुराई के प्रचार से नहीं झिझकता, तो कोई भलाई की बात करने से क्यों झिझके? नहीं मानेगा, न कर देगा। बोलचाल वाले परिवार में, साथियों में प्रचार करें। मैंने पिछली शताब्दी में एक पुस्तक पढ़ी। उसमें चीनियों की प्रशंसा की गई है कि वे पढ़ने के बड़े शौकीन हैं। एक गरीब लड़का जुगनू इकट्ठे कर लेता और उनके प्रकाश में वह अक्षर देख लेता। रात को तेल, जो न हुआ। तो जुगनू की चमक भी एक बार रोशनी दिखा देती है। रास्ता दिखा देती है। पग दिखाई दे जाता है। तो बुद्धिमान में बड़ी शक्ति है। बुद्धिमान जो आदमी हैं, उनका बड़ा प्रभाव होता है। इर्द-गिर्द, अपने परिवार में, अपने इष्ट का प्रचार करना चाहिये।

यह जो देव-भाव का आना है, यह अवस्था आगे पुरस्कृत भी होती जाती है। यह तो देव अवस्था है। यही अवस्था है जिसमें आदमी को अलौकिक ज्ञान शुरु हो जाता है। वह दूर की आवाज़ को ग्रहण करने लग जाता है— अर्थात् उसका मन यंत्र हो जाता है। यंत्र भी ग्रहण करते हैं (जैसे रेडियो)। शीशे भी ऐसे हैं जो सूर्य ग्रहण को बहुत निकट दिखाते हैं। बहुत दूर के प्रतिबिम्ब देखने में आते हैं और वे भी बड़े स्पष्ट रूप में। मेरा एक मित्र अमेरिका से दूरबीन लाया, वह कोई बहुत बड़ी शक्ति-पूर्ण (Powerful) नहीं थी। फिर भी उसमें मुझे चांद दीवार के समान दिखाई दे, जैसे एक फर्लांग पर। चांद में अपनी रोशनी नहीं है। चांद में यह जो दाग दिखाई देता है, यह बड़ा पहाड़ है उसमें चांद बड़े विशेष विस्तार में दिखाई देता था। जो दूरबीनें विशिष्ट प्रयोगशालाओं पर हैं, वे तो और भी शक्ति-पूर्ण होती हैं। शीशा बना तो रेत आदि से और ऐनक भी इसी नियम से। प्रतिबिम्ब बिखरता हो, वह ऐनक से इकट्ठा होकर ठीक दिखाई देता है। मुझे कहना यह है कि वह अनुभवी साधक योग्य बन जाता है। दैवी बातों को जानने की योग्यता भी धीरे-धीरे आ जाती है। यह बात जो कही, इसको हंसी में नहीं समझना। यह कही भी यहां पर ही जाती है (साधना-सत्संग में)। जिसको ऐसा नहीं होता (मस्ती आदि नहीं आती) वह अपने में कमी नहीं समझे। उसको चुप रहने में ही लाभ है। पर लोग संकोच करते हैं, आयु के विचार से, स्थिति के विचार से अथवा आसपास के लोगों के कारण।

राम-नाम की किरण पड़ी तो अपना अन्तःकरण विकसित हो गया। फिर विकसित होने पर यदि संकोच न रहे, तो आदमी मस्त हो जाता है। यह एक प्रकार की समाधि की अवस्था है। यदि बिजली का करंट अन्दर ले जाने से इलाज होते हैं। वह तो फिर आध्यात्मिक (Spiritual) बिजली की धारा (Current) हुई। पर लोग इन बातों पर विश्वास कम करते हैं। आत्मिक विद्युत से शरीर का परमाणु उज्ज्वलित हो जाता है-जगमगा जाता है और वह भगवत्-भक्ति के योग्य हो जाता है। भक्ति-धर्म भी इसी में है। इतना नाम बसा कि आदमी बाहरी सुध-बुध भूल गया। जो चुप रहता है

(मस्त नहीं होता) उसको अपने में घटियापन नहीं समझना चाहिये– हां, झिझक बन्द होनी चाहिये।

एक जगह कीर्तन करते समय बिजली बन्द कर दी जाती और फिर लोग पांव हिलाते। फिर मैंने कहा कि बिजली बन्द क्यों ? जब नाचने लगे, तो फिर घूंघट काहे का। अब वे अपनी विद्या और सब ही प्रकार का विचार भूलकर धुन में मस्त होकर झूमने लगे। भगवान की कृपा के पात्र बहुत आदमी हैं, जो अलौकिक बातें देखते हैं– शान्ति के रूप में, दिव्य प्रकाश के रूप में, सिद्ध अवतारों के स्वरूपों के दर्शनों में। विश्वास होना चाहिये।

एक डी. ए. वी. कॉलेज के प्रिंसिपल कौंसिल के मेम्बर थे। मुझे कहने लगे, राम-नाम दो। तो मैंने कहा कि तुम कॉलेज के प्रिंसिपल हो, तुमने समाज का बड़ा काम किया है। तो आप स्वयं सोचें, मुझे तो कहने की आवश्यकता नहीं कि मैंने नाम दिया है। या यह कहने की कि मुझसे उसने नाम लिया है। मैं तो इसमें कोई बड़ाई नहीं समझता। यह तो दाता की चीज़ है। उसने मुझे दी, मैंने बरता दी। मैं तो कहता नहीं। कभी सत्संग में कह भी दूं, किन्तु प्रायः सत्संग में भी कम ही कहता हूँ।

मुझे एक सोसाइटी का सैक्रेटरी जालंधर में मिला। कहने लगा कि तुम्हारी पुस्तक के विरुद्ध हमने एक प्रस्ताव पास किया है। उसे वापस लेने की शर्त यह है कि आप एक साल तक नाम न देवें। वह मेरा बड़ा मित्र था। मैं अब भी उस ही नाते से देखता हूँ। मैंने उससे कहा कि एक ओर तो जलती हुई आग हो और एक ओर सोसाइटी की खूब मान्यता हो, बड़ी कीर्ति हो, तो मैं तो कदाचित राम-नाम न छोड़ूं, आग की ओर चला जाऊं। कई आर्य-समाज के पुरुष आते हैं। कई आये हैं, तो मैं मांगने पर मिले प्रसाद को देने में संकोच नहीं करता। वह प्रिंसिपल ध्यान में बैठा, उसको श्रीरामचन्द्रजी का स्वरूप दिखाई दिया और किसी ने पीछे से कहा कि यह रामचन्द्र जी आ रहे हैं। मैंने उससे पूछा कि तुम्हें ध्यान में क्या प्रतीति हुई ? प्रायः पूछ लिया करता हूं। तो उसने कहा कि यह रामचन्द्र जी का स्वरूप क्या और यह आवाज़ क्यों और फिर ये क्यों आये ? मैंने कहा कि तुम्हें नहीं पसन्द तो नहीं आवेंगे।

मेरा एक मित्र पहाड़ी पर गया। वह वहां ध्यान में बैठा। उसने बाद में मुझे कहा कि सामने कृष्ण जी आये। वह खड़ा हो गया। वास्तव में वह तो बैठा ही रहा, किन्तु उसकी आत्मा उठी।

ग्वालियर में एक साधक ने कहा कि मैं खड़ा हो गया हूँ और देखता हूँ कि श्रीराम का स्वरूप मेरे पास आता है। शरीर इन अवस्थाओं में सोया होता है। ऐसी अवस्थायें कन्दराओं में भी कदाचित आती हैं, यदि भगवान देवें तो। नाम का आराधन पावर-हाऊस की बिजली के समान है।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 26.11.1956,
समय प्रातः 11.00 बजे

❑❑

राम-नाम का पाठ-विघ्न विनाशक

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता का अठारहवां अध्याय बहुत मर्म का है। वैसे तो गीता सारी बड़ी मार्मिक है, पर गीता का अठारहवां अध्याय मंगल और कल्याण के निमित्त पढ़ने का बड़ा रिवाज़ है। पंजाब में तो कम पढ़ते हैं। अठारहवें अध्याय का पढ़ना ऐसे है, जैसे तुलसी रामायण के सुन्दर-कांड का पढ़ना। यू.पी. जाकर देखो, यह पाठ संकट-निवारण के लिये, सैंकड़ों पुरुष-स्त्रियां, प्रतिदिन ही करते हैं।

एक एम.ए. स्त्री पीलीभीत से आई। उसने कहा, सुन्दर-कांड का पाठ प्रतिदिन करती हूँ। मुझे कोई कष्ट क्लेश नहीं आता, न ही सताता है। एक बड़े इंजीनियर की स्त्री–उसने आर्य-समाज में भी बड़ा काम किया। उसने कहा कि सुन्दर-कांड के पाठ से मुझे ब्लड-प्रैशर में बड़ा आराम मिला है। जब कष्ट होता है, तो उसका पति पुस्तक खोल कर रख देता है। तो पाठ से उसको बड़ा लाभ होता है।

मेरे एक बड़े अच्छे मित्र थे। वे ग्रेजुएट थे। संस्कृत का भी शास्त्री तक का ज्ञान था। अच्छी पदवी पर भी थे। उन्होंने स्वयं राम-नाम से ब्लड-प्रैशर का घटना अनुभव किया। हृदय शुद्ध हो, तो मंत्र भी औषधि होता है। हृदय यदि दोष से भरा हो, तो फिर कठिन। प्रेमनाथजी बैठे हुए थे। तब डॉक्टर ने बताया कि ब्रेन को देखने के लिये कैमरा होता है, इसमें और कोई करंट नहीं होता। तारें मस्तक में लगाते हैं। फिर वे (तारें) यंत्र में जाती हैं। तब पता लगता है, जब कोई बाहर की धारायें न आवें। इसी प्रकार रेडियो का भी, जब ठीक स्थान पर सुई जाये, तब ही उस स्थान की आवाज़ सुनाई पड़ती है। मंत्र की सिद्धि के लिये आदमी में दूसरी करंट नहीं आनी चाहिये।

भला आदमी (शुद्ध हृदय) यदि मंत्र का अनुष्ठान करता है, तो अनुमति देने वाले को पता चल जाता है कि दोष उसका नहीं।

दुर्गा पाठ बड़े होते हैं। इनमें भी बड़े नियम हैं। अभिप्राय यही कि दूसरे करंट नहीं आवें। दूसरी धारा हमारे में न आवे।

मंत्र तब फल देता है, जब अन्तःकरण शुद्ध हो। पिछले दिनों एक को हथकड़ी लग गई। उसको राय साहब की पदवी प्राप्त थी। केस चला। बीस हज़ार की ज़मानत पर रिहा हुए। साधना वाले किसी आदमी के पास बैठा और बताया कि वह उस अपराध को जानता तो था, पर अपना हाथ नहीं था। तो साधक को आवाज़ आई, कि इतना-इतना पाठ तीन दिन तक वह करे। आवाज़ें आती हैं, यह नहीं कि मोटर की ही आवाज़ आती है। तीन दिन के बाद उसकी पेशी हुई। वहां जब गया तो बरी हो गया।

अन्याय में आदमी फंसा हो, तो उस के लिये निःस्वार्थ कामना की जाये, तो प्रार्थना स्वीकृत हो सकती है, किन्तु स्वार्थवश हो, तो सम्भवतः स्वीकार न होवे। किन्तु कई बार तो सूली की सुई बन जाती है। पर मैं जो कहना चाहता हूँ वह यह है कि कोई और करंट न होवे।

राम-नाम शब्द में ही शक्ति है। चिन्ह इसका श्री अधिष्ठान है। जो बहुत उत्तम बना है। मंत्र की तरह है। ज्योति इसमें आ गई।

'तू वैष्णवी शक्ति है और तू जगत की बीज है और तू सब में समाई हुई है।' इसमें 'राम' शब्द-परम पुरुष सर्व शक्तिमान है। नीचे कमल है–मंगल देने वाला। इस भावना से श्री अधिष्ठान के सम्मुख बैठे, तो बड़ा लाभ होता है। इसलिये नहीं कि भई मेरी ड्यूटी आ गई। अखंड जाप में बैठने वालों ने मुझे बड़ी-बड़ी बातें बतलाई हैं, सुनाई हैं। अब चौधरी यहां वैसे ही रेडियो लाकर रख दे, एरियल न होवे, न करंट होवे, न रिसीवर होवे, तो क्या बात हुई, केवल लकड़ी का सन्दूक हुआ। अखंड जाप, हिन्दू रीति है। आहुति भगवान को देना, ऐसी रीति थी। वह आहुति को ग्रहण करता है।

राम-कृपा को ग्रहण करने की शक्ति होनी चाहिये। मेस्मेरिज़्म से युरोप में हिपनोटिस्ट दूसरे पर प्रभाव डालता है। तार यदि दिया और आगे लेने वाला न हो, तो तार तो प्राप्त हुआ नहीं। एक मेरा मित्र राम-नाम की हज़ार माला फेरता 'राम-नाम मुद मंगलकारी, विघ्न हरे सब पातक हारी' इस पद का सम्पुट दे देता। सूफी सन्त विचार देते हैं। हम विचार नहीं देते, मंत्र देते हैं। एक वकील है, प्रातः उसका बुरा हाल हो जाता। मस्तक में जैसे कोई चोट मारे। वह किसी मित्र की प्रेरणा से आया। उसको मैंने कहा, 'राम-नाम मुद मंगलकारी', किन्तु वह एक पीर को मानता था। कहा कि पीर को छोड़ दे। किन्तु वह डरा हुआ था। उसने मान लिया होता, तो लाभ होता। तीन बार मुझे मिला। उसने नहीं माना। नाम-दीक्षा देने से पहले, उस विधि को छुड़ाता तो मैं हूँ, यदि कोई और रीति से साधना करता हो। तीन बार यूं कह दे कि पुरानी विधि को त्यागता हूँ और परमेश्वर से क्षमा माँगे। एक और मिलने वाला बाद में मिला, जो कहता कि मैं मर जाऊंगा, यह आत्मा की आवाज़ है। हमने कहा, आत्मा तो स्वयं जानता है। वह स्वयं कहता क्यों? यह तो शैतान की आवाज़ है। उसे तीन बार जूते मारो। तो भावना से अखंड-जाप में बैठना चाहिये। पहले हवन-यज्ञ में केवल चार आदमी बैठते थे। वे मंडप की रक्षा करते थे।

अठारहवें अध्याय का बड़ी प्रीति से किये गये पाठ से बड़ा लाभ होता है, पर लोग कह डालते कि अर्थ सहित हो। बी.ए. स्टूडैंट को कोई कहे, वाटर, वाटर-पानी, पानी। यह बालक को समझाने की बात है। यह कुरीति है कि अर्थ सहित पढ़ा करो। चौबीस अक्षरों का मंत्र और अर्थ करने वालों ने दो पृष्ठ लिख डाले। कालिदास ने इतना संक्षिप्त मंगलाचरण लिखा कि 'पार्वती, महादेव जगत के माता, पिता हैं, मैं उनको नमस्कार करता हूँ', और ये ऐसे हैं जैसे शब्द शक्तिमान और शक्ति एक ही चीज हैं। मेरे मित्र एक संन्यासी थे, कांगड़ा जिला में रहते थे। बाद में उन्होंने तारा का मंदिर बनाया। शिव लेटे हुए और शक्ति खड़ी हुई। पहले मैं तो ऐसे पूछता कम था। मैंने उनसे पूछा तो कहा कि अभिप्राय यह है कि शक्ति बिना शक्तिमान तो लाश है।

गीता का अठारहवां अध्याय बड़ा अच्छा है। दोनों काल इसी का निरूपण किया करेंगे। 'हे महाबाहु विशाल भुजा वाले'! संन्यास का मैं भेद जानना चाहता हूँ। हे हृषीकेश! मैं संन्यास और त्याग का अर्थ जानना चाहता हूँ, यहां तीन सम्बोधन–महाबाहु, हृषीकेश और असुर नाश करने वाले। यह एक बहुत ऊँची बात है। एक डॉक्टर ने कहा, योग साधन करने वालों के मस्तिष्क कैसे ? समाधि लगाने वाले का भी कैसा ? तो उसने उत्तर यही दिया कि वह जानेगा पचास वर्ष तक, तब तक वह थक जायेगा। ब्राह्मी-बूटी में क्या तत्त्व ? एक साल तो यही जानने में लग गया कि ब्राह्मी-बूटी के किस भाग में शक्ति है ? तो पता लगा कि इसकी जड़ें मस्तिष्क को पुष्टि देती हैं। हमारा भी यह एक प्रकार का रिसर्च है। कितना किस को लाभ होता है ?

साधना-सत्संग देवत नांगल,
दिनांक 26.12.1956,
समय प्रातः 11.00 बजे

❑❑

त्यागवाद

अतिशय मंगल स्वरूपाय, परम कल्याण कारिणे।
सर्वशक्तिमद्देवाय, श्री रामाय नमो नमः।।

उपस्थित देवियो और सज्जनो ! भगवान की सृष्टि में पाप-ताप नहीं है। दैनिक कार्यों को लेकर मनुष्य अपनी जैवी सृष्टि की रचना करता है। किन्तु मनुष्य इसी अपनी सृष्टि में एक और तीव्र सृष्टि की भी रचना करता है, जो दुःख और शोक देती है। जीव का यह धर्म है कि इस प्रकार की सृष्टि करे ही नहीं।

संसार के वादों में त्यागवाद भी एक है। जिसके कारण जीवन को नीरस बताया गया। त्याग को महत्व दिया गया। इस संसार को दुःखालय बताया गया, किन्तु अब यह एक ऐतिहासिक बात ही रह गई है।

यह भी बड़ी भली बात हुई कि लौकिक साहित्य और इतिहास का प्रभाव श्रुतियों पर नहीं आया। श्रुति इस प्रभाव से निर्मल ही रही। त्यागवाद सदा ही किसी न किसी रूप में हिन्दू संस्कृति का एक अंग रहा है। यों तो अनेक वाद भारत पर छाये रहे हैं, जिनका प्रभाव साहित्य पर स्पष्ट रूप से आज भी दिखाई दे रहा है। किसी भी जाति ने शायद ही इतनी गुलामी सही हो, जितनी भारतवासियों को सहनी पड़ी है। इसका मूल कारण यह रहा है कि उनमें जाति-जीवन, जाति-गौरव की ज्योति नहीं जगी थी। तभी वह दासता को सहती रही।

त्याग का निरूपण ईशोपनिषद् के प्रथम सूत्र में ही है 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' हे भगवान ! यह समस्त सृष्टि तुम्हारी ही है। सब सृष्टि परमेश्वर राम की ही है। मैं तो उसे 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द' रूप में ग्रहण कर रहा हूँ।

भक्ति-मार्ग में शरणागति का बड़ा महत्व है। पूर्वकाल में याज्ञिक लोगों ने इस भाव को अपने दैनिक जीवन में पूर्णरूपेण उतार लिया था। गृहस्थ-धर्म में भी यही वृत्ति है। सभी का अपना नियत भाग का निर्धारण होता है। अपने समस्त संचय का भाग करना एक सनातनी प्रथा है। ऋग्वेद और गीता में भी यही संकेत है कि 'जो संचय के लिये संचय करता है, वह अपना नाश ही संचय करता है, जो अकेला आप खाता है, वह तो पाप ही खाता है। यह परमेश्वर का ही सब कुछ है, मैं तो उसका एक भोक्ता मात्र हूँ, यह भावना बड़ी ऊँची है।'

चारों वर्णों के नियत कर्म भगवान की पूजा है। सभी मानव अपने नियत वर्ण का काम करते हुए मुक्ति के अधिकारी होते हैं। भगवान ने स्वयं इस बात का कथन गीता में किया है।

समस्त अर्जित ज्ञान और शक्ति भगवत् प्रीत्यर्थ उपयोग हो, यही भक्तिमार्ग का सार है, देवपूजन है। यह धर्म त्यागमय है, किन्तु यह त्याग शरणागति है। शरणागति का भाव बड़ा उच्च है।



अवतारवाद

अवतारवाद भी एक प्रतीकवाद है। थियोसोफिकल सोसाइटी ने यह परीक्षण किया कि अवतार बनाया ज़ा सकता है। एक व्यक्ति को विशेष विचारों से भरा गया। माध्यम बनाकर ऊँची आत्मा बुलाई जा सकती है। इस विचार का बड़ा प्रचार किया, किन्तु वह अवतार न बना सके। ऊँची आत्मायें न बुला सके। छोटी आत्मा तो आ सकती है। ऊँची आत्मायें प्रायः नहीं आतीं, आती हैं तो ठहरती कम हैं। वह अवतारवाद जो इस सोसाइटी का था, असफल हो गया।

उच्चात्मा का कोई माध्यम बन सकता है यह कोई बड़ी बात नहीं। सम्भव है कभी कोई माध्यम बन गया हो। कभी-कभी लोहे का यन्त्र भी हमारी भाषा बोलने लग जाता है। इस प्रकार हमारे जड़ शरीर में भी विश्वात्मा की वाणी बोल सकती है, यह मेरा विचार है। माध्यम का आत्मा शान्त होता है। भूत-प्रेत बुद्धि पर अधिकार जमाते हैं। विश्वात्मा का संकल्प स्फुरित होता है। माध्यम के मुख से आप ही बातें निकलती हैं। इस प्रकार विश्वात्मा बोल जाये, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

परमेश्वर विज्ञान के द्वारा माने हुए सत्य के समान है। पौराणिक अवतारवाद वैदिककाल में भी था। ऋग्वेद में भगवान कहते हैं, 'मैं देवों और मनुष्यों द्वारा जुड़ा हुआ बोलता हूँ। मैं ब्रह्मद्वेषी के लिये धनुष को तानता हूँ।' ऐसी बातें होती होंगी तो ही कही गईं। इसलिये अवतारवाद को गपोड़ नहीं मानना चाहिये। यह हिन्दुओं में तो आदिकाल से है। ईश्वर पैदा नहीं होता है। उसका पैदा होना भागवत में भी नहीं। यह उस देवाधिदेव का आदेश होता है। यह दूर से भी हो सकता है और निकट से भी।

विश्वात्मा का अवतरण होता है। मनुष्य शरीर तो एक यन्त्र है। इस यन्त्र में कोई देव बोल जाया करता है। जिनमें महाशक्ति का अवतरण हुआ, उनको परमेश्वर का अवतार माना गया। किसी में शक्ति का आरोप कर

देना और उसे प्रतीक बना लेना अवतार बन जाता है। मगर वह स्वयं भी भलाई और शक्ति का पुंज होता है और उसमें उनकी भलाई व शक्ति अवतरण हुई होती है, पर बनाने से नहीं बनते। मेरे लिये परमेश्वर का प्रतीक नाम है, नाम बड़ी वस्तु है। नाम के प्रतीक में बड़ा भारी लाभ है। यह जब गहरा बस जाता है, अन्तःकरण निर्मल हो जाता है। हृदय के अन्धकार का नाश होता है। नाम का मार्ग वैज्ञानिक है। अन्तःशोधन का इस जैसा और कोई उपाय नहीं। दूसरे साधन अधिकतर बाहर तक ही रहते हैं। सबके प्रतीक भी अच्छे हैं, पर नाम का प्रतीक उत्तम है। रूप एक देश में होता है। नाम देश और काल की सीमा लांघ जाता है।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 28.12.1945



जन्म-दिन

देवियो और सज्जनो ! मेरे कानों में राम-गीत सुनते इतना जी भर गया है कि अपने लिये प्रशंसा वाक्य सुनने की बात ही नहीं रही। सब बहन-भाई जानते हैं कि मेरा जो कर्त्तव्य, मैंने पालन किया। किन्तु जहां राम-गीत गाये जायें, वहां सत्यानन्द के लिये क्या ? मैं अपने आप को इस योग्य नहीं समझता। मैंने मान लिया, साधक-साधिकाओं में विशिष्ट हूँ, फिर भी प्रशंसा ठीक नहीं। प्रातः के सत्संग में आसावरी में राम की धुनें सुनाते हो। इसका रस सत्संग में पैदा करना चाहिये। यह बात वृत्ति में उत्पन्न हुई। किसी का जन्म-दिन कोई विशेष बात नहीं। कीट भी आते-जाते हैं, जबकि इनका विशेष काम नहीं। जिनके द्वारा देश-सेवा हो, उनका जन्मदिन मनाना तो बात अर्थ रखती है। मैंने बहुत युग देखे हैं। पांव कब लड़खड़ा जावें, इसलिये यह बात संकुचित ही होनी चाहिये। मैं धन्यवाद के साथ यह कहना चाहता हूँ कि उत्पन्न वह हुआ, जिसके उत्पन्न होने से जाति, देश, उन्नत हो। आप साधना आरम्भ करने से पहले पारिवारिक-जीवन में और कर्त्तव्य-पालन में चरित्र उन्नत हों। सत्संगों में ऐसी भावनायें और वृत्ति पैदा करनी चाहिये। वैसे कौवा भी सौ वर्ष तक जीता है। नैपोलियन जिस द्वीप (सैन्ट हेलीना) में बन्द था उसमें कछुवा अब भी चार सौ वर्ष का रहता है। जीने का बड़प्पन इसमें है कि उससे लोगों में उन्नति हो।

अन्न खाकर पड़े रहने में क्या बड़ाई ? बड़ा उपयोगी राम-जीवन। और भाई-बहनों में मिलकर तो मुझे हर्ष होता है। रस-रूप ही भगवान है। रस आता है, आंखें कहती हैं, राम-रस की लाली बरसती। भर-भर के कटोरे पी रहे हैं। मुझमें तो कोई समर्थ नहीं। सब की आँखों से राम-रस-रूपी अश्रु बह रहे हैं।

साधना-सत्संग हरिद्वार,
दिनांक, 5.4.1958, समय प्रातः 11.00 बजे ❑❑

सहारे बिना निस्तारा नहीं

देवियो और सज्जनो ! यह सुगम मार्ग है, जो घर-बार का काम करते हुए हमें प्राप्त हुआ है। इसको छोड़ना नहीं चाहिये।

यह जो हमारा जगत है, इसमें जीविका को चलाना एक बड़ा काम है। दुकानदारी हो, नौकरी हो, खेती हो– ये सब ही ऐसे काम हैं कि जी-जान लगाकर काम करते हैं, तब कहीं जाकर आजीविका चलती है। इस देश की दशा भी कुछ इस प्रकार की है। दूसरे देशों में भी काम बहुत करना पड़ता है, तब कहीं जाकर मनुष्य के नाते निर्वाह हो पाता है। भारतवर्ष पिछड़ा हुआ देश है। भारतवर्ष जातियों की दौड़ में अभी बहुत पीछे है। उन दूसरे देशों के साथ चलना और भी कठिन है। इसलिये आजीविका चलाने के लिये बड़ा प्रयत्नशील होना पड़ता है। कठिनाई जब हो, तो कोई अवलम्बन होना चाहिये। जब हवाई-जहाज हवा में बिगड़ जाते हैं तब जो छतरियां उनमें रखी होती हैं, किसी में चालीस, किसी में पचास, उनसे उतरने का यत्न करते हैं। दूसरे जो जहाज अर्थात् समुद्री, उनमें भी यदि डूबने लगे, तो वहां भी अवलम्बन रखे जाते हैं। फिर समाचार पहुंचते हैं, तो बचाने वाले जहाज दौड़ते हैं और उनको उठा लेते हैं। तो यह देखने में आया है कि सहारा आकाश में भी चाहिये और जल में भी चाहिये। सहारे बिना निस्तारा नहीं। जीवन के जहाज में भी तूफान आते हैं। डूबने लगे तो सहारा चाहिये। सन्तों ने कहा– भगवान के नाम का जो सहारा है, वह सबसे उत्तम है और परम है। डूबते को किनारे लगाता है और स्थान पर पहुंचाने वाला है।

एक स्त्री का बड़ा परिवार था। उसका निर्वाह न होवे। बच्चे भूखे रहें। उसको कोई सहारा न मिले कि कैसे वह बच्चों के पेट की पालना करे ? किसी सन्त के सत्संग में वह गई और विनय से बताया कि वह ऐसे कठोर संकट में है और पूछा, मेरा काल कैसे कटे ? बच्चों के पिता तो परलोक सिधार चुके हैं। सन्त ने कहा, 'जितने जवान तुम्हारे घर में हैं, उनको तू

कल लाइयो'। अगले दिन सन्त ने उन जवानों को कहा, 'कल इस माई ने अपने कष्ट की कथा सुनाई। मेरे रोंगटे खड़े हो गये। भला तुम घर में क्यों बैठे रहते हो? जाओ, जहाँ मजदूरी मिले काम करो। यह तुम्हारे लिये उपाय है और बुढ़िया को कहा, 'माई ! तू बता, तुझे क्या काम है? तू कुछ किया कर'। बुढ़िया ने कहा, 'मैं तो घोर-कठोर दशा को देख-देख कर रोया करती हूँ'। सन्त ने कहा, 'सुन! तेरे लिये सहारा यह है कि जब चर्खा काता करे, तो राम राम राम जपा कर। देख रोने से संकट चौगुना हो जाता है। रोने वाले जो हैं, उनका अमाशय खराब हो जाता है। बुद्धि खराब हो जाती है। जो संसार से चला गया, वह तो चला गया। पर जो रह गया, उसका रोगी बन जाना क्या बात हुई?' बुढ़िया ने कहा, 'क्या संकट टल जायेगा?' साधु बोला, 'संकट-हरण श्री राम-चरण हैं। जा, इन सब को बाहर भेज दे।' लड़कों को लज्जा आई कि धिक्कार है हमारे यौवन पर। काम करने की धारणा करके बाहर निकले और माई चरखा कातने लगी। आधे महीने में उन्होंने परिवार के लिये कुछ पैसे भेज दिये। पन्द्रहवें दिन उसने पहली बार इतने रुपये देखे और बाल-बच्चों ने पूरी रोटी खाई। बहुओं से कहा कि 'आज पहला दिन है कि हमने हंसते-हंसते पूरी रोटी खाई है।'

सब जनियों ने उसको कहा कि हमारा भाग्य का दिन चढ़ आया है। बुढ़िया ने बताया कि सन्त ने कहा था, राम-नाम जपा कर, पन्द्रह दिन में तेरा भाग्य पलटा खा जायेगा। एक लड़के ने बच्चों के कपड़े भी बनवाने शुरु कर दिये। घर की हालत सुधरती गई। उधर माई राम-धुन में और रम गई। चर्खे के साथ राम-धुन मिलाने लगी।

जब राम देते हैं तो अनेक प्रकार से देते हैं और छप्पर फाड़ कर देते हैं। राम देने पर जो आये। अगले दिन क्या हुआ कि एक स्त्री आई। किसी ने उसको कहा कि तेरा धन, मन शुद्ध हो जायेगा। यह घर बड़ा दीन है। ऐसे घर में दान का बड़ा लाभ है। वह आई। गठरी में कुछ कपड़े, मिठाई आदि लाई। उन सब को सब्जी-पूड़ी आदि खिलाई और किसी ढंग से कपड़ों में सौ रुपये भी छोड़ गई।

माई कपड़े देखने लगी तो उसने कह दिया कि पीछे देखियो, जब मैं चली जाऊं। बच्चों को जब कपड़े पहनाना चाहा, तो उसमें रुपये निकले। चार पांच जनी गिनने लगीं। गिनती कहां आती थी। बनिये को बुलाया तो पूरा सौ रुपया। देने वाली तो जा चुकी थी। यही समझा कि यह सब कुछ तो राम ने भेजा। और भी हर्ष में आकर बुढ़िया उस सन्त के सत्संग में गई। बच्चों और बहुओं के कपड़े भी उस दिन साफ थे। साधू के पूछने पर कहा कि जो चर्खा राम-नाम धुन के साथ कातती हूँ और राम के नाम का सहारा जो तुम्हारे से मिला है यह उसी का चमत्कार है। अतः मनुष्य को सहारा होना चाहिये। सहारे से भाग्य बदलते हैं। सहारा न होवे, तो मनुष्य लोथ के समान पड़ा रहता है।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक 25.11.1958,
समय अपराह्न 3.30 बजे

❑❑

अंतवाद

साधना-सत्संग से जो सज्जन अपने घरों को जाते हैं, उनमें यह तो है ही कि वे अपने कार्य नियम से करते हैं। वे सब कार्य करते हुए जाप का करना बनाये रखते हैं। वास्तव में व्यक्ति जब साधना करे और उसके स्वभाव में बात बसे, तो ही समझना चाहिये कि साधना का लाभ हुआ।

हम कोई बहुत वर्णन भी नहीं करते फिरते, न ही किसी पत्रों द्वारा ही प्रचार किया जाता है। पर शुभ बातें सहज से फैलती हैं, ऐसा यह होता है। अमृतवाणी माहात्म्य या इसके संबन्ध में बहुत बोलना— ऐसी बात की नहीं जाती। ऐसे प्रचार से इस बात को लाभ नहीं है। पर अमृतवाणी का पाठ वे भी करते व पढ़ते हैं जो मुझसे मिले भी नहीं हैं। इस युग की रीति प्रचार की है। वह राजनीति के हिसाब में ठीक, पर अध्यात्मवाद के लिये यह कभी पिछले युगों में भी बरती नहीं गई। बहुत बोलें या पत्र कोई निकालें, तो जिन बातों को लोग नहीं जानते उनको भी बोलना पड़े।

अच्छाई यदि बस जावे, तो अपने आप फैलती है। अध्यात्मवाद गणित-शास्त्र के समान है क्योंकि यह सभी देशों में एक जैसा है। शब्दों के नाम यद्यपि भिन्न हों, पर परिणाम एक जैसे हैं। अध्यात्मवाद काल्पनिक बात नहीं है। गणित-शास्त्र में यदि एक अंक ओझल करने से एक भूल हो जावे, तो वह अन्त तक जाती है।

बहुत लेख निकलने लगें, तो वह सन्तवाद नहीं रहता। इसमें अर्थवाद आ जाता है। वर्णन करने वाला बड़ा सिद्ध होकर बोलता, फिर उसमें अभिमान आ जाता है। मेरे एक मित्र थे। वे लाहौर में रहा करते। धोती, नेति आदि योग साधन सिखाया करते। हरेक से उसकी अनुभूतियां पूछते। समझो, मैं पूछने लगूं तो कौन कह दे अपनी अनभूतियां या त्रुटियां! इससे व्यवहारिक मन और मायाभरी वृत्ति खुल जाते हैं। इसलिये सन्तों ने प्रभु के गुण ही गाये हैं, अपनी बातें कम कही हैं। योग पर भाषण होते हैं, पर वे अधिकतर रोग ही होते हैं। प्रिंसिपल ने किसी से कहा कि योग पर बोलो।

वहां संस्कृत की बड़ी शिक्षा थी। तो यही कहा, अपनी रीति से कहूँगा। एक तो है अन्य पुरुष (Third person) वाली रीति-जैसे जो लोग अनुभव करते हैं, उन को ज्ञान है। पीछे प्रिंसिपल ने व्याख्यान के पश्चात् यही कहा कि उसने किताबों में भी ऐसे ही पढ़ा है। विद्यार्थियों ने भी वैसा ही कहा। साक्षी दूसरे की भी होनी चाहिये। आप एक ऐसे पैदा हए, ऐसा क्यों कहो ? वे प्रिंसिपल भी दूसरे की साक्षी से बोले। तो मुझे कहना यह है कि योग-सिद्धि सदा वर्णन से गुप्त ही रही है। गुण ही गाये हैं। पर अभी तो मैं यही कह रहा हूँ कि इस नास्तिकता के यौवन युग में संतवाद सबसे उत्तम साधन है। संस्थाओं आदि में तो पाखण्ड भरा पड़ा है।

यदि आप बनावटें बनाते हैं, तो आप ने साधना को समझा नहीं। एक मेरे मित्र थे। उन्होंने अपना एक आश्रम भी बनाया हुआ था। एक मित्र उन को मेरे पास लाये। मैंने उनकी आवभगत की, जितनी मेरे से हो सकती थी। मेरी यह रीति है कि मैं जहां ठहरा हुआ होऊं, उन पर मेरे कारण बोझ न पड़े, यह मैं ध्यान रखता हूँ। मेरा मिलना निष्काम भाव से था। जो मेरा मित्र लाया था, वह उनसे प्रभावित भी किसी प्रकार हुआ होगा। उनका बोलना भी बड़ा अच्छा था। उन के साथ एक शिष्य रहता था। उन्होंने पैसा मांगना था। पहले थोड़े लिये भी, पर फिर अधिक की मांग की, तो इस शिष्य ने कहा, 'आप जानते नहीं कि वे बहुत बड़े महात्मा हैं। मैंने बीच में आँखें खोलीं, तो जहां वे बैठे थे वहां श्री कृष्ण दिखे। वे कृष्ण बन गये। इनकी तो महिमा अपार है। यह तो परमेश्वर का रूप हैं, ऐसा लोग कहते हैं।' आज भी छलिये आदमी कृष्ण बनकर रहते हैं। हज़ारों रुपये चढ़ावा चढ़कर उनके पास आते हैं। यह तो सब लोक दिखावा है।

मुझे कहना यह है कि वह सन्त अब परलोक सिधार गये। शिष्य कहते, उन्होंने तो वर्ष भर पहले कह दिया था। मरने का तो उनको पहले ही पता था। वे आपरेशन थोड़े ही कराने गये थे। वह तो आपरेशन के बहाने डॉक्टर को पैसे दिलवाने थे। आपरेशन टेबल पर उनका मरण हुआ। यदि कोई साधक समझने वाला न हो, तो कहना व्यर्थ हो जाता है। देश के देश रंगे हैं, नास्तिकवाद में। एक अच्छी संख्या के भारतवर्ष जैसे पिछड़े देश में

यह सन्देश देना बड़ा कठिन है। जहां राजनीतिज्ञों से कुचला हुआ, वहां पर रीति-रिवाज़ से भी दबा हुआ, तो ऐसे देश में राम-नाम का सिमरन आश्चर्यजनक है। अब मैंने इस बात को आगे नहीं बढ़ाना है–यही कहना है कि साधना करने वाले जन में साधना होनी चाहिये।

साधना स्वयं करने का महत्व है। यह क्या कि किसी व्यक्ति के लिये देवी पाठ करने वाले पाठ करते रहें और यजमान बम्बई में व्यापार करता रहे और उसी प्रकार झूठा-व्यभिचारी बना रहे। देवी का आराधन करना यह ऊँची बात है। ठीक भी वही रहते, जो स्वयं अपनी साधना आप करते हैं। चोला जो पाप से काला भरा हुआ है, वह स्वयं पाठ से धोना होता है। अपने कल्याण के लिये आप स्वयं जप करो। यदि पत्नी पति के लिये पाठ करे, तो स्वतः वह उसकी सच्ची हृदय की भावना से पाठ होता है। टेलीफोन पर किसी व्यक्ति से बात करनी हो तो स्वयं बात करनी चाहिये। नौकर आदि से वैसी ही बात नहीं हो सकती है। यथा– एक व्यक्ति ने उर्दू में सन्देश लिख कर किसी और से अपने सम्बन्धियों को दिलवाया कि मुझे बुखार हो गया है। मैं मरी (हिल स्टेशन) जा रहा हूँ और सन्देश देने वाले ने सन्देश दिया कि मुझे बुखार हो गया है, मैं मर ही जा रहा हूँ। जिसे पाकर उसके सम्बन्धी संतप्त हो उठे।

धोबी के कपड़े धो देने से अपना अन्तःकरण तो नहीं धुलता। जो लोग स्वयं साधना करते हैं, उन को बड़ा लाभ होता है। प्रार्थनाकर्ता के अन्दर विश्वास की दृढ़ता उत्कृष्ट होनी चाहिये। उसमें लचक न आये। जप करना यह प्रार्थना ही है। यदि संशयशील मनुष्य हो जावे, तो भगवान का गीता में यह कहना है कि– ' संशयशील मनुष्य का न यह लोक, न परलोक और न जीवन का सुख।'

पाकिस्तान ने अमेरिका से हथियार मंगवाये, भारत ने पैसे, दवाइयां आदि। हथियार आ गये पाकिस्तान में और दिल्ली में बैठा हुआ मनुष्य कांपे– क्योंकि यह भ्रम, भय कि पाकिस्तान ने मिसाईल छोड़ा, तो हम क्या करेंगे ? आजकल हथियार ऐसे कि सौ वर्ग मील को एकदम साफ कर दें और जहां बीसों वर्ष कोई जीवित न रह सके। प्रतिदिन प्रयोग करते रहते हैं, फिर भी

मनुष्य भली प्रकार रह रहा है।

तो जिसे भगवान में संशय हो जावे, वह आराधना कैसे करे ? इसलिये विश्वास की मात्रा जितनी अधिक, उतनी साधना में सफलता मिलती है। पूरे विश्वास से राम-नाम सिमरन करे, तो यह बिलकुल सत्य है कि काया पलट दे। यह समझ लेना चाहिये। यह दूसरों में कहने की बात नहीं। हम चैतन्य वस्तु हैं और भगवान सर्वत्र विद्यमान है, यह विश्वास हो।

साधना से हम पर कृपा का अवतरण होता है। यह साधना आवे तो साधक को अवश्यमेव लाभ होता है। आध्यात्मिक लाभ अवश्य होता है। सांसारिक लाभ भी होता है। हम आध्यात्मिक लाभ को मुख्य मानते हैं। गन्ने की खेती के साथ ईंधन तो पैदा होता ही है। खेत में बोने से गेहूँ तो होता ही है, पर चारा (तूड़ी) भी साथ हो जाता है। तो इसी प्रकार भगवान की बातें मुख्य हैं। बाकी इन्द्रियों का भोग है। ये तो अपने आप भी होते हैं। पूरा विश्वास करें, पूरी भावना के साथ साधना करें, तो वह बड़ी फलदायक है।

साधना-सत्संग देवत-नांगल,
दिनांक 27.12.1958,
समय प्रातः 11.00 बजे



योग-साधन में 'अभ्यास'

पाठ याद न होने पर बारम्बार अभ्यास करने से स्मृति तीव्र हो जाती है और पाठ याद हो जाता है। मन को शान्ति न मिलने पर जप अधिक करना चाहिये। केवल अल्प समय आराधन करने वालों को शिकायत करने का अधिकार नहीं है। गुरु पर आश्रित न हो कर अभ्यास आवश्यक है। साधनशील बनकर भगवत्-कृपा का पात्र बनो। सत्य संकल्प से अनेक चमत्कार होते हैं, किन्तु बली(संत) ऐसा कहते नहीं।

स्वयमेव स्फुरणा से बली (संत) कुछ कह दे वह बात अलग है, किन्तु स्वयं चाहकर कुछ आशीर्वाद की मांग करना ठीक नहीं। कामना पूर्ण होने के लिये भी श्रम आवश्यक है। व्यर्थ की भावना ठीक नहीं। अल्प प्रयास से अधिक फल की चाह करना ठीक नहीं है। मौखिक जाप भी बहुत लाभ करता है।

कुछ देखने की कामना बाधक होती है। वैसे यह सब राम-लीला में सम्भव है। राधा-स्वामी मत आदि में दशमद्वार खुलने, दिव्यदर्शन आदि की बात बताते हैं। किन्तु ये भी तो प्राकृतिक वस्तुओं का ही दर्शन हुआ। कोई आत्मलीनता नहीं और न शान्ति ही। अहंकारी विनीत बन जाये, यह क्या कम आश्चर्य की बात है ? आकाश में उड़ान तथा पानी पर चलने के लिये योग-सिद्धि का क्या करना ? ये सब लौकिक क्षेत्र में भौतिक-विज्ञान ने उपलब्ध कर दिये हैं।

सच्चा योग तो ब्रह्म-संस्पर्श भागवत योग है। लय अवस्था सबसे ऊंची स्थिति है। देखना, सुनना प्रवृत्ति है, जो अन्तिम नहीं है।

दिव्यदर्शन देखना, दिव्य-वाणी सुनना, कोई विलक्षण बात नहीं है। हमारे यहां भी कईयों को रूप-दर्शन होते हैं। यद्यपि हमारे यहां नाम दिया जाता है। तथापि कल्पना रूप की नहीं करनी चाहिये, कृपा मांगनी चाहिये। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की चाह न करके कृपा मांगते रहें। अवतार स्वरूपों का दर्शन कभी-कभी हमारे यहां साधकों को होते हैं, किन्तु स्वयमेव। कामना से नहीं, चाह से नहीं और कल्पना से नहीं।

नाम-आराधन सब शास्त्रों में बताया गया है। भक्त की कामना मुक्ति की नहीं होती। मुक्ति पर ज़ोर बौद्धों ने दिया। मुक्ति तो भक्त को आप ही प्राप्त हो जाती है।

निरालम्ब बाल-भाव से भगवान को पुकारो, जैसे प्यास और भूख से त्रसित बालक मां को पुकारता है। यह न सोचो कि तुम पापी-तापी हो, तुम्हारी भगवान प्रार्थना नहीं सुनेंगे, बल्कि भगवान तो मां के समान हैं। हज़ारों अपराध करने पर मां कुपित नहीं होती। उसी प्रकार भगवान भी अपने पुकारने वाले पर कुपित न होकर दौड़कर गोद में उठा लेते हैं।

अध्यात्म-विद्या में वैज्ञानिकता पूर्णरूप से है। अनुभव करने पर शास्त्र-वर्णित बातें सत्य मालूम होती हैं। रामोपनिषद् कहता है कि राम-नाम के शब्दोच्चारण से कल्याण हो जाता है। एक बार के कहने से मन-मुक्ति हो जाती है। उसके लिये भावना भी ऊँची चाहिये। भाव-परायण होकर जप करने से आत्मा ऊँचे लोकों को स्पर्श करता है।

अजपा जाप पर कबीर आदि ने ज़ोर दिया है। प्रयास न करने पर मन की आन्तरिक जप की अनुभूति अजपा-जाप कहलाती है। 'आगे क्या होगा' यह पूछना नासमझी है। ऋद्धि-सिद्धि की चाह नहीं करनी चाहिये। भगवत्-प्राप्ति हो जाने पर सब स्वतः प्राप्त हो जाता है। अजपा-जाप से शान्ति प्राप्त करनी चाहिये। व्यर्थ का मानस रोग 'आगे क्या होगा' ऐसी शंका पैदा न करो। दिव्य-दर्शन तथा दिव्य-वाणी की चाह न करो। वे स्वयं आयेंगे और जब आयें, तो भगवान को धन्यवाद दो और अपने आपको धन्य मानो।

यह युग संघर्ष का है। चरित्र में निर्मलता नहीं है। मोह-ग्रस्त जीवों को यदि कोई इस प्रकार की कृपा का अनुभव हो, तो अपने आपको धन्य मानें। अधिकाधिक जप करने से मन निर्मल निश्चय रूप से हो जायेगा। मन, वचन, कर्म से अपने आपको बदलने के लिये जप की मात्रा बढ़ाओ।

साधना-सत्संग,
हरिद्वार, अप्रैल, प्रातः 11.00 बजे

□□

आत्म-जागृति

पिछले दो कथनों में आत्म-भाव का वर्णन हुआ। जितना अधिक भाव हो, उतना ही मिलता है। जितना कोई घटिया समझे, उतना ही वह नीचे गिरता है। उपनिषदों में आया– 'यदि तू आत्मा को नहीं मानेगा, तो तेरा आत्मा रोयेगा।' माया को जो ऊँचा मानता है, वह क्या ? मेरा आत्मा बड़ा है, ऐसा भाव हो, तो फिर मनुष्य अपना अपमान कभी न करे। मेरा क्या स्वरूप है ? मैं मिट्टी का बना हूँ, ऐसा कभी न सोचे। आत्मा अमर है। चैतन्यस्वरूप है। यह पाप को दबाने में समर्थ है– मेरे आत्मा की चमक से, झलक से मेरा स्वरूप जगमगा उठेगा। इस प्रकार शक्ति बड़ी प्रबल होती जायेगी। 'वह मेरा आत्मा इतना सूक्ष्म है, जितना सरसों का दाना, लेकिन वह सूर्य से भी महान है।' यह बात ज़रा कठिनाई से समझ में आती है। यदि हम आत्म-तत्त्व न हों, तो यह जगता-जग तो सुन्न है। चांद, सूर्य इनकी महानता हम बनाते, स्थिर करते हैं। ज्ञान उसमें (आत्मा में) है– वह पृथ्वी और देवलोक से भी महान है। आत्म-स्वरूप को मनन करना, मनन करना, मनन करना। यह बड़ा आवश्यक है। इसी देव (आत्मा) के आसन (शरीर) की रक्षा प्राण करता है, अन्न करता है और स्थान करता है। मन में अगर हीनता पैदा हो जाये, तो फिर आदमी गिरता है। आत्मा पाप-ताप को दबा सकता है। यह भावना आगे बढ़ने की है। यह भाव है तो गिरी हुई जाति को उठने का अवसर देता है। इस प्रकार माया के अन्दर मनुष्य भी बहुत या अनन्त काल से दबा हुआ है। अपने को तन मानता है। भक्त, ज्ञानी युग-युग में यह कहते आये हैं कि तुम आत्मा हो। आत्म-तत्त्व प्रबल है। इसको समझो, इसको जगाओ।

बहुत चिर की बात है कि एक साधु ने शेर को सिधाया। उसे वह अपने साथ ले जाता। रेल का कम्पार्टमैन्ट रिज़र्व कराता, तभी उसे साथ ले जाने की अनुमति मिलती। एक बड़े स्कूल के अहाते में हज़ारों व्यक्तियों के बीच मैंने देखा, शेर भी साथ कुत्ता भी साथ और यहाँ तक कि कुत्ता उस शेर के साथ कलाबाज़ियाँ करता था। सैकड़ों व्यक्तियों में वैसे ही भेड़-बकरी की तरह बैठा था। भला कारण क्या ? क्योंकि वह अपने आप को भूल गया था। वह अपने स्वभाव को भूल गया था। लाहौर में एक आदमी ने भी उस साधु को बुलाया। व्यापार चमके इसलिये ऐसा करते हैं। रात को वहाँ घोड़ी देखकर शेर को अपना स्वरूप याद आ गया और लगा उपद्रव करने और डर से घोड़ी नाचने लगी। फिर साधु ने ठीक किया। उसके भाव को मारा गया। वैसे चीता भी आ जाये तो कुत्ते भौंकते हैं और वह उठाये जाते हैं। शेर तो चीते से कहीं अधिक बलवान है। इसी प्रकार माया में शेर की तरह मनुष्य भी भूल में पड़ा हुआ है। भक्ति-मार्ग में इस भूल को दूर करके आत्मा को जाग्रत करना ही बड़ी बात है कि तू चैतन्य है– अवतरित वस्तु है। बाहर की बातों से मैं आपको बताता रहा हूँ। तो मैं कह रहा था कि मन भी इसका पालने वाला है। वाद-विवाद करने वालों का आत्मा नहीं जागता। जैसे नशा करने से बुद्धि मोहित होती है, वैसे ही सिमरन– जप करना, साधना-सत्संग में आना, यह मन को जगाने का कारण है। आत्मदेव के सिंहासन (मस्तक) को यह मन जाग्रत करता है। ऐसा हो जावे, तो बड़ा प्रबल, नहीं तो मिट्टी का ढेर भी नहीं कहते हैं। यह जो नगरी है वह शरीर है। अब जिस नगरी का वर्णन हुआ, अमृत से घिरी नगरी को जो जानता है, वह बहुत श्रेष्ठ है। अमर जीवन की यहाँ ही झलक होती है। जब समुद्र उत्पन्न हुआ तो देवताओं ने मंथन किया तो उसमें मोती निकले और फिर अमृत। पहले तो जल की सूरत में था, लेकिन था तो मायामय ही। उसमें विष भी निकला और अमृत भी। अमृत असुरों से छीनकर, पान करके सुर अमर हो गये। सृष्टि में रहने वाले इस माया में ही जीवन निकालते हैं। नहीं तो असुरों की तरह नशे में मतवाले बने रहें। इसी जीवन से ज्ञान निकलता है। यह अपने आपको समझना और जानना चाहिये। महात्मा ने श्लोक बोल कर कहा 'जैसे मूंज के पूले से आदमी एक-एक तिनका अलग निकालता है, वैसे ही इस जीवन से आप माया को निकाल कर अपने को आत्मा समझना, जानना।' यह सत्संग का और धार्मिक कार्य का काम है।

अमृत से घिरा हुआ हमारा यह तन है, जो यह जानता है, वह ज्ञानी है– उत्तम सम्बन्ध यह बनाते हैं। अभी यह गा रहे थे कि प्रह्लाद को बचाया .... ग्राह से घिरे हुए गज को बचाया। यह तो उस युग की बातें हुईं, न जाने भगवान ने किस-किस को आसरा दिया ? यह तो परमेश्वर की लीला है। वह सूक्ष्म रूप में होती है। मनुष्य को परित्राण प्राप्त होता है। मनुष्य के निस्तार के लिये कभी-कभी ब्रह्म स्वयं खड़े होते हैं। वस्तु हो, तो फिर उसका आना भी होता है अर्थात् परमेश्वर है, तो वह प्रकट भी होता है। यह केवल कल्पना ही नहीं है। प्रकट न होगा, तो वह (भक्त) समझता कि यह तो माया है। मैं निवेदन कर रहा था कि पण्डितों का वर्णन ही पर्याप्त नहीं, बल्कि परमेश्वर का प्रकट होना आवश्यक है।

एक सज्जन हमारे किसी सत्संग में था। उसने अखण्ड-जाप में बैठे-बैठे यह समझा कि मेरे सामने सूर्य आ गया। वह समीप आता चला गया, फिर कृष्णजी प्रकट हुए। उन पर सूर्य माला जैसा बन गया। भक्तों को ऐसी बातें प्रतीत होती रहती हैं। मुझे कहना यह है कि आत्मा है, तो कभी उसका प्रकट हो जाना आवश्यक है। यह रीति है। मानस-बल से आत्मा का रूप तन से बाहर भी आता है। ब्रह्म स्वयं मनुष्य को उठाते हैं, कदाचित् ऐसा होता है। किसी का भाव न होवे, तो संत के उपदेश से उसको प्राप्त होता है। संतों का, भक्तों का होना सदा ही अच्छा है। भक्त का रूप कभी कैसा और कभी कैसा ही होता है! समय के प्रभाव में लोग वेशों में बांधते हैं। बूढ़े भी होते हैं, जवान भी। वह कहीं भी रहे, जिन का अन्तःकरण शुद्ध, वह हर जगह अच्छे होते हैं। परमेश्वर की पूजा के सभी मार्ग अच्छे हैं। बंदूक कंधे पर लिये अपने देश की सेवा के भाव वाले को प्रकट हो जावे और मस्तक पर तिलक वाला खाली रह जावे। व्यक्ति को उन्नत करने में, ब्रह्म को जानने वाले लोग सहायता देते हैं। उसमें चेतनता जग जाती है। उनके सत्संग से वहाँ रहकर बहुत शीघ्र उन्नति करता है। संगति समीप की भी होती है और दूर की भी। तीव्र भावना का मनुष्य सौ मील दूर हो, तो भी वह समीप है। पॉवरफुल रेडियो की आवाज़ दूर तक जाती है। पहले जालंधर रेडियो की शक्ति कम थी। अब फगवाड़ा के पास में बड़ा लगा है। अब दिल्ली के रेडियो-स्टेशन पर वह बोझ नहीं रहेगा। प्रबल स्टेशन की आवाज़ आती है। वह (रेडियो-स्टेशन) प्रबल कैसे होते हैं ? वह तो वे जाने। जितना किसी का आत्मा परमेश्वर के समीप होगा और फिर अन्तःकरण की मशीन जितनी ठीक होगी, उतना ही वह ठीक होगा। प्रेमी में कोई अन्तर नहीं हुआ करता, वह पास-पास ही रहा करते हैं। जो अपने इस तन को समझता है कि अमृत से घिरा है, अमृतमयी है, उतना ही वह परमेश्वर के समीप होता है और परमेश्वर भी उस पर प्रकट होता है और संत भी उसको सहायक होते हैं।

राम-नाम आराधन करते हैं, यदि खाली रटने की ही भावना हो तो भी उसका बड़ा लाभ होता है। इसका भी मैं निरादर नहीं करता, लेकिन प्रबल भावना हो, तो फिर अधिक लाभ होता है और यह नाम पाप-ताप को कील देने वाला है। मंत्र में यह शक्ति है। जितना यह निश्चय हो कि यह प्रबल है। तो उतना ही लाभ और उतना ही उत्तम, उतना ही अधिक मंत्र काम करता है। उतनी ही उसकी शक्ति और उस पर उतना ही शब्द साफ प्रकट होगा। मंत्र बहुत अच्छा होना चाहिये। यह विश्वास हो कि शब्द बहुत अच्छा है, तो उसके देवता की धुन आने लग जाती है। यह मार्ग विश्वास का अधिक है। पूर्ण विश्वासी हो, तो वह अद्भुत शक्ति को पाता है। जितनी मंत्र के देवता की अवधारणा, उतना ही लाभ, उतनी ही कमाई। संशय आया, तो बिगाड़ आया। रेडियो की आवाज़ साफ तभी आती है, जब ठीक बिन्दु पर सुई हो। जो शब्द सुनना हो ठीक उसी पर सुई जानी चाहिये। इस प्रकार एकाग्र-वृत्ति आये। अन्तःकरण का यंत्र अच्छा हो, ऐसा न हो कि संशय की आवाज़ आ जाये। ऐसा ही समझो कि बुद्धि की सुई ठीक न हो, तो पता नहीं कौन उस पर आ जाये ?

आप के आगे यह वर्णन हुआ कि यह विश्वास का मार्ग है और साथ ही यह भी कि अमरपुरी का समझना है। मनुष्य देह में ब्रह्म प्रकट होते हैं, ब्रह्म-भक्त भी उसको उत्तम जीवन देवें।

साधना-सत्संग हांसी,
दिनांक- 27.12.1954,
समय- अपराह्न 3.30 बजे ❑❑

उपदेश का अनुशीलन हो

प्रत्येक अपने आपका साक्षी है कि उसने कितना उन उपदेशों का अनुशीलन किया ? यहाँ कर्तव्य बुद्धि कम है। विदेशों में जब किसी का विवाह होता है, तो वह अपना कर्तव्य ज्ञान पहले करता है। किन्तु यहाँ वैसा होता नहीं। भेड़-चाल अधिक है। सभा में चरित्र-निर्माण होना चाहिये। राजभाषा नियमित होनी चाहिये। भारत में उसकी कुछ कमी है। मानस-साधना में विश्वास और सत्य का प्रमुख स्थान है।

आदमी अपना कर्तव्य सोचे और करे। दूसरों की निन्दा नहीं करनी चाहिये। पर-निन्दा में समय नष्ट नहीं करो। चरित्र-निर्माण होना चाहिये। आदमियों को तोलने का तरीका उनके गुण होना चाहिये, जातीयता नहीं। चुनाव के समय में जातीयता के आधार पर बात होती है। ऊँचा बोल नहीं बोलना चाहिये। जैसे मलेरिया बुखार फैलता है, तब अनचाहे लोगों को भी सताता है। इसी प्रकार कभी-कभी साधक में भी निन्दा आदि दोष संगत से आ जाते हैं।

'वह सब से घटिया है, जो अपने आप को परमेश्वर मानता है और जो उनको परमेश्वर मानते हैं, वे भी घटिया हैं।'

भगवन्नाम में परम विश्वास हो। कपड़े की रग-रग में जब रंग न जाये, रंग चढ़ता नहीं। इसी प्रकार हमारे रग-रग में राम-नाम का विश्वास दृढ़ हो। ऐसा कभी संशय न आये कि राम मेरा सहायक नहीं। नाम-आराधन करने से विश्वास बढ़ता है।

इष्ट में धारणा तीव्र हो। सूरदास, तुलसी के एक इष्ट कृष्ण, राम। वे अन्य को शीश नहीं झुकाते थे। एक में अनन्य निष्ठा होनी चाहिये। वृन्दावन का नचैया इस राम-चरित्र को जीवन में कैसे उतारे ? इष्ट को सर्वोपरि माने, बहुत साधन न करे। अन्यथा पहले से लाभ नहीं होगा और दूसरा भी नहीं मिलेगा। अतः प्रथम साधन को ही पकड़े रहो।

□□

साधक कैसा होना चाहिये?

('उपासक का आन्तरिक जीवन' पर श्री स्वामीजी का निरूपण)

(1)

जो उपासना करता है, वह उपासक कहलाता है। राम नाम के उपासक को उपासना जीवन का एक अंग बना लेना चाहिये। व्यक्ति चाहता तो बहुत कुछ है, परन्तु उपासना, साधन, जप इत्यादि को स्थान थोड़ा देना चाहता है। तो फिर लाभ किस प्रकार हो सकता है ? जैसा माल वैसा दाम। जब भगवान के धाम को जाना अखरता है और चाहता है कि भगवान की कृपा बहुत हो, परन्तु कर्म तो बहुत कम किये हैं– किस प्रकार महाराज का धाम मिल सकता है ? साधना को जीवन का एक अंग माने। दैनिक कार्य में राम-नाम को मुख्य स्थान देना चाहिये, गौण नहीं बनाना। गौण बनाना उचित नहीं। जो समय भगवान के लिये नियत किया हो, उसे साधारण काम में नहीं लगाना चाहिये। नाम-जाप को मुख्य स्थान देना होगा। साधक अपने अनुभव से कहते हैं। प्रतिदिन जाप दस सहस्त्र (दस हज़ार) से भी अधिक करें। जाग्रत-चैतन्य मन से जाप करें। जिस प्रकार हमारे यहाँ नाम दिया जाता है। यह रहस्यवाद है। जैसे बीज में वृक्ष छिपा हुआ होता है। समय पाकर स्फुरित हो जाता है। मंत्र लेने और देने की विधि में बड़ा महत्व है। राम-नाम जाग्रत-चैतन्य मंत्र है, जिसके पीछे शक्ति होती है और जो साधक के अन्तःकरण में स्थापित किया जाता है। जो शाखा मरी हुई हो वो नहीं उगती। जीवित शाखा ही लगती है और फलीभूत होती है। साधक मंत्र का आराधन करे– यह सुखद, सुफल, सुखदायक है। रस बरसता है– बड़े भाव उमड़ जाते हैं। साधना-सत्संग में प्रथम दिवस से ही पूरी भावना से आना चाहिये। छुट्टियाँ रिज़र्व (सुरक्षित) रखनी' चाहियें। गरीब का लड़का मेले पर जाने के लिये पैसे एकत्र करता है। वैसे ही साधक को छुट्टियाँ एकत्र करनी चाहिये। साधना-सत्संग में आने के लिये, जिन्हें चाव होता है, वह पहले से छुट्टी आदि का प्रबन्ध कर लेते हैं।

विचार साधक के निर्मल होने चाहियें। उसके मन में भगवान का पूरा निश्चय हो— निश्चय पक्का हो। सिफारिश करना बड़ा दोष है। न्याय को लचक में नहीं लाना। जिन्होंने दुष्ट-कार्य किये हों, उनको भगवान से सिफारिश करके बचाना ठीक नहीं। साधक आराधन करता है। वह मंत्र का जाप करते हुए कई बार प्रतीत करता है कि मंत्र का अधिष्ठात्र मेरे समीप है— समीपता होने की भावना रहे। साधक को यह समझना चाहिये कि भगवान मेरे समीप है, मैं अकेला नहीं हूँ। ऐसी दृढ़ भावना होनी चाहिये। किसी साधु से किसी ने कहा कि तू अकेला है, साधु ने कहा 'नहीं!— मेरे पास भगवान हैं। मेरे पास आँखें हैं। मैं उसको हर समय अपने समीप देखता हूँ। तेरी आँखें नहीं, तू नहीं देख पाता।' वह मेरे समीप मेरी सहायता, सुरक्षण करता है। मेरे साथ तो सदैव भगवान रहते हैं। ऐसे विचार साधक को सदैव बनाने चाहियें और ऊँची भावना रखनी चाहिये कि राम मेरे साथ हैं और मेरे संरक्षक हैं।

साधना-सत्संग, ग्वालियर
दिनांक- 5.11.1955
प्रातः 11.00 बजे

(2)

दिन में कई बार सिमरन करें कि मैं अकेला नहीं हूँ। मेरा आदिदेव मेरे साथ है, मेरा संरक्षण करता है। यह भावना सुदृढ़ होनी चाहिये। कभी भी संदेह न हो कि वह दूर है। अंदर अंकित हो जावे कि वह दूर नहीं है। सम्भव है वह न होवे, ऐसा विचार नहीं करना। श्रद्धा संशय-रहित बनी रहनी चाहिये। जिसका प्रभु में अटल विश्वास है, उसके कार्यों में कठिनाइयां अपने आप दूर हो जाती हैं। आध्यात्मिक मार्ग, अपने आप खुलते चले जाते हैं। पथ-प्रदर्शन होता है। यह आवश्यक चीज़ है। पथ-प्रदर्शक का कार्य है कि भगवान की राह पर चलाना, फिर भगवान अपने आप ज़िम्मेदारी ले लेते हैं। बिजली घर से सम्बन्ध जोड़ देना, यह मैकेनिक का कार्य है। जब मैकेनिक ही बिजलीघर हो जावे, तो यह बड़ी भूल है। हिन्दुओं में वाद बढ़े हैं। बिजली के तार लगाने वाले को बिजली घर नहीं बनना चाहिये। यह आमतौर पर होता

है। पन्थ पैदा हो जाते हैं। व्यक्ति उलझा रहता है। भगवान को पहचान लिया जाये, तो आध्यात्मिक मार्ग खुलता है, वह स्वयं पथ-प्रदर्शक है। प्रतिदिन श्रद्धा के साथ जप करने से मानसिक बल बढ़ता है। मानस-बल, बौद्धिक-बल, संकल्प-बल और भक्ति-बल बढ़ जाते हैं, प्रबल हो जाते हैं। नाम का विचार शुभ का संचार करने में समर्थ हो जाता है। नाम का चिंतन करने से बाहर शुभ प्रकट होता है— जैसे पुष्पों में सुगन्ध। प्रबल तरंग उत्पन्न हो जाते हैं। आस्तिकता के भाव आकर फैल जाते हैं, नष्ट नहीं होते। विचारों से प्रचार होता है। विचार सन्मार्ग के होने चाहिये। प्रबल संकल्प से शुभ का संचार होता है। निस्वार्थ संकल्प होने से दूसरे का भला होता है। जितना ऊँचा उतना अलग रहना— यह एक बीमारी है। सेवा के क्षेत्र में आना चाहिये। अकेले नहीं रहना, जंग आ जाता है। धर्म पर काई छा जाती है। गिरावट आ जाती है। भक्ति है, पर भक्ति का बोध नहीं। काम करने से भक्ति उत्पन्न होगी। सेवा करनी चाहिये। उससे बल आता है। शक्ति का जितना उपयोग करोगे, उतना ही बल बढ़ेगा— बोध होगा। दस में चर्चा करना धन को बाँटना है। कैद करके नहीं रखना। शक्ति दूर के मनुष्य में श्रद्धा भक्ति से स्फुरित हो जाती है। संकल्प बहुत दूर तक जाता है। शुभ का चिंतन करना, यह भी प्रचार है। गुरु सहायक होता है। तार से विचलित नहीं होना, यह बड़ा अपराध है। प्रथम बैठक में आत्मा जग जाता है, उन बातों को अनुभव करते हैं, जो बरसों साधना से प्रतीत नहीं होती। भगवत-कृपा होती है। जिन व्यक्तियों की ग्रहण शक्ति बड़ी होती है, बैठते ही भगवत-कृपा को ग्रहण कर लेता है। ग्रहण करने की शक्ति जिसमें होती है, उसको ठीक बात दी जाती है। जाग्रत व स्वप्न में प्रतीति हो जाती है। उन संस्कारों को ग्रहण कर लेते हैं। नाम के उपासक को विश्वास रखना चाहिये कि नाम की साधना दिन-प्रतिदिन अच्छी होती चली जाती है। शक्ति का जितना उपयोग हो, उतना संकल्प-बल बढ़ता है। संकल्प-बल दूर-दूर तक शुभ संस्कार के बीजों का बिखेर करता है। यह धारणा बड़ा काम करती है। शुभ का संस्कार इस विशाल आकाश में संचारित किया जावे, यह उपासना का बड़ा साधन है। ईर्ष्या-द्वेष से रहित होकर नाम-जाप से लाभ होता है। अपने-आपको आगे करना बड़ा भारी दोष है। नाम में तथा अपने बीच में दीवार खड़ी नहीं

करनी। निस्वार्थ, अपने अहंकार को त्याग करके, कार्य करना और समझना– मैं दास हूँ– अनुभवियों में यही बात थी। दासो अहम्– मैं दास हूँ। तुलसीदास बड़े दास थे और दास ही बने रहे। एक बार भक्तमाल के लिखने वाले नाभादास तुलसीदास के पास गये। परन्तु तुलसीदास किसी कारण न मिल सके। तुलसीदास को जब पता चला तो वह नाभादास से मिलने गये। उनका गाँव यमुना किनारे था। नाभादास ने मुँह फेर लिया। सब को पत्तल परोसे गये, परन्तु तुलसीदास को नहीं दिया और अपने आप परोसने लगे। जब नाभादास तुलसीदास के पास आये, तो कहा– 'तुझे किस पर दूँ?' तुलसीदास जी ने एक साधु का जूता उठाकर कहा– 'इस पर दे दो।' नाभादास गद्‌गद् हो गये। चिपटाकर गले से लगा लिया। यह है– दासपना। व्यक्ति अपने आप को दास समझे और अभिमान बिल्कुल न करे। भले आदमी अपनी तारीफ अपने कानों से सुनना पसंद नहीं करते।

साधना-सत्संग, ग्वालियर
दिनांक- 6.11.1955
प्रातः 11.00 बजे

(3)

जन-सेवा

सेवा का भाव साधक के चरित्र को ऊँचा उठाता है। स्वार्थी को अपने लिये कार्य करने में आनन्द आता है। जन-सेवा करना बहुत अच्छा है। सहानुभूति तथा सहायता से भला होता है। मानव-जगत में अच्छे कार्यों में सहयोग देना चाहिये। उनके लिये हितकर कर्म करना चाहिये। जिनको शांति प्राप्त है, जिनके हृदय में राम-नाम खूब बस गया है, उनको अपने दैनिक कार्यों से समय निकालकर, जन-सेवा के लिये समय देना चाहिये। जो दूसरों को ऐसा कहकर खींचता है– जैसे मैं जबसे भजन करने लगा, मुझमें बड़ा परिवर्तन आ गया। बन्धुओं, पड़ोसी आदि से अच्छा बरतता हूँ। मुझे बड़ी शांति मिली है। यदि आप भी भजन-सिमरन करें, तो आपको भी लाभ होगा। इस प्रकार दूसरों के ऊपर प्रभाव डालना चाहिये। दैनिक साधन से लोगों को एकाग्रता का लाभ हुआ।

व्यक्ति समाज का सुधार करे। यदि साधक को एक या दो मास के लिये एकान्त साधना करने की आवश्यकता हो तो अच्छा है। परन्तु सारी उम्र एकांतवास रहना ठीक नहीं। क्योंकि साधना के साथ-साथ सेवा करना ठीक है। आलस्य, प्रमाद, व्यर्थ क्रियाओं में समय बिताना, इधर-उधर जाना और इस आश्रम से उस आश्रम में जाना, बहुमूल्य समय को व्यर्थ खोना है– यह ठीक नहीं है। जिनको साधना की सिद्धि प्राप्त हो गई है, साधना के रस का आस्वादन किया है, उनको समाज की सेवा में कुछ समय व्यतीत करना उचित है।

कार्यक्रम बनाकर कार्य करना यह एक बड़ा अच्छा तरीका है। जितना समय दे सकता है, समाज की सेवा में व्यतीत करे। भले मनुष्य यदि सेवा करें, तो देश व जाति के जनों का अधिक हित हो जाता है। व्यक्ति का आत्मा निर्मल हो जाता है। तब जो बात निकलेगी वह हितकर होगी। सामाजिक कार्यों की शुद्धि होगी। साधक अपने समय को जितना जन-सेवा में लगायेगा, उतना ही अच्छा है। साधक को, आराधना करने वाले नर-नारी को परोपकार, जन-सेवा आदि कार्यों को राम-सेवा और राम-पूजा ही समझना चाहिये। इससे समाज-सेवा में रुचि हो जाती है। मनुष्य (साधक) अपने सुकृत कर्मों से उस परमेश्वर को पूज कर सिद्धि प्राप्त करता है। यह श्रीराम का आराधन है। देश, बन्धुओं, अड़ोस-पड़ोस को सहायता देना, यह राम-पूजा है। साधक उस परमेश्वर को अपने कर्मों से पूजकर सिद्धि को प्राप्त करता है। उपासक के लिये सेवा राम-पूजा की सामग्री है। दूसरों को सत्संग के लिये उत्साह देना, यह भी सेवा कर्म है। वरना साधक स्वार्थी हो जाता है। काम करते रहने से शक्ति बनी रहती है। अपनी भक्ति का प्रकाश दूसरे पर पड़े। जीवन में फीकापन कितने समय से बढ़ रहा है, उसको राम-नाम के प्रभाव से निकालना, भक्तों का विशेष कर्म है। अपने विचारों का विस्तार करना, जो पिछड़े हुए हैं उनको उठाना, दुःखी-दीन की सहायता करना, समाज में शुभ कर्मों की वृद्धि हो– यह सब काम राम-पूजा है। हमें दास बनना चाहिये। उपासक के सब काम ध्यान, सिमरन आदि सहायक हैं और श्रीराम के आशीर्वाद के अवतरण हैं। साधन मंडली में साधक दूसरे साधकों का ध्यान रखें। उसको दूसरों में बाँटें। याद रहे कि बाँटने से कम नहीं होगा। कीर्तन इत्यादि अच्छे याद हो जावेंगे। गीता के श्लोकों का दूसरों में

प्रचार करना चाहिये। जन-सेवा साधक में आनी चाहिये। विस्तार करना, फैलाना, अच्छा होता है। जन-सेवा के कार्यों में भाग लेना चाहिये।

सेवा करने वाला निष्ठावान हो तो कार्य सफल होता है। संत लोग बड़े काम करने वाले होते हैं, जो अपने भजन-पाठ को जन-सेवा में लगाते हैं। साधना में राम-नाम के आराधन से बहुत कुछ परिवर्तन आ जाता है। परस्पर सहायता देनी चाहिये। निन्दा, दुर्गुण, राग, द्वेष इत्यादि निकालने की चेष्टा करनी चाहिये।

साधना-सत्संग, ग्वालियर
दिनांक : 9.11.1955
प्रातः 11.00 बजे

□□

समाचार-पत्र तथा आधुनिक पुस्तकें

आजकल समाचार तथा पुस्तकें जिन बातों पर आधारित होते हैं वे ये हैं—

1. वे ध्यान को एक बहुत कठिन स्तर पर दर्शाते हैं। वे बात इस ढंग से तोड़-मरोड़ देते हैं कि यह न समझा जा सके कि इन विचारों से साधक को क्या हानि हो सकती है ?

2. यह समाचार-पत्र अथवा पुस्तकें अपनी लोकप्रियता पर आधारित होते हैं। वे (उनके लेखक) चाहते हैं कि अधिक से अधिक संख्या में उनका विक्रय हो। सो बुरे विचार भी उनमें होते हैं।

कुछ समाचार-पत्र सदा कांग्रेस अथवा गाँधी जी का समर्थन करते हैं तथा कुछ सदा उनकी निन्दा करते हैं। यह ठीक नहीं कि जो कुछ भी गाँधी जी कहें वह सब का सब ठीक हो तथा न ही यह ठीक है कि वह सारे का सारा गलत है। अतः साधक को इन सबसे सावधान रहना चाहिये। किन्तु इसका यह अर्थ कदाचित् नहीं कि वह समाचार-पत्र या पुस्तकें न पढ़े या वह अच्छे नेताओं द्वारा दिये गये व्याख्यानों को न सुने। इस विषय में आपको अधिकतर राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ वालों की तरह होना चाहिये, जिन्हें आप सिनेमा, समाचार-पत्रों, भाषणों आदि की निन्दा अथवा हंसी करते हुए नहीं पाओगे। वे तो धूम्रपान की भी निन्दा नहीं करते। यद्यपि वास्तव में वे स्वयं धूम्रपान नहीं करते। कुछ व्यक्तियों ने योगाभ्यास किया होता है, उनके भाषण पढ़ने चाहिये। (इस पर महाराज ने पद कहा) यह लाभप्रद है।

इसी प्रकार ऐसे लोगों की संगति, जो दृढ़-निश्चय के साथ सत्संग में तीव्र लालसा रखते हैं, अच्छी तथा लाभप्रद है। सबसे अधिक आवश्यक ध्यान व पूजा, जो अधिक लाभप्रद है।

साधक को यह कभी नहीं कहना चाहिये कि मैं ऐसा-ऐसा हूँ और मैंने ऐसा किया है। जो कुछ योग तथा पूजा द्वारा प्राप्त हो, उसे उसकी सराहना करनी चाहिये, किन्तु उसे इस रूप में समझना तथा कहना चाहिये कि ऐसा कहा जाता है और ऐसा प्राप्त किया गया है अर्थात् राम की महिमा (अनुभूति) का वर्णन अन्य पुरुष में करना चाहिये।

साधना-सत्संग होशियारपुर,
दिनांक 26.12.1947
समय प्रातः 10.30 बजे

❑❑

उद्घाटन श्रीरामशरणम्, पानीपत

यह स्थान केवल भजन-पाठ करने वालों के लिये बनाया है। यह सब का स्थान है। यह मैं घोषणा करता हूँ और इन्हीं भावों से उद्घाटन किया है। यह स्थान सत्संगी बहन-भाई सब के लिये हो, इन शब्दों के साथ इसका नाम 'श्रीरामशरणम्' रखा, जो ठीक इसके कार्यों के अनुसार है। मैं तो अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर चुका था, पर कोई काम राम ने लेने होंगे, इसके लिये उसने इस देह-दिये में अपनी शक्ति का तेल डाला है। मुझे हर्ष है कि यह उद्घाटन मुझसे हुआ। मुझे यह बात बड़ी अच्छी लगती है कि राम-धुन जहां हुआ करे, वहां बैठूं और उसके रस का स्वादन करूं। मुझे इस विशाल स्थान को देखकर हर्ष हुआ है।

किसी का थोड़ा किसी का बहुत इसमें भाग है। ऐसी बात मुझे बहुत सुहाती है कि आप इसको अपनाते हैं और थोड़ा बहुत जैसा जिससे हो सके वह श्रीराम के चरणों में अर्पण करते हैं। यह भावना आपकी बनी रहे। मैं जानता हूं कि इसमें देने वाले बहुत धनाढ्य भी नहीं, पर बड़ी प्रीति वाले, दिल वाले हैं। धन भी आता है, लोग बिन मांगे देते हैं, यह बात बहुत उत्तम है। मांगने को जाना– यह अपने आपको और कार्य को नीचा बनाता है। पर कोई सामग्री आप ही आये, ऐसी बात यहां हुई। इसके लिये मैं यहां के नर-नारियों को बधाई देता हूँ।

इसके लिये मेरी प्रेरणा बहुत नहीं थी। पर मुझे कहा गया, तो मैंने कहा, इतने पैसे इकट्ठे कर सको तो आगे बढ़ो। उन्होंने उसी समय बात चलाई और उसी समय उन्होंने 'हाँ' उत्तर दिया। स्थान बनाने पर पैसा लगने लगता है, तो लगता ही जाता है, पर विवेक-विचार से थोड़े में ही बहुत सुन्दर काम हो

जाता है। ऐसा ही यहाँ हुआ। परिश्रम भी किया गया, स्त्रियों ने पुरुषों ने भी इसमें भाग लिया। काम करने वालों को बधाई देता हूँ।

सेवकों ने बड़ा श्रम किया है। वे यहां रहे। वह हम सबके धन्यवाद के भागी हैं। मुझे यह कहना है कि यह तो सब राम-लीला है। आज यह चीज़ बनी है, आप हर्ष मनाते हैं। चीज़ें बनती हैं, पर मुझे कहना यह है कि किसी बात पर घमण्ड नहीं करना। यह तो श्रीराम-कृपा, उन्हीं का धन्यवाद। तभी तो संत सयाने कहते हैं–

'भगतां दे कारज आप खलोया, काम करावन आया राम।'

वह आप चलाता है। उसी का यह चलाया हुआ है। आप सबने इसमें सहयोग ही दिया है। बहनो और भाईयो ! इस समय इससे अधिक नहीं बोलना है। इतना जो बोला हूँ, इसमें भी मैं अपने डॉक्टरों की सम्मति लांघ कर बोला हूँ। क्षमा करें आप। जो थोड़ा इस समय मैं बोला, मैंने अपने सच्चे भावों को, उद्‌गारों को उपस्थित किया है। श्रीराम हम सब पर कृपा करें। हम सबको भक्ति-भाव और अपने नाम का सहारा, विश्वास दिलायें।

यह हृदय का उद्‌घाटन है। अपने हृदय-मंदिर में भगवान विराजमान हैं। यह हमारा सच्चा विश्वास है।

मंगल नाम जय जय राम, मंगल नाम जय जय राम।

पानीपत
दिनांक 9.10.1960

❑❑

अनुभूतियाँ

1. एक बार एक व्यक्ति ने श्रीमहाराज जी से पूछा कि दूसरे के मन की बात जान लेने की शक्ति आपने कैसे प्राप्त की। श्रीमहाराज जी मुस्कराये और बोले, 'प्यारे! यह तो प्रसाद है, जो प्रभु ने मेरी झोली में डाल दिया है।' उस व्यक्ति ने फिर पूछा कि एक साधक कैसे इस प्रसाद का अधिकारी बन सकता है। श्रीमहाराज जी ने कहा, 'युग-युग से संतों-महात्माओं का यही अनुभव है कि नाम-जाप और ब्रह्म-कृपा में कोई विशेष सम्बन्ध है। कितना नाम-जाप इसके लिये किया जाये? यह हिसाब प्रभु आप जाने। पर दीर्घकाल तक निरन्तर, प्रेमपूर्वक, विश्वास और विधि से नाम-जाप करते रहने से, एक दिन, प्रभु-प्रसाद मिलता अवश्य है। इसके चिन्ह साधक को स्वयं भी प्रतीत होते हैं और दूसरों को भी दिखने में आते हैं। नाम-जाप छोड़ देने से कृपा-अवतरण रुक भी जाता है।'

2. एक देवी ने श्रीमहाराज जी से निवेदन किया, 'महाराज! मैं तो प्रातःकाल उठकर तीन चाटी दही बिलोकर माखन निकालती हूँ। फिर सारे घर का काम इतना होता है कि रात सोते समय तक थक जाती हूँ। आप ही बताइये कि कब भजन करूं और कब पूजा पाठ, जिससे भगवान की प्राप्ति हो?' श्रीमहाराज जी ने कहा, 'जब तुम चाटी बिलोती हो तो जब तुम्हारा दायां हाथ आगे को जाये, तो कहो 'राम' और फिर जब बायां हाथ आगे जाये, तो भी कहो 'राम'। ऐसे चाटी भी बिलोती जाना और राम-नाम का जाप भी चलता रहे, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। छह महीने के पश्चात् जब वह देवी श्रीमहाराज जी से फिर मिली तो प्रसन्नतापूर्वक बोली, महाराज जी! आपकी बताई हुई विधि से मेरे अन्दर राम-नाम ऐसे बस गया है कि सारा दिन अपने आप गूंजता रहता है। अब ज़रा भी थकान नहीं होती।'

3. हरिद्वार साधना-सत्संग के अन्तिम दिन साधकों को कुछ अच्छी मात्रा में हलवे का प्रसाद दिया जाये, ऐसी बात प्रबन्धक लोग सोच रहे थे।

महाराज जी को जब यह सूचना मिली, तत्काल उन्होंने सर्वाधिकारी को बुलाया और रोष प्रकट करते हुए कहा, 'क्या तुम लोगों को इतना भी ज्ञान नहीं कि सत्संग में सामान्य स्तर के कितने साधक आते हैं ?' उन्हें यह खर्च अखरेगा। आगे से इस बारे में पूरा ध्यान रखा जावे कि सत्संग में आने वालों का कम से कम खर्च हो। बहुत विनय करने पर, कम घी का तथा थोड़ी मात्रा में हलवे का प्रसाद देने की आज्ञा मिली।

4. एक साधक जो पहली बार साधना-सत्संग में सम्मिलित हुआ, उसकी अखण्ड जाप में बारी सायं तीन से पांच बजे तक निश्चित हुई। महाराज जी के प्रवचन का समय था तीन से चार बजे तक। उसने दूसरे साधकों को कहा कि उसकी बारी का समय बदल दिया जाये, ताकि वह प्रवचन सुन सके। यह बात जब महाराज जी तक पहुँची, तो उन्होंने कहा, 'मेरे प्रवचनों और उपदेशों का सार आप में प्रभु-भक्ति उत्पन्न करना है। आप की अखण्ड जाप के समय में परिवर्तन की कामना अनुचित है। परमात्मा से क्षमा माँगो और भविष्य में ऐसा न करने का पक्का और सच्चा निश्चय करो।'

5. 'सत्य और अहिंसा' का दूसरा रूप– सन् 1951 की बात है। एक बालक को उसकी नानी ने कहा कि आज श्रीमहाराज जी का प्रवचन है। उनका कथन है कि 'सत्य और अहिंसा' के सहारे मानव उन्नति के पथ पर सब बाधायें पार कर बढ़ सकता है। यह 'सत्य और अहिंसा' जानने की उसे बड़ी उत्सुकता हुई। वो भी अपनी नानी के साथ महाराज जी से यह पूछने चला आया। वहां पहुँच कर जब उसने स्वामी जी के दर्शन किये, तो उनके स्वरूप को देखकर अपने आप को भूल सा गया। प्रवचन समाप्त होने पर नानी के साथ घर लौट आया। तब कुछ चेतना हुई और उसे अपना प्रश्न याद आया। साथ ही उत्तर भी मिल गया। उसे अनुभव हुआ कि 'सत्य और अहिंसा' का दूसरा रूप स्वामी जी हैं।

6. एक बार एक परम सेवक (पंडित लक्ष्मीदत्त शर्मा) श्रीमहाराज जी के साथ उनके सेवार्थ रेलगाड़ी में चला। गाड़ी चलने से थोड़ा पहले उसने एक लोटे में पीने का पानी भरकर उनकी सीट के साथ लगी एक छोटी मेज (जो प्रथम श्रेणी के डब्बों में होती है) पर रख दिया और लोटे को एक कटोरी से ढक दिया। श्रीमहाराज जी ने उस सेवक को संकेत किया कि ऊपर की सीट पर रखी उनकी पेटी उतार देवे। सेवक ने उसे उतार दिया और श्रीमहाराज ने स्वयं उसमें से एक समाचार-पत्र का कागज निकाला और बड़े प्रेम से उसकी पाँच-छह तहें करके, लोटे के नीचे रखने को उस सेवक से कहा। उसने वैसा ही किया। फिर श्रीमहाराज जी ने उसे समझाया कि लोटे के गीला होने के कारण मेज पर पानी का निशान पड़ जाता है, जो ठीक नहीं है। कितना प्रिय और सुन्दर उनका ढंग था, साधकों को समझाने और सिखाने का, तथा छोटी-छोटी बातों का वे कितना ध्यान रखते थे!

7. एक बार एक साधक ने श्रीमहाराज जी से पूछा, 'मृत्यु से भय लगता है। इस भय से कैसे बच सकते हैं' ? श्रीमहाराज जी ने उत्तर दिया, जब मनुष्य का जीवन भारभूत हो जाता है, जब उसके दुःख को कोई औषधि दूर नहीं कर सकती, तब मृत्यु मित्र बनकर आती है और उसे दुःख से मुक्त कर देती है। इसीलिये जन्म और मृत्यु को हमारे हाथ में न रखकर भगवान ने अपने हाथ में रखा हुआ है।

8. एक दिन श्रीमहाराज जी से एक साधक ने पूछा कि आप कैसे सदा तुले हुए शब्द बोलते हैं ? एक भी आप का वाक्य ऐसा नहीं होता जो ठीक न हो। श्रीमहाराज जी ने उत्तर दिया, मैं चाहे थोड़े व्यक्तियों में बात करूं, चाहे बड़ी सभा में व्याख्यान दूं, बात वही कहता हूं। आवाज़ धीमी या ऊँची करनी पड़ती है। वास्तव में पहले हर शब्द को तोलो फिर पपोलो और फिर बोलो। उस व्यक्ति ने बाद में बताया कि पिछले पच्चीस वर्ष के सम्पर्क में उसने श्री मुख से कोई असभ्य वचन नहीं सुना।

9. एक वृद्धा महाराज के पास आई और आदर से प्रणाम करके बोली कि उसे 'नाम' लिये पाँच वर्ष हो गये, नाम-जाप वह प्रतिदिन करती है, पर उसे शान्ति नहीं मिली। श्रीमहाराज जी ने कहा, 'माई! यदि राम-नाम से कुछ प्राप्त नहीं हुआ, तो सत्यानन्द क्या करेगा ? अपने जीवन में राम-नाम में विश्वास बढ़ाओ और बड़े भाव-चाव से उस राम-नाम को जो सबके अन्दर और तुम्हारे अन्दर गूँज रहा है, सुनो और गाओ। अवश्य कल्याण होगा।'

10. श्रीमहाराज जी अपने नियमानुसार जहां ठहरते थे, वहां प्रायः

नौ बजे प्रातः साधकों से मिलने के लिये बाहर बैठते थे। एक बार ऐसे ही समय एक साधक आया और प्रणाम करके सामने बिछी हुई दरी पर बैठ गया। श्रीमहाराज जी ने बड़ी प्रसन्नता से कहा 'आओ जी'। उस समय उनके हाथ में श्रीमद्‌भगवद् गीता थी। उसी समय एक गाय द्वार खुला देख कर अन्दर घुस आई और बरामदे के आगे जो बगीची थी, उसमें फूल चरने लगी। महाराज जी ने गाय को बाहर निकालने और द्वार बन्द करने के लिये साधक को संकेत किया। जब वह द्वार बन्द करके लौटा, तो कहा 'जब मन का द्वार खुला हो तो अशुभ विचार अन्दर घुसकर सुन्दर विचारों के फूल चर जाते हैं। सत् शास्त्रों को पढ़ते रहना और उन पर मनन करना मन के द्वार को बन्द रखना है।'

11. प्रार्थना– एक साधक ने प्रश्न किया कि मन में दूसरों के लिये विचार आता है। जैसे– पूर्णमासी के अखण्ड जाप में जो आते हैं, उनका मन बड़ा अच्छा टिके। एक साधक जो ज्वर में सत्संग में आया, मेरी इच्छा थी कि कम से कम सत्संग में उसे ज्वर न हो। ऐसी प्रार्थना करना क्या ठीक है ? मैंने उत्तर दिया, 'दूसरों के लिये प्रार्थना करना बहुत अच्छा है। मैं भी राम-नाम के जपने वालों के लिये करता हूँ। सब मिलाकर कोई सौ से ऊपर व्यक्ति हैं, जिनके लिये प्रार्थना करता हूँ। मेरे विचार में प्रार्थना में प्रभाव शीघ्र तब होता है, जब प्रार्थना करने वाले का जीवन अच्छा हो। झूठ न बोले, ईर्ष्या न करे, उसकी कमाई शुद्ध हो, तो फिर संकल्प में जो बल आता है, वह करने वाले को स्वयं पता चलता है।'

12. एक दिन एक साधक श्रीमहाराज जी से बोला– 'पन्द्रह वर्ष हो गये आप से नाम-दान लिये, जीवन में अभी तक रंग नहीं चढ़ा है और न ही मस्ती आई है।' 'श्रीमहाराज जी बोले–' तुम ने प्रीत की रीत नहीं निभाई। मैंने तो तुम्हें बहुत बुलाया, तुम ही नहीं आये। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। मेरी अन्तिम लघु पुस्तिका, 'प्रार्थना और उसका प्रभाव' को पढ़ो। इस पर मनन, चिन्तन करो और प्रार्थनाशील व्यक्ति बनने का प्रयत्न करो। अवश्य तुम्हारा कल्याण होगा।

13. एक साधक के पूछने पर श्रीमहाराज जी ने स्पष्ट शब्दों में बताया, 'वेदों में राम-नाम भगवान वाचक रूप में कितने ही स्थानों पर आया है। फिर यह नाम तो मुझे सीधा भगवान से साधना-रूप में प्राप्त हुआ है। यह मार्ग मुझे बहुत देर में प्राप्त हुआ, परन्तु यह अति उत्तम और अतिशय कल्याणकारी है। यह कहने में संकोच नहीं कि इस पथ पर, साधकों को ऐसी-ऐसी अनुभूतियां हुई हैं, जो कन्दराओं में बैठे तपस्वियों को भी न हों।'

14. श्रीमहाराज जी ने अपने अनुभवों को ऐसे ढंग से अपने ग्रन्थों में दिया है कि किसी भी स्थान पर और किसी भी वक्तव्य में श्रीमहाराज जी ने अपने अहंकार को स्थान नहीं दिया। अन्य पुरुष की अनुभूति के रूप में अपनी महान से महान अनुभूतियां लिखी हैं। हज़ारों पद्य तथा गद्य में वर्णन श्रीमहाराज जी ने लिखे हैं, किन्तु किसी में भी अपना नाम नहीं लाये। किसी भजन में भी उनका नाम नहीं है। स्पष्ट है कि महाराज जी ने अहंकार को निर्जीव कर दिया।

15. एक बार एक साधक से स्वामीजी ने कहा, आत्मोन्नति के लिये मैं संन्यास लेना आवश्यक नहीं समझता। इसलिये न किसी को संन्यास देता हूँ और न किसी से संन्यास लेने की प्रेरणा देता हूँ। जो साधना जंगलों और एकान्त स्थानों में रहकर हो सकती है, वही गृहस्थ में भी हो सकती है। अपितु आज कल के युग में तो गृहस्थ और कारोबार करते हुए और भी अच्छी साधना सम्भव है।

16. एक साधक ने एक बार निश्चय किया कि माला पर एक लाख नाम-जाप प्रतिदिन एक महीने के लिये करेगा। उसे इस जाप के लिये दस घण्टे प्रतिदिन लगते थे। श्री अधिष्ठान को सामने रखकर कभी आँखें खोलकर और कभी मींच कर एक लाख प्रतिदिन की संख्या एक महीने तक पूरी की। उसे सन्तोष हुआ कि उसने अनुष्ठान पूरा कर लिया, पर मन में यह प्रश्न रहा कि लाभ क्या हुआ ? उसने यह सब श्रीमहाराज जी को बताया, तो उन्होंने समझाया, अब तुम बहुत जाप न किया करो। बड़े भाव-चाव से थोड़ा-सा जाप तुम्हारे लिये काफी है। अब मनन और चिन्तन अधिक किया करो। सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सच्चिदानन्द स्वरूप, ज्योतिर्मय, परम-दयालु, देवाधिदेव राम जो तुम्हारे मस्तिष्क में विराजमान हैं, उन पर मनन और चिन्तन किया करो।

अपने आपका पूर्ण समर्पण करके राम-कृपा का अनुभव किया करो। ऐसे प्रतिदिन के ध्यान से तुम्हारा अपने आप निस्तार होगा।

17. एक बार रोहतक जिले के एक गाँव में रात्रि के समय श्रीमहाराज जी का प्रवचन हुआ। उन्होंने कहा कि, 'जाट बड़े शूरवीर होते हैं। जाट का छोरा और उसके हाथ में लाठी हो, तो कसर किस बात की रह जाती है ? शेर को भी पछाड़ सकता है।' इसका वहां के जाटों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। अगले दिन तीन तरुण महाराज जी के दर्शन करने आये। श्रीमहाराज जी ने बड़े प्रेम से उनको अपने पास बिठाया। इसका उन तरुणों पर इतना अच्छा प्रभाव हुआ कि अगले दिन जब महाराज जी का दूसरे गाँव में प्रवचन हुआ तो वे वहां भी पहुँचे। वहाँ महाराज जी ने राम-नाम की महिमा का वर्णन किया और सब को राम-नाम लेने के लिये प्रेरित किया। एक बूढ़े चौधरी ने प्रश्न किया कि महाराज! हम तो हर समय अशुद्ध रहते हैं। नहाने-धोने की सुविधा नहीं मिलती! फिर जैसा कि भागवत-पुराण में लिखा है कि एक आदमी ने मल उत्सर्ग करते समय राम-नाम ले लिया था, तो उसे शूकर की योनि मिली। इस पर महाराज जी ने कहा कि आप सदैव खेतों में बीज बोते हो और वे दाने उल्टे सीधे पड़ते हैं, किन्तु सब ऊपर को निकलते हैं। इस पर तुलसीदास जी का दोहा बोला–

तुलसी मेरे राम ने, रीझ भजो या खीज।
भौम पड़ा जामे सभी, उल्टा सीधा बीज।।

अतः काम करते हुए भी राम-नाम का जाप किया करो।

प्रवचन की समाप्ति पर श्रीस्वामी जी ने उन तरुणों को देखा और पास बुलाकर पूछा, तुम कहां सोओगे ? उनमें से एक ने उत्तर दिया, महाराज! हम तो ज़मींदार हैं। यहां पर ही चौपाल में बिछे हुए तख़्तों पर सो जायेंगे। पर श्रीमहाराज जी ने एक साधक को बुलाकर कहा– आप इन लड़कों को भोजन कराओ और इनके सोने आदि की व्यवस्था करो।

तत्पश्चात् उन लड़कों को समाचार-पत्रों द्वारा पता चला कि ज्वालापुर (हरिद्वार) में श्रीस्वामी जी के कर-कमलों द्वारा एक नये भवन का उद्‌घाटन

उत्सव मनाया जा रहा है। उनमें से एक ने वहां जाने का निश्चय कर लिया। जब वह ज्वालापुर पहुँचा, उस समय श्रीस्वामी जी महाराज एक बड़े पंडाल में प्रवचन कर रहे थे। वह दूर एक स्थान पर बैठ गया। किन्तु श्रीस्वामी जी ने उसे देख लिया और तुरन्त अपनी ओर आने का संकेत किया। फिर उसे अपने कमरे की ओर ले गये और कहा 'तू ऐसे क्यों फिरता है ? तेरी आर्थिक स्थिति दुर्बल है, ऐसे मत फिरा कर।' किन्तु उसने नम्रतापूर्वक निवेदन किया, 'महाराज! अब तो मैं आपके साथ ही रहा करूंगा, आप का पीछा नहीं छोड़ूंगा।' तब महाराज जी बोले, 'मैं ही दूसरों के घर पर ठहरता हूँ, तुझे कैसे साथ रखूं ?' फिर उसने श्रीमहाराज जी से प्रार्थना की 'यदि वचन दें कि वर्ष में एक बार अवश्य उसके गाँव आया करेंगे तो वह उन के पीछे फिरना छोड़ देगा।' श्रीमहाराज जी ने स्वीकृति दे दी और अन्त तक अपना वचन निभाया।

18. एक बार श्रीमहाराज जी जब उसके गाँव गये, तो उसे और उसके साथियों को 'भक्ति-प्रकाश' की प्रतियाँ दीं और नित्य-प्रति पाठ करने को कहा। ये लड़के सन् 1930 में महात्मा गाँधी के सत्याग्रह आन्दोलन में जेल गये और वहां भक्ति-प्रकाश का पाठ करते। भजन और ईश्वर स्तुति आदि भी करते। जेल के अधिकारी इनके नित्य-कर्म देख कर बड़े प्रभावित हुए और उनके सत्संग आदि की सुविधा के लिये एक पृथक स्थान का प्रबन्ध कर दिया।

इनमें से जो बहुत गरीब था और जो हरिद्वार गया था उसने कोयले का व्यापार आरम्भ किया। राम-कृपा और श्रीस्वामी जी के आशीर्वाद से आशातीत लाभ हुआ और उसका दरिद्रता से छुटकारा हो गया।

19. सन् 1920 के गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिक-उत्सव पर एक रात्रि महाराज जी का प्रवचन श्रोतागण मंत्रमुग्ध होकर सुन रहे थे। अचानक एक भयानक आवाज़ आई 'शेर आया', 'सांप आया' इत्यादि। यह सुनकर मण्डप में भगदड़ मच गई। लोग बच्चों का, स्त्रियों का, बूढ़ों का तथा दुर्बलों का कोई ध्यान न कर, उन्हें मसलते, गिराते और धकेलते हुए एक दूसरे से आगे दौड़ने में लगे हुए थे। किन्तु श्रीमहाराज जी न आगे झुके, न पीछे मुड़े, न दायें झांका, न बाँयें दृष्टिपात, बस अपने आसन पर अविचल निश्चय धारे शान्त-भाव से

मन्द-मन्द मुस्काते स्थिर रहे। सब निकटवर्ती उनके इस निर्भय-भाव से चकित थे।

20. एक युवक जो सन् 1957 में बेकार था और इस कारण परेशान भी, श्रीस्वामी जी महाराज से दीक्षा लेने आया। श्रीमहाराज जी ने पूछा कि क्या काम करते हो ? वह बोला कोई काम नहीं करता। श्रीमहाराज जी हंसकर बोले, 'तुम भी मेरे जैसे हो। मैं भी कुछ काम नहीं करता।' इसके पश्चात् उसको नाम दीक्षा दे दी और कहा, 'प्रतिदिन नियम से नाम-जाप करना। भूलना नहीं। राम-कृपा होगी।' उसे सहारा मिला, जिससे उसकी चिन्ता कम हुई। वह विश्वासपूर्वक भाव-चाव से जाप करने लगा और उसे कुछ दिन में काम भी मिल गया।

21. एक बार श्रीमहाराज जी ने कहा था, 'यहाँ गुरु शिष्य की कोई बात नहीं। केवल इतना है कि जो इस मार्ग में आगे हैं, वे पीछे आने वाले को कहते हैं कि हम इस मार्ग से यहां तक पहुँचे हैं। आप भी इसी मार्ग से चलते हुए, यहां पहुँच जायेंगे।

जब तक साधक मुक्त नहीं होता, वे उसके साथ रहते हैं। श्रीमहाराज जी ने अपने एक पत्र में लिखा– 'श्रीराम-नाम पूर्वक आप का और मेरा जो सम्बन्ध है, वह बड़े उत्तरदायित्व का है। वह परलोक तक बना रहता है। आप आत्म-कल्याण के सम्बन्ध में सर्वथा निश्चित रहें। आपका काम केवल साधना करना है। शेष सब राम पर भरोसा रखिये। परमेश्वर श्रीराम सर्वशक्तिमान है। वह जिससे, जो काम, जिस ढंग से, जिस समय लेना चाहता है उतना ही उसे समर्थ बना देता है।'

22. एक बार महाराज जी, लुधियाना में, जब अपनी व्याख्यान श्रृंखला समाप्त कर रहे थे, तब अन्तिम दिवस जनता ने महाराज जी को अभिनन्दन-पत्र दिया। तो उन्होंने कहा, 'यह तो काग़ज़ का टुकड़ा है, फट जायेगा, बेकार हो जायेगा। मेरा अभिनन्दन तो आप लोगों ने मेरी रूखी-सूखी बातों को दत्तचित्त सुनकर ही कर दिया है।'

इसी अवसर पर देवियाँ फूलों की मालायें हाथ में लिये श्रीमहाराज जी की ओर बढ़ीं। श्रीमहाराज जी ने पीछे हटते हुए उन देवियों को कहा,

'माताओ! ये मालायें आपके पतियों के लिये हैं। मेरे समीप इनको मत लाना।'

23. एक वकील ने महाराज जी से कहा– 'महाराज, बारह वर्षीय पुत्र के वियोग का दुःख हुआ है, परन्तु सत्संग और स्वाध्याय नहीं छोड़ा।' श्रीमहाराज जी ने कहा, 'पुत्र-वियोग-रूपी दुःख तो किसी कर्म का फल मिला। इधर जो आपने सत्संग स्वाध्याय से, अपने मन से, इस दुःख को दूर-कर दिया, यह आपके दूसरे कर्म का फल है। किसी कर्म का फल दुःख है तो किसी कर्म का फल सुख है। कर्म-फल में कोई परिदर्तन नहीं होता।' कई बार समझाने पर भी वकील साहब कहते रहे कि उनकी समझ में नहीं आया। तब श्रीमहाराज जी ने कहा, 'अब यूँ समझिये कि मैं इस विषय में आपको समझाने में असमर्थ हूँ। किसी और से पूछ लो।'

24. एक बार महाराज जी ने कहा, 'मेरी सम्पूर्ण आत्म-कथा भक्ति-प्रकाश में है। जो जानना चाहे उसका पाठ करे।' 'जो कुछ मेरे जीवन की कमाई और सन्देश है, वह सब मैंने पुस्तकों में पहले से ही भर दिया है। वह ही मेरा सन्देश है।'

25. श्रीमहाराज जी ने एक बार कहा कि कई प्रेमी कहते हैं–आप के लिये आश्रम आदि बनवा देवें, परन्तु मैं तो यही कहता हूँ कि बहुत समय बीत गया है, बाकी थोड़ा बहुत भी, दो दिन किसी प्रेमी के पास, चार दिन किसी प्रेमी के यहां विश्राम कर के बीत जायेगा। जब पिछला ही छोड़ दिया, तो नया बखेड़ा काहे को सहेड़ना।

26. श्रीमहाराज जी साधना-सत्संग में कीर्तन आदि करने वालों को ऊपर के आसन पर बैठने को कहते थे। एक बार हरिद्वार के साधना-सत्संग में श्रीमहाराज जी ने कहा– 'जो कीर्तन करते हैं, उनको मुझे ऊपर बिठाना पड़ता है। कोई यह न समझे कि वे मेरे अधिक प्रिय हैं। मैं भी ऊपर कुर्सी पर बैठता हूँ। पर कौआ मन्दिर के कलश पर बैठने से हंस तो नहीं हो जाता।' यह सुनकर साधकों को ऐसी टीस उत्पन्न हुई कि सब ऊँचे स्वर से **'राम, राम'** बोल उठे।

श्रीमहाराज जी को कोई कहता कि आपकी हम पर बहुत कृपा है तो वे

झट से बोल पड़ते– राम-कृपा, राम-कृपा।

27. बहुत वर्षों की बात है कि श्रीमहाराज जी दिल्ली में थे और व्यास-पूर्णिमा का शुभ दिन आ गया। साधक-जन बादाम, मिश्री आदि द्रव्य लेकर, महाराज जी जहाँ ठहरे हुए थे, वहाँ आ गये। महाराज जी अपने कमरे में ही थे। नियत समय पर बाहर पधारे और यह सब देखकर बहुत ही दुःखी हुये। कहने लगे कि यदि मुझे पता होता, तो मैं बाहर ही न आता। यह सब द्रव्य कौन लाया है ? सब मौन थे और अपने किये पर पश्चाताप कर रहे थे। श्रीमहाराज जी ने सबसे वचन लिया कि आगे से कभी कोई वस्तु नहीं लानी होगी, नहीं तो इस पर्व को नहीं मनाया जायेगा। उसके पश्चात् प्रतिवर्ष जहां महाराज होते, वर्षा होते हुए भी साधकजन समय से पूर्व पहुँचते। महाराज के आसनासीन होने पर अमृतवाणी का पाठ आरम्भ होता। श्रीमहाराज जी जहाँ व्यास जी को नमस्कार करते वहाँ सब साधकों के आगे भी मस्तक टेक देते। इस नम्रता-भाव को देखकर प्रायः सभी के नयन उमड़ आते।

28. एक युवक साधक श्रीमहाराज जी के पास आया और नमस्कार कर बड़े आदर से पूछने लगा, 'महाराज! मैं शादी कर लूं ?' श्रीमहाराज जी मुस्करा कर बोले, 'हमारे सत्संग में तो दोनों प्रकार के लोग आते हैं। यदि शादी कर लोगे तो जीवन की दिशा दूसरी होगी और अविवाहित जीवन की दिशा दूसरी। इस का निर्णय तो तुम्हें स्वयं करना होगा, क्योंकि तुम अपना जीवन जैसा बिताना चाहते हो, उसी के अनुसार निर्णय लो।'

29. एक बार एक महिला ने सत्संग के पश्चात् महाराज जी से विनती करी कि वे उसके घर आवें और उसके हाथ का बना भोजन करें। महाराज जी ने उत्तर दिया कि वे प्रायः जहाँ ठहरते हैं, वहीं भोजन करते हैं। पर उसको आश्वासन दिया कि एक दिन अवश्य उसके घर आयेंगे। उस दिन से वह देवी अपने घर की विशेष रूप से सफाई करने लगी। इस विश्वास से कि एक दिन महाराज अवश्य आयेंगे। अन्ततः महाराज गये। उस समय उसकी बेटी स्कूल गई थी और उसके पतिदेव काम पर गये हुए थे। वह घर पर अकेली थी। श्रीमहाराज जी के साथ वे सज्जन भी थे, जिनके घर महाराज ठहरे हुए थे। सर्दी के दिन थे। उस देवी ने महाराज को आंगन में धूप में बिठाया। श्रीमहाराज

जी ने देवी से पूछा, 'तुम्हारे यहाँ सफाई, बर्तन, खाना पकाने के लिये कोई नौकर या माई है ?' 'कौन माखन निकालता है ? यह चाटी और मथनी किसने धोकर धूप में रखी है ?' उस देवी ने हाथ जोड़कर कहा, 'महाराज! इस घर में मैं ही नौकर और माई हूँ। सब काम राम-कृपा से हो जाता है। कोई बहुत काम भी तो नहीं है।' इस उत्तर से श्रीमहाराज जी बहुत प्रसन्न होकर बोले, 'कल मैं तुम्हारे घर आकर तुम्हारे हाथ का पका भोजन पाऊंगा। कल इतवार है। तुम्हारी बच्ची और तुम्हारे पति भी घर होंगे।'

उस देवी की प्रसन्नता अपार थी और उस दिन से उसने नियम से साधना और निष्काम सेवा के भाव से पूर्ण अपना जीवन मधुर और राम-मय बना लिया।

30. एक व्यक्ति जो शराब पीता था, श्रीमहाराज जी के पास आया और बोला, 'महाराज! मैं आपके चरणों में बैठकर ध्यान करना सीखना चाहता हूँ।' महाराज जी ने उसे हँसकर टाल दिया। पर वह भी पीछे पड़ा रहा, तो अन्त में एक दिन उन्होंने उसे एक माला दी और कहा, 'इस माला पर राम-नाम का जाप पन्द्रह दिन अपने घर में करना। हो सके तो शराब कुछ कम पीना। फिर मुझे मिलना।' वह चकित हो गया कि महाराज उसके शराब पीने के बारे में कैसे जान गये ? पन्द्रह दिन बाद जब वह श्रीमहाराज जी के पास गया, तो उन्होंने उसे अपने सामने ध्यान में बिठाया। थोड़ी देर बाद आँखें खोलने के लिये कहा और पूछा कि कुछ अनुभव हुआ ? उसने उत्तर दिया, 'महाराज! मुझे ऐसा लगा कि मैं अपने अन्दर बहुत गहराई में चला गया हूँ। वहाँ मुझे राम, सीता और लक्ष्मण के दर्शन हुए। मैं उन्हें नमस्कार कर रहा था कि आपने मुझे आँखें खोलने को कहा।' महाराज बोले, 'प्रतिदिन राम-नाम की माला जपा करो और ध्यान में बैठने से पहले राम-कृपा मांगा करो। तुम्हारा कल्याण हो जायेगा' उस व्यक्ति ने शराब पीना छोड़ दिया और राम-नाम में रंग गया।

31. सन् 1943 की बात है। एक साधक महाराज के दर्शन करने गया और निवेदन किया कि उसे एक बड़ी नौकरी मिल गई है– एक दूर प्रान्त में, जहाँ वह सपरिवार जा रहा है। महाराज बोले, 'बहुत दूर जा रहे हो, मुझे

लिखते रहना और जब कभी पंजाब आया करना, तो सौ-डेढ़ सौ मील पर मैं हूँ, तो मुझे मिल जाया करना। राम-नाम का जाप और ध्यान करते रहना। तुम्हारे पर और तुम्हारे परिवार पर राम-कृपा बनी रहे।'

सन् 1945 में जब वह पंजाब आया, तो जहाँ वह ठहरा था, वहाँ से महाराज डेढ़ सौ मील दूर दूसरे नगर में थे। वह दर्शन करने वहाँ गया और अपना परिचय-पत्र अन्दर भेजा। चौकीदार ने महाराज जी की आज्ञानुसार उसे स्वागत के कमरे में बिठाया। महाराज आकर बैठे तो वह उनके चरणों में जा बैठा।

श्रीमहाराज जी ने पूछा, कैसे आये? उसने उत्तर दिया– 'महाराज, आपने ही तो कहा था कि पंजाब आना हो, तो सौ-डेढ़ सौ मील की दूरी का विचार न करके मिलने आना। महाराज जी ने बड़ी प्रसन्नता से उसका हाथ पकड़कर उसे अपने पास सोफे पर बिठाया और बड़े प्यार से अपना वरद हाथ उसके सिर पर फेरा और प्रेम से कहा, 'अरे! इतनी दूर से केवल मुझे मिलने के लिये ही यहाँ आये हो। तुम बड़े अच्छे हो। कितना प्रेम है तुम्हारे सरल हृदय में।' जब महाराज उसके सिर पर हाथ फेर रहे थे, तो उस व्यक्ति को ऐसा अनुभव हुआ कि उसके शरीर में एक बिजली सी दौड़ रही है और उसके कई जन्मों के कर्म कट गये।

32. एक साठ साल के साधक को साधना-सत्संग में सम्मिलित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। कुछ दिन पहले ही उस साधक को अपने सारे दाँत निकलवाने पड़े थे। साधना-सत्संग में उसके अनुकूल भोजन की व्यवस्था कर दी गई थी। विनोद-सभा में एक दिन श्रीमहाराज जी ने कहा, 'कहो सेठ जी आजकल तो खाने को खूब हलवा मिलता होगा' और हँसने लगे। फिर पूछा, 'प्रतिदिन कितना जाप करते हो?' भरी सभा में बड़े संकोच से उसने हाथ जोड़कर धीरे से कहा, 'एक लाख।' श्रीमहाराज जी बहुत प्रसन्न हुए और हँसते हुए कहा, 'सेठ जी, आप तो लखपति हो गये।' श्रीमहाराज जी की कृपा से कुछ वर्षों में उस व्यक्ति के पास लाखों की सम्पत्ति हो गई।

33. एक बार एक साधक श्रीमहाराज जी को आकर कहने लगा कि उस

पर थोड़ी राम-कृपा हुई है। यह सुनकर महाराज गद्‌गद् हो गये। उस समय उनके मुख-मण्डल की ज्योति और मस्तक का तेज देखते ही बनता था। महाराज जी कहने लगे, 'जिस पर मेरे राम-कृपा करने लगे हैं, वह धन्य है। उसे बार-बार नमस्कार। राम ने थोड़ी कृपा की है तो और भी करेंगे।' श्रीमहाराज जी ऐसे साधक की सहायता करते थे कि उस पर से कृपा-अवतरण रुक न जाये। वे ऐसे साधक को मान देते थे, उसका उत्साह बढ़ाते थे। उस साधक ने अनेक भक्तों और संतों के दर्शन किये, पर जो प्रसन्नता महाराज जी के दर्शन करने से होती थी, इस पर उसका कहना था, **'वे तो वे ही थे।'**

34. सन् 1942 की बात है एक साधक नई-दिल्ली में सपरिवार रहते थे। एक और सज्जन सपरिवार उनके पड़ोसी थे। श्रीमहाराज जी के दिल्ली आने पर वह साधक उनके दर्शन करने उनके निवास स्थान पर प्रतिदिन जाया करता था। एक दिन उसने अपने पड़ोसी के साथ हुई अनबन और उसके दुर्व्यवहार के विषय में श्रीमहाराज जी से कहा कि बात इतनी बिगड़ गई है कि अब सम्भवतः मारपीट न हो जाये। श्रीमहाराज जी मुस्करा दिये। उसे लगा कि उसे अपनी समस्या श्रीमहाराज जी को नहीं बतानी थी। कोई अध्यात्म की बात सुननी चाहिये थी। श्रीमहाराज जी से अपनी प्रतिकूल परिस्थिति का वर्णन नहीं करना चाहिये था। यह तो घर-घर की कहानी है। पर श्रीमहाराज जी की मुस्कान के पीछे बहुत कुछ छिपा था। वे अपने भक्त का दुःख सह न सके। दूसरे ही दिन वे उसके घर पर सीढ़ियाँ चढ़कर अकेले गये। किन्तु उसके फ्लैट पर ताला लगा था। उन्होंने साथ वाले पड़ोसी को बाहर बरामदे में खड़ा देखा। वह श्रीमहाराज जी को देखकर चकित हो गया। उनके पाँव छुए और अपने फ्लैट में ले जाकर धन्यवाद सहित कहा–कि उसके अहोभाग्य कि श्रीमहाराज जी ने उसके घर में चरण डाले। श्रीमहाराज जी ने कहा–'मैं इधर तुम्हारे पड़ोसी (साधक का नाम बता कर) के पास आया था। वह मेरे मिलने-जुलने वाला है। उसके तो ताला लगा है। अच्छा हुआ आपके दर्शन हो गये।' श्रीमहाराज जी ने उस पड़ोसी का और परिवार वालों का कुशल पूछा। कुछ देर बैठे, प्रेम की चार बातें की। बहुत कहने पर भी कुछ खाया नहीं और चले गये। जब वह साधक घर लौटा, तो वह पड़ोसी जिससे साधक का बोलचाल बन्द था,

उसके घर आकर कहने लगा– 'अरे! श्रीमहाराज जी जैसे महापुरुष आप को मिलने आये थे। आप बड़े भाग्यशाली हैं।' उस दिन के पश्चात् जिस कारण उन दोनों की अनबन थी, वह मिट गई और वे दोनों पड़ोसी बड़े प्रेम से रहने लगे।

श्रीमहाराज जी के जाने के दूसरे दिन जब वह साधक उनके दर्शन करने गया, तो विनती की, 'मैं बड़ा अभागा हूँ, आप आये और मकान पर ताला लगा था।' वे फिर मुस्कराये और कहा, 'मैं तो तुम्हारे मकान पर बार-बार आता हूँ। सदा द्वार बन्द होता है और ताला लगा रहता है। यह सुनकर साधक की अश्रुधारा बह निकली। हम कहते हैं हम भगवान को ढूंढते हैं। अरे! भगवान तो हमें ढूँढते फिरते हैं। बार-बार आकर हमारे द्वार पर ताला लगा देखकर लौट जाते हैं। फिर भी आशीर्वाद तो छोड़ ही जाते हैं।'

35. सन् 1959 में श्रीमहाराज जी के एक परम सेवक (लाला भगवानदास कत्याल) अपने रोग के उपचार के लिये लन्दन जाने को तैयार हुए। तब श्रीमहाराज जी ने आज्ञा दी कि तुम विदेश हो आओ। वहां के जलवायु और आहार-नियम से ही तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक हो जायेगा। ओपरेशन नहीं कराना पड़ेगा। वह सेवक सपरिवार चेकोस्लोवाकिया पहुँचा और वहाँ की प्राकृतिक-चिकित्सा पद्धति से उसने अपने आपको स्वस्थ अनुभव किया। फिर भी लन्दन ओपरेशन कराने के लिये गया। जब वहाँ ओपरेशन की सब बातचीत तय हो गई, अकस्मात् उसने अनुभव किया कि वह पूर्णतया स्वस्थ है और ओपरेशन करवाये बिना लन्दन से भारत लौट आया। दिल्ली आकर उसे पता चला कि जिस दिन उसका ओपरेशन होना था, उसी दिन श्रीमहाराज जी ने एक दूसरे सेवक को कहा था– 'आज हम जाग्रत स्वप्न में लन्दन गये और वहाँ अस्पताल में उस सेवक को कहा कि तुम बिल्कुल ठीक हो, वापस आ जाओ।' तब उसे याद आया कि श्रीमहाराज जी ने भक्ति-शक्ति दान से भारत में रहते हुए उसे लन्दन में स्वस्थ कर दिया था और इसीलिये उसने अपने आपको अकस्मात् पूर्ण स्वस्थ अनुभव किया और भारत लौट आया।

36. एक बार एक सज्जन ने श्रीमहाराज जी से पूछा कि कुछ लोग कहते हैं कि आयु घटती-बढ़ती है और कुछ कहते हैं आयु निश्चित है। आपका इस विषय में क्या विचार है? महाराज जी ने मन्द मुस्कान से बताया कि क्या लेना है आयु के घटने-बढ़ने से। जितना समय मनुष्य जीवे, शुभ कर्म और परोपकार के लिये जीवे।

37. एक साधक को जो पहली बार साधना-सत्संग होशियारपुर में सम्मिलित हुआ, यह विचार उठा कि श्रीमहाराज जी की उस पर कृपा नहीं है। उसने एक दूसरे साधक को भी ऐसा कहा, जिसने श्रीमहाराज जी को उसका भाव बता दिया। स्वामी जी महाराज ने कहला भेजा, मुझे तुम्हारा विचार है और आशीर्वाद भी दिया। परन्तु उसके मन में वह भावना बनी रही और कुछ एक घटनाओं से और दृढ़ हो गई। एक दिन जब वह ध्यान में बैठा, तो उसके मन में वह बात आई। ध्यान से मन उखड़ गया, किन्तु उसी समय उसे ऐसा अनुभव हुआ कि श्रीमहाराज जी उसके पास आये हैं और अपना हाथ उसके मस्तक पर रखकर कह रहे हैं, 'घबराते क्यों हो? मेरा ध्यान तुम्हारी ओर रहता है। निःसंकोच अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते जाओ।' उसे बड़ी सान्त्वना मिली। बाद में उसे महाराज जी का आशीर्वाद समय-समय पर अपने आप मिलता रहा।

38. एक बार एक नगर में श्रीमहाराज जी वर्षाकाल में ठहरे हुए थे। बहुत वर्षा हो रही थी और साधक चिन्तित थे कि महाराज जी का प्रवचन कैसे होगा? उन्होंने कुछ उदास होकर महाराज जी से प्रार्थना की कि ऐसी वर्षा में आपका प्रवचन कैसे होगा? महाराज जी ने कहा– 'आप क्या चाहते हैं?' एक साधक बोला– 'महाराज दूर-दूर से साधक आपका प्रवचन सुनने आये हैं।' महाराज जी बोले, 'आप व्यवस्था करो, मैं आऊँगा।' साधक बड़े प्रसन्न हो, बाहर आये तो देखा वर्षा बन्द थी। बड़ी तीव्रता से आंगन का पानी निकाल कर दरियाँ बिछा दीं और ठीक समय पर प्रवचन तथा भजन-कीर्तन हुआ। यह सारे समय वर्षा बन्द रही, किन्तु शेष समय दिन-रात वर्षा होती रही। पूरा एक सप्ताह ऐसे ही वर्षा होती रही, परन्तु केवल प्रवचनों के समय बन्द रही।

39. एक सोलह वर्ष के दीक्षित युवक में महाराज जी के दर्शन करने की

बड़ी इच्छा थी। उन दिनों बाराखम्बा रोड, एक साधक के घर में सत्संग होता था। जब वह वहां पहुँचा, तो सत्संग की समाप्ति पर सूचना दी गई कि महाराज जी बंगलो रोड पर ठहरे हुए हैं, जो दर्शन करना चाहें कर सकते हैं। वह एकदम साईकल उठाकर भागा, क्योंकि मिलने का समय थोड़ा ही रह गया था। तीव्रता से साईकल चलाता हुआ वह हाँफता-हाँफता पहुँचा। सामने महाराज जी के दर्शन किये, किन्तु कुछ मिनटों में ही महाराज जी ने सबको उठा दिया और उसे अपने पास बिठा कर प्यार से हंसते-हंसते कहने लगे 'प्यारे! मैं तुम्हें बहुत याद करता था। तुम तो मुझे बिल्कुल याद नहीं करते होंगे।' यह सुनकर वह रोने लगा। श्रीमहाराज जी ने उसे चुप कराया, पर उसका रोना बन्द न हुआ। उन्होंने बहुत प्यार किया, समझाया और कहा, 'प्यारे! चुप हो जाओ, हँसो। फूल खिला हुआ ही अच्छा लगता है।' यह सुनकर वह चुप हो गया और श्रीमहाराज जी से आशीर्वाद लेकर वापस घर चला गया।

40. एक देवी ने श्रीमहाराज जी से साधना-सत्संग में आने की अनुमति माँगी। श्रीमहाराज जी ने पूछा तुम्हारे दर्द का क्या हाल है ? उसने कहा अभी ठीक नहीं हुआ। महाराज जी ने कहा—यदि ठीक होगा तो आना, अन्यथा नहीं। उसने कई डॉक्टरों को दिखाया, पर पसली का दर्द ठीक नहीं हुआ। सत्संग में केवल बीस-पच्चीस दिन शेष रह गये थे, तो वह रात को बहुत रोई। उसने श्रीमहाराज जी से प्रार्थना की कैसे सत्संग में आ सकूंगी ? ऐसे ही रोते-रोते वह सो गई। प्रातः चार बजे उसे अनुभव हुआ कि महाराज जी आये और कहने लगे देखो, भोजपत्र की फक्की बनाकर खाओ। उसने पूछा कितनी मात्रा में ? उन्होंने कहा, 'क्या यह कोई बताने आयेगा ?' इतने में उसकी नींद खुल गई। दिन चढ़े उसने पंसारी से चार आने का भोजपत्र मंगाया। उसको चीथू से चीथे तो चीथा न जाये, पीसे तो पीसा न जाये। उसने भोजपत्र को कढ़ाई में आग लगा दी तो राख बन गई। उस राख को एक चम्मच में डालकर दूध से खाकर बाहर आ कर बैठ गई। उसने देखा एक बूढ़ा पीले वस्त्र पहने और राम-राम लिखी चादर ओढ़े उसकी कोठी के अन्दर आ गया और कहने लगा आज संक्रांति है। फिर उससे बातें करते देवी ने पूछा, 'बाबा जी, भोजपत्र से भी कोई

दवाई बनती है ?' उसने कहा, 'हाँ, छत्तीस दवाइयां इसकी बनती हैं। देवी ने पूछा, 'काहे के लिये ?' उसने उत्तर दिया, 'दर्दों के लिये आधा तोला राख दूध से खानी होती है।' उस देवी ने चार दिन खाई। उसका दर्द बिल्कुल ठीक हो गया। वह दिल्ली आकर महाराज जी के दर्शन करने गई। श्रीमहाराज जी के पूछने पर बताया कि दर्द बिल्कुल ठीक हो गया है। श्रीमहाराज जी ने पूछा, 'किस की औषधि से ?' देवी बोली, 'आप की औषधि से।' महाराज जी बोले, 'मेरी कैसे ?' देवी बोली, 'महाराज जी आपने भोजपत्र बताया था।' तो हंसते-हंसते उठकर अन्दर चले गये।

41. एक साधक महाराज जी के दर्शन करने गया, तो साथ में संतरे ले गया। जब संतरे महाराज जी को भेंट किये, तो उनको देखकर महाराज जी गुस्से से बोले, यह क्यों ले आये ? यहाँ इनको खाने वाला कौन है ? इनको थैले में डाल लो। उसने थैले में डाल लिये, पर मन में दुःखी हुआ कि महाराज जी ने एक भी स्वीकार नहीं किया। इतने में एक सज्जन आये और श्रीमहाराज जी को अपने साथ एक ताँगे में ले गये। यह साधक भी अपनी साईकल पर उनके पीछे हो लिया। उसके मन की क्षुब्धता उसके मुख से श्रीमहाराज जी ने ताँगें में बैठे देख ली। ताँगा रोका, उसे बुलाया और कहा, 'लाओ संतरे। इनका प्रसाद बना देता हूँ। घर जाकर बच्चों में बांट देना।' उन सन्तरों पर हाथ फेरते हुए श्रीमहाराज जी ने एक संतरा निकाल लिया और कहा, 'ले जाओ इनको।' वह साधक अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक घर लौट गया।

42. श्रीमहाराज जी अपने नियमानुसार सन् 1954 में गुरदासपुर में एक सप्ताह निवास करके रेल से जाने वाले थे। साधक मण्डल स्टेशन पर एक नदी प्रवाह की भाँति उनके दर्शनों को उमड़ आया था। श्रीमहाराज जी सबको आशीर्वाद देकर विदा कर रहे थे। एक साधक हाथ में रुमाल के अन्दर एक मिश्री का कूजा और उसमें थोड़ी सी इलाइचियाँ लेकर प्रयास कर रहा था कि श्रीमहाराज जी तक पहुँच कर उन्हें भेंट करे। किन्तु गाड़ी चलने का समय हो गया और श्रीमहाराज जी ने गाड़ी में सवार हो दरवाज़ा बन्द कर लिया। गाड़ी चल पड़ी और वह साधक निराश होकर व्याकुल हो गया और गाड़ी के

साथ-साथ चलने लगा। अकस्मात् गाड़ी चलते-चलते रुक गई और श्रीमहाराज जी मन्द मुस्कान से दरवाजा खोल खड़े हो गये। वह साधक उनके सामने इलाइचियों वाली मिश्री लेकर खड़ा था। श्रीमहाराज जी ने दोनों हाथ उसके कन्धों पर रखते हुए उन्हें प्रेमपूर्वक स्वीकार किया और एक सेवक को, जो पास ही खड़ा था, आवाज़ दी, 'लो भाई, ज़रा इसको तोड़ दो।' तोड़ा हुआ एक टुकड़ा और एक इलाइची श्रीमहाराज जी ने ले ली और शेष साधक समूह में बांटने का आदेश दिया। तत्पश्चात् तुरन्त अपनी सीट पर जा बैठे।

43. सन् 1954 में श्रीमहाराज जी की जन्म-तिथि पर पंचरात्रि का साधना-सत्संग उनकी अनुमति से दिल्ली में लगा। इस निमित्त एक परम सेवक (लाला भगवान दास कत्याल) ने अपनी सारी कोठी खाली कर दी। पहली रात काफ़ी गर्मी थी। अप्रैल का महीना था। रात काफ़ी असुविधा से बीती। प्रातः काल जब साधकगण श्रीमहाराज जी के साथ बाहर जाने लगे, महाराज बोले– 'रात बहुत गर्मी थी। आप लोगों को नींद कैसे आई होगी ?' साधक गण बोले, 'महाराज! आपकी कृपा से सब ठीक ही रहा।'

दूसरी रात जब आई तो इतनी सर्दी हो गई थी कि सब ने कम्बल और मोटे वस्त्र ओढ़े। प्रातः वायुसेवन करने जाते समय ऊनी स्वेटर पहनने पड़े और यह स्थिति पूरे पंचरात्रि-सत्संग में रही। किन्तु श्रीमहाराज जी ने एक बार भी अपने मुखारविन्द से इस ऋतु परिवर्तन पर कोई वार्तालाप नहीं किया। इस घटना से स्पष्ट होता है कि उनकी शक्ति कितनी महान थी और वे प्रार्थना बल से ही क्या कुछ नहीं कर सकते थे ?

44. एक सज्जन महाराज जी के पास आये और बोले, 'महाराज जी! ध्यान नहीं लगता। कई एक महात्माओं के पास गया हूँ। कोई कहता है शिव का ध्यान करो, कोई कृष्ण का और कोई राम का ध्यान बताते हैं। मैं किस का ध्यान करूं ?' महाराज जी हंस पड़े और बोले– 'एक लड़की अपनी माँ को कहने लगी, माँ, जब मैं मन्दिर जाती हूँ तो लोग मेरी ओर देखते हैं' माँ ने कहा– 'बेटी मन्दिर जाया ही न करो।' यदि तुम महात्माओं के पास जाना ऐसा विघ्नकारी समझते हो, तो उनके पास न जाया करो। जो तुमने पूछा उसका उत्तर तो यही है, किन्तु इसका उचित उपाय भी है, ऐसा कहकर श्रीमहाराज

जी दूसरी ओर देखने लगे और अगले दिन अपने कार्यक्रम के अनुसार चले गये। वह सज्जन श्रीमहाराज जी से प्रभावित तो बहुत था। किन्तु महाराज जी के पास जाने का साहस नहीं होता था। कुछ समय बाद उसने निश्चय किया कि महाराज जी के दर्शन करे और तदर्थ वह साधना-सत्संग नांगल में सम्मिलित हुआ। जब वह नांगल साधना स्थान पर पहुँचा, तो श्रीमहाराज जी ने उसे देख लिया और कहा आप ने जब मैं आपके नगर में आया था, तब नाम क्यों नहीं लिया ? यहाँ इतनी दूर पहुँच कर कष्ट उठाया। अश्रु भरे नेत्रों से वह बोला, महाराज संयोग नहीं था। यथा समय श्रीमहाराज जी ने उसे दीक्षा दी।

45. एक दिन श्रीमहाराज जी के सम्मुख एक साधक बैठा था। अकस्मात् श्रीमहाराज जी ने हाथ उठाकर अंगुली से गोल चक्कर बनाते हुये बड़े गद्गद् भाव से कहा, 'राम-नाम तीनों लोक में गूँज रहा है। मुझे स्पष्ट दीख रहा है कि वह बड़ा कल्याण कर रहा है।' श्रीमहाराज जी ने ये शब्द ऐसे निश्चय और भाव से कहे कि वे उस साधक के अन्दर घर कर गये। अब जब भी अमृतवाणी का पाठ होता है और यह पंक्ति आती है 'होता तीनों लोक में राम-नाम गुण गान', तो उस साधक को महाराज जी के वे शब्द याद आ जाते हैं तथा वह समय, वह स्थान और वह भाव उसके सामने एक-चित्र रूप में आ जाते हैं और उसे रोमांच होने लगता है।

46. एक देवी को श्रीमहाराज जी पर बड़ी श्रद्धा थी। उसका बेटा नौकरी पर जाते समय श्रीमहाराज जी के निवास स्थान पर अपनी माँ को छोड़ देता और दोपहर को लौटते समय उनको वापस ले आता। पर स्वयं श्रीमहाराज जी के दर्शन करने अन्दर नहीं जाता था। एक दिन श्रीमहाराज जी ने उस देवी से पूछा– 'तुम्हें कौन लाता है और ले जाता है ?' उसने उत्तर दिया– 'मेरा एक ही बेटा है जो भारत सरकार में एक ऊँचे पद पर है। वही मुझे अपनी कार में लाता है और खाने के समय वापस ले जाता है। मेरी बड़ी सेवा करता है।' श्रीमहाराज जी ने कहा– 'कल रविवार है, उसे कहना थोड़ा समय निकाल कर मुझे मिले। मुझे उससे कोई काम है।'

उस लड़के को रविवार को देर तक सोने की आदत थी। पर उस दिन यह सोचकर कि उसे श्रीमहाराज जी ने बुलाया है प्रातःकाल ही तैयार होकर

अपनी माता जी के साथ महाराज जी से मिलने चल पड़ा। उस देवी ने महाराज जी से अपने पुत्र का परिचय करवाया और वह महाराज जी को नमस्कार करके उनके सामने बिछे गलीचे पर बैठ गया।

श्रीमहाराज जी ने उसकी ओर बड़े ध्यान से देखा और थोड़ी देर देखते रहे। फिर मुस्कराये। फिर उसके सिर पर हाथ रखा। खड़े हो गये और बहुत प्यार से बोले– 'अपनी माता जी को यहीं बैठा रहने दो और तुम मेरे साथ मेरे कमरे में आओ।' जब वे अपने कमरे में पहुँचे, तो उन्होंने उस व्यक्ति को गले लगाकर बहुत प्यार किया और कहा, 'पिछले जन्म में तुम मेरे बहुत प्यारे मित्र थे। मुझे पता नहीं था कि तुम मुझे इस जन्म में भी मिलोगे। मैं तुम्हें फिर मिल कर गद्‌गद् हो गया हूँ।' उनके इस प्रकार कहने का उस पर बहुत प्रभाव हुआ और वह उनके पाँव में गिर कर रोने लगा। महाराज जी ने उसे प्यार से सामने बिठाया और नाम दान दिया। जब घर जाकर उसने अपनी माता को यह सब कुछ बताया, तो वह बड़ी प्रसन्न हुई और अपना जन्म धन्य माना। उस दिन से उसके लड़के का जीवन बदल गया और उनका घर एक मन्दिर बन गया।

47. जालन्धर में श्रीमहाराज जी एक बार एक साधक की कोठी पर अपने आप गये। उस साधक को बाद में पता चला कि श्रीमहाराज जी जिसके घर अपने आप जाते हैं, वहाँ प्रभु-प्रेरणा से जाया करते हैं। उसकी छोटी लड़की को देखकर श्रीमहाराज जी ने पूछा– 'इस लड़की की शादी कब करनी है ?' उसने उत्तर दिया, 'महाराज जी, इस लड़की का कद इतना छोटा है कि कोई योग्य वर इसके लिये नहीं मिलता। हम कितनी देर से इसके लिये प्रयत्नशील हैं और कुछ चिन्तित भी इसी कारण रहते हैं।' श्रीमहाराज जी ने उस बालिका की ओर कुछ देर देखा। फिर बोले, 'सब कुछ भगवान के हाथ में है। यदि वह चाहे तो दस दिन के अन्दर बिना आप के ढूंढे लड़का अपने आप आपके घर आ जाये।' फिर ज़ोर से हँसने लगे।

एक सप्ताह बाद उसका एक पड़ोसी मित्र उसके घर आया और बोला कि मेरा एक मित्र अपनी पत्नी और लड़के सहित कलकत्ता से अपने लड़के के लिये कोई योग्य लड़की ढूँढ़ने आया है और मेरे पास ही ठहरा है। तुम अपनी बेटी के लिये बात क्यों नहीं चलाते ? उसने मित्र के घर जाकर लड़के को देखा और कहा लड़का इतना लम्बा है, और उसकी लड़की के कद से उसका कद दुगुना है, भला वह क्यों मानने लगा ? उसकी पत्नी ने कहा– प्रयत्न करने में क्या हर्ज है ? तत्पश्चात् वह लड़के के पिता से मिला और उन्हें अपनी लड़की से मिलाया। उन्होंने लड़की को पसन्द कर लिया और बात पक्की हो गई। श्रीमहाराज जी ने जो कहा था वह सच निकला।

48. एक साधक का एक ही बेटा कॉलेज पढ़कर आया, तो वह उसे श्रीमहाराज जी के पास नाम-दान (दीक्षा) के लिये ले गया। श्रीमहाराज जी ने उससे पूछा, आगे और पढ़ना है क्या ? कौन सी पढ़ाई आगे करनी है ? उसने उत्तर दिया– महाराज, एक ज्योतिषी से मेरे पिताजी ने मेरी जन्म-पत्री बनवाई है, जिसके अनुसार अट्ठाईस वर्ष की आयु में मैं राम को प्यारा हो जाऊंगा। यह जानकर न तो मेरा आगे पढ़ने को जी करता है और न किसी काम में मन लगता है। यह सुनकर श्रीमहाराज जी ने उस साधक की ओर इतने क्रोध से देखा कि वह काँप उठा। उन्होंने गम्भीर और ऊँचे स्वर में कहा, 'राम-नाम जपने वाले कभी ज्योतिषियों और जन्म-पत्रियों में विश्वास नहीं करते।' उस साधक ने निवेदन किया, 'न जाने इसने अपनी जन्म-पत्री कब देख ली ?' श्रीमहाराज जी ने उस साधक पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट की और थोड़ी देर बाद बड़े प्रेम से उसके बेटे को अपने उस कमरे में ले गये, जहां वे प्रतिदिन ध्यान करते थे। वहां उन्होंने उसे विश्वास दिलाया कि यह जो ज्योतिषी की बात है, एकदम गलत है। उसे नाम की दीक्षा दी और प्रतिदिन राम-नाम की एक माला जपने को कहा। फिर उस साधक को भी अन्दर कमरे में बुलाया और कहा कि तुम दोनों दम्पत्ति इस बच्चे के लिये पांच-पांच लाख का नाम जाप करो। राम-नाम सब संकट और विघ्न-विनाशक है। राम-कृपा से उस बालक ने दीर्घ आयु प्राप्त की।

49. एक सेवक को सन् 1959 में श्रीमहाराज जी ने आदेश दिया कि वे 'कार्तिक माहात्म्य' के विषय में कुछ चर्चा करना चाहते हैं। वह एक शास्त्री को ले आया, जिसने श्रीमहाराज जी को 'कार्तिक माहात्म्य कथा' पढ़कर सुनाई। श्रीमहाराज जी मन्द मुस्कान के साथ सुनते रहे और अन्त में

बहुत संतोष प्रकट किया। पर उस सेवक को यह समझ नहीं आई कि श्रीमहाराज जी ने क्यों एक विशेष महीने का माहात्म्य सुना ? सन् 1960 के कार्तिक में जब श्रीमहाराज जी ने भौतिक कलेवर का त्याग किया तब उसे समझ आई कि एक वर्ष पूर्व ही श्रीमहाराज जी ने शरीर-त्याग की तिथि जान ली थी।

50. रामायणी-सत्संग, हरिद्वार में एक दिन श्रीरामायणसार के पाठ में तीन-चार बार '**सनातन धर्म**' शब्द आया। एक साधक के विचार में शंका पैदा हुई कि रामायण-सार श्रीमहाराज जी ने तब लिखी थी, जब आर्य-समाज के कार्यकर्ता थे। इसलिये उसे विचार आया कि '**सनातन धर्म**' के स्थान पर '**आर्य धर्म**' अथवा '**वैदिक धर्म**' लिखना चाहिये था। उसको श्रीमहाराज जी से यह पूछने का साहस नहीं हुआ। परन्तु श्रीमहाराज जी ने रात्रि के सत्संग में जब उस दिन के पाठ पर अपने भाव रखे, तो कहा कि आज के पाठ में तीन चार बार '**सनातन धर्म**' शब्द आया है। यह शब्द मैंने अपनी ओर से नहीं लिखा अपितु जैसे महर्षि वाल्मीकि जी ने अपनी लिखित रामायण में लिखा है, उसी प्रकार मैंने लिख दिया है।

एकबार प्रवचन में महाराज जी ने बतलाया कि राम-जाप से केवल मनुष्य के मानसिक ही नहीं शारीरिक और भौतिक रोग भी समाप्त हो जाते हैं और यह भी बताया कि पूर्व जन्म के कर्मों के रोग तो राम-नाम के जाप से ही समाप्त होते हैं। श्री महाराज जी साधक के मन की स्थिति जान कर प्रवचन में उसका समाधान कर दिया करते थे।

51. साधना-सत्संग हरिद्वार में, जो श्रीमहाराज जी के जन्म-तिथि पर लगता है। उसके अन्तिम दिन महाराज जी ने अपने प्रवचन में वर्णन किया– 'साधक को एक निष्ठा से भगवान की उपासना करनी चाहिये। ऐसे ही तल्लीन होना चाहिये जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पति की सेवा में लीन होती है अथवा जैसे माता अपने पुत्र की सुश्रुषा में लीन होती है, आदि।' जैसे ही श्रीमहाराज जी ये शब्द उच्चारण कर रहे थे, साधकों ने देखा महाराज जी ऊपर की ओर देखने लग गये। ऐसा प्रतीत हुआ मानो साधकों के पीछे किसी ऊँचे स्तर पर महाराज जी को किसी ने आकृष्ट किया। महाराज जी के

मुखारविन्द पर तेज सहस्त्रों गुणा बढ़ गया। अश्रुपात की झड़ी लग गई। महाराज जी ने अपना विह्वल भाव बड़ी तीव्रता से रोका। अश्रुओं को पोंछा और आगे बोलना शुरु किया।

श्रीमहाराज जी ने पहले कई बार स्वरूपों की उपलब्धि के सम्बन्ध में वर्णन किया था। सम्भवतः इस बार भी श्रीमहाराज जी को ऐसी ही उपलब्धि उनके जन्म-तिथि के उपलक्ष्य में हुई थी। जिसकी एक छटक उपस्थित साधकों को अश्रुपात तथा रोमांच के रूप में हुई थी।

52. एक उत्साही साधक अपने निकटवर्तियों को श्रीमहाराज जी के पास नाम-दीक्षा के निमित्त ले जाया करता और उनका परिचय देते समय उनकी प्रचुर प्रशंसा करता। श्रीमहाराज जी ने एक-दो बार तो सुना, किन्तु बाद में कहने लगे– 'तुम जिस नये व्यक्ति को लाते हो, उसका केवल मुझे नाम बता दिया करो। बाकी मुझे उसे देखते ही पता चल जाता है। साधक को बड़ा आश्चर्य हुआ और पूछने लगा कि उसे यह बात समझ नहीं आई। श्रीमहाराज जी ने हंसकर कहा, अरे ! तुम किसी भी व्यक्ति को लाओ और उसको पूरा छुपाकर केवल उसकी ठोड़ी दिखा दो। तो उसी से मैं तुम्हें उसका पिछले तीन जन्मों का चरित्र बता सकता हूँ। फिर पूरे व्यक्ति को देखकर तो उसका चरित्र जान लेना तो बहुत ही सरल है।' यह सुनकर साधक नतमस्तक हुआ और धन्य मानता चला गया और फिर नये व्यक्तियों का केवल नाम ही बताया करता। अधिक कुछ किसी व्यक्ति के विषय में कहने का साहस नहीं किया।

53. **भक्ति में दृढ़ता**– श्रीमहाराज जी एक साधक के गाँव (सांपला) में जाया करते थे। उस साधक ने एक सत्संग हॉल बनाया था और वहां प्रातःकाल प्रतिदिन सत्संग लगता था। एक बार श्रीमहाराज जी कुछ दिन वहां ठहर कर जब जाने लगे, तो उन्होंने उस साधक से कहा– 'देखो! यह सत्संग प्रतिदिन समय पर लगाते रहना, कभी विघ्न न पड़े।'

एक दिन सत्संग लगने से पहले जब वह साधक अपनी खेती का भरा ट्रक लाकर अपने गैरेज में रखने लगा, तो पीछे से उसका लड़का ट्रक के नीचे आकर कुचल कर मर गया। वह साधक बहुत घबराया, पर अपने आप को सम्भाला। शव को एक ओर गैरेज में रखकर उसका दरवाज़ा बन्द करके ताला

लगा कर, सत्संग में ठीक समय पर पहुँच गया। जब सत्संग समाप्त हुआ तो उसने सब सत्संगियों को अपने बच्चे के कुचल कर मर जाने की घटना सुनाई और कहा कि मैंने तो श्रीमहाराज जी की आज्ञा का पालन किया कि सत्संग ठीक समय पर लगे और कभी विघ्न न पड़े। तत्पश्चात् बच्चे का अन्तिम-संस्कार सब ने सम्मिलित हो कर किया।

54. **मोह से पतन**– स्वामी जी ने एक साधक को बताया कि थोड़े दिन पहले मेरे पास एक वृद्ध सज्जन आया था। कहने लगा– नौकरी से रिटायर हो गया हूँ और पांच सौ रुपये पेन्शन पाता हूँ। जब पेन्शन की रकम आती है तो मेरा बेटा सारी की सारी रकम मुझसे ले लेता है और यदि मैं देने में आनाकानी करता हूँ, तो मुझे छड़ी से मार कर ले लेता है। उसने मुझे अपनी पीठ पर छड़ी के निशान दिखाये। मैंने उससे कहा कि मैं तुम्हारे लिये एक ऐसे आश्रम में रहने की व्यवस्था कर दूंगा, जहां पांच सौ रुपये में तुम बड़े आराम से रह कर स्वाध्याय, जाप, दान, सेवा आदि कर सकोगे और अपना बाकी का जीवन सार्थक बना सकोगे। मार खाने और अपमान सहने से बच जाओगे। पर उस सज्जन ने कहा कि वह अपने बेटे को छोड़ना नहीं चाहता, इसलिये मैं उसके बेटे को समझाऊं। मोह मनुष्य को कितना गिरा देता है और भीरू बना देता है!

55. **अहंकार साधना में बाधक**–एक बार कुछ साधकों के बीच श्रीमहाराज जी विराजमान थे। सम्भवतः उनमें कोई महत्वाकांक्षी होंगे। श्रीमहाराज जी कहने लगे–'लोगों का झगड़ा रहता है कि मैं बड़ा, दूसरा कहता है कि मैं बड़ा। वास्तव में बड़ा कैसे बनता है, यह सुनो– एक बार दाल और बड़ा आपस में झगड़ने लगे।

दाल ने कहा कि तू मेरे से ही निकला है, तो मुझसे बड़ा कैसे हो गया? तब बड़े ने कहा–

पहले थे हम उड़द, उड़द से दाल कहाई।
फिर किया गंगा स्नान, त्वचा दी गई उतराई।।
कर पत्थर से युद्ध, अंग-अंग चूर बनाये।
फिर कूदे तप्त कड़ाह में, घाव बरछी के खाये।।
लाल हो निकल बाहर, तब हम बड़े कहाये।।

इस प्रकार श्रीमहाराज जी ने उन साधकों को बड़ा बनने का रहस्य सहज स्वभाव में बड़े विनोद तथा सरल ढंग से बताया।

56. एक बार सत्संग आरम्भ होने से पहले साधक जब कीर्तन कर रहे थे। श्रीमहाराज जी ठीक समय पर पधारे। तब साधक गा रहे थे, 'सानूं मिल गया राम प्यारा, होर असीं की मंगना।' श्रीमहाराज जी थोड़ी देर सुनते रहे, फिर हाथ उठाया और कीर्तन रुक गया। उन्होंने कहा गाइये, 'सानूं मिल गया नाम प्यारा, होर असीं की मंगना।' संकेत पाते ही फिर से सारा सत्संग हॉल गूंज उठा और श्रीमहाराज जी के साथ सभी साधक उठकर नाचने लगे। 'मिल गया नाम प्यारा, मिल गया नाम प्यारा।' और राम का नाम तो एक है, पर नाम की डोर को पकड़ कर ही साधक राम-धाम तक पहुँचता है।

(पूज्य श्री प्रेमजी महाराज के मुखारविंद से)

1. परम पूज्य महाराज युवावस्था में जैन धर्म के एक बड़े यति रहे। उसके पश्चात् आर्य-समाज में सम्मिलित हुए। एक बार अजमेर में स्वामी दयानन्द जी का जन्म शताब्दी महोत्सव मनाया जा रहा था। वहाँ उन्हें आवाज़ आई कि एकांतवास करो। तब डलहौजी में श्री वृन्दावन लाल सौंधी की कोठी में रहकर उन्होंने तप किया। उन्हें व्यास-पूर्णिमा पर 'राम' मंत्र प्राप्त हुआ। श्री पुरुषोत्तम दास टन्डन के पूछने पर महाराज जी ने उन्हें अपनी अनुभूति का वर्णन किया।

2. एक बार सेनफ्रांसिसको से एक जनरल राय बहादुर जानकी नाथ जी की कोठी पर महाराज जी से मिलने आया। उसने महाराज जी से दीक्षा ग्रहण की। फिर वह बोला कि आप अब मेरे गुरु हो गये। महाराज ने कहा– नहीं मैं तो सेवक हूँ, सेवा करता हूँ। जैसे हैदराबाद में अचानक किसी को कोहिनूर हीरा मिल गया हो, ऐसे ही परमेश्वर ने अकारण कृपा कर मेरी झोली में 'राम' नाम का प्रसाद डाल दिया है। महाराज इतने महान थे। अनेक ऋद्धि-सिद्धियाँ उन्हें प्राप्त थीं। लेकिन अपने को साधारण ही मानते थे।

3. एक संत, जो वैद्य थे आये, उनका वेश साधारण था। उन्होंने महाराज की नब्ज देखी। जब जाने लगे तो महाराज ने उन्हें कहा कि आपने बड़ी कृपा की। जैसे कीड़ी के यहां भगवान पधारे हों, वैसे ही आप आये।

4. महाराज जिस आत्मा को चाहते, उससे बात कर लिया करते थे। आह्वान करके बुला लिया करते और उनसे समाधान कराया करते थे। गीता-भाष्य करते समय महाराज ने श्रीकृष्ण जी की आत्मा का आह्वान किया और उनसे समाधान कराया।

5. एक बार मैंने श्रीमहाराज जी से एक संत की दवा खाने की प्रार्थना की। उन्होंने कहा– नहीं मैं ऐसे दवा नहीं लेता। मैं उन संत से मिल नहीं पाया। जबकि उन्होंने उनकी बहुत प्रशंसा की। मुझे उनसे मिलने का अवसर नहीं मिला।

दूसरे दिन महाराज जी ने कहा कि उन संत से बहुत देर तक बातें कीं। वह दवा हानिकारक नहीं है। जबकि वह संत स्थूल शरीर में नहीं थे। इस प्रकार वे आत्मा को आह्वान कर बातें कर लिया करते थे।

6. महाराज में बड़ी संघ-शक्ति थी। संगठन व एकता के लिये सदैव तत्पर रहे। उनकी कथाओं में सनातनी व आर्यसमाजी मिलकर काम करते थे। हमें भी एकता बनाये रखनी है। संगठन से ही उन्नति होती जाती है। जैसा महाराज करते थे, वैसे ही हमें करना है।

7. एक बार महाराज जी किसी जनरल से मिलने गये। उनके यहाँ एक सफेद दाढ़ी वाले बुजुर्ग सरदारजी बैठे थे। उन्होंने महाराज से पूछा– 'महाराज आपकी उम्र क्या है ?'

'मैं तो अपने आप को अभी बालक ही समझता हूँ।'

'आपकी कुटिया कहाँ है' ?'

'महाराज ने अपने शरीर की ओर संकेत करके कहा– 'मेरी तो यही कुटिया है। मैं इसके भीतर ही घूमता हूँ।' अतः महाराज जी ने अपने जीवन काल में आश्रम बनाने के लिये बहुत कुछ प्रेरणा नहीं दी थी। वह कहते थे कि बाद में फिर झगड़े बढ़ जाते हैं। शिष्यों में परस्पर हिस्से के लिये झगड़े होते हैं।
दो शिष्यों का उदाहरण- 'लड़ाई + मुकद्दमा = हार्टफेल'

8. 'अपने को पुजवाने से एवं अपनी प्रशंसा सुनने से अहं बढ़ जाता है। हम लोग संत को पूज-पूज कर, प्रशंसा कर-कर के बिगाड़ देते हैं। उसमें गिरावट आ जाती है।' श्रीरामानन्द जी ने अपने को महाराज से स्वतंत्र कर लिया फिर वह स्वयं कष्ट भोगते रहे और परलोक सिधार गये।

9. डलहौजी में एक तरुण ने महाराज जी से दीक्षा ली। फिर उसकी आत्मा जग गई। लेकिन वह स्वतंत्र हो गया। उसने स्वतंत्र होकर सोचा– मैं नौकरी नहीं करूंगा, साधू बनूंगा। फिर भटकता रहा। वह वर्धा भी गया। वहां से भी निकाला गया। महाराज के अनुशासन में न रहने का फल भोगना पड़ता है।

10. परमेश्वर से कृपा माँगनी चाहिये। दुनिया की चीज़ों में क्या रखा है ? स्वामी विवेकानन्द जी का दृष्टांत– 'माँ सब कुछ जानती है, उससे क्या माँगना ?' 'यहां आकर हमें सीखना चाहिये। घर जाकर भी हम सब नियमों का पालन करते रहें, इससे जीवन बड़ा मधुर बनता है।

साधना-सत्संग, हरिद्वार
दिनांक 13 से 18.4.1973

11. एक बार पूज्य महाराज से साधना-सत्संग में एक देवी ने कहा कि घर पर भी हम बहुत काम करते हैं। यहाँ भी आकर करना पड़े, क्यों न नौकर लगा लिया जाये। महाराज बोले, यह बड़ा सौभाग्य समझना चाहिये कि ऐसे स्थान पर जहां राम-नाम का आराधन होता है, नियमित सब कार्य होते हैं, भजन-पाठ होते हैं आदि-आदि। वहाँ सेवा करना बड़ा पुण्य-कार्य है। अतः सबको सेवा करनी चाहिये। हरि की पौड़ी (ब्रह्मकुण्ड) पर घंटाघर के नीचे पूज्य महाराज कुछ देर बैठकर लहरों को निहारा करते थे। कहते थे कि यहाँ पर अनेक संत-महात्माओं ने तप किया है, अपनी आहुतियां दी हैं। उनका बड़ा प्रभाव है। यहाँ बैठकर जाप करते-करते लहरों को निहारते रहना चाहिये। स्वामी जी महाराज के पैरों में सूजन रहा करती थी। वे कहते कोई क्या जाने ? यह एक रहस्य है। वह दूसरों की पीड़ा व कष्ट हरण कर लिया करते थे। तन, मन, धन से यथाशक्ति सेवा करते रहना चाहिये। प्रार्थना करनी चाहिये। महाराज को एक ईसाई आत्मा ने कहा कि मैं सेवा करने को तैयार हूँ। वह अपने भौतिक शरीर में सेवा ही करते रहते थे और फिर शरीर छोड़ने के बाद भी सेवा करने को तत्पर रहे।

12. एक बार किसी संत ने श्रीव्यासदेव जी से पूछा कि जितनी आयु आप की है, उतनी और मिले तो क्या करेंगे ? बोले– मैं और वेदों का अध्ययन

करूँगा। फिर पूछा, जितनी गंगा नदी में रेत है, उतनी आयु और मिले फिर क्या करेंगे? वह बोले– उतना और अधिक वेदों का अध्ययन करूँगा। इसी प्रकार महाराज ने कहा कि कोई मुझसे पूछे कि आपकी आयु अधिक बढ़े, तो आप क्या करेंगे? मैं कहूँगा कि मैं और अधिक रामनाम का जाप करूँगा। श्री लाला लाजपत राय को जब काले पानी की सज़ा हो गई, उस समय महाराज शिमला पधारे। वहाँ वे आर्य-समाज में ठहरे। वहां का पंडित कहने लगा कि अब यहाँ कोई नहीं आता है। बैंक ऑफ इंडिया के अधिकारी भी नहीं आते। कोई उपाय करियेगा। उसी रात महाराज ने वाल्मीकीय-रामायण से कुछ नोट्स तैयार किये। रात्रि को कथा प्रारम्भ करने का तय किया। पंडित ने कहा, प्रातःकाल कोई नहीं आता है तो रात्रि में कौन आयेगा? महाराज ने कहा सब ठीक होगा। पहले दिन केवल पांच आदमी थे। दूसरे दिन पच्चीस हो गये। पाँचवे दिन सौ, फिर हॉल में जगह नहीं मिली, खुले में कथा कहनी पड़ी। उसके बाद ही रामायण-सार लिखा गया।

साधना-सत्संग, हरिद्वार
दिनांक- 29 जून- 4 जुलाई, 1974



उपदेश

(पत्रों में से उद्धृत)

1. ध्यान सिमरन आदि को भी न छोड़ियेगा। मनुष्य जन्म की सफलता इसी में है। ऐसा उत्तम और सुगम मार्ग मिलना यहां दुर्लभ है।

2. निश्चय के साथ आराधन करते रहिये।

3. मुझे निश्चय है कि आप अपने कामकाज में अच्छी उन्नति कर रहे हैं। कोमल स्वभाव और पूरा परिश्रम ये साधन सफलता को अवश्य समीप ले आते हैं। काम को मन लगाकर करने का लक्ष्य फल की अपेक्षा उत्तम है। फल तो स्वयं हुआ करता है। उसको लक्ष्य बनाना उचित नहीं होता। साधन को करते रहियेगा।

4. आपकी कष्ट-कथा जानकर कर्म-गति का ही ध्यान आया। प्यारे! संसार में शुभाशुभ फल भोगने ही पड़ते हैं। इससे आज तक कोई भी मनुष्य नहीं बच सका। केवल धैर्य और भगवान का भरोसा ही साहस का कारण हुआ करता है। सम-विषम उपभोग सहन करने में सुख समझा जाता है। मन को सम रखने का यत्न ही उत्तम पुरुषार्थ है। उत्तम पुरुषार्थ ही शान्ति और मानस सन्तुष्टि का सर्वश्रेष्ठ साधन है। मनुष्य को इस बात में यदि संतोष हो कि उसका जो कर्त्तव्यकर्म था, उसने उसको भली प्रकार पालन कर लिया है, तो फिर उसे किसी प्रकार की चिन्ता चित्त में नहीं आने देनी चाहिये। पांच भूतों की कोठरी में घिरा हुआ यह प्राणी न तो सर्वज्ञ ही है और न ही सर्वशक्तिमान। इसके अधीन केवल कर्त्तव्य पालन है। ईश्वर आपको अपना भरोसा दान दे।

5. आप भजन, ध्यान करने के समय यह संकल्प कर लिया करें कि यह भजन, ध्यान आपको सुख, स्वास्थ्य तथा प्रसन्नता देने वाला है। इससे आपका मस्तक, हृदय और सारा शरीर बहुत ही सुखी हो जायेगा। ऊपर के विचार से आपको बहुत लाभ होगा और विघ्न सर्वथा दूर हो जायेगा।

6. आशा है आप सब विघ्नों से मुक्त होकर अपने चिन्तन, स्मरण और ध्यान में समय देते होंगे। भगवान विघ्न-विनाशक और मंगलकारी है। नाम का भरोसा दोनों लोकों में काम आता है। इस भरोसे वाला जन कालान्तर में भवसागर से अवश्यमेव पार पा जाता है। भगवद्भक्त का नाश और दुष्ट जन्म कदापि नहीं होता। भगवान के नाम को हृदय में स्मरण करते समय अपने आपको अपने ज्ञान, विज्ञान, बुद्धि, बल सहित परमेश्वर की चरण-शरण में समर्पण करके निश्चिन्त हो जाना ही परम भरोसा है।

7. आप भजन, ध्यान करते रहें और श्रीराम पर भरोसा रखें। वह ही एक सहारा है।

8. भजन, ध्यान करते रहिये। इससे चुपचाप अपने आप मनोविकास भीतर होता रहता है।

9. अधिक भावना से आराधन करते जाइये।

10. मन को अशान्त नहीं रखना चाहिये। विवेक, विचार और नाम-जप से मन के दुःख दूर कर दिया करो।

11. साधन करते रहिये। मानव जीवन का यही उत्तम सार है। अपने स्वास्थ्य का अवश्य ध्यान रखा करें।

12. आप ध्यान स्मरण करते रहिये। अन्य जो भी कुछ होता है उसे साक्षीरूप से जानते जाइये।

13. हृदय के ऊपर एक प्रकार का विघ्न उपस्थित होने पर, 'राम-नाम जपते हुए अपना हाथ हृदय पर फेरते रहिये। सब ठीक हो जावेगा। निश्चयपूर्वक करिये, भरोसा रखिये, राम भली करेंगे।'

14. मेरा शुभ-संकल्प आपके साथ है।

15. आप अपनी चिकित्सा करते रहिये। सावधानी बड़ी वस्तु है। राम-मंत्र भी जपते जाइये।

16. आपका व्यवहार और परमार्थ भली प्रकार चल रहा होगा। ऐसे शुभ अवसर से लाभ लेना ही चाहिये।

17. आप के नित्य नियम निभ रहे होंगे, ऐसी आशा है। अधिक कमाई करने का यही शुभ अवसर है। इससे सुलाभ लेना ही चतुरता है।

18. आपके भजन, पाठ, साधन, सत्संग चल रहे हैं, ऐसा मुझे निश्चय है।

19. सत्संग का कार्य उत्तम है। इसका संचालन करते रहिये।

20. अन्य सज्जनों के विरोध का कोई विचार न करिये। अपनी ओर से उनके लिये शुभ-कामना करनी ही उचित है। यह राम का काम है, किसी का निजी नहीं है। राम किस जन से कितना काम लेना चाहते हैं, यह वे स्वयं जानते हैं। अपने कार्य का अभिमान नहीं होना चाहिये।

आप ध्यान, जाप करते रहें।

चतुराई से काम करो। बिना विचारे, किसी से अधिक सम्बन्धित हो जाना राम प्रेमी के पथ में बाधा डाल देता है।

21. आपका राम कार्य तो अत्युत्तम है। जप, कीर्तन बहुत प्रशंसनीय है। ऐसे उत्तमोत्तम कार्यों को करते हुए जीना ही वास्तव में जीना है। ऐसा भागवत जीवन, देव दुर्लभ जीवन है। आपको किसी पूर्व पुण्य के प्रभाव से प्राप्त हुआ है। श्रीराम-कृपा आप पर सदा बनी रहे।

मैं आप सब के कल्याण की कामना करता हूँ।

22. आप मेरे स्वास्थ्य की जितनी चिन्ता करते रहते हैं, उसका मैं अति आभारी हूँ। आप दोनों के लिये मेरी मंगल-कामना स्फुरित होती ही रहती है।

श्रीराम ने अपना कार्य आपको सौंपा है। उसको समर्पण-भाव से और निरहन्तापूर्वक करते जाईये। श्रीराम-कृपा आप पर बनी रहे।

श्रीमती........को अपनी भावना भगवान में अखण्ड रखनी चाहिये। डोलना, परमार्ग अन्वेषण करना साधक के लिये हितकर नहीं होता। यह उपदेश है।

23. आपका काम तो श्रीराम का काम है। वह जितना चाहेगा उतना होता ही जायेगा। संसार बहुत बड़ा है। उसमें सबके लिये स्थान है। आप अपने कार्य को तत्परता से करते जाइये और अपने आपको श्रीराम का यंत्र ही समझिये।

मुझे हर्ष है कि आप स्वात्मा में सन्तुष्ट हैं। निश्चय में पक्के हैं। अनन्य राम-भक्त हैं और राम-कृपा के पात्र हैं। इतना ही पर्याप्त है कि आप अपने

आपको किसी अन्य सज्जन उपासक से कम समझ कर उसकी इच्छा के अधीन न बन सके।

आपके संकोच का मुझे ज्ञान है। वह एक गुण ही है।

24. रामेच्छा से सब कार्य चल रहे हैं। यही भावना बनी रहनी उचित है। आप चिन्ता को, शोक को, मोह को और मानस दौर्बल्य को जीतने की चेष्टा किया करें।

25. धैर्य और शान्ति से काम लो। इस संसार में दुःख दर्द तो हैं ही। उनको सहन करना ही होता है। इनसे भागकर कोई कहां जायेगा ? घबराओ नहीं। भगवान पर भरोसा रखो। विश्वास दुर्बल न बनाओ। परमात्मा आप को बल दे।

26. जो भूल आदि के हो जाने पर आपके चित्त में उच्चाट उत्पन्न हो जाता है, उसके होने पर जाप करने लग जाया करो। पुस्तक पाठ करिये, राम-राम बोलकर जपिये, भगवान के शान्तिमय स्वरूप का चिन्तन कीजिये।

श्रीमती देवी जी की अवस्था उत्तम है। स्वरूपों के दर्शन भगवान की विभूतियों के परिचय हैं और उन्नति-परिचायक चिन्ह हैं।

27. यह सृष्टि ईश्वर से संचालन होती है। इसी समझ में सुख तथा शान्ति है। यही निश्चय रखना उचित है। धैर्य से रहो।

28. मुझे तो केवल यही कहना है कि मेल-जोल और प्रेमपूर्वक कार्य करने में अधिक लाभ होता है। यह कार्य श्रीराम का है। न जाने भगवान किससे कितना काम लेना चाहता है! कभी-कभी परीक्षा भी, धृति की, शान्ति की, विश्वास की, समर्पण की तथा कार्यपरता की राम किया करते हैं। सो आप भी पक्के रहिये।

29. औषध खाते रहिये। **'राम'** मंत्र से सब विघ्न दूर हो जाते हैं। उपद्रव भी नहीं रहते। निश्चय करो। राम सहायता करेंगे। जप अधिक करिये।

30. अपने स्वास्थ्य को सुरक्षित रखना यह भी मनुष्य के लिये बड़ा कर्त्तव्य है।

31. मानव देह कर्मफल भोगने का स्थान है। यही स्मरण रखने योग्य वार्ता है।

32. स्थिर चित्त से और निःस्वार्थ भाव से कार्य करते जाइये। श्रीराम पर निर्भर रहिये।

33. पर वे दुर्बल होंगे। इसलिये उनकी सेवा में रहना प्राथमिक कर्त्तव्य है। आप हरिद्वार में होने वाले चैत्री सत्संग में न आइयेगा।

34. निराश न होइयगा और घबराइये भी नहीं। उत्साह और धैर्य से रोग दूर हो जाया करते हैं। चिकित्सा ठीक होनी चाहिये।

35. जीवन से जितना भी शुभ बन सके, उतना ही बनना चाहिये।

36. आप सब व्यास-पूर्णमासी का पावन पर्व, जप, ध्यान, पुण्य, पाठ तथा प्रीति-भोजन आदि से मनाओगे। यह एक श्रेष्ठ प्रकार है। यह पुनीत पर्व, आप सब में ज्ञान वृद्धि का, राम-भक्ति का, कर्त्तव्य-पालन का, उच्च विचारों का, आत्म-जागृति का समुदय करे। आप सब में सद्भावों की स्फूर्ति हो।

37. आप भजन, ध्यान करते रहें। संसार तो परिवर्तनशील बना ही रहेगा। राम-नाम का आराधन ही मंगलकारी और सुखद है।

38. सत्संग के काम राम के काम हैं। वह तो राम आप ही करेगा इसकी चिन्ता करनी अनुचित है।

39. मैं समझता हूँ कि आप भली प्रकार काम कर रहे होंगे और सत्संग तथा जाप भी चलते रहते होंगे। सत्संगियों में उत्साह बढ़ाते रहा करो। इससे काम अधिक फूलता-फलता रहेगा।

40. श्रीराम-नाम का प्रचार जितना अधिक कर सको, करते रहो। यह एक उत्तम कर्म है।

41. राम का कार्य करने का अवसर पुण्योदय से ही प्राप्त हुआ करता है।

42. राम का यंत्र बनकर तत्परतापूर्वक काम करते जाइये। अपने आपको श्री राम का ही मानिये। कार्य को तो वह स्वयमेव करता है।

43. श्रीराम की प्रीति, श्रद्धा और विश्वास अधिक से अधिक बढ़ाइये। इस मार्ग में यही एक सार और कर्म का रहस्य है। पिछले कामों को भूला करो, अबेर-सबेर तो घूमने वालों के सामने आया ही करती है। बीती बात को बड़ा रूप देकर मानस कष्ट की वेदना भोगना भक्तों के भावों के विपरीत है। बीते

समय का शोक करना उचित नहीं होता। मुझे कोई कष्ट उस दिन नहीं हुआ था। काम आप करते जाइये। परिणाम परमेश्वर पर छोड़िये। फलाफल उसी के अधीन समझिये। आप तो एक साधन के रूप में काम करते जाओ। काम उसी का है।

जो पथ आपको दिया गया है, वह उत्तम है। उस पर चलते-चलाते चले जाओ। यही एक पुण्य कार्य है।

प्रचारक

44. यह हर्ष समाचार है कि आप प्रचार कर रहे हो। प्रचारक पद तो आपको दिया ही गया था।

राम-नाम के प्रचारक को शान्त, सुशील, सभ्य, सज्जन, साधु स्वभाव का होना चाहिये।

वह निन्दक न होवे। मान कीर्ति से दूर रहे।

निस्वार्थता से काम करे।

राग-द्वेष को जीते और वासना विजय करे। श्रीराम आश्रय रहना ही प्रचारक का कर्त्तव्य है।

श्रीराम आपका सहायक हो।

45. यह बात सच जानिये कि श्रीराम अपना काम जिससे जितना लेना चाहता है, उससे उतना ही बन पड़ता है।

46. मनुष्य की कामना तो कई कारणों से बहुत होती है। परन्तु राम जानते हैं कि किस काम के योग्य और कितने काम के योग्य कौन व्यक्ति है ? ऐसे निश्चय से धैर्य, शान्ति और राम भरोसा बढ़ता है।

47. आप 'प्रार्थना और उसका प्रभाव' इस नाम की पुस्तक का मनन करते हैं। यह उत्तम बात है। उसको जीवन में बसाना बहुत ही आवश्यक है। ऐसा किये बिना काम करने वाले का जीवन बल शक्तिहीन बना रहता है।

48. आपके लिये शुभकामना सदा बनी रहती है। परमेश्वर श्रीराम आपको सुख स्वास्थ्य में रखे।

आप नित्य भ्रमण तो करते ही होंगे। स्वास्थ्य का नियम भी पालन करना ही चाहिये। नामाराधन भी करते रहा करो। इसमें आलस्य प्रमाद करना उचित नहीं होता। चित्त में चिन्ता की चिंगारी चमकने देना हानिकर है। मन को प्रसन्न रखना एक बड़ा कौशल और सुखी रहने का गहरा रहस्य है। अपने मानस बाग के कुसुमों को कुम्हलाने देना हितकर नहीं होता।

49. श्रीरामानन्द जी के सत्संग से आपको लाभ हुआ। यह उत्तम बात है। आपकी सेवा से वे प्रसन्न हैं।

आपकी स्वास्थ्य की दृष्टि से और जो 'पद आपको प्राप्त कराया गया है, उसके विचार से आपका हरिद्वार जाना आपके लिये हितकर नहीं स्फूर्त्त हुआ। आपको अब स्वयं अपने-आपको-राम कार्य का यंत्र समझना उचित है। उत्तम जीवन का विकास आपमें आप ही आप होगा।

50. आप राम के कार्य करते जाइये। अधिक वाद-विवाद में पड़ना उचित नहीं हुआ करता। काम करना ही ठीक है, विचार-भेद सहन भी करना चाहिये।

आपके कारण राम-नाम का प्रचार वहाँ बहुत हो गया है। यह हर्ष-जनक है।

51. आपकी भावना उत्तम है। राम-नाम का प्रचार भी बहुत करते हैं। हाँ, न, एक बार होने पर फिर बार-बार उसी बात को दुहराना उचित नहीं है। यह प्रकृति त्याग देनी चाहिये।

52. मैं समझता हूँ कि आपकी अवस्था अब सुधर रही होगी। डॉक्टरों की सम्मति के अनुसार चलना ही ठीक है। आप अपने मन के धैर्य को न छोड़ें और घबरायें भी नहीं। पड़े-पड़े राम-नाम का स्मरण करते रहा करें। राम की दृष्टि में जो होगा, अच्छा होगा।

53. 'परस्पर मिलकर परामर्श करके सत्संग की तिथियां नियत कर लीजिये। सबकी सुविधा के दिन तो मिलने कठिन होते हैं। थोड़ा बहुत बलिदान तो करना ही होता है।' इस वर्ष चाहे दीपावली के दिन रखो अथवा नवम्बर में, सूचना मिलने पर मैं आ जाऊंगा, परन्तु आगे को स्थिर बात सोचनी होगी। मुझे भी कार्य करने होते हैं। इसलिये मैं चाहता हूँ निश्चय में परिवर्तन न किया जाये, तो बहुत उचित है।

54. राम-भक्तों के सब कार्य सुधर जाते हैं, ऐसा निश्चय रखिये। राम सब भली करेंगे।

55. किसी भी शारीरिक वेदना पर विश्वासपूर्वक राम-नाम चिन्तन करते हुए हाथ फेरा जाये, तो अवश्य लाभ होता है।

श्रीरामशरणम्

56. श्रीरामशरणम् अर्थात् श्रीराम की शरण में।

श्रीरामशरणम् गच्छामि अर्थात् मैं श्रीराम की शरण में जाता हूँ।

श्रीरामशरणम् वयं प्रपन्नाः अर्थात् हम श्रीराम की शरण में प्राप्त हो गये, पहुँच गये।

श्रीरामशरणम् अहं प्रपद्ये अर्थात् मैं श्रीराम की शरण में प्राप्त हुआ हूँ।

□□

संत-वचन

(1)

संसार के क्लेश मृत्यु आ जाने से भी समाप्त नहीं होते। अपने मन को बलवान बनाना चाहिये। मन की शक्ति से कर्म-फलों के भोग शांति से भोगने चाहिये। जहाँ कुछ भी उपाय काम न आ सके, समझो कर्म-फल हैं। चाहे तो रो-पीटकर, चाहे हँसकर, भोग तो भोगने ही पड़ेंगे। सो बिना कर्म-फल भोगे किसी का भी छुटकारा नहीं होता। अतः निरन्तर नाम-स्मरण करना चाहिये। नाम-जाप से ही मन शान्त रहेगा।

भादों- १, २०१६

(2)

मनुष्य को कदापि व्याकुल या उदास नहीं रहना चाहिये। संसार में यह सुख-दुःख सब कुछ चलता रहता है। सभी कामनाओं की पूर्ति असम्भव है। जिस कामना को इंसान स्वयं न पूरा कर सके, उस का परित्याग ही फिर लाभप्रद है। केवल राम-भक्ति की कामना में ही श्रेय निहित है। अन्य कामनायें

जो राम-भक्ति में बाधा डालें, मन को ढीला बना देवें, वे छोड़ने के योग्य ही हैं। सो मन को राम में मस्त रखो।

प्रारब्ध के कर्मों का भी भुगतान तो होना ही है। प्रभु सारे भेदों को जानता है। मानव-मात्र की पहुँच बहुत दूर तक नहीं होती। अतः ईश्वर पर ही निर्भर रहना चाहिये। वह अवश्य कृपा करता है। जो व्यक्ति न्याय को न माने, सत्य-धर्म को, भक्ति-भाव को न समझे, उसे कौन समझा सकता है ? इस प्रकार के व्यक्ति से तो परमात्मा भी परे रहता है। राम के सब रंग देखते चलो। दुनिया में सुख किसी विरले को है। जीवन में बड़े संघर्ष चलते रहते हैं। जीव अपने-अपने कर्मों की बीजी खेती काट रहे हैं। भविष्य के लिये भी सम्भल-सम्भल कर कदम रखो। आत्मा अजर-अमर है। आत्मा मारे से भी नहीं मरेगा। देह की ममता से पार हो कर सोचो, तो मन स्वयं शान्त हो जाता है। प्रभु की इच्छा सुखदायिनी और प्रबल होती है।

'ईश्वर-प्राप्ति का लक्ष्य सर्वोत्तम'– इस भाव की दृढ़ता भीतर होनी चाहिये। परमात्मा की तुलना में संसार के सभी शेष सुखों का कोई मूल्य नहीं। यूँ ही दुनिया भटकती फिरती है। अज्ञानी, माया को ही सब कुछ मानने वाले लोग नहीं जानते कि जगत के भोगों से भी कोई उच्च वस्तु है, जो प्रियता का अखूट भण्डार है, जिससे यह अनन्त विश्व फैला है, जो सभी सुखों की अन्तिम सीमा है, जो कभी भी मरता नहीं, जो सत्य है, जिस का अस्तित्व सदा से है। हे मानव! तू सोच कि वही एक पुरुषोत्तम ही आराधनीय है। उस जैसा मित्र अन्य कोई नहीं है। वेद, शास्त्र, सन्त, सिद्ध आदि उसी का स्तवन, कीर्तन, गायन व ध्यान करते हैं।

कार्तिक- १२, २०१८

(3)

मानवी प्रकृति में विकार आया ही करते हैं। साधारण व्यक्ति का मन बदलते देर नहीं लगती। भक्ति-भाव से रहित व्यक्ति पर किया गया विश्वास हानिप्रद हो सकता है। सारा जगत माया के पीछे दीवाना हो रहा है। माया की विमोहिनी चमक प्रकृतिवादी को विमोहित करके उसका कचूमर निकाल देती

है। सो सदैव माया से ऊपर रहने वाले ही परम शान्ति के भागी होते हैं। मनुष्य को अपने भविष्य जीवन निर्वाहार्थ कुछ कार्य सीख लेना चाहिये। इससे लाभ होता है। इससे स्वतन्त्रता बनी रहती है। स्वतन्त्रता बड़ी सौगात है।

जिस पर सन्त की दया दृष्टि हो जाये तथा उसका पावन प्रेम-भरा आशीर्वाद मिल जाये, तो उसे प्रभु का मिलाप अवश्य हो जाता है। उस पर प्रभु की बहुत कृपा विशेष रूप से होती रहती है। किसी न किसी दिन उसके सभी विघ्न चकनाचूर हो जायेंगे। तीन लोकों में उसकी रक्षा होती है। क्योंकि सन्त तो भगवान का ही रूप होते हैं। भक्त को भक्ति-मार्ग पर, लोगों द्वारा पैदा की रुकावटों को शर्बत समझ कर गटागट पी जाना चाहिये। इससे बड़ा लाभ होता है तथा भक्तिपूर्वक नाम-जाप करते रहना चाहिये। हम सभी एक-दूसरे के हृदय से समीप हैं। भले ही अनेक दीखें, पर भीतर से एक। ग्रन्थों को पढ़ना चाहिये। इससे मन को चेतना मिलती है। दुःख हमेशा नहीं रहते। बिना प्रयोजन के किसी के पास नहीं जाना चाहिये। परस्पर विचार-विमर्श से कार्यारम्भ करना लाभप्रद होता है।

फागुन- १४ विक्रमी २०१६

(4)

ध्यान भजन का आशय लूटना ही प्रभु-कृपा है। राम-नाम का चोखा अभ्यास कर-कर के अपनी चेतना को जाग्रत कर लो। हर समय नाम का ध्यान करो। साथ-साथ मृत्यु का विचार भी मन में लाना चाहिये। क्योंकि इससे मन पापों से बचा रहेगा। अनन्त जन्मों के बंधनों से यह आत्मा जकड़ा हुआ है। मनुष्य जीवन में राम-नाम और साधु-संगति से कर्मो के ताने-बाने कट जाते हैं। आत्मा की गति ऊँची होती जाती है और आत्मा को तुरन्त जगा देती है। यह नाम का मधुर फल है। नाम साधना से अन्य सभी साधन निम्न श्रेणी के हैं, जो कि नाम बिना लाभप्रद नहीं होते। वही वीर देवियाँ हैं जो नाम का भरोसा धारण करके निर्भय हो जाती हैं। जन्म-जन्मांतरों से यह मन बुरे कर्म करता आ रहा है। अतः मनुष्य को सावधान रहना चाहिये। सन्तों के आशीर्वाद से भक्ति व प्रेम का मार्ग सुपथ, सरल और सुगम बन जाता है।

११ माघ, २०१७

(5)

मानव को निरालस्य होकर नाम-जाप, भजन, ध्यान करते रहना चाहिये। आलस्य ही मृत्यु है और पुरुषार्थ ही जीवन है। नाम-जाप से ही सर्व सिद्धि मिलेगी। यही चित्त को जोड़ कर नाम जपने का महान फल है।

प्राणी को किसी मुसीबत में उदास नहीं होना चाहिये। क्योंकि भगवान व्यापक है। जिस स्थान पर भी हो परमात्मा सब के साथ है। ईश्वर के सारे कामों में कोई न कोई रहस्य होता है। **'जो मेरे राम को भावे, वही भला कहावे।'**

संसारी जीव परमार्थ के पथिकों के पथ में काफी विघ्न डालते हैं, लेकिन परमेश्वर भक्तों का मार्ग साफ कर ही देता है। अहा! वह अत्यन्त दयामय है। उस राम की दया का सचमुच अन्त नहीं। अतः राम-नाम की खूब कमाई करो, बड़े काम आवेगी। जब भी परस्पर बैठो, तो भक्ति-भाव की चर्चा करो।

माघ १६, विक्रमी २०१६

(6)

प्रभु अपने भक्तों को स्वयं नाम की विभूति दिया करते हैं। अतः भक्त को उसी में रमण करना चाहिये तथा बड़ी चेतनता से लगे रहना चाहिये। मनुष्य को चाहिये कि वह अपना कल्याण शीघ्र ही इसी जन्म में कर लेवे। क्योंकि ऐसा सुअवसर बार-बार हाथ में नहीं आता।

भक्त को नाम-जाप में संलग्न रहना चाहिये और वह स्वयं ऐसा समझे कि मुझे अभी बहुत कुछ प्राप्त करना है।

२१ माघ, विक्रमी २०१७

(7)

कभी भी सांसारिक कल्पनाओं में चिन्ता न करो। उन बातों को तुच्छ समझते हुए मन से निकाल लिया करें। यह कल्पनायें तो मिटाने से ही मिटती

हैं। सदा प्रसन्नचित्त रहना चाहिये। घरेलू मामूली बातों को दिल पर मत सवार करो। यह उदासी कभी राम के वियोग में लगे, तो कुछ लाभ भी हो। बोल-चाल को मीठा, प्रिय बनाओ तथा धीमे बोलना चाहिये।

फाल्गुन १, २०१६

(8)

अमीरों के घरों से अच्छा, टूटे घरों का कोना है। खुशी की वस्तु भक्ति है, न चाँदी है न सोना है। सच्चे सन्त तो बड़े ही दयावान और क्षमावान तथा बड़ी ही मीठी माँ की तरह होते हैं। अतः उनका आशीर्वाद लेना चाहिये।

आश्विन १५, विक्रमी २०१७

(9)

काम की वस्तु तो राम-नाम है। उस वस्तु से उत्तम कुछ भी नहीं। भक्त को किसी तरह की हानि नहीं। यदि हृदय में भक्ति हो तो शेष को करना क्या!

विक्रमी २०१८

(10)

मेरे-तेरे का भाव रखना कोई गुण नहीं। भगवान मंगलमय है। वे जो भी करते हैं, वह मंगल होता है। भजन-साधन खूब करते रहो। उत्तमोत्तम गुणों से मन को विभूषित करते जाओ। अपने मनोभावों को सन्तों जैसे बनाइयेगा। जन्म को सफल करना ही है। भक्ति-भजन व कार्य-व्यवहार में निष्कामता भरिये। अपने को पूर्णरूपेण रामाश्रय रखिये। प्रभु की तरफ से सुख-दुःख आदि द्वन्द जो कुछ आवें, उसका हृदय से स्वागत करो। अहा!– वे बड़े दयामय हैं।

फाल्गुन २२, विक्रमी २०१७

□□

सत्य-वचन

1. जिस प्रकार मुझे मेरे अंग प्रिय हैं, वैसे ही जो राम-नाम जपते हैं वे प्रिय हैं।
2. जब हम मुख में अच्छा-अच्छा डालते हैं, तो क्यों न हम मुख से अच्छा-अच्छा ही निकालें।
3. कीर्तन मधुर स्वर और भाव से होवे कि ढोलक से भी राम-राम शब्द निकलने लगे।
4. आसक्ति और फल आध्यात्मिक वाटिका को विकसित करने के लिये त्यागना चाहिये।
5. पराये मैल को अपनी जीभ से चाटना, कोई भद्र बात नहीं है।
6. राम के दरबार में जाने के समय किसी और को खातिर में न लाओ।
7. विश्वास से जीवन के डोंगे चल जाते हैं और संशय से चुल्लू भर पानी में डूब मरते हैं।
8. रोली के टीके की जगह विश्वास का टीका लगाओ, फिर चाहे जहाँ फिरो।
9. अध्यात्म-विद्या अर्थात् परा-विद्या एक पूर्ण विज्ञान है। प्रयोग करने पर राम-नाम के तत्त्व प्रकट होते हैं।
10. यदि साधक माला बहुत फेरता है, परन्तु कपड़ों पर साबुन नहीं लगाता, स्वच्छ नहीं रहता, तो क्या भली बात है ?
11. अपनी बड़ाई का गोबर लपेटना ठीक नहीं है।

□□

पूज्य श्रीप्रेम जी महाराज के मुखारबिंद से

आस्तिक भावों की वृद्धि, मंगल और शुभ का संचार हो। यहाँ आने वाले अपने को समुन्नत करें, जितना भी काम कर सकते हैं, सेवा कर सकते हैं करें। यहाँ आने वालों पर परमेश्वर की अपार कृपा है, महाराज की उन पर अपार कृपा है। यहाँ आने पर भी स्वभाव में कोई सुधार नहीं हुआ, तो यहां आने का कोई लाभ नहीं। यदि स्वभाव में अच्छाई नहीं आती, तो यहाँ आने का कोई लाभ नहीं है। हमें महाराज के नियमों में सुदृढ़ता लानी है। यदि यहाँ आने पर कोई उन्नति नहीं की है, तो यह व्यक्ति विशेष की अपनी ही कमज़ोरी है। जिसमें अपने ज्ञान का, अपने गुणों का, अपने धन और अपने बड़ेपन का अभिमान है, उसको यहाँ आने पर कोई लाभ नहीं होता। उपासक के लिये पक्षपाती होना उचित नहीं।

बड़े परिश्रम के द्वारा महाराज जी ने ये साधना-सत्संग के नियम बनाये हैं।

जो नियम चलाये हुए हैं, जो अनुशासन में रहना महाराज ने बताया है, उसमें रहना। किसी को न भाये तो अपने स्वयं के नियम बनाने की कोशिश न करे।

संसार के समस्त कार्य नियम से ही होते हैं। महाराज के बनाये हुए नियम उच्चकोटि के नियम हैं। यदि साधना-सत्संग को अच्छा स्थान बनाये रखना है, तो नियमों पर विशेष ध्यान देना है। हमें यहां संख्या नहीं बढ़ानी है, परन्तु शुभ भाव का प्रचार करना है। हम आप ध्यान, जाप करते हैं, उसमें सूक्ष्म स्वर में जो Vibration चलती हैं, उससे दूसरों को भी लाभ प्राप्त होता है। यदि आप अपने आप को, अपने यश को अपने सामने रखेंगे, तो वह सीमित होगा और राम जाने कि उससे कोई कितना प्रभावित हो सके ? कोई गलती करता है, तो उसे क्षमा कर दें। कोई बुरी बात कह देता है, तो उसका बुरा न

मानें। बड़े-बड़े ज्ञानी अंधकार में हैं। हमने महाराज जी की संगति में जो सीखा है, उसे दूसरों में भी भरने की कोशिश करें।

साधना-सत्संग, हरिद्वार
दिनांक- 3-6-1963

'परमेश्वर की कृपा का पात्र बनने के लिये निरन्तर अधिक से अधिक आराधन करते रहना चाहिये।' परमेश्वर दूसरों की कमज़ोरियाँ स्वयं दूर कर देता है। जैसे मां अपने बच्चों को पालती है, समयानुसार खान-पान कराती है, वैसे ही परमेश्वर अपने उपासक को भी बालकों की तरह रखता है, उसका योग-क्षेम करता है। ऐसे मार्ग पर चलते हुए, यदि कोई बाधा आये, उसमें परमेश्वर आप ही सहायक और पथ-प्रदर्शक होता है।

सबका आदर करते हुए महाराज इस संसार में कार्य करते हुए अपने धाम गये।

एक डॉक्टर का लड़का पहले बड़ा सज्जन था, परन्तु कुसंगति में पड़कर उसने अपना खर्चा बढ़ा लिया एवं कक्षा में फेल हो गया। कुसंगति में पड़कर सज्जन-रूप भी अपने आपको बेकार कर देता है।

संगति का कुसंगति में जल्दी-जल्दी असर पड़ जाना ही इसका कारण है। महाराज के सद्ग्रन्थ ही हमारे लिये सत्संगति हैं । महाराज कहा करते थे कि, 'मैं कोई कवि नहीं हूँ, कोई लेखक नहीं हूँ। जब कलम चलती थी मैं लिखता जाता था, और कलम रुक जाती थी, तब लिखना बन्द हो जाता था।' सद्ग्रन्थों की व महाराज की संगति छोड़कर दूसरे ग्रन्थों में पड़ जाना उसी प्रकार है, जिस प्रकार एक अच्छा बच्चा कुसंगति में पड़ जाता है।

थोड़ी-सी भी किसी को किसी प्रकार की सहायता या हौसला मिले, तो वह अपने विचार प्रकट करने में चूकता नहीं है। एक अच्छे अंग्रेज़ी लेखक ने महाराज के ग्रन्थों की इंगलिश में टीका की, महाराज भी अंग्रेज़ी जानते थे। परन्तु आज जब भारत में हिन्दी का ही प्रचार है एवं हिन्दी का ही बोलवाला है, तो उसे अपनी निज भाषा में ही लिखना चाहिये।

एक लेखक जिसे अपने आप पर गर्व है, जिसका यश लोग गाया करते

हैं, ऐसे ही किसी संत ने महाराज के विषय में लिख दिया कि मैं महाराज के साथ बहुत दिन रहा, परन्तु वे महाराज के साथ कभी नहीं रहे। महाराज का रहन-सहन सादा था।

महाराज को यदि कोई संदेशा किसी को भेजना हो, तो वे टेलीफोन नहीं करते थे, तीन पैसे का पोस्टकार्ड डालते थे। महाराज जिनके यहां ठहरते, वहां वे संदेशा भेज देते।

महाराज कहते थे कि, 'सभी मुझसे कहते हैं कि, मैं अमीरों के यहां रहता हूँ, परन्तु यह किसी ने नहीं कहा कि आप मेरे यहाँ ठहरो।' अमीरों के पास रहने की कोई कहने की बात है!

स्वामी जी ने 'दयानन्द प्रकाश' ग्रन्थ लिखा। जिसके लिये महाराज चाहते तो रॉयल्टी ले सकते थे। परन्तु महाराज ने कुछ नहीं लिया। संशय जिसमें भी होगा वह दूसरों को गिरा दिया करता है। हम महाराज के विचारों में संशय क्यों पैदा करें ?

यह महाराज का पूजन है या कानों, नेत्रों मन का रस है ?

हमें महाराज के ही ग्रन्थ पढ़ने चाहियें। एक अमृतवाणी में इतना ज्ञान भरा है व इतना रसयुक्त ग्रन्थ है कि जिसके होते हुए हमें कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। हमें स्वयं विचार करना चाहिये कि महाराज ने हम पर कितनी दया की! महाराज के ग्रन्थों की व्याख्या कोई नहीं कर सकता।

सब कार्यक्रम सुचारु रूप से सम्पन्न हुए।

यह महाराज का ही कार्य है और इसमें जितना भी कोई समय दे, उतना ही अच्छा है। साधना में नाम के आराधन की जो कृपा होती है, वह परमेश्वर की अभिव्यक्ति को बताती है। अलग-अलग पुरुषों में अलग-अलग प्रकार के चिन्ह हुआ करते हैं। किसी को कम्पन होता है, किसी को नाद सुनाई देता है, किसी को अन्तरतम में खुशी होती है, किसी की बैठे-बैठे यौगिक क्रियायें भी होने लग जाती हैं। किसी का हाथ ऊपर उठ जाये, तो वह परमेश्वर की कृपा है। किसी को ऐसा प्रतीत न भी हो मन में उल्लास हो, तो यह भी परमेश्वर की कृपा है। किसी को किसी स्थान पर जाना है और वह रेलगाड़ी से जा रहा है, तो उसे दरिया, नदी, पहाड़ आदि दिखाई देते हैं, परन्तु हवाई जहाज से जाने वाले को ये सब वस्तुयें नहीं दिखाई देतीं। ऐसे ही साधक के साथ होता है।

एक समय महाराज से किसी जज ने कहा कि हमारे गुरु तो हमें प्रथम बार में ही दशम द्वार दिखा देते हैं, परन्तु आपके राम-नाम में क्या है ? महाराज ने कहा, यदि तेरे गुरु से ही मैं कहला दूं कि मैं कहां हूँ ? जज साहब लज्जित हो गये (जबकि उनके गुरु भौतिक देह में नहीं थे। जज साहब की भ्रांति दूर करने के लिये महाराज जी को ऐसा कहना पड़ा)। ऐसे-ऐसे साधु जो अपने आपको बड़े योगी मानते हैं और जिनका नाम प्रचलित है। संभवतया वे अधिक योगी न हों। महाराज की हम पर अपार कृपा है। किसी को बुरा न कहो, किसी का बुरा न चाहो, परनिन्दा न करो। इस योग को जो हमें प्राप्त हुआ है, उसे हमें गौण नहीं समझना चाहिये। किसी के कहने पर संशय न करना। अपना काम करते चले जाना और जितना हो सके दूसरों की उन्नति के लिये शुभकामनायें करते रहना। जितना अधिक हो सके 'राम-नाम' का जाप करते रहना सबसे उत्तम है। यह सर्वोत्तम काम है। बिना किसी स्वार्थ के कार्य करना, सेवा कार्य है। उससे भी परम पूज्य प्रसन्न हो जाते हैं।

साधना-सत्संग, हरिद्वार
दिनांक- 4.6.1963

स्वामी जी महाराज कहा करते थे कि जो राम-नाम का प्रसाद मुझे मिला, वह मुझे कैसे प्राप्त हुआ ? आप लोगों को बहुत आसानी से प्राप्त हुआ। जैसे लोभी को धन बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है। पर उसकी सन्तान धन की कद्र नहीं करती। जैसे हैदराबाद में 'कोहिनूर' हीरा मिला, उसी प्रकार यह नाम-रत्न मुझे मिला है, इसको बहुत महत्व देना चाहिये। इसका बड़ी भावना से आराधन करना उचित है।

आराधन से मनुष्य अपने को पहचान जाता है। इसी प्रकार जीवन को बिना जाने चले गये, फिर क्या ? सबसे दु:खी वह प्राणी है, जो भूला-भटका होकर चला गया, पर अपने को नहीं पहचान पाया। यह राम का नाम जो हमको मिला है, उसको दत्तचित्त होकर जपना चाहिये। जैसे वकील समय

पर कचहरी जाता है, बाबू दफ्तर जाता है, सब कार्य नियमित होना चाहिये। इसी प्रकार काम करते हुए नाम लेना चाहिये। नाम लेने से काम भी अच्छा होता है और फालतू समय बीत जाता है। हमारा काम बस यही है कि भावना से राम-नाम लें। सब काम को छोड़कर इसी काम को करना है। परमेश्वर की कृपा प्राप्त करने का यही उपाय है कि राम-नाम, निष्काम रूप से लिया करें। परमेश्वर अपने नाम में प्रीति पैदा करे, और अधिक प्रीति हो। राम सब पर तेरी कृपा हो। कृपा हो। कृपा हो।

साधना-सत्संग, हरिद्वार
दिनांक 8.4.1971

हर किसी के हृदय में प्रशंसा सुनने की चाह होती है। कोई तारीफ करे तो हम खुश होते हैं। पूज्य महाराज कहा करते थे कि, 'जैसे ही आज़ादी मिली पन्द्रह अगस्त को खुशी मनाई जा रही थी, उस समय गाँधी जी 'नोआखाली' चले गये। महाराज जी कहा करते थे कि कोई मेरे पाँव पर झुके न। इस प्रकार मान देना वे पसंद नहीं करते थे। एक बार सत्संग में महाराज की प्रशंसा की गई, उनके जन्मदिन पर गीत गाना शुरु कर दिया। महाराज कहने लगे, जहाँ अब तक राम-गुण गाते रहे, वहां पर एक साधारण आदमी की प्रशंसा करना उचित नहीं है। यहाँ एक बार कोई संत उनके पास ठहरे थे। उनके मिलने वाले आये, उनके चरणों पर सिर रखकर लेट गये। महाराज कहने लगे कि सिंध में 'पीर पगाड़ा' पर कभी भी पैर नहीं छुए जाते। मुसलमान पैर नहीं छूते। महाराज नहीं चाहते थे कि कोई बड़ा बने। जो कोई तारीफ़ करे, हम उस तरफ बह जाते हैं। यदि कोई स्पष्ट सुना दे, तो उसे पसंद नहीं करते। भक्ति में गिराने वाले वही होते हैं, जो ऊपर से आदर करते हैं, पर अन्त में गिरा देते हैं। महाराज ने कहा, मुझे नहीं मालुम कि पंजाब में भी ऐसे लोग हैं। यू.पी. में भी हैं। लोग परमेश्वर की साधना इसलिये करते थे कि परमेश्वर के सद्गुण प्राप्त हों। परन्तु इस समय दक्षिण में भी संत हैं, उनको परमेश्वर की तरह पूजा जाता है। महाराज कृष्णचन्द्र जी कहते हैं कि,'जो देवी-देवताओं की पूजा

करते हैं, उनमें वह गुण आ जाते हैं, परन्तु वह परमेश्वर से दूर हो जाते हैं।' एक बार जब हैदराबाद में आर्य समाज के लोग सत्याग्रह कर रहे थे, उस जेल में सत्याग्रही की मारपीट की जाती थी। एक बार वह बहुत घबराये, तो भगवान कृष्ण के दर्शन हुए और मारपीट उनके पहले ही खत्म हो गई, परन्तु उन्होंने महाराज से कहा, उनको अच्छा नहीं लगा।

जो मिले उसे स्वीकार कर, कुछ माँगें नहीं। कभी माँगना नहीं चाहिये और अहंकार नहीं आना चाहिये। जब आदमी को अहम् आता है, तो फिर मन चंचल होता है और दु:खी होता है।

एक बार संत तुकाराम कीर्तन कर रहे थे, शिवाजी उनके पास गये। उन्हें वह अच्छे लगे, उन्होंने पालकी भेजी। तुकाराम परमेश्वर से रोने लगे। परमेश्वर तू क्यों मुझे दूर करता है ? पालकी मुझे नहीं चाहिये, मैं हमेशा पालकी नहीं चाहूँगा। परमेश्वर तू सब पर कृपा कर-कृपाकर-कृपाकर।

साधना-सत्संग, हरिद्वार
दिनांक 9.4.1971

सब बैठकें एक-एक करके समाप्त हुईं। अनुशासन के लिये धन्यवाद। महाराज ने बहुत आश्रमों में देखा हुआ है और कहा करते थे, इस प्रकार का भोजन एवं अनुशासन कहीं नहीं दिखेगा। हम महाराज के आभारी हैं। उन्होंने कहा कि संतों की संगति बड़ी कठिनाई से मिलती है। ग्रन्थों के सम्बन्ध में वह कहते, ईश्वर के प्रसाद से एक नदी के बहाव की तरह चला और हमने लिख दिया। जो इसमें लाभ होता है वह आप अपने घर जाकर अनुभव करेंगे कि हमने क्या लाभ उठाया ? महाराज कहा करते थे कि इन पांच दिनों में वृत्तियां सुधर जाती हैं। यदि हम इस को जीवन का अंग बना लें, तो हमारे घर वालों को इस व्यवहार की सुगन्ध मिलेगी। इस साधना-सत्संग के लिये मैं आपका आभारी हूँ। अध्यात्मवाद, रहस्यवाद है। महाराज को ध्यान की अवस्था में अनुभूतियाँ होती थीं। एक बार एक साधक की आत्मा जग गई। जो प्राप्त हो उसमें अभिमान नहीं करना चाहिये। अभिमान न करते हुए साधना के पथ पर

बढ़ना चाहिये। यह परमेश्वर की कृपा पहले दिन ही हो जाती है। कोई इसको अनुभव करे या न करे। इस बात का भरोसा होना चाहिये और परमेश्वर को अंग-संग मान कर ही साधन करना चाहिये। मैं आशा करता हूँ कि आप सब जाकर साधना को निभायेंगे। परमेश्वर हम तेरी शरण में हैं। तू कृपा कर। मेरी बाँह पकड़ कर ले चल। हे परमेश्वर! यह अकारण कृपा सब पर बनी रहे, कृपा सब पर बनी रहे– बनी रहे–बनी रहे।

साधना-सत्संग, हरिद्वार
दिनांक-10.4.1971

व्यक्ति अपने सुकृत कर्म से ही परमेश्वर की आराधना करे। जितना ही कोई आराधन करे उस पर परमेश्वर कृपा करते हैं। जितने भी संत हुए वे राम-नाम का आराधन करते रहे हैं। इस राम-नाम का जाप (आराधना) करने से सिद्ध हुए। यह परम-धाम से अवतरित हुआ है। पहले जो संत होते थे, वे सोच-समझ कर ही दीक्षा दिया करते थे। किसी से कहते थे कि तू छलांग लगा। यदि वह ऐसा कर सकता, तभी उसको दीक्षा दी जाती थी। तभी वह यह सब ग्रहण करने योग्य बन सकता था।

राम कृष्ण परमहंस का दृष्टान्त................................ जिसने इस ओर लगना है, उसे तैयारी करनी चाहिये। उसे पहले अपने-आप को बनाना चाहिये। तभी वह उस कार्य को करे। ईसाइयों में ऐसे लोग भी हुए हैं, उन्होंने दूसरों से काम नहीं कराया। एक युवक जर्मनी से भारत आया और पादरी से कहा, 'मैं सेवा करना चाहता हूँ।' उस पादरी ने उसे छः माह तक के लिये अस्पताल में भेज दिया। वह काम करता रहा। वह पादरी जब शहर गया तो डॉक्टर के पास अस्पताल में भी गया। डॉक्टर ने कहा, 'एक मद्रासी के फोड़े में मवाद है।' उस पादरी ने उस लड़के को बुलाया और फोड़े को चूसने को कहा। लड़के ने उस पस को चूस लिया। बाद में उन्होंने अपनी संगति में ले लिया और उसे यह सेवा का काम सौंपा। बाद में उसने दक्षिण में बड़ा काम किया। बहुत से ईसाई बनाये। यह तो बलिदान करने का मार्ग है। हम अहंकार को मिटा देंगे तभी हम यह सेवा कर सकेंगे। वही अपने आप को अच्छा बना सकता है। वही

सत्य अथवा अन्य नियमों का पालन कर सकता है। जैसा मिलता है, उसी में सन्तुष्ट रहता है। जिसके साथ बीतती है, उसे समझना चाहिये कि मेरे साथ यह ठीक ही हो रहा है। एक गरीब जो मेहनत करता है, वह सब अवस्था में ठीक रहता है। वह अपने आप में मस्त रहता है।

बाइबिल में, उनके धर्म में भी यह बात है कि जिसमें अहंकार है, वह स्वर्ग में नहीं जा सकेगा। जितना भी हम अपने में नम्रता तथा धैर्य रखेंगे, उतने ही हम आगे बढ़कर कार्य कर सकेंगे।

नवाब का दृष्टान्त–(करुणा तथा नम्रता का उदाहरण)– एक नवाब के पास एक पहलवान रहता था। वह बहुत अच्छा पहलवान था। उस नवाब ने उस पहलवान पर बहुत खर्च किया था। एक दिन एक कुश्ती का आयोजन किया और शर्त रखी कि जो इससे जीतेगा उसे एक हज़ार रुपया इनाम मिलेगा तथा जो हारेगा उसे पांच सौ रुपये इनाम मिलेगा। एक गरीब व्यक्ति जो कमज़ोर था, उससे लड़ने के लिये तैयार हो गया। उस दिन लोगों की बड़ी भीड़ थी। जब वे दोनों मैदान में आये तो नवाब के पहलवान ने उसे कमज़ोर देखकर पूछा कि आप मुझसे लड़ना क्यों चाहते हो ? उसने कहा कि मेरे एक युवा पुत्री है। मेरे पास पैसा नहीं है। जिससे मैं उसकी शादी कर सकूं। मैंने सोचा कि चाहे मैं मर जाऊँ, पर मेरी पुत्री तो अच्छी बन जायेगी, उसकी शादी हो जायेगी। उस पहलवान को बड़ा दुःख हुआ, उसको दया आ गई। उसमें करुणा भाव जग आया। उसने उस से कहा कि तू मेरे ऊपर पड़ जाना, मैं हार जाऊँगा। तुझे पांच सौ क्या हजार रुपये मिल जायेंगे। ऐसा ही हुआ। वह पहलवान नीचे पड़ गया और वह ऊपर पड़ गया। उसमें नम्रता भाव था। यह सोचा ही नहीं कि लोग उससे क्या कहेगें, उसे नौकरी से निकाल देंगे।

दूसरों के प्रति करुणा-भाव रखना, दया-भाव रखना, उनकी सहायता करना, यह बहुत ऊँची बात है। इससे उसे बहुत लाभ होता है। उसको हर कार्य में सफलता मिलती है।

यह नम्रता भाव था, उसने परवाह नहीं की कि मेरी बेइज्ज़ती होगी, यह सोचा ही नहीं। दूसरे में जब तक स्वार्थ है, तब तक वह किसी की नहीं सोचता।

नाम के पीछे पड़े रहते हैं। अपने आपको पीछे करेंगे, तभी हम दूसरों को मार्ग पर लगा सकेंगे।

महाराज जी ने बिगड़े हुए परिवारों में सुधार किया। उनको नष्ट होने से बचाया। एक परिवार ने महाराज का बहुत समय लिया। महाराज बहुत बोले भी, जबकि डॉक्टर ने बहुत बोलने को मना किया हुआ था। मेरे थोड़े से प्रयास से यदि किसी का कोई परिवार बनता है, तो क्या हुआ? जब डॉक्टर ने कहा कि आप ज़्यादा बोलते रहे, तो महाराज ने कहा कि इसके लिये मैं कष्ट उठा सकता हूँ।

रामकृष्ण परमहंस को कैन्सर की बीमारी में बड़ा कष्ट हुआ। आश्रम में किसी ने उनसे पूछा महाराज, आपको यह बीमारी कैसे हुई? आप तो इतने बड़े संत हैं। ऐसा क्यों हुआ? तब उन्होंने उत्तर दिया कि, 'मैने कई लोगों के दुःखों को लिया है।' संत तो ऐसा ही किया करते हैं। वे दूसरों के दुःख को अपने ऊपर लिये हुए होते हैं। महाराज भी अपने देश के लिये तथा विदेशों के लिये प्रार्थना करते थे। आप सब भी महाराज के ही अंश हैं। आप सब भी यह कर सकते हैं। महाराज ने यह कोशिश की है कि आप सबको उसी स्थिति पर ला सकें।

यद्यपि यह रहस्यवाद है, फिर भी महाराज ने उसके लिये लोगों को लगाया है। उनकी शरण में कई संत नहीं आ सके। आप भाग्यशाली हैं, जिससे आप ऐसे संत के सम्पर्क में आये।

वे संत बोले हम तो भाग्यहीन हैं, जो ऐसे संत के सम्पर्क में नहीं आ सके।

आप सब को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ,
महाराज ने यह आपको सुअवसर दिया है।

साधना-सत्संग, हरिद्वार
दिनांक- 15.7.1962

□□

भावना

भव्य भावना भवन में, भुवन-भावन भगवान।
भक्त भक्ति निश्चय में, रहे हरि विद्यमान॥
भीतर भर यह भावना, भक्ति भाव भरपूर।
भक्त भजे भगवान को, कर भ्रम भ्रान्ति दूर॥
भाव-चाव से साधिये, साधक साधन सार।
राम-नाम सब सुख सदन, संशय सकल निवार॥
जितनी दृढ़ हो भावना, उतना राम समीप।
है निश्चय से जानिये, जो श्रद्धा का दीप॥
साधक समझो सार सब, मन मंदिर के धाम।
भक्त के भक्ति-भाव में, सदा रहे श्रीराम॥

— श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज

दोहे

1. सदा रहे सेवा विनय, मान बड़ाई त्याग।
राम-नाम का काम हो, राम-भक्ति अनुराग।।

25.7.59, हरिद्वार

2. बार-बार नमस्कार तुझे, धरणी पर सिर टेक।
राम-राम श्रीराम जी, इष्ट देव हैं एक।।

21.4.56, दिल्ली

□□□